परमात्म वैभव

भाग २

परमात्मप्रकाश प्रवचन

ॐ

परमात्मने नमः

परमात्म वैभव

(भाग - 2)

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव प्रणीत श्री परमात्मप्रकाश परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1965-66 वर्ष के शब्दशः प्रवचन
प्रवचन क्रमांक 32-60,
परमात्मप्रकाश प्रथम अधिकार गाथा 49 से 91

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2081

वीर संवत
2551

ई. सन
2025

—: प्रकाशन :—

भगवान महावीर जयन्ती (चैत्र शुक्ल 13)

दिनांक 10 अप्रैल 2025

के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

ॐ
सहज चिदानन्द

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुए मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास देखने में आवे तो श्री योगीन्दुदेव ई.स. की छठवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने स्वयं की सातिशय अनुभव लेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की। आपश्री ने स्वानुभव दर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आपश्री ने स्वरूप की भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती है।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1100 के मध्य होने का माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढुंढारी में सुबोध टीका रची है। यह ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित हुआ है। आत्मा परमात्मा किस प्रकार हो, उसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अधिकार में भेदविवक्षा से आत्मा—बहिर्आत्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्वप्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान शासन में अपने सबके परमतारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: हुए अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट करके प्रकाशित किया है। आपका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक उनके द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से चलता रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन किये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रवचन ऑडियो में आज मौजूद है, वह सुनते हुए आपश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। आपश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप प्रकाशता तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपकी उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन इस वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलपना, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष लिया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार की संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों का हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वे अलौकिक हैं! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलाकर उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना या बोलना, वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तथापि उनका अपार उपकार हृदयगत होने से शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से प्रस्फुटित हो उठते हैं। आपके उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता, मात्र आपके द्वारा प्रकाशित पंथ के ऊपर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेवसाईट www.vitragvani.com, vitragvani app, vitragvani YouTube channel जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के

पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्यजन लें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् जीवंत रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे पूर्व ई.स. 1976-77 में हुए प्रवचन 'परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 1 से 8' तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा ईम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई; श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड, मुम्बई, श्री अतुलभाई जैन, मलाड, मुम्बई द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र से क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट का मुमुक्षुगण से अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों से हमें अवगत कराये, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ सात भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसका यह दूसरा भाग है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

इति शिवम्

ट्रस्टीगण
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

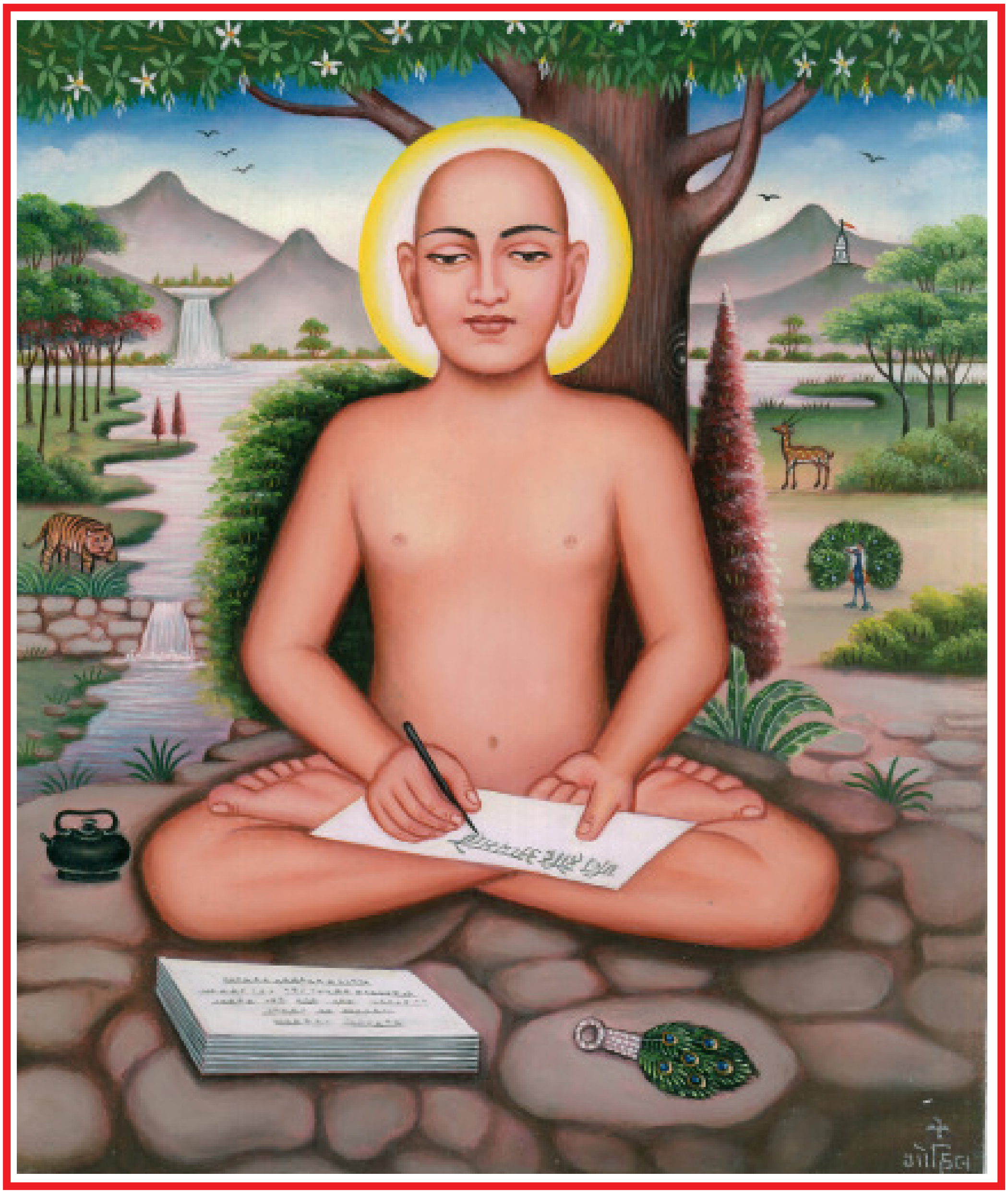

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
३२	२५-१०-१९६५	गाथा -४९	००१
३३	२६-१०-१९६५	गाथा -५० से ५२	०१८
३४	२७-१०-१९६५	गाथा -५२ - ५३	०३६
३५	२८-१०-१९६५	गाथा -५३ - ५४	०५२
३६	२९-१०-१९६५	गाथा -५५	०७०
३७	३०-१०-१९६५	गाथा -५६	०८६
३८	३१-१०-१९६५	गाथा -५६ - ५७	१०४
३९	०२-११-१९६५	गाथा - ५७	१२२
४०	०३-११-१९६५	गाथा - ५७ - ५८	१४१
४१	०४-११-१९६५	गाथा - ५८ - ५९	१६१
४२	०५-११-१९६५	गाथा - ६० - ६१	१७९
४३	०६-११-१९६५	गाथा - ६१ - ६२	१९६
४४	०७-११-१९६५	गाथा - ६२ - ६३	२१७
४५	०८-११-१९६५	गाथा - ६३ - ६४	२३५
४६	१०-११-१९६५	गाथा - ६५ - ६५.१	२५१
४७	११-११-१९६५	गाथा - ६५.१ - ६६	२६९
४८	१२-११-१९६५	गाथा - ६७ - ६८	२८६
४९	१३-११-१९६५	गाथा - ६८	३०३
५०	१४-११-१९६५	गाथा - ६९ - ७०	३१८
५१	१५-११-१९६५	गाथा - ७० से ७२	३३४
५२	१७-११-१९६५	गाथा - ७२ से ७४	३५०

५३	१८-११-१९६५	गाथा - ७५ से ७७	३६५
५४	१९-११-१९६५	गाथा - ७७	३७९
५५	२०-११-१९६५	गाथा - ७८ - ७९	३९६
५६	२१-११-१९६५	गाथा - ८० - ८१	४१३
५७	२२-११-१९६५	गाथा - ८१ से ८३	४२९
५८	२४-११-१९६५	गाथा - ८४ - ८५	४४७
५९	२५-११-१९६५	गाथा - ८६ से ८८	४६३
६०	२६-११-१९६५	गाथा - ८९ से ९१	४८०

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्म वैभव

(भाग-२)

(श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६५-६६ वर्ष के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन)

कार्तिक शुक्ल १, सोमवार, दिनांक २५-१०-१९६५
गाथा - ४९, प्रवचन - ३२

गाथा - ४९

परमात्मप्रकाश ४९ गाथा। ४८वीं हो गयी। **इसके बाद जो आत्मा कर्मों से अनादिकाल का बँधा हुआ है, तो भी कर्मरूप नहीं होता और कर्म भी आत्मस्वरूप नहीं होते। आत्मा चैतन्य है, कर्म जड़ हैं—ऐसा जानकर उस परमात्मा का तू ध्यान कर, ऐसा कहते हैं**—क्या कहते हैं ? देखो ! यह तो मांगलिकरूप से परमात्मप्रकाश इस बार सहज आया है। वाँचते-वाँचते यह आया है, वरना तो लेते नया कुछ।

४९) कम्म-णिबद्धु वि होइ णवि जो फुडु कम्मु कया वि।
कम्मु वि जो ण कया वि फुडु सो परमप्पउ भावि॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ :- जो चिदानन्द आत्मा... यह भगवान आत्मा ज्ञानानन्द-रत्न चैतन्यमूर्ति ऐसे-ऐसे अनन्त गुण से, आनन्द के एक-एक गुण का आनन्द ऐसे अनन्त गुण का आनन्द। भगवान आत्मा में एक आनन्दगुण है। उसे ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, चारित्र का आनन्द, वीतरागपना अर्थात् शान्ति, वह चारित्र आनन्द, अस्तित्व का आनन्द,

स्वच्छता का आनन्द ऐसे अनन्त गुण का अनन्त आनन्दमूर्ति परमात्मा स्वयं है। समझ में आया ? ऐसा आत्मतत्त्व है। '**कर्म निबद्धो**' एक साथ में जड़ कर्म के रजकण अजीव, मिट्टी पड़ी है, परन्तु वह कर्मरूप भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति कभी हुआ नहीं। क्या कहा ? समझ में आया ?

साथ में कर्म जड़ है और जड़कर्म के फलरूप से विकार और अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, विपरीत सरागता आदि भाव है, उसरूप आत्मा चिदानन्दघन अनन्त गुणरत्नाकर प्रभु वह अपनी वर्तमान योग्यता और कर्म, उसरूप कभी हुआ नहीं। समझ में आया ? चिदानन्द भगवान... एक ज्ञानावरणीय आदि जड़कर्म वस्तु है, वस्तु है, उसका स्वभाव है। शाश्वत् वस्तु है, उसके गुण शाश्वत् हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा में एक जीवनशक्ति, वह आनन्ददायक, आनन्दरत्नसहित शाश्वत् गुण का धाम, वह गुण शाश्वत् है, ऐसा आत्मा भी शाश्वत् अनन्त है। शाश्वत् में उसका वर्तमान, भूत, भविष्य कहीं उसका अन्त आता नहीं।

ऐसा यह भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप वस्तुरूप से सत् शाश्वत् वह कदाचित् भी **कर्मरूप निश्चय से नहीं होता,...** समझ में आया ? यह जड़कर्म रजकण जो अजीव है, वह अजीव और अजीव के फलरूप से विकार (उसरूप होता नहीं)। टीका में लेंगे, द्रव्यकर्म और भावकर्म। जड़कर्म अजीव और भावकर्म अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, अल्पवीर्यता, विपरीतता—राग-द्वेषता उसरूप चैतन्यद्रव्य ज्ञायकभाव वह कभी उसरूप हुआ नहीं। समझ में आया ? चैतन्य सत्त्व भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्तगुणसम्पन्न सम्पदा का स्वरूप ऐसा चिदानन्द प्रभु निज-अपना स्वरूप ऐसा है। ऐसा स्वरूप अनादि से मानो कर्म के सम्बन्ध में और कर्म के सम्बन्ध की योग्यतारूप मानो दिखता है। वस्तु में वह कुछ नहीं। वस्तु कर्मरूप हुई नहीं, वस्तु कर्म के निमित्त में अल्पज्ञता और विकार की विपरीततारूप वस्तु हुई नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

चैतन्य भगवान सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा स्वयं है। शाश्वत् ज्ञान, आनन्द का कन्द, वह कर्म अर्थात् जड़ जो प्रारब्ध है, उसरूप तीन काल में कभी हुआ, होता और होगा नहीं। **और कर्म भी जिस परमात्मरूप कभी भी निश्चयकर नहीं होते,...** वह कर्म जड़ और अन्दर अल्पज्ञ और विकार आदि भाव, वे कभी परमात्मद्रव्यस्वरूप कभी होते

नहीं, होते नहीं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु, वस्तु... कल तो बहुत कहा था कि वस्तु जो है, वह तो उत्पाद-व्ययरहित चीज़ है। कर्मरहित तो है, परन्तु वस्तु जो है, वस्तु, वस्तु सत् शुद्ध वस्तु पूर्ण, वह तो एक समय का उत्पाद और व्यय, वह भी व्यवहार में जाता है। वह पर्याय का व्यवहार द्रव्यस्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा वह कर्म और कर्म के सम्बन्ध से हुई दशारूप हुआ नहीं। समझ में आया? इस प्रकार से भगवान विकार और कर्मरूप हुआ नहीं, कर्म और विकार स्वरूप शुद्ध, शुद्ध निज शाश्वत् वस्तु, उसरूप वे कर्म आदि हुए नहीं। ऐसा अन्तर में स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि... यहाँ कहेंगे अन्तर... बहिरात्मपना जो रागादि भाव, शरीरादि बहिरात्मपना, उसे छोड़कर, वस्तु जो त्रिकाल कर्म और अल्पज्ञरूप नहीं हुई, ऐसा जो पूर्ण स्वभाव, उसे अन्तरात्मापने अर्थात् उसके सन्मुख की स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता अन्तरंग की अन्तर पर्याय, अन्तरात्मा द्वारा बहिरात्मा को छोड़कर परमात्मा पूर्णानन्द का आराधन कर। ऐसी बात है। समझ में आया?

परमात्मा को तू चिन्तवन कर। ऐसे लक्षणवाला, देखा? **उस पूर्वोक्त लक्षणोंवाले...** अर्थात् कि यह भगवान आत्मा कर्मरूप हुआ नहीं, ऐसा उसका लक्षण है और कर्म आत्मद्रव्यस्वभाव, स्वभावरूप से वह भावकर्म विकार और द्रव्यकर्म जड़, वह स्वभाव परमात्मा निजस्वरूप सत्त्व सत् सत् शाश्वत् ऐसा जो भगवान निज स्वभाव महिमावन्त पदार्थ, उसरूप भावकर्म और जड़ (कर्म) हुए नहीं। ऐसा जिसका लक्षण है—उस विकार और जड़रूप न होना, ऐसा जिसका लक्षण है। आहाहा! समझ में आया?

बड़ी बात है, भाई! यह स्वयं महान बड़ा जो वाणी में पूरा न आवे, ऐसा यह है, परन्तु इसकी इसे खबर नहीं, कीमत नहीं, कीमत नहीं। आहाहा! कीमत करना आता नहीं। भाई! तू तो पूरा भगवान है न! वह भगवान कभी अल्पज्ञरूप, विकार, कर्मरूप हुआ ही नहीं। आहाहा! (यदि हुआ हो तो) पृथक् पड़ सकता नहीं।... पृथक् है, वह पृथक् ही है तीनों काल। विकार की पर्यायें—दशा और कर्म तथा भगवान आत्मा दो के बीच सन्धि त्रिकाल पड़ी है। दो के बीच सांध है। अर्थात् कि द्रव्यस्वरूप भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु सत् चिदानन्द आत्मा, वह विकार और पररूप हुए नहीं, पररूप हुए नहीं; इसलिए फिर तुझे उनका लक्षण तो उसमें वह नहीं। उस द्वारा अन्तर में जाया

जाये, ऐसी तो वह चीज़ है नहीं। समझ में आया?

भगवान वस्तु स्वयं वस्तु... यह अनन्त काल में ऐसे यह मांगलिक के सुप्रभात ऐसे अनन्त काल में इसने किये नहीं। भगवान आत्मा, अहो! जिसका एक-एक गुण आनन्द के रत्न से भरपूर तत्त्व शाश्वत् गुण है। यहाँ तो द्रव्य की बात चलती है, परन्तु वह द्रव्य, द्रव्य कोई वस्तु स्वभाव से द्रव्य खाली होगा? उसका जो स्वभाव... जीवत्वशक्ति एक लो पहली। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने जहाँ से ली है। जीव का जीवस्वभाव, वह शाश्वत् है और वह आनन्ददायक है। वह शाश्वत् आनन्ददायक जीवत्वशक्ति स्वभाव, वह अल्प जीवनरूप या कर्मरूप वह वस्तु हुई नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह आबाल-गोपाल आत्मायें जो शरीर में दिखती हैं, बालक शरीर हो, वृद्ध हो, स्त्री शरीर हो, वह शरीर, यह आत्मा नहीं। यहाँ तो अन्दर कर्म के नजदीक का सम्बन्ध, ऐसा सम्बन्ध भी जिसे द्रव्यस्वभाव में नहीं, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। यह तो सब कहीं रह गये हड्डियाँ-बड्डियाँ। हड्डियों की माला वह तो कहीं बाहर रह गयी। आहाहा! जिसकी अधिकता से पर की महिमा छूट जाये और जिसे पर की अधिकता से स्व की महिमा छूट जाये, ऐसा वह तत्त्व है। क्या कहा? जिसे राग और कर्म की महिमा आती है, उसरूप तो वह हुआ नहीं, तथापि उसकी जिसे महिमा है, उसे भगवान आत्मा... यह देह में रहा हुआ चैतन्यतत्त्व जरा महँगा पड़े परन्तु वह महँगी कीमत में महँगा है, समझने से महँगा नहीं। उस चीज़ (की ओर) इसने कभी अनन्त काल में स्वयं की ओर नजर की नहीं और वह नजर करनेयोग्य है, ऐसा भी निर्णय नहीं किया।

अन्दर सच्चिदानन्द भगवान आत्मा सत् शाश्वत् वस्तु है, वह वस्तु चिदानन्द। जिसमें ज्ञान आनन्द, दर्शन आनन्द, शान्ति आनन्द, चारित्र आनन्द, वीर्य आनन्द, अस्तित्व, ऐसे अनन्त आनन्द का रत्न, ऐसे अनन्त आनन्द का पोटला—गंज भगवान आत्मा है। वह आत्मा उसे कर्म साथ में दिखता है, उसे वास्तव में उनके साथ सम्बन्ध ही नहीं। और कर्म के सम्बन्ध में अपनी भूल से पर्याय में—अवस्था में हीनपने का परिणमन और विभावपने की पर्याय दिखती है, वह वस्तु में नहीं। वह वस्तु उसरूप हुई ही नहीं। आहाहा! कठिन बात परन्तु, भाई! इसे इसकी महत्ता की खबर नहीं होती और दूसरे को महत्ता दे, वह संयोग छूटे नहीं और स्वयं इसका परिभ्रमण मिटे नहीं।

भगवान आत्मा, कहते हैं, ज्ञानानन्द प्रभु एक-एक गुण की अनन्त बेहद शक्ति का सत्त्व वह भी शाश्वत् अनन्त। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा जो आकाश लोकाकाश, अलोकाकाश खाली भाग अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसे शास्त्रकार ने सर्व अनन्त कहा, खाली चारों ओर कहीं अन्त नहीं, अन्त है कहीं? ऐसे फिर अन्त हो तो बाद में क्या? बाद नहीं क्या आवे? बाद में नहीं क्या आवे? वहाँ है... है... है... ऐसा का ऐसा चला जायेगा सर्वत्र दसों दिशाओं में। उस जाति का माप है। यह ज्येष्ठ माप और बड़ा ज्येष्ठ, ज्येष्ठ अर्थात् बड़ा। पूरा खाली भाग, यह तो भरपूर लोक है, परन्तु खाली दसों दिाओं में पीछे अनन्त योजन, अनन्त क्रोड़ाक्रोड़ योजन, अनन्त क्रोड़ाक्रोड़ को अनन्त क्रोड़ाक्रोड़ से गुणा करो इतने चले जाओ तो भी वह कहीं 'नहीं' ऐसा रहेगा? नहीं कहाँ रहेगा? नहीं तो बाद में क्या? वह अमाप है, उसे शास्त्रकार सर्व आकाश कहते हैं। सर्व आकाश को सर्व अनन्त कहते हैं, सर्व अनन्त को घन अनन्त कहते हैं। ऐसे घन अनन्त का भी यह भगवान जाननेवाला एक समय की पर्याय में है। ऐसे अनन्तानन्त वह एक समय की पर्याय, उसका गुण जो है, वह ज्ञानगुण सर्व अनन्त ज्ञानघन पूरा आत्मा प्रमाण ज्ञान व्याप्त है। ऐसे दर्शनगुण आत्मा प्रमाण व्याप्त है, आनन्द व्याप्त है आत्मा प्रमाण। शक्कर की डली है, (उसमें) मिठास पूरी डली प्रमाण व्याप्त है, सफेद पूरी डली प्रमाण पसरा हुआ है, कोमलता पूरी डली प्रमाण पसरी हुई है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा इस देह के परमाणु से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प के राग से भिन्न, अल्पज्ञ की अवस्था के एक समय की पर्यायदृष्टि से भिन्न हैं। एक समय में यह भगवान अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति से व्याप्त शाश्वत् वस्तु है, यह वह गुण शाश्वत् अनन्त हैं और इसलिए उन्हें सर्व अनन्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सबके अनन्त का भी अन्त लेनेवाला जो ज्ञान। समझ में आया? अनन्त ऐसे आकाश का भी अन्त अर्थात् ज्ञान में जान जाता है कि यह क्या है? उसका अन्त जाननेवाला, अन्त अर्थात् उसका स्वरूप क्या है, उसे प्रमाण में अपने ज्ञान में इतना उसका स्वभाव, ज्ञानस्वभाव-स्वभाव—उसकी मर्यादा क्या? जिसका सत्त्व और सत्त्व का स्वरूप उसे मर्यादा क्या? ऐसा एक-एक गुण ऐसे अननत गुण से शाश्वत् सर्व अनन्त से भरपूर भगवान पूर्णानन्द से भरपूर आत्मा है। आहाहा! ऐसा आत्मा झेला जाये

नहीं इसे। यहाँ बीड़ी बिना चले नहीं, दाल बिना चले नहीं। एक अपमान जरा-सा हो तो वह आत्मा ऐसा... ? समझ में आया ?

कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा **कभी भी... 'कदाचिदपि स्फुटं'** जड़रूप कभी तीन काल में हुआ नहीं। आहाहा! उसने माना भले हो कि मैं रागरूप हो गया, अल्पज्ञ विकाररूप हो गया, अल्पज्ञरूप हुआ, कर्मरूप (हो गया), वह तो मान्यता है, हुआ ही नहीं ऐसा, भाई! आहाहा! ऐ... रतिभाई! कैसा होगा यह मास्टरपना? प्रभु यह सब आत्मा, हों! इस देह में विराजमान की बात चलती है यह। ऐसा उसका सत्त्व '**स्फुटं**' है न? कभी स्फुट अर्थात् वास्तव में विकार और कर्मरूप प्रभु हुआ ही नहीं। उसकी मान्यता में भ्रम था, ऐसा मैं। वह भ्रम टूटने से भगवान है, वैसा है। समझ में आया? आहाहा! यह बात इसने अनन्त काल में कभी लक्ष्य में ली नहीं। इतना मैं, उसे कैसे बैठे? पामर वृत्ति में ऐसा प्रभु मैं? समझ में आया?

जरा-सी जहाँ पाप के राग की वासना हो वहाँ, आहाहा! मजा है हमारे। उसमें फिर कुछ पुण्य की वृत्ति हो तो कहे, ओहोहो! बादशाही है। अब उसे बादशाही लुट जाती है यह (उसकी खबर नहीं)। वहाँ यह सब बादशाही रहित चीज़ है वह। आहाहा! समझ में आया? वह परमात्मा निज, परम अर्थात् परमस्वरूप प्रभु स्वयं। वस्तु जो हो, वह अखण्ड अकृत्रिम—अकृत शाश्वत् अनन्त स्वरूप से स्वयं है। ऐसा भगवान विकार और भावकर्म और जड़कर्मरूप हुआ नहीं और वे कर्म तथा विकार, वे परमात्मा-आत्मारूप हुए नहीं। सर्वज्ञस्वभावी भगवान, सर्वदर्शीस्वभाव प्रभु पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द स्वयं उसरूप भावकर्म और कर्म हुए नहीं। कपूरभाई! यह कैसी होगी इसकी... ? इसने कभी... परन्तु जगत की चीज़ का माहात्म्य आँकनेवाला माहात्म्यरहित होगा? जिसके ख्याल में जगत की कीमत हो... समझ में आया? कहा नहीं था एक बार? लालन देखने गये थे न वहाँ? कोहिनूर देखने गये थे। वह है न करोड़ों का—धूल का, वहाँ बड़ा पाँच करोड़ का नहीं कहते? .... में देखने गये थे, लाल को पूछा। आहाहा! पाँच करोड़ का हीरा कोहिनूर है न? ऐसा प्रकाश... प्रकाश पाँच करोड़ का। आँख न हो तो उसकी कीमत आँके कौन? तो कीमत आँकनेवाले की—इसकी कीमत या उसकी कीमत? एक लालन थे। मास्टर! बहुत वृद्ध, ९५ वर्ष की उम्र। सोलह वर्ष

से अकेला अभ्यास ही किया हुआ। वे अभी गुजर गये २००९ के वर्ष में। पण्डित लालन कहलाते थे, जामनगर के। सोलह वर्ष से ९५ वर्ष (तक) अभ्यास अकेला। हजारों शास्त्र (पढ़ा हुए)। पढ़ना, पढ़ना, एक ही अभ्यास। लन्दन में गये थे तो बीस-बीस हजार लोग (आवे सुनने)। ऐसे बातें गप्प सब। तत्त्व नहीं समझे हुए। यहाँ हमारे पास रहे, बारह-बारह महीने रहे थे। तुम्हारे साथ थे न? बात सच्ची। रोवे फिर कि, अरे! मर गये यह तो कुछ समझे नहीं अभी तक। धूल में... वे कहते थे कि एकबार वहाँ देखने गये कि हीरा की कीमत कितनी? हीरा कैसा? कि आँखें न हो तो हीरा की कीमत आँके कौन? तो यह (आँखें) कीमती या वह? यह आँख हो परन्तु वह चैतन्य अन्दर न हो तो कौन कीमत आँके? आँख की कीमत ज्यादा या आत्मा की?

यह जड़ के एक कोड़ा की कीमत तू आँकने जाता है तो उस चैतन्य बिना इसे जानेगा कौन? जिसकी एक समय की ज्ञान की वर्तमान दशा जिसे—इस आँख को जाने और आँख द्वारा हीरा उसकी कीमत करे, ऐसी एक समय की दशा—उसकी अवस्था की कीमत करना या इस आँख की, हीरा की करना? और एक समय की दशा ऐसी अनन्त दशा का पिण्ड भगवान आत्मा है, उसकी क्या कीमत होगी? उसकी कीमत आँकने पर उसकी कीमत दशा में अंकित हो जाती है। समझ में आया? खबर नहीं होती। एक रंक होकर भिखारी जहाँ-तहाँ माँगता है। परमात्मा को कहे, हे भगवान! देना। परन्तु तू है तेरे पास, कोई दे ऐसा नहीं। वह परमात्मा हुए, वह पूर्णानन्द की प्राप्ति अपने में थी, उसमें एकाकार होकर प्राप्ति की। उनकी वाणी में आया, बापू! तू भी परमात्मा ही है। मेरी जाति की पंगत में बैठे, ऐसी तेरी जाति है। मुझमें और तुझमें वस्तु में अन्तर नहीं।

भगवान आत्मा का चिन्तवन कर। '**भावय**' शब्द है न? उसमें से सब निकालेंगे, अन्तरात्मा न वह। जो आत्मा... यह वर्ष नूतन वर्ष का मांगलिक चलता है। आहाहा! मम् अर्थात् पाप और गल अर्थात् गाले अथवा मंग, मंग अर्थात् पवित्रता और ल अर्थात् लाति—प्राप्त करावे। मंगल—मंग अर्थात् पवित्रता, आनन्द, ल अर्थात् लाति—प्राप्त करावे, ऐसे भाव को मांगलिक कहते हैं। अथवा मम् और गल—तीन अक्षर में दो अस्ति, नास्ति है। मंग और ल, एक मम् और ग। मम् अर्थात् भगवान आत्मा राग और

अल्पज्ञ और पर में अहंकार करके जो पड़ा है, उसे आत्मा के पूर्णानन्द की दृष्टि करके गलाये, ऐसे भाव को मांगलिक कहा जाता है। कपूरभाई! यह चत्तारि मंगलं बोलते हैं न शाम-सवेरे। चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं।

यह भगवान आत्मा... **भावार्थ :- जो आत्मा अपने शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति के अभाव से...** अब जरा कर्म की व्याख्या करते हैं। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप से प्रभु विराजमान, उसकी दृष्टि के अभाव में, उसके ज्ञान के अभाव में, उसकी प्राप्ति के अभाव में, उसकी वर्तमान दशा में उसकी प्राप्ति के अभाव में जो विकार हुए, उनसे उत्पन्न हुए ज्ञानावरणीय (आदि) कर्म शुभाशुभ कर्म। जब आत्मा का जो स्वभाव है जैसा, वैसा नहीं जाना, ऐसा नहीं माना, उसमें उस प्रकार से स्थिरता नहीं की तब उल्टी मान्यता (हुई) कि इतना मैं नहीं। मैं रागवाला, मैं अल्पज्ञवाला, मैं शरीरवाला ऐसी मान्यता, ऐसा उल्टा ज्ञान और ऐसी उसमें एकाग्रता, उससे उपार्जित नये कर्म मिट्टी धूल प्रारब्ध, उस प्रारब्ध को आठ कर्म कहा जाता है।

ऐसे **ज्ञानावरणादि शुभ-अशुभ कर्मों से व्यवहारनयकर बँधा हुआ है,...** अर्थात् कि पर्याय में वस्तु के भान बिना अभान द्वारा उपार्जित कर्म, उसके निमित्त के सम्बन्ध में मानो आत्मा है, ऐसा व्यवहार अर्थात् वर्तमान लक्ष्यवाले नय से ऐसा कहा जाता है। **तो भी शुद्धनिश्चयनय से...** भगवान आत्मा सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... गुणस्वरूप पूरा पूर्ण, उसकी दृष्टि से देखे, उसके सत् स्वभाव के शाश्वत्, शाश्वत् स्वभाव का सत्पना—अस्तिपना उसे देखनेवाला ज्ञान और उस ज्ञान की दृष्टि से शाश्वत् भाव से देखे, उस दृष्टि से देखे तो **कर्मरूप नहीं है,...** भगवान आत्मा विकाररूप नहीं और कर्मरूप नहीं। यह अस्ति है, उसे नास्ति करना, दृष्टि में अस्ति नहीं, उसे अस्ति करना। क्या कहा?

जो दृष्टि में मैं अल्पज्ञ हूँ, अल्पदर्शी हूँ, विकार पुण्य-पाप के विकल्प की वासनावाला हूँ, कर्म सम्बन्धवाला हूँ, शरीर सम्बन्धवाला हूँ—ऐसी जो दृष्टि, उसका अस्तित्व है। उसका नास्तित्व करना कि उतना मैं नहीं। मैं पूर्णानन्द का स्वरूप हूँ, ऐसे पूर्ण अखण्ड आनन्द के अस्तित्व की दृष्टि करना और यह तत्त्व की दृष्टि छोड़ना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और मांगलिक कहा जाता है। आहाहा! कहो, कपूरभाई! बनिये

लिखते हैं न, लाभ सवाया? नहीं लिखते? यह लाभ, लाभ।

स्वरूप भगवान महान सत्ता धाम अनन्त शाश्वत् स्वरूप गुणरूप भगवान का अस्तित्व मैंने माना नहीं था। मैं राग और पुण्य-पाप और यह शरीर और सम्बन्ध, ऐसे अस्तित्ववाला माना था, वह मिथ्या मान्यता का अस्तित्व है। न हो तो पूर्णानन्द का अनुभव उसे होना चाहिए। उस अस्तित्व को नास्तित्व बना देना। ऐसा इतना मैं नहीं, मैं पूर्ण अखण्डानन्द पूर्ण शान्तरस का कन्द अकेला अविकारी स्वभावस्वरूप प्रभु को अस्ति में (लेना), ऐसे महान पदार्थ को अस्ति में लेना और यह (कर्मादि) अस्ति में से छोड़ देना, ऐसा निश्चयनय के विषयवाला भगवान महा अस्तित्व अन्तर के सम्यग्ज्ञान द्वारा उसके अस्तित्व का भान होता है। समझ में आया?

कर्मरूप नहीं है, अर्थात् केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप अपने स्वरूप को छोड़कर... देखो! कैसा है भगवान आत्मा? जिसमें ज्ञान अनन्त है। आहाहा! यहाँ एक जरा-सा... ऐसे लोग ऐसा कहे, नूतन वर्ष का दिन आज कलह करना नहीं। बारह महीने वापस (कलह चलेगा)। ऐसी बातें करे। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, आज (—आज का दिन) किसी विपरीत भाव से निकालना नहीं। ऐसा भगवान अविपरीत चिदानन्द भगवान तेरे पास पड़ा है, ऐसे महान अस्तित्व को एकबार प्रतीति में ले। वह आत्मा कभी कर्म और अल्पज्ञरूप हुआ नहीं। आहाहा! इस प्रमाण से ले तो ऐसा का ऐसा तेरा रहा करेगा, ऐसा का ऐसा। समझ में आया? आहाहा!

इसकी महत्ता की इसे खबर नहीं होती। इसे महत्ता सुनावे तो भी अन्दर बैठती नहीं। यह भी क्या कहते हैं यह? बाधा। क्या कहे? बाधा। बाधामण्डल। क्या कहते हैं? ऐई! किसकी बात है यह? यह कहाँ होगा ऐसा? परन्तु तूने कब नजर की है, यह कौन है वह? और बाधामण्डल ही लगे। यह हमारी गुजराती भाषा है। तुम्हारे होगा।... होवे तो सही, तुमको खबर नहीं होगी। बाधामण्डल का अर्थ बफम जैसा हो जाये ऐसे। ऐसे चक्कर लगे ऐसे, ऐसे चक्कर लगे। क्या कहते हैं यह? ऐ! परन्तु मैं इतना आत्मा? परन्तु यहाँ एक दाल बिना चले नहीं, रोटी बिना (चले नहीं)। विकल्प उठे कि... एक जरा अंग जहाँ प्रतिकूल पड़े वहाँ हाय... हाय...! जरा-सी असुविधा हो तो हाय... उसमें नूतन वर्ष के दिन हो और उसमें कोई दो सौ रुपये का गहना लड़के को पहनाया

हो और बाहर निकले और दो सौ (कोई) ले जाये। लापसी रांधी हो तो जरा वैसी हो जाये कड़वी। ... सब के बेचारे। अरर! किसने पहनाये इसे? पहनाये और बाहर निकला तो कोई ले गया, उठा ले गया। क्या खबर? तो भी ऐसा कहे, हों! कि परन्तु आज कलेश करना नहीं, हों! ऐसा जाये तो आज कलेश करना नहीं।

(यहाँ) कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द की प्रतीति में सब जाये तुझमें नहीं तो कलेश करना नहीं अब। समझ में आया? यह भगवान में कोई दूसरा राग, द्वेष, पुण्य, शरीर है नहीं। जाने दे वहाँ जाये वहाँ, तुझमें वह नहीं। ऐसी अन्तर में स्वरूप के अनुभव में निर्विकल्प स्थित है उसे निर्विकल्प... कहेंगे यहाँ, अन्तरात्मा द्वारा कहेंगे। '**भावय**' शब्द है न। अर्थात् निर्विकल्प दृष्टि द्वारा अर्थात् अन्तरात्मा की पर्याय द्वारा परमात्मा के स्वरूप को अनुभव में लेकर बहिरात्मा की वृत्ति को छोड़कर... बहिरात्मा रागादि मैं कर्म आदि हूँ, यह दृष्टि छूटी, तब पूर्णानन्द परमात्मा हूँ—ऐसी दृष्टि होती है, उस दृष्टि की स्थिरता, वह अन्तरात्मा दशा हुई। बहिरात्म विकल्प को माना है मिथ्यात्वभाव गया बहिरात्मा। जो उसमें नहीं अल्पज्ञ और रागादि, ऐसी बुद्धि थी, वह गयी। सर्वज्ञस्वभावी पूर्णानन्द हूँ—ऐसी जो दृष्टि और ज्ञान ने स्वीकार किया, वह दृष्टि और ज्ञान, स्थिरता, वह अन्तरात्म दशा हुई। परमात्मा की प्रतीति में अन्तरात्मदशा हुई, बहिरात्मदशा गयी। उस बहिरात्मदशा के अभाव में स्वभाव सन्मुख की परम अन्तरात्मदशा उसे ढूँढ़ने से स्वयं व्यक्तरूप से पर्याय में परमात्मा हो जाता है।

केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप अपने स्वरूप को छोड़कर... भगवान ने अपने निज गुण कभी छोड़े नहीं। वह तो आता है न? कलश में नहीं (आता)? पर को ग्रहण नहीं किया और निज को कभी छोड़ा नहीं। इस शैली से बात यहाँ दूसरे प्रकार से करते हैं। आहाहा! प्रभु! यह सत् है न, सत्? शाश्वत् वस्तु है, वह वस्तु है तो उसके अनन्त गुण हैं, शक्तियाँ—सत्त्व-स्वभाव वह किस प्रकार से छूटे? किस प्रकार से छूटे? उसका अभाव हो? वस्तु का अभाव हो? तो वस्तु और वस्तु के गुण कभी छोड़े नहीं इसने और राग-द्वेष को वास्तव में निश्चय से कभी इसने ग्रहण नहीं किये। समझ में आया?

ऐसे सर्वज्ञदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर की दिव्यध्वनि में—वाणी में जब

वाणी आयी, तब ऐसा आया है। समझ में आया? भाई! हमारे तो यह पैसा चाहिए, यह नूतन वर्ष के दिन अच्छा वर्ष हो, लो! धूल में क्या है पैसे में परन्तु? पैसे का ढ़ेर हो और यहाँ कीड़े पड़े, (तब) पुकार करना पैसे से कि ... मुझे दे। डॉक्टर-बॉक्टर सहायता करे, ऐसा नहीं कुछ। करे या नहीं? इंजेक्शन दे न? धूल भी नहीं कर सकता। हाय.. हाय..! अरेरेरे! इतने पैसे होने पर भी मेरा रोग कोई टाले नहीं, ऐसी चिल्लाहट मचाये। इतने करोड़ों रुपये परन्तु मैं दु:खी हो रहा हूँ, मुझे दु:ख से कोई (छुड़ाता नहीं)। कौन छुड़ावे? धूल। दु:ख की व्याख्या तुझे खबर नहीं। भगवान आनन्दमूर्ति पूर्णानन्द का नाथ की श्रद्धा छोड़कर और यह रागवाला और इस वाला, यह मान्यता करना, मान्यता, वह दु:ख है। उस दु:ख को तू टाल सके, दूसरा कोई टाल सके नहीं। इतने-इतने पैसे होने पर भी... एक व्यक्ति कहता था, पैसे होने पर भी मुझे दु:ख, पुत्र होने पर भी पुत्र बिना का, पैसे होने पर भी पैसे बिना का। यह क्या... ? कब विद्यमान (था) ? विद्यमान तो उसमें था वह। विद्यमान आनन्द में आनन्द बिना का, ऐसा कह न। कहो, रतिभाई! विद्यमान पुत्र के पुत्र का लाभ नहीं, ऐसा कहे। समझे न? पुत्र न हो उसे तो कुछ नहीं, वह तो संग्रह कर बैठे। वह पुत्र हो, उसे ऐसा जरा,... पुत्र हो न, उसे कहे, अरे! मुझे पुत्र नहीं मिलता, बापू! कुछ नहीं मिलता।

बापू! परमात्मा का पिण्ड स्वयं परम आत्म अर्थात् परमस्वरूप, परमस्वरूप वस्तु... वस्तु... वस्तु... है, है शाश्वत् है और शाश्वत की शक्तियों का सत्व है, वह शाश्वत् है, उसमें तुझे आनन्द ही भरा है। ऐसे आनन्द बिना तूने चलाया है, अर्थात् अनादर किया है और पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर बिना चले नहीं, (ऐसा) उनका तूने आदर किया है। वही महा अमांगलिक और मिथ्यात्वभाव है। भगवान आत्मा अनन्त गुणरूप केवलज्ञान आदि... केवल अर्थात् शक्तिरूप, हों! त्रिकाल।

अपने स्वरूप को छोड़कर कर्मरूप नहीं परिणमता,... भगवान आत्मा कभी जड़रूप हुआ नहीं। समझ में आया? माने, वह मान्यता तो चाहे जो माने, एक माने कि ढांकणी में मुझे मुख दिखता है। कौन इनकार करे? दूसरा इनकार करे? एकदम काली में दिखता होगा मुख? लोग नहीं कहते कुछ क्या? धणी को सूझे वह ढांकणी में। धूल में ढांकणी में सूझे नहीं। वह पानी हो तो वहाँ जरा-सा... सूख जाये एकदम। जहाँ ऐसा

देखे व्यवस्थित वहाँ तो सूख जाये अन्दर। काले में क्या दिखाई दे ? ... ऐसे नजर करे तो दिखाई दे। भगवान चैतन्य-दर्पण, चैतन्य-दर्पण, ज्ञानमूर्ति भगवान ज्ञान का पिण्ड रसकन्द शुद्ध, उसमें देखे तो यह ज्ञानरस क्या है, उसकी नजर उसे पड़े।

कहते हैं, ऐसा भगवान अपने स्वरूप को छोड़कर कर्मरूप नहीं परिणमता। आहाहा! अरे! यह विश्वास की दृष्टि इसे कहाँ बैठती है ? अरे! मैं ऐसा हो गया। परन्तु नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं यहाँ। ऐ.. भीखाभाई! समझ में आया ? **और ज्ञानावरणादि द्रव्य-भावरूप कर्म...** देखा! दोनों लिये। पाठ में दोनों हैं, हों! पाठ में है। **'ज्ञानावरणादिद्रव्य-भावरूपं कर्मापि'** कहते हैं, यह आठ कर्म एक दूसरी चीज़ है साथ में, वह जड़कर्म और उसके फल में शक्तिरूप भावकर्म, उसके फल में आता हुआ विकारी आदि, विकार आदि, अल्पज्ञता आदि, ऐसे द्रव्य और भावकर्मरूप से... द्रव्यकर्म का कार्य और भावकर्मरूपी कार्य। उसरूप से **आत्मस्वरूप नहीं परिणमते...** वह द्रव्य और भावकर्म भगवान आत्मा के स्वरूप हुए नहीं। कहा न, पहले कहा वह अपना कि अनन्त ज्ञानादि गुणस्वरूप को छोड़कर स्वयं कर्मरूप, जड़रूप होता नहीं और भावकर्म विकल्प और कर्म वह स्वयं चैतन्यद्रव्यरूप हुए नहीं। समझ में आया ? यह भ्रान्ति से भव किये हैं इसने। भगवान आत्मा में भव और भ्रान्ति है नहीं। ऐसा यह आत्मा, वह भावकर्म है, वह आत्मारूप हुआ नहीं। भ्रान्ति आदि द्रव्यरूप से हुए ही नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! आत्मवस्तु जो है, वह भ्रान्तिरूप हुई नहीं और भ्रान्ति, वह आत्मद्रव्यरूप हुई नहीं। आहाहा! समझ में आया ? परन्तु उसकी पद्धति की खबर नहीं होती, सुनने को मिलता नहीं, समझने में दरकार करे नहीं। धर्म के बहाने थोथा बाहर के यह किये और यह छोड़े और ले-लेकर चलकर हैरान हो जाता है। समझ में आया ?

कहते हैं, **ज्ञानावरणीय आदि,...** देखो! ज्ञानावरणीय अर्थात् ज्ञानावरण कर्म और उसका भावकर्म अल्पज्ञ आदि भाव। वह भाव अल्पज्ञ आदि भाव और जड़ ज्ञानावरणीय कर्म, वह आत्मा के द्रव्यस्वभावरूप हुए नहीं। समझ में आया ? इसी प्रकार दर्शनावरणीय एक जड़कर्म है और आत्मा में हीनदशा ऐसा उसका भावकर्म है। वह भावकर्म अर्थात् तेरी हीनदशा, वह आत्मा के द्रव्यरूप हुए नहीं। चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का नाथ चिद् धातु, चिद् धातु, आनन्द धातु जिसने आनन्द और ज्ञान धार रखे हैं, ऐसी शाश्वत्

वस्तुरूप वह विकार आदि भाव होता नहीं और विकार उसरूप होता नहीं। अब यहाँ तो मात्र विश्वास और दृष्टि को पलटने की बात है। आहाहा! यह विश्वास पलटे बिना इसके विश्वास का जहाज स्थिरता का चले नहीं। समझ में आया? यह चारित्र बाद में कहलाता है। पहले यह आत्मा, यह एक-एक कर्म के जड़रूप से और उसके सम्बन्ध में अल्पज्ञ अवस्था आदिरूप से वह वस्तु हुई नहीं और वे इस वस्तुरूप हुए नहीं। ऐसे दोनों वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अनादि से वर्तती हैं। वर्तती तो ऐसे ही है। चन्दुभाई! उसकी महिमा आये बिना वर्तती है, ऐसा उसे वर्तन—ऐसे वर्तती है, ऐसे उसकी महिमा, दृष्टि आये बिना वर्तती है, ऐसा बैठता नहीं।

आत्मस्वरूप नहीं परिणमते,... भगवान आत्मा वस्तु ध्रुव सच्चिदानन्द ध्रुव, वह अल्पज्ञ आदिरूप से और ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय—मिथ्यात्व, राग-द्वेष, आयुष्य, अल्प स्थिति, आयुष्य कर्म और अल्प स्थिति उसरूप से द्रव्यस्वभाव हुआ नहीं और उस अल्प स्थिति के आयुष्यरूप से आत्मा हुआ नहीं। नामकर्म और उसके सम्बन्ध से अटकने की योग्यता से भी वह आत्मा हुआ नहीं और उस अल्पज्ञ योग्यता आदि भी द्रव्यरूप हुए नहीं। गोत्रकर्म और उसकी ऊँच-नीच की योग्यता की पर्यायरूप से आत्मा हुआ नहीं और आत्मा उसकी ऊँच-नीच की योग्यतारूप भी हुआ नहीं और ऊँच-नीच की योग्यता आत्मारूप हुई नहीं। अन्तरायकर्म और वीर्य आदि जो ज्ञानादि की जो अल्पता, उसरूप आत्मा हुआ नहीं और वह अल्पता आदि जो कर्म आदि (वे) आत्मारूप हुए नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं, तोड़े क्या? है ही नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। नहीं, उसे मेरा करके मानना है। नहीं उसे मानना है; है, उसे छोड़ देना है। समझ में आया? सत् चिद् ज्ञानानन्द, सत् शाश्वत्, ध्रुव शाश्वत् है, उसे छोड़ना है, नहीं उसे मेरा मानना है, यही बड़ी भ्रमणा है। कहो, समझ में आया इसमें?

अर्थात् अपने जड़रूप पुद्गलपने को छोड़कर चैतन्यरूप नहीं होते,... देखो! यह सब जड़ है, अजीव है। आहाहा! अल्पज्ञ अवस्था, राग-द्वेष अवस्था सब जड़ है, वे चैतन्य नहीं। समझ में आया? उघाड़ का एक अंश भी व्यवहार आत्मा, वह वास्तव

में निश्चय आत्मा नहीं, वह जड़ है। आहाहा! भगवान चिद्घन द्रव्यस्वभाव, वह अल्पज्ञरूप हुआ नहीं और अल्पज्ञदशा द्रव्यरूप हुई नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? उत्पाद-व्यय की पर्याय जितना उसके गुण का अंशवाला है, उसरूप द्रव्य हुआ नहीं। आहाहा! द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाल ध्रुव नित्य, वह इतनेरूप भी हुई नहीं। बस! उसकी मान्यता में अन्तर है।

पूर्णानन्द के नाथ को स्वीकार न करके, अल्पज्ञ रागादि और यह मेरे स्वीकार, बस! यही मिथ्याभ्रम, यह संसार है। ... दु:खरूप है। स्वभाव में से संसरण और हट गया है। भगवान आत्मा... ऐसी बात भी (सुनने को मिले नहीं)। धर्म की बातें ऐसी होंगी? वह तो ऐसा करो, ऐसा करो, पूजा करो, भक्ति करो। यह सच्ची भक्ति और सच्चा पूज्यपना किसका है? पूज्यपना किसका है? यह भगवान महान आत्मा स्वयं, उसका पूज्यपन है। समझ में आया? उसकी पूजा किये बिना सब पूजा सब थोथा। समझ में आया? ऐसी जिसे पूज्यता चैतन्य महान पदार्थ की अन्तर में प्रगट हुई, उसने सब पूजा की। समझ में आया?

कहते है, **अपने जड़रूप पुद्गलपने को छोड़कर चैतन्यरूप नहीं होते, यह निश्चय है कि जीव तो अजीव नहीं होता, और अजीव है, वह जीव नहीं होता।** ऐसे दो भाग किये। **ऐसी अनादिकाल की मर्यादा है।** अनादि काल की उसकी मर्यादा अर्थात् उसकी स्थिति ही ऐसी है। समझ में आया? **इसलिए कर्मों से भिन्न ज्ञान-दर्शनमयी सब तरह उपादेयरूप (आराधने योग्य) परमात्मा को...** अब योगफल करते हैं। इसलिए हे भाई! हे प्रभु! तेरी प्रभुता को सम्हालने के लिये यह कर्म जड़ और उनसे भिन्न ज्ञान-दर्शनमय सर्व प्रकार से उपादेय। अकेला ज्ञान-दर्शन शुद्धस्वभाव, शुद्धस्वभाव, पूर्ण स्वभाव, उसमय आत्मा, पूर्ण स्वभाव, उसमय आत्मा। अर्थात् कि वह स्वभाव और स्वभाववान अभेद। ऐसा जो अन्तर अनन्त ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला आत्मा, उसे उसके उपादेयरूप सर्व ओर से उपादेय। अर्थात्? चारों ओर से उसके बाहर से हटकर पूर्णानन्द का नाथ भगवान द्रव्यस्वभाव, उसे तू अन्तर में दृष्टि दे। बस! वही आदरणीय है, दूसरा आदरणीय नहीं। बहुत बड़ी बात है, भाई! कुछ इसका रास्ता दूसरा होगा या नहीं पहले? पहले भी यह और अन्त में भी यह। (बाकी) सब बातें हैं। समझ में आया?

अरबोंपति हो, उसे लाखपति कहे तो उसे गाली है। है या नहीं? है? यह मुझे पहिचानता नहीं लगता। मेरे पास अरबों हैं, पहिचानता नहीं। ... कुछ बाहर लिखा होगा कि मोहनलाल ने दिवाला निकाला। वे कहने आये अन्दर कि यह तुम्हारी दीवार में लिख गये हैं। वहाँ किसलिए लिखा? यहाँ लिखे नहीं? मुझे खबर नहीं, मेरे पास क्या है यह? रोकड़ साठ लाख। चालीस वर्ष पहले की बात है। साठ लाख नकद पड़े हैं। मेरे पास खबर नहीं? लिखे न यहाँ, मेरी सीढ़ियों में लिख जाये न कि मोहनलाल ने दिवाला निकाला। मुझे कुछ शंका पड़े, ऐसा नहीं। यह सेठिया नहीं आये थे, भाई! कपूरभाई! उसके मामा। साठ लाख रुपये थे न उनके पास तब। चालीस वर्ष पहले। ईर्ष्यालु तो बहुत प्रकार के निकले न। पुत्र नहीं था, एक ही पुत्री बारह वर्ष छोटी उम्र की लड़की। उन सेठिया को देना चाहते थे, उनके भानेज को। नहीं लिया, मुझे क्या करना है इतने का, धूल को? मुझे जाना कहीं और यह लेकर कहाँ (जाना)? दिवाला निकाला। चल न मेरे पास लिख न, शरीर के ऊपर लिख, ले। उसे सीढ़ियों के ऊपर ही कहा था। मुझे खबर नहीं?

इसी प्रकार आत्मा अनन्त लक्ष्मी का धनी पूर्णानन्द है, उसे तू दूसरी कीमत से कहे, तूने यह दिवाला निकाला, उसमें कुछ नहीं। लिख न, वह तो जो है वह है, दूसरा नहीं होगा। मान्यता ने घर डाला है उल्टा। भगवान आत्मा, आहाहा! जिसका पूर्ण स्वभाव... अरूपी है, इसलिए वह कहीं इन्द्रियग्राह्य है नहीं। वह तो अरूपी है। परन्तु अरूपी भी पदार्थ है या नहीं? वस्तु है या नहीं? जैसे यह वस्तु है धूल-मिट्टी, यह वस्तु है उसका दल ऐसे दिखता है यह। परन्तु यह चैतन्य भी अरूपी है या नहीं? अरूपी भी वस्तु है या नहीं? वस्तु है तो उसका स्वभाव है या नहीं? उस स्वभाव का अरूपी दल चैतन्य है। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

कहते हैं कि एक बार तू ऐसा भगवान आत्मा, उसे आराधनेयोग्य जान। वही मुझे दृष्टि करके सेवनयोग्य है, बाकी सब छोड़नेयोग्य है। ऐसा निर्णय, निश्चय, अनुभव किये बिना यह आत्मा की परमात्म शक्ति की व्यक्तता प्रगट होने का उपाय दूसरा है ही नहीं, यह ही एक उपाय है। यह शक्ति से परमात्मा है, यह व्यक्त अर्थात् प्रगट परमात्मदशा से परमात्मा हो, तब ऐसे पूर्ण शक्तिवन्त को अन्तर में आराधन—सेवन करने से शक्ति

की व्यक्तता पूर्ण हो जाये, वह प्रगट परमात्मा सिद्ध भगवान कहा जाता है। उसका नाम मोक्ष। मोक्ष कोई दूसरी दशा नहीं। जो सत्त्वरूप शक्ति पड़ी है, उसे प्रगटरूप से अन्दर में एकाग्र होकर करना, वह तुरन्त प्रगट हो जाये परमात्मा, उसे फिर अवतार होता नहीं, संसार होता नहीं, बन्धन होता नहीं, दुःख होता नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय भी किस प्रकार प्रगट करना, ऐसा कहते हैं देखो!

(आराधने योग्य) परमात्मा को तुम देह रागादि परिणतिरूप बहिरात्मपने को छोड़कर... देखो! शरीर, कर्म, राग आदि पर्याय जो है अवस्था में, ऐसा जो बहिरात्मपना बहिर जिसके अन्तर स्वभाव में नहीं, अन्तर स्वभाव में ऐसा अल्पज्ञपना, रागपना, संयोगपना नहीं, ऐसा उसे मानने की परिणतिरूप छोड़कर। शुद्धात्म परिणति—भगवान ज्ञानानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, उसका विश्वास, उसका ज्ञान, उसकी लीनता—स्थिरता, ऐसी शुद्धात्मभावना ऐसी जो परिणति अर्थात् पर्याय, वह अन्तरात्मा ऐसा अन्तर आत्मा की दशा में स्थिर होकर चिन्तवन करो। ऐसे भगवान का अन्दर ध्यान करो। आहाहा!

... पूर्णानन्द के नाथ को ज्ञान में अवलम्बन ले। दूसरा आलम्बन लेनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो चन्दुभाई! आलम्बन देता है। डोरी हो तो चढ़े न? आधार हो तो। यह आधार है न अन्दर। उसके सन्मुख की दृष्टि, उसके सन्मुख का ज्ञान और उसके सन्मुख में स्थिरता। परसन्मुख की श्रद्धा, परसन्मुख का ज्ञान और परसन्मुख का राग, उसकी रुचि छोड़कर ऐसा ज्ञायक भगवान आत्मा है, उसका आराधन करने से स्वरूप की अन्तर दशा प्रगट होती है, उस अन्तर आत्मा द्वारा बहिरात्मा को व्यय करके, अन्तरात्मा को उत्पन्न करके, परमात्मा का ध्यान करके व्यक्तरूप पूर्ण परमात्मा हो, उसका फल सिद्धपद है। समझ में आया? यह बीच में विकल्प और दया, दान की बातें नहीं की अन्दर।

शुद्धात्मपरिणति की भावनारूप अन्तरात्मा में स्थिर होकर चिन्तवन करो,... वह इस भगवान का ध्यान करो, ध्यान करो। श्रीमद् ने एक बार कहा था। सर्वज्ञपद का ध्यान करो, ध्यान करो, ऐसा कहा। पुकार। देखो! गृहस्थाश्रम में थे, लाखों का व्यापार (था)। तथापि हमारे में यह कुछ नहीं। हम जहाँ हैं, वहाँ राग और व्यापार नहीं; व्यापार

और राग है, वहाँ हम नहीं। सर्वज्ञपद का ध्यान करो, ध्यान करो, ऐसा पुकारते हैं। सर्वज्ञपद ही एक... स्वरूप है। कहो, चन्दुभाई! इसके घर का सरल ही है यह। सहज, सत् सहज है, सरल है, सर्वत्र प्राप्त हो, ऐसी इसकी सामर्थ्य है।

अन्तरात्मा में स्थिर होकर चिन्तवन करो, उसी का अनुभव करो,... आहाहा! वह वस्तुस्वरूप पूर्ण शुद्ध चैतन्य को अनुसरकर अन्तर दशा का होना। पर के लक्ष्य से अनुसरकर विकल्प आदि का होना, उसे छोड़ दृष्टि में से, इस स्वभाव-सन्मुख का अनुभव कर, उससे तुझे शान्ति मिलेगी, आनन्द मिलेगा और आनन्द की पूर्णता भी उस आनन्द के साधन द्वारा होगी; दूसरे किसी साधन द्वारा पूर्ण आनन्द की प्राप्ति भी होगी नहीं। ऐसा ४९ गाथा में (कहा)। क्योंकि तू पररूप हुआ नहीं, इसलिए फिर तुझे यह चिन्ता क्या? और पर तुझरूप हुए नहीं, इसलिए उसे छोड़ना कहाँ रहा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? श्रीमद् के पत्र में आया है कि दिगम्बर आचार्यों ने माना है कि जीव का मोक्ष होता नहीं। भाई! एक पत्र है... मोक्ष समझ में आता है। एक पत्र है। पढ़ा है वह पत्र, तुमको खबर नहीं होगी। एक पत्र में है। समझ में आया? यह उसमें है। हें?

मुमुक्षु : .... मोक्ष ... दोनों में अन्तर क्या समझते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्र लिखा है। एक पत्र है। मोक्ष होता नहीं मोक्ष अर्थात् पृथक् तत्त्व है, ऐसा ज्ञान में आता है कि मोक्ष द्रव्य में है। शुद्ध द्रव्यस्वभाव है, उसरूप हुआ नहीं। ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसका अन्तर में ध्यान करके उसका आराधन करना, उसका नाम मांगलिक और मोक्ष का मार्ग है। पूरा हो गया बराबर...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल २, मंगलवार, दिनांक २६-१०-१९६५
गाथा - ५० से ५२, प्रवचन - ३३

गाथा - ५०

इससे आगे छह दोहा-सूत्रों में आत्मा व्यवहारनयकर अपनी देह के प्रमाण है, यह कहते हैं—यह बताते हैं अधिकार गया ४९। अब ५० (गाथा)।

५०) कि वि भणंति जिउ सव्वगउ जिउ जडु के वि भणंति।
कि वि भणंति जिउ देह-समु सुण्णु वि के वि भणंति॥५०॥

क्या कहते हैं ? यह आत्मा है आत्मा, उसे कोई वेदान्ती आदि ऐसा कहते हैं कि सर्वव्यापक है। यह सिद्ध क्या करना चाहते हैं ? कि इस देह में ही आत्मा है, तेरा माल ही यहाँ आनन्दकन्दस्वरूप है। आत्मा यहाँ सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आनन्द का व्यापकपना शरीरप्रमाण ही है। अन्य कितने ही कहते हों उसका निषेध करके वास्तविक तत्त्व वह महा आत्मा, ऐसा कि महान आनन्द और ज्ञान ऐसा, इसलिए सब व्यापक हो सर्व में, उसे महान कहा जाता है, ऐसा है नहीं। वह आत्मा देह प्रमाण ही है, शरीर प्रमाण। कितने ही कहते हैं कि सर्वव्यापक है। उसे झूठा ठहराने के लिये बात करते हैं। कितने ही कहते हैं कि यह जीव जड़ है। इन्द्रिय का ज्ञान नहीं न, इन्द्रियज्ञान, इस अपेक्षा से उसे कोई (जड़ कहता है)। कोई कहता है कि वह शून्य है, आत्मा शून्य है, शून्य है कोई माल नहीं उसमें। समझ में आया ? और जैनधर्मी कहता है कि, जीव व्यवहारनय से देहप्रमाण है। लो ! यह चार प्रश्न हुए।

और निश्चयनयकर लोकप्रमाण कहते हैं। जैनधर्म की अपेक्षा से वीतराग भगवान ने देखा हुआ व्यवहार अर्थात् यहाँ देह के सम्बन्ध में रहा हुआ इतना देह प्रमाण व्यवहार से है और निश्चय से लोकप्रमाण उसके प्रदेश हैं। चौड़े, हों ! चौड़ा होता नहीं। परन्तु असंख्य प्रदेश लोकप्रमाण हो, इतनी उसकी सामर्थ्य है। **वह आत्मा कैसा है ? और कैसा नहीं है ?** वह कैसा है और कैसा नहीं, ऐसे चार प्रश्न शिष्य ने पूछे। लो ! यह

चार प्रश्न जो उठाये हैं ५० गाथा में। महाराज! यह दुनिया कुछ कहती है आत्मा को, आप क्या कहते हो? और आपके ज्ञान में क्या आया? समझ में आया? देखो! आत्मा की क्या चीज़ है, ऐसा पूछना चाहते हैं आत्मा। दूसरा मुझे कुछ काम नहीं। आत्मा क्या है? कहाँ रहता है? कितना है? कैसे है? जड़ है? शून्य है? व्यापक है? देहप्रमाण है? यह मेरा आत्मा क्या है? ऐसा शिष्य चार प्रश्न पूछता है, उसका उत्तर।

★ ★ ★

गाथा - ५१

आगे नय-विभागकर... नय अर्थात् ज्ञान के विभाजन के प्रकार द्वारा, **आत्मा सब रूप है,...** जो चार कहे, उस रूप अपेक्षा से है। **एकान्तवादकर अन्यवादी मानते हैं,...** एक ही पक्ष से मानते हैं (कि) सर्वव्यापक—पूरे लोकप्रमाण, देहप्रमाण, वह पर से शून्य ही है इसलिए अपने से भी शून्य है; इन्द्रिय का ज्ञान नहीं, इसलिए जड़ कहा, परन्तु अपना ज्ञान-विज्ञान नहीं, ऐसा नहीं। **एकान्तवादी मानते हैं, सो ठीक नहीं है, इस प्रकार चारों प्रश्नों को स्वीकार करके समाधान करते हैं—**

५१) अप्पा जोइय सव्व-गउ अप्पा जडु वि वियाणि।
अप्पा देह-पमाणु मुणि अप्पा सुण्णु वियाणि॥५१॥

देखो! इसमें तो कितने ही निकालते हैं, उनकी तो बात की। देखो! इसमें अनेकान्त है भाई! आत्मा सुखरूप हो, दुःखरूप हो, नियत भी हो, अनियत भी हो। पर्याय आती है या नहीं? देखो न, यहाँ सब कहेंगे।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकरभट्ट,... गुरु शिष्य को कहेंगे। **आगे कहे जानेवाले नय के...** ज्ञान की अपेक्षा से **भेद से आत्मा सर्वगत भी है,...** आगे कहेंगे। ज्ञान सबको जानता है, इस अपेक्षा से आत्मा सर्वगत कहने में आयेगा। परन्तु आत्मा यहाँ से हटकर लोक में व्याप्त हो जाता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **आत्मा जड़ भी है...** यह स्पष्टीकरण करेंगे। उसे इन्द्रिय का ज्ञान नहीं, अतीन्द्रिय ज्ञानमय भगवान आत्मा, इस अपेक्षा से उसे इन्द्रियज्ञान के अभाव की अपेक्षा से (जड़ कहा)। विज्ञान के अभाव की अपेक्षा से जड़ नहीं। समझ में आया?

जड़ भी है ऐसा जानो, आत्मा को देह के बराबर भी मानो,... देहप्रमाण भी है, शरीरप्रमाण ही है आत्मा, इतने में ही है भिन्न अरूपी। और **आत्मा को शून्य भी जानो।** परवस्तु से शून्य है, परवस्तु उसमें नहीं। अपने ज्ञान-आनन्द के स्वभाव से भरपूर पदार्थ है। अनन्त-अनन्त गुण से भरपूर पदार्थ है आत्मा, वस्तु है न। परपदार्थ की शक्ति आदि से शून्य है, परपदार्थ उसमें नहीं। **नय-विभाग से मानने में कोई दोष नहीं है,...** इस प्रकार अपेक्षित ज्ञान से जाने तो उसमें दोष नहीं, ऐसा तात्पर्य कहते हैं। अब एक बोल का विस्तार करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ५२

आगे कर्मरहित आत्मा केवलज्ञान से लोक और अलोक दोनों को जानता है, इसलिए सर्वव्यापक भी हो सकता है, ऐसा कहते हैं—इस अपेक्षा से, हों!

५२) अप्पा कम्म-विवज्जियउ केवल-णाणेँ जेण।
लोयालोउ वि मुणइ जिय सव्वगु वुच्चइ तेण ॥५२ ॥

अन्वयार्थ :- आ आत्मा,... देखो! यह आत्मा की स्थिति। श्रीमद् एक पत्र में लिखते हैं एक बार, कि अरे! यह आत्मा, ऐसा मनुष्य देह मिला, उसके अल्प काल में आत्मा ऐसा है महान अस्तिवाला अखण्डानन्द प्रभु, उसकी अस्ति की लक्ष्य और दृष्टि बिना का जो काल जाये तो ऐसे काल के लिये आत्मा को धिक्कार है। क्या कहा? समझ में आया? यह मनुष्यदेह मिला, थोड़ा समय है। मुश्किल से कहीं से कहीं आकर (मानो) स्वप्न आये हैं। उसके अन्दर में यह आत्मा एक समय में कितने क्षेत्र में, कितने भाव में वह जितनी शक्तिवाला तत्त्व है, ऐसा उसकी प्रतीति में, श्रद्धा में, उसकी अस्ति में, अस्ति की दृष्टि न रहे, पर की अस्ति उसमें नहीं, ऐसी दृष्टिरहित काल जाये, वह सब काल उसके लिये तिरस्कार और धिक्कार के लिये जाता है। क्या कहा? समझ में आया इसमें?

यह शिष्य के प्रश्न उठे न! शिष्य को ऐसी धगश है। कितने में कहाँ मैं, कौन

हूँ? किस प्रकार से भगवान परमात्मा ने देखा है? और उस प्रकार से मैं कैसे हूँ? ऐसा शिष्य अपनी जिज्ञासा यह आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा का ज्ञानस्वभाव सबको जानने के स्वभाववाला आत्मा है। किसी में रागादि या पर में वह नहीं, परन्तु सबको जाननेवाला आत्मा है। उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं कि, **कर्मरहित आत्मा केवलज्ञान से लोक...** यहाँ तो पर्याय की प्रगटता वर्णन करनी है, भाई! परन्तु पुण्य-पाप में लिया न, यह आत्मा सर्व ज्ञान-दर्शी स्वभाव से होने पर भी अपनी पर्याय में पर के अस्तित्व का स्वीकार करके, पूर्णानन्द का निषेध करके और वर्तमान में सबको जानना-देखना करता नहीं। 'सव्व णाण सव्व दर्शि।' आहाहा! यह आत्मा अन्तर उसका स्वभाव सर्व को जानना, देखना ही है। कोई दूसरी चीज़ मुझमें है, ऐसा मानने का उसका स्वभाव नहीं और मैं कुछ भी पर को न जानूं, न जानने का रहे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया? आत्मा... स्व को और सबको एक साथ जानने के स्वभाववाला आत्मा है। किसी को—पर है, उसे मेरा माननेवाला नहीं, परन्तु पर है और स्व है, उसे जाननेवाले स्वभाववाला आत्मा है। कहो, ...भाई! कितना यह बाहर पर मेरे, उसके लिये करने में रुकना, यह कैसी बात होगी इसके लिये? चन्दुभाई!

मुमुक्षु : भव हार जाने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हार जाने का? आहाहा!

भगवान आत्मा... यहाँ तो अभी स्वभाव की बात मैंने की, परन्तु यहाँ चलती है पर्याय में। क्योंकि व्यापक, वह उस शक्ति में ही ऐसा है। वस्तु ही ऐसी है। वस्तु जो आत्मा है, वह 'ज्ञ' और दर्शनस्वभाव। तो जानना और देखना जिसका स्व... स्व... स्व... स्व... स्वभाव, स्व स्वरूप स्वभाव ऐसा आत्मा जानना-देखना, ऐसी अस्तिवाला पदार्थ, वह सबको जानना—देखना ही उसका कार्य है। तथापि ऐसी अस्तिवाला ऐसा आत्मा सर्व को जानने-देखनेवाला है, ऐसी अस्ति का स्वीकार नहीं करके रागादि और पर आदि के कार्य में मैं अथवा पर के अस्तित्व में मैं, ऐसा मानकर अपनी अल्पज्ञ ज्ञानदशा में सर्व को जानना, सर्व देखना, उसे भूल गया पर्याय में, (इसलिए) वह आवृत्त हो गया। समझ में आया इसमें? आहाहा!

यह भगवान आत्मा, एक-एक आत्मा का अस्तित्व, उसमें स्वभाव का अस्तित्व। वस्तु का अस्तित्व आत्मा का स्वभाव का अस्तित्व अर्थात् कि ज्ञान और दर्शन, अर्थात् कि उन सबको जानने-देखने के स्वभाव का अस्तित्व ऐसा आत्मा। ऐसा आत्मा दृष्टि में लिये बिना उसने आत्मा माना है, ऐसा नहीं कहा जाता। समझ में आया? ऐसा माने बिना इस देह का अस्तित्व वह मेरा अस्तित्व, उसके अस्तित्व के कारण मैं, राग-द्वेष के अस्तित्व के कारण मैं, पर की अनुकूलता के कारण मैं, पर की प्रतिकूलता में खेदखिन्न हो जाऊँ ऐसा मैं—ऐसी जो मान्यता है, उसमें सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव वह हीन, संकोच पड़ गया है। समझ में आया?

उस संकोच में पूर्णानन्द और पूर्ण दर्शन-ज्ञानस्वभाव हूँ, ऐसी अन्तर दृष्टि में एकाग्र होकर जहाँ व्यक्तरूप से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी पर्याय में हुआ... समझ में आया? पहले प्रतीति में हुआ कि, मैं सर्वज्ञ—केवलज्ञान और केवलदर्शन ही मेरा स्वरूप है। प्रतीति में केवलज्ञान आया। आता है न भाई! श्रीमद् में? श्रद्धा से, श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ है, ऐसा आता है। श्रद्धा से पहले केवलज्ञान हो अर्थात् कि मैं तो अकेला जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... ऐसा उसे सम्यक्श्रद्धा में केवलज्ञान की प्रतीति (अर्थात्) श्रद्धा से केवलाान हुआ। श्रद्धा में केवलज्ञानमय हूँ, ऐसा नहीं माना था, श्रद्धा में अल्प ज्ञान और रागवाला, ऐसा माना था। वह सम्यग्दर्शन की श्रद्धा द्वारा मैं केवलज्ञानमय हूँ, अकेली केवलज्ञान शक्ति सम्पन्न हूँ। अर्थात् श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ है। समझ में आया?

निश्चयनय के ज्ञान द्वारा केवलज्ञान वर्तता है कि ज्ञानस्वरूप ही हूँ। इच्छा से केवलज्ञान वर्तता है। क्योंकि इच्छा पूर्ण केवलज्ञान की ही करने की है। केवलज्ञान है और उसे करने की है। श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता तीनों बोल ले लिये। श्रद्धा, ज्ञान और (चारित्र)—तीन द्वारा केवलज्ञानमय ही हूँ। समझ में आया? ऐसा आत्मा उसे प्रतीति में—श्रद्धा में आवे, तब उसने आत्मा माना, जाना। उसकी विद्यमानता की अस्ति हर पल इस प्रकार से वर्ता करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया इसमें?

आत्मा सर्वज्ञपद और सर्वदर्शीस्वरूप ही हूँ। मुझमें राग-द्वेष तो नहीं, शरीर तो

नहीं परन्तु मेरा स्वरूप अल्पज्ञ और अल्पदर्शी भी नहीं। मैं तो अकेला केवलज्ञान, केवलदर्शन का पिण्ड, अर्थात् उसके साथ अनन्त आनन्दमय हूँ। ऐसी जो अन्तर्मुख होकर; बहिर्मुख के अल्पज्ञ, रागादि के अस्तित्व में जो कल्पित किया था, वह पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शनमय जहाँ प्रतीति हुई, तब श्रद्धा से तो केवलज्ञान हो गया। अर्थात् कि जानने-देखनावाला ही हूँ, अब दूसरा कुछ हूँ नहीं। रागादि हो उसे जाननेवाला, शरीर की क्रिया हो उसका जाननेवाला, व्यवहार से, हों! तन्मय व्यापक (हुए) बिना। और जहाँ वह पूर्णानन्द और केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, तब कहते हैं...

केवलज्ञान से जिस कारण लोक और अलोक को जानता है, इसीलिए हे जीव, सर्वगत कहा जाता है। अर्थात् क्या? जहाँ आत्मा का सर्वज्ञपना और सर्वदर्शीपना का भान होकर सर्वज्ञान और सर्वदर्शीपना वर्तमान दशा में आया, तब लोकालोक को जानता है, इस अपेक्षा से लोकालोक में व्याप्त है, ऐसा कहा जाता है। इसलिए वह सर्वगत कहा, उसे भी एक न्याय से इतना ठहराया। एक न्याय से। वे कहते हैं, उस न्याय से नहीं। यह कहेंगे, अभी स्पष्टीकरण करेंगे। समझ में आया? मकान का विक्रय देते हैं, तब लिखते हैं या नहीं? भाई! इतने में मेरा मकान है, पूर्व में फलाने का—पूर्व में फलाने का, फलाने का उत्तर में, दक्षिण में और लिखितंग मैं फलाना। लिखितंग मफतलाल अध्धर की सही (हस्ताक्षर), ऐसा नहीं। इसी प्रकार आत्मा कितना कितने में कितने भाववाला है? कितने क्षेत्र में है? उसकी दशा क्या है? उसका फल यहाँ वर्णन करते हैं, उसका प्रमाण वर्णन करते हैं।

जब यह आत्मा अपने पूर्णानन्द ज्ञानमय-दर्शनमयी की जब श्रद्धा की, तब उसे क्रम-क्रम से स्वरूप में एकाग्र होने से जो शक्तिरूप से पूर्ण केवल और दर्शन है, उसकी वर्तमान हालत—दशा में—पर्याय में केवल (ज्ञान) और केवलदर्शन प्रगट हो गया। इस अपेक्षा से **यह आत्मा कर्मरहित हुआ केवलज्ञान से जिस कारण लोक और अलोक को जानता है, इसीलिए हे जीव, सर्वगत कहा जाता है।** इस जीव को सब जगत के, ज्ञान में यह चीज़ आ गयी जानने के सामर्थ्य में, इस अपेक्षा से मानो ज्ञान वहाँ गया, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। उसका स्पष्टीकरण करेंगे आगे, हों!

भावार्थ :- यह आत्मा व्यवहारनय से केवलज्ञानकर... व्यवहार अर्थात्? लोक

और अलोक को जानने पर भी उसमें केवलज्ञान की पर्याय उसमें एकमेक होती नहीं। एकमेक होती नहीं और उसे जानना कहना, वह व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया ? अभी शरीर को जानता हुआ ज्ञान, शरीर के साथ तन्मय होकर जानता नहीं। राग को जानता हुआ ज्ञान राग में एक होकर जानता नहीं। समझ में आया ? वह माने भले, परन्तु ऐसा उसका स्वभाव नहीं। वस्तुस्वरूप चैतन्य द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापक जो ज्ञान है, वह राग में तन्मय होकर जानता है, ऐसा नहीं। राग को भिन्न रहकर मैं ज्ञान हूँ, ऐसा जानता है, परन्तु राग को जानता है, वह राग को जानना कहना, व्यवहार है। क्योंकि तन्मय होकर नहीं जानता, राग को एकमेक होकर नहीं जानता, इसलिए व्यवहार। इसी प्रकार केवलज्ञान एक समय में पूर्ण दशा प्रगट हुई, लोकालोक को जाने वह व्यवहार। क्योंकि उसमें तन्मय होता नहीं। एकमेक हो तो लोकालोक के सुख-दुःख भी ज्ञान में वेदन में आना चाहिए। तो ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

केवलज्ञानकर लोक-अलोक को जानता है, और शरीर में रहने पर भी... शरीर में रहने (पर भी)। यहाँ है इतने में। **निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है,...** क्या कहते हैं ? व्यवहार से पर को जाने, इसका अर्थ कि पर में तन्मय होता नहीं, परन्तु जानता नहीं, ऐसा नहीं। केवलज्ञान में लोकालोक का जानना नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु लोकालोक में तन्मय—एक होकर (जानता नहीं)। क्योंकि एक होने का उसका स्वभाव नहीं। परन्तु स्व-परप्रकाशक पूर्ण होने का स्वभाव है। समझ में आया ? **निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है,...** ज्ञान, ज्ञान को जानता है। यह केवलज्ञान की पर्याय ज्ञान को जानती है। वह पर्याय लोकालोक को जानती है, ऐसा कहना व्यवहार। (क्योंकि) तन्मय नहीं, परन्तु जानना है, इतनी अपेक्षा है। निश्चय से तो स्वयं अपने को जानती है। समझ में आया इसमें ?

अभी भी वस्तु का स्वभाव राग को, शरीर को जानता ज्ञान पर को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु पर का जानना वह अपने में है, उसे जानना, उसका नाम निश्चय है। समझ में आया ? यह क्या कहते हैं, यह बात ? चैतन्यप्रभु ऐसे ज्ञान का सूर्य है। वह ज्ञानसूर्य प्रकाशित करता है। उस प्रकाश की पर्याय में प्रगटता ऐसी पर्याय प्रगट जितनी है उसमें—उसके द्वारा राग को, शरीर को जाने, वह ज्ञान—ऐसा कहना

वह उपचार व्यवहार है। परन्तु वह ज्ञान, ज्ञान को जानता है, क्योंकि स्व में स्व में तन्मय होकर ज्ञान, ज्ञान को जाने, इसका नाम निश्चय है। स्वाश्रय निश्चय और पराश्रय व्यवहार। कठिन बात, भाई! दृष्टान्त देंगे, हों!

इस कारण ज्ञान की अपेक्षा तो व्यवहारनय से सर्वगत है,... किस कारण से? यह जानने के स्वभाव की अपेक्षा से .... व्यवहारनय से सबको जाने, ऐसा वर्तमान स्वभाव त्रिकाल है, परन्तु प्रगट हुआ, तब तो वर्तमान पूर्ण जानता है ऐसे, इस अपेक्षा से उसे सर्वगत कहा जाता है। **प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है।** देखो, यह बात आयी। परन्तु अपने जो प्रदेश यहाँ है ज्ञान... दृष्टान्त देंगे, हों! आँख का, यहाँ वस्तु तो यहाँ है आत्मा अपने में, वह अपने में जो ज्ञान खिला, वह ज्ञान खिला हुआ लोकालोक को जानता है कहना, वह व्यवहार है। इस अपेक्षा से ज्ञान मानो पर में गया, व्याप्त हुआ, व्याप्त हुआ—ऐसा कहा जाता है, परन्तु अपने प्रदेश छोड़कर ज्ञान पर में गया नहीं।

यहाँ भी ज्ञान वर्तमान जो अस्तिरूप से है, वह ज्ञान का अस्तित्व जो अपनी मर्यादा में सत्ता है, उसे छोड़कर राग को स्पर्शता नहीं, शरीर को छूता नहीं वह ज्ञान। ज्ञान की जो प्रगट पर्याय है, वह राग—विकल्प को स्पर्श करे तो एक हो तो जानना और जड़ अचेतन, दोनों एक हो जायें। राग तो अचेतन है। समझ में आया? ज्ञान चैतन्य की अस्ति—उसका अस्तित्व उसमें वह ज्ञान प्रकाशता ज्ञान राग को, शरीर को मानो कि यह है, परन्तु वह जानता है अपने ज्ञान के क्षेत्र में अथवा अपने भाव में रहकर उसे जाने, उसके भावरूप होकर जानता है, ऐसा है नहीं। तथापि उसके भाव का ज्ञान नहीं, ऐसा नहीं, तथापि वह स्वयं अपने को ज्ञान जाने, उसका नाम निश्चय कहलाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्पर्शता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्शता नहीं, मुफ्त का उंहकारा करता है। राग है, वह विकार है; विकार है, वह निश्चय से अचेतन है। चैतन्यप्रकाश का अंश, वह अचेतन और चेतन दो एक हो जाये तो स्पर्श किया कहलाये। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार इस शरीर के पैर नहीं चलते, वह जड़ का। उसे ज्ञान जानता है कि ऐसा ऐसा होता है, परन्तु यह होता है, उसे जानने पर भी ज्ञान उस शरीर की क्रिया को

स्पर्शता नहीं। स्पर्शे कहाँ से, अपने स्व का क्षेत्र छोड़कर पर क्षेत्र में कहाँ से जाये? समझ में आया? शक्कर की डली है शक्कर की, देखो दृष्टान्त। अब वह शक्कर पिघलने लगी और यहाँ ख्याल में—ज्ञान में ज्ञात हुई। वह शक्कर की अवस्था पिघली, वह इस ज्ञान में आयी है? उस शक्कर का मीठापन जो उसका अस्तित्व तो शक्कर के क्षेत्र में, शक्कर के भाव में है। अब इस आत्मा का ज्ञानभाव उसमें वह शक्कर का ज्ञान आया, वह शक्कर का ज्ञान आया अर्थात्? वह शक्कर स्पर्श कर आया है? शक्कर के क्षेत्र का मीठापन का क्षेत्र यहाँ आ गया है? मीठेपन की भावदशा ज्ञान की दशा में आयी है? मीठेपन की भावदशा ज्ञान में आवे तो ज्ञान जड़ हो जाये, शक्कर तो जड़ है। समझ में आया? यह चैतन्य शक्कर को जानता है कि यह मीठा है। यह मीठे सम्बन्धी का ज्ञान अपने में होता है। इसलिए शक्कर का ज्ञान व्याप्त है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है, परन्तु अपने प्रदेश और अपने ज्ञान का होनापना-अस्ति है, उसे छोड़कर शक्कर की किसी पर्याय में ज्ञान गया नहीं। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? ...भाई! यह सूक्ष्म बातें हैं। गजब बात, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरी अस्ति, तू तुझे कहाँ है, उतना तू तुझे मानता है? या जहाँ तू जितना है, उससे अधिक मानता है? जो तुझमें नहीं, उसे तू मानता है? और तुझमें जो है, उसे उतना मानता है या नहीं? जगत में भी कोई पर की वस्तु को जाने, इससे कहीं ऐसा माने कि वह पर मेरी है? जवाहरात दिखाई दे, यह सब माणेकचौक में, लो! यह जानने में आये, इसलिए यह (चीज) मेरी है, ऐसा मानता है? उसका क्षेत्र यहाँ आ गया है? और यहाँ जानने की पर्याय का क्षेत्र वहाँ गया है? समझ में आया?

चैतन्य का यहाँ स्वभाव—अपना स्वभाव जानना, देखना, ऐसी उसकी अस्ति—मौजूदगी, उस मौजूदगी में अपने क्षेत्र में, अपने भाव के सामर्थ्य में रहकर शरीर, कर्म आदि जाने, राग को जाने, तथापि राग और शरीरमय हुआ नहीं। उसी प्रकार भगवान का केवलज्ञान लोकालोक को जाने, परन्तु उसके ज्ञान का जो क्षेत्र अपना है, वह क्षेत्र छोड़कर लोकालोक में चला जाये ज्ञान, ऐसा है नहीं। आहाहा! यहाँ तो कितने क्षेत्र का सिद्ध करते हैं न भाई! यहाँ तो देह क्षेत्र में आत्मा है, ऐसा सिद्ध करते हैं। देह के क्षेत्र प्रमाण तेरा क्षेत्र है, वह तेरा देह के कारण से नहीं। अर्थात् देह प्रमाण यह भगवान

आत्मा, इसके अनन्त गुण, वे अपने देह प्रमाण के क्षेत्र में अनन्त गुण और उसकी पर्याय का क्षेत्र है। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा की पूर्ण कैवल्य दशा जहाँ हुई, वह लोक को जाने, लोक-अलोक को जाने। अन्त नहीं उसे जाने, उसे पर को जानने की अपेक्षा से सर्वगत कहा जाता है। परन्तु प्रदेशों की अपेक्षा से नहीं। देखो, क्या कहा यह? परन्तु यहाँ अपना आत्मा अभी है, देखो! स्वयं आत्मा है, वह असंख्य प्रदेश चौड़ा यह शरीर है क्षेत्र प्रमाण। उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुणों का भण्डार आत्मा है। तो वह स्वयं असंख्य प्रदेश में ही उसका ज्ञान द्रव्य, ज्ञान गुण और ज्ञान की पर्याय इतने में रही है, तथापि उस ज्ञान की वर्तमान दशा के अस्तित्व में राग का, शरीर का, ज्ञान का अस्तित्व यहाँ होता है, उस सम्बन्धी का उसके कारण से नहीं। उस सम्बन्धी का उसका स्वभाव स्व-पर जानने का है, इसलिए अपने क्षेत्र में, अपने काल में, अपने भाव में जानने का होता है, परन्तु उसे जानता है, ऐसा कहना (व्यवहार है)। उस सम्बन्धी का ज्ञान है, इसलिए व्यवहार से कहा। तथापि अपना ज्ञान क्षेत्र, अपनी ज्ञान स्वकाल दशा, अपने भाव का सामर्थ्य छोड़कर उस लोकालोक को जानने ज्ञान अन्दर में प्रविष्ट नहीं होता, अपने प्रदेश में रहता है। समझ में आया या नहीं?

कहते हैं कि लोकालोक को केवलज्ञानी जानते हैं। जाने सबको, तथापि उनका ज्ञान अपने असंख्य प्रदेश में रहकर, अपनी अस्ति के क्षेत्र में रहकर, अपना जो क्षेत्र है, उसमें रहकर उसे जानता है। इसीलिए पर को जाने, ऐसा कहना व्यवहार से व्यापक है वह, निश्चय से अपने प्रदेश छोड़कर वहाँ जाता है, ऐसा नहीं है। यह दृष्टान्त दिया न यहाँ कि यह शक्कर है, मीठी लगी, वह मीठी तो जड़ अवस्था है। जड़ की अवस्था सम्बन्धी का यह ज्ञान अपने में रहकर ज्ञान करे, परन्तु यह ज्ञान जड़ की अवस्था को स्पर्शकर करे, ऐसा नहीं है। (उसमें) घुसकर नहीं। इसी प्रकार जड़ की अवस्था यहाँ मीठे का ज्ञान आया, तो उस ज्ञान में मीठी अवस्था आ गयी है, (ऐसा नहीं है)। उस मीठी अवस्था सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने क्षेत्र में रहकर यह ज्ञान और यह मीठा, ऐसा अपने क्षेत्र में रहकर आत्मा जानता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा .... क्यों होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सदा ही होता है ऐसा, मानता है उल्टा ऐसा कहते हैं यहाँ तो। भान नहीं। उसकी स्वसन्मुख की स्थिति ऐसी है, परसन्मुख का ज्ञान करने पर भी—पर का ज्ञान करने पर भी परवस्तु यहाँ आती नहीं और यह ज्ञान पर का ज्ञान करने पर भी पर को स्पर्शता नहीं। आहाहा! इस प्रकार से वस्तु का सत् का सत्पना ऐसा है। इस प्रकार जब तक उसे न जँचे, तब तक उसकी भ्रान्ति किसी प्रकार से टले नहीं। समझ में आया? भ्रमणा में चला जाये ऐसा का ऐसा काल। दृष्टान्त देते हैं, देखो!

जैसे रूपवाले पदार्थों को नेत्र देखते हैं,... यह आँख है न? ऐसे अग्नि है अग्नि जलहल, जलहल सुलगती है ऐसे। आँख देखती है। **परन्तु उन पदार्थों से तन्मय नहीं होते,...** वह आँख अग्नि को देखने पर भी आँख अग्निरूप होती नहीं। होती है? यह होली सुलगती हो न बड़ी, देखने नहीं जाते वहाँ? ऐसा भड़का बड़ा, नारियल डाले और यह डाले और यह हार डाले न! यह आँख उसे जानने पर भी आँख उसे—अग्नि को स्पर्शी है? अग्नि को स्पर्शे तो जल जाये। समझ में आया? यह आँख ऐसे अग्नि को जानती है, जानने पर भी अग्नि सम्बन्धी का ज्ञान भले यहाँ हो, परन्तु यह आँख अग्नि को स्पर्शती है? स्पर्शे तो जल जाये वहाँ। स्पर्शे किस प्रकार? अरे! यह कभी विचार ही किया नहीं, कहते हैं। ऐसा का ऐसा अन्ध का अन्ध चला जाता है खिंचकर चौरासी में। भीखाभाई!

उसरूप नहीं होते हैं। आँख पर को जानने पर भी आँख पररूप होती नहीं। बर्फ को जानने से आँख ठण्डी हो जाती है? तथा आँख बर्फ को नहीं जानती, ऐसा है (नहीं) और जानने पर भी ठण्डेरूप में घुस गयी है, ऐसा है (नहीं)। इसी प्रकार उष्ण को, अग्नि को जानने से यह आँख अग्निरूप हो गयी है? नहीं हुई तो भी अग्नि का ज्ञान आँख करती है, ऐसा नहीं? इसी प्रकार चैतन्य की आँख अन्दर भगवान चैतन्यसूर्य ज्ञान की मूर्ति आत्मा के प्रकाश की किरण पूर्ण प्रगट हुई केवलज्ञान। प्रकाश की किरण पूर्ण प्रगट हुई, वह लोकालोक को जानता है परन्तु लोकालोक को स्पर्शता नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ भी ऐसा है। भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु जाननहार, देखनहार स्वभाववाला तत्त्व मेरे क्षेत्र में रहकर, मेरे भाव के सामर्थ्य द्वारा, राग, पुण्य, शरीरादि की क्रियायें जो हो रही पर अस्तित्वरूप से—पर अस्तिरूप से, उस पर अस्ति का मेरी

अस्ति में ज्ञान होता है, परन्तु मेरी अस्ति उसे स्पर्शकर एकमेक होकर ज्ञान होता है, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया या नहीं? यह तो सादी भाषा से तो बात आती है। उसमें कोई फलाना बड़ा कोई पहाड़ा पढ़ने का नहीं। परन्तु कभी (दरकार ही की नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

सत् की जितनी क्षेत्र की मर्यादा, उसके काल की मर्यादा, उसके भाव की मर्यादा जिस प्रकार से है, वैसी प्रतीति करे तो सच्ची प्रतीति कहलाये या नहीं? और सत् की मर्यादा जितनी है, उससे आगे बढ़कर कहे तो असत् हो गया, उसकी श्रद्धा भी खोटी हो गयी। समझ में आया? ऐसे केवलज्ञान भगवान का, अरिहन्त परमात्मा का केवलज्ञान अन्दर शक्तिरूप से था, प्रगट हुआ पर्याय में—अवस्था में, वह आँख प्रगट हुई। लोकालोक को जाने तीन काल-तीन लोक क्षेत्र आदि को। जानने पर भी उसरूप होकर जानता है? तथा उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने स्वभाव सामर्थ्य में नहीं आया, ऐसा है? आया होने पर भी वहाँ गया है? वह यहाँ आ गया है? नहीं। निवृत्ति कहाँ, परन्तु निवृत्ति कहाँ है इस दुनिया की भांजगढ़ छोड़कर, अपना (हित) करने को निवृत्ति। यह धन्धा, पानी और हा और हो... जो कुछ इसके पास नहीं। वह कोई चीज़ रहनेवाली भी नहीं। शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, धूल, धाणी, परपदार्थ के लिये व्यर्थ प्रयास किया, ऐसा करूँ और यह करूँ और यह करूँ। तथापि वह करे विकल्प, पर को स्पर्शे नहीं और पर में कुछ कर सकता नहीं। गाँठ धोता है। आहाहा!

कहते हैं कि, भाई! तेरा अस्तित्व कितने क्षेत्र में और कैसे सामर्थ्यवाले भाववाला? भाव अर्थात् स्वभाव के सामर्थ्यवाला कितना? भाई! तेरा क्षेत्र तो यह असंख्य प्रदेश शरीर प्रमाण है और उसे शरीर को, वाणी को, इस जगत के काम कुटुम्ब आदि के होते हों, वहाँ उन्हें ज्ञान जाने सही। जानने की अपेक्षा से कहलाये कि, मानो वहाँ गया। परन्तु वह यहाँ आता नहीं और ज्ञान के जानने की पर्याय वहाँ जाती नहीं। इस प्रकार से सत् की हद और मर्यादा है। कहो, भगवानभाई! परन्तु यह बात तो कहीं चलती नहीं। आज भगवानभाई जरा...

परन्तु उन पदार्थों से तन्मय नहीं होते, उसरूप नहीं होते हैं। यहाँ कोई प्रश्न करता है,... अब आता है देखो, **कि जो व्यवहारनय से लोकालोक को जानता है,...**

व्यवहार से जगत को जाने भगवान का ज्ञान। **और निश्चयनय से नहीं,...** सच्ची दृष्टि से नहीं। उपचार से, आरोप से, उपचार से, अयथार्थनय से 'जानता है' ऐसा तुमने कहा। **तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ,...** आहाहा! यह समयसार में आता है न? ४६६ पृष्ठ। समयसार में आता है। यही प्रश्न है। जयसेनाचार्य की टीका। लिखा है उसमें उस दिन का। समयसार पृष्ठ ४६६। समझ में आया? यह धर्मकथा चलती है। क्या चलता है? और यह कहे कि क्या लगायी है यह? धर्म अर्थात् तेरा आत्मस्वभाव। उस स्वभाव का अन्तर सामर्थ्य कितना? और प्रगट हो पूर्ण, तब किस प्रकार से सामर्थ्य प्रगट हुआ? और किस प्रकार से पर को जाने? और पर को जानने पर भी उसमें व्यवहार से जाने और अपने को जाने, वह निश्चय कैसे है, उसकी अस्ति का (स्वरूप) यह स्पष्ट होता है।

तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर न हुआ? शिष्य का प्रश्न है। लोकालोक को जाने, यह तो व्यवहार हुआ और व्यवहार तो यह सब अभी यह बोल है प्रश्न पूछे... लो! यह लोग—सोनगढ़ कहते हैं कि व्यवहार। सोनगढ़ के नाम से पड़ा है। व्यवहार खोटा तो भगवान भी लोकालोक को जाने, वह खोटा। समझ में आया? सुन न, भाई! तुझे धर्म की खबर बिना बातें करे। कहते हैं, व्यवहार से लोकालोक को जाने, तब निश्चय से तो सर्वज्ञ हुए नहीं।

उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है,... देखो! भगवान आत्मा अपना ज्ञान-लोकालोक का और अपना, वह ज्ञान की दशा में एक प्रदेश में अपने असंख्य प्रदेश में एकरूप रहकर जानता है। **उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता,...** इस प्रकार से भगवान का ज्ञान लोकालोक को एकमेक होकर नहीं जानता। यहाँ का दृष्टान्त दिया न यह शक्कर का ऐसा। मिर्ची चरपरी ऐसे मुख में (डाला), मुख चरपरा हो गया नहीं कहते? मुख चरपरा हुआ नहीं, चरपरा हुआ उसकी पर्याय कही। जड़। ... ऐसा नहीं कहते? वह तो ज्ञान की वर्तमान दशा से यह खट्टा है, उसके अस्तित्व में है, मेरे अस्तित्व में नहीं। ऐसे खट्टे का ज्ञान किया है, परन्तु वह ज्ञान खट्टे की-जड़ की अवस्था को स्पर्श करे तो जड़ हो जाये। खट्टी तो जड़ अवस्था है और यह ज्ञान की अवस्था तो चैतन्य अवस्था है। चन्दुभाई! पकड़ में आता

है या नहीं ? कहते हैं। यह खट्टा लगा खट्टा, नींबू। वह नींबू का खट्टापना नींबू के क्षेत्र में, उसके भाव में वर्तता है या इस ज्ञान के भाव की ज्ञान की पर्याय में खट्टापना आ गया ? खट्टेपन का ज्ञान हुआ यहाँ ज्ञान, वह तो ज्ञान का स्वभाव है। स्व को जाने और यह क्या है, ऐसा जाने अपने में रहकर। परन्तु ज्ञान ने खट्टा जाना, वह ज्ञान खट्टे को स्पर्शा है ? तो जड़ और चेतन एक हो जाये। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें ?

भिन्नस्वरूप जानता है,... देखो! भगवान आत्मा केवलज्ञान पूर्ण प्राप्त हुए तो पर को जाने उसमें एकरूप होकर नहीं जानते, परन्तु यह है—ऐसा भिन्नरूप होकर अपने अस्तित्व में जानते हैं। ऐसे यहाँ खट्टेरूप होकर खट्टे का ज्ञान आत्मा नहीं करता। ज्ञान खट्टेपन को भिन्न रखकर उसका ज्ञान करता है। समझ में आया ? आँख का दृष्टान्त नहीं दिया पहले ? बर्फ के ऐसे ढ़ेर पड़ते हों। यह ओला पड़ते हों न, ओला पड़े। लो, आँख देखे। यह ओले नहीं पड़े थे अभी ओले ? बड़े ढ़ेर। आँख ठण्डी हो जाती होगी ? वैसे उसका ज्ञान 'यह ठण्डा है' ऐसा ज्ञान नहीं करता ? तो ज्ञान के अस्तित्व में रहकर, ज्ञान अपने क्षेत्र में अपने भाव में रहकर उसका ज्ञान है या उसके क्षेत्र में और उसके भाव में जाकर उसका ज्ञान करता है ? आहाहा! समझ में आया ? यह सब विवाद करते हैं। यह केवलज्ञान को तुम व्यवहार कहते हो। परन्तु सुन तो सही। वह तो पर है, ऐसा जाने, वह व्यवहार। परन्तु तन्मय होता नहीं, इसलिए उसे व्यवहार कहा है। परन्तु पर का जानना, जैसा अपने को जानता है वैसा ही पर का जानना समान है, जानने में कुछ अन्तर नहीं। आहाहा! उसका समाधान करते हैं, देखो!

जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता, भिन्नस्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। क्या कहा ? भगवान ने लोकालोक को व्यवहार से जाना, ऐसा कहा, वह पर में एकमेक होकर नहीं जानते, इसलिए (कहा है)। परन्तु उनका उस सम्बन्धी के ज्ञान का यहाँ अभाव है, ऐसा नहीं। कहो, बराबर है या नहीं इसमें ? बाबूभाई! कहो, समझ में आया या नहीं ? व्यापारी को नहीं समझ में आये ऐसा होगा ?

भगवान आत्मा, अरे! चैतन्यसूर्य, चैतन्यस्वामी वह सहजात्मस्वरूप चैतन्यस्वरूप है। ऐसा भगवान आत्मा भिन्न पदार्थ को जानने का काम करे, तथापि उसे भिन्न रखकर

जानता है। भिन्न रखकर न जाने तो पर से एक हो जाये तो जड़ हो जाये और भिन्न रखकर न जाने तो अपना स्व-पर का (जानने का) स्वभाव सामर्थ्य है, स्व को और पर को जानना, ऐसा अपना स्वरूप है, स्व-पर को जानना, वह अपना स्वरूप है। अपने स्वरूप को जानना, वह निश्चय कहलाता है। पर को जानना तन्मय होता नहीं, इसलिए व्यवहार है। परन्तु पर और स्व सम्बन्धी का ज्ञान, जैसा स्व सम्बन्धी का ज्ञान है, वैसा पर सम्बन्धी का ज्ञान तो समान है। आहाहा! समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु का स्वरूप ही है न। उसमें दिखता है या नहीं? प्रत्यक्ष उसे देखे। परन्तु कभी विचार करना नहीं। ऐसा का ऐसा मूढ़ लोक के और धूल के जिसमें निरर्थकपना है—कुछ माल नहीं। सम्पूर्णतः उलझन में पड़ जाये अज्ञान में ऐसे विचारों में मंथन में पड़ा। गहरे-गहरे विचार करे। परन्तु किसके? यह क्या है यह चीज़?

कहते हैं, भाई! वर्तमान में ज्ञान यह खट्टा, मीठे को जानना, उसमें एकमेक होकर जानता नहीं। तथा जाने बिना रहता नहीं, तथा खट्टे-मीठे के ज्ञान का यहाँ अभाव है, ऐसा नहीं। तथा अभाव नहीं और उसको जानता है। उसे जानता है, ऐसा कहना, तन्मय नहीं, इसलिए व्यवहार। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान है, ऐसा जानना, उसका नाम निश्चय। निश्चय अर्थात् सच्चा, पहला उपचार। समझ में आया?

कहते हैं, **कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा।** देखो न, स्पष्ट कितना किया है! भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश के नूर की अस्तिवाला असंख्यप्रदेशी तत्त्व, वह अपने में रहकर पर को जानने का काम करे, वह पर को एक होकर नहीं। पर को एक होकर होवे तो भिन्न और यह दोनों एक हो जाये। तो जड़ का ज्ञान करने से जड़ हो जाये, खट्टे का ज्ञान करने से खट्टा हो जाये। ज्ञान खट्टा हो जाये तो, ज्ञान खट्टा हो तो ज्ञान तो अरूपी है, खट्टा तो जड़ है। ज्ञान जड़ हो जाये, ऐसा बनता नहीं। आहाहा! और उस चीज़ का ज्ञान और इस चीज़ का ज्ञान, इन दो का ज्ञान करना, वह तो समान है। पर का जानना, वह तन्मय होकर नहीं, परन्तु उसका ज्ञान तो यहाँ बराबर है। जैसे आत्मा मैं हूँ, ऐसा ज्ञान है; वैसे यह, है उसका ज्ञान भी बराबर यहाँ है। पर का ज्ञान अभावरूप है, उपचार

है, ऐसा नहीं। आहाहा! अरे! पण्डितों में बड़ा विवाद है। आहाहा!

व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। समझ में आया? **'न च परिज्ञानाभावात्'** टीका में है, भाई! **'न च परिज्ञानाभावात्'** यहाँ तो ज्ञान कहा, परन्तु वहाँ तो परिज्ञान लिया है। परिज्ञान का अभाव। परि अर्थात् समस्त प्रकार का जो ज्ञान यहाँ है, वह समस्त स्व-पर का ज्ञान, उस ज्ञान का अभाव इसमें नहीं। समझ में आया? विवाद केवलज्ञान में इसलिए यह क्रमबद्ध में सब विवाद उठे, उसके कारण से यह निश्चय-व्यवहार के और उपादान-निमित्त के (विवाद)। सब उसके कारण से। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान में भूले तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र भूला। पूरे तत्त्व को भूला न। मोक्षतत्त्व पर्याय है केवली, उसे भूला तो अपना सामर्थ्य कितना है, उसे भूला। द्रव्य को भूला, गुण को भूला, पर्याय को भूला, पर को भूला, सब भूला। आहाहा!

अरे! सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरिहन्त का ज्ञान किसे कहना? समझ में आया? यहाँ तो अभी अरिहन्त के ज्ञान की पहिचान देते हैं। वे अरिहन्त परमेश्वर जिनके ज्ञान की किरण पूर्ण प्रगट हो गयी। प्रतिबद्ध अटका, राग में अटकता था, वह पूरा हो गया। जैसे कली संकोच में थी, खिल गयी। लाख पंखुड़ी की, हजार पंखुड़ी की कली हो, वह खिल गयी ऐसे। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से सर्वज्ञ सर्वदर्शी था शक्ति-सत्त्व, स्वभाव, वह एकाकार होकर पर्याय में खिल गया। समझ में आया? आहाहा! आज सवेरे वह कपास खिलने का नहीं कहा था? यहाँ कपास बहुत बोया है न, खिल गया है। कपास काल में खिले। इन्होंने बोया है न। खिल गया है, फटा है। ... काल में कपास फटे और काल में आत्मा केवलज्ञान से न खिले, ऐसा वह होगा? सब सफेद हो गये हैं। ... बड़ा कपास। कहाँ गये माणेकचन्दभाई? वह नहीं कपास? फटा। कहा, यह शक्ति अन्दर थी, वह खिल गयी।

उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन का पिण्ड आत्मा, उसका जो सम्यग्दर्शन बीज रोपा, वह बीज रोपा। उसमें स्थिरता करने से केवलज्ञान उसका फल पकता है वह। फलकर फल पकता है केवलज्ञान का। ऐसे उस केवलज्ञान में लोकालोक को

आत्मा जाने तथापि उसे व्यवहार से जाने, ऐसा क्यों कहा? कि उसमय होकर जानता नहीं, इसलिए कहा। परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान जैसा अपने ज्ञान की समानता सदृशता यथार्थता है, वैसा ही पर सम्बन्धी के ज्ञान में समानता है, उसमें जरा भी अन्तर नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह मोक्षतत्त्व की पर्याय कितनी? जीवद्रव्य के गुण तत्त्व की शक्ति कितनी? समझ में आया? और ऐसी द्रव्य शक्ति का जो ज्ञान-दर्शन का स्वभाव लोकालोक को जानने का गुण उसकी जो अन्दर प्रतीति होना, उस प्रतीति ने कितने को झेला और स्वीकार किया है!

मैं एक सर्वज्ञ—सर्वदर्शी आत्मा हूँ, ऐसी जहाँ प्रतीति (हो, वह) विकल्प छूटकर निर्विकल्प हुए बिना प्रतीति होती नहीं। क्योंकि महा भगवान ज्ञान की मूर्ति पूर्णानन्द शक्ति का सत्त्व उसका निर्विकल्प तत्त्व, वह रागरहित पर्याय हुए बिना वह यह चीज़ है, ऐसा जानने में आवे नहीं। वह बीज रोपा, उसे अब केवलज्ञान का फल आनेवाला है। समझ में आया? यह वह विवाद करे, केवलज्ञानी ने क्या जाना? नियत, अनियत दोनों जाना। नियत, अनियत अर्थात् क्या? भगवान के ज्ञान में यह पर्याय इस काल में यहाँ होनेवाली थी, ऐसा ज्ञान नहीं था? अरे! भगवान के ज्ञान में तो बापू! तुझे खबर नहीं, वह द्रव्य में जो पर्याय होने की यहाँ शक्तिरूप से है, वही अंश यहाँ आयेगा, ऐसा उनके ज्ञान में आ गया है। वह अंश भूत का था, यहाँ गया है, उस अंश के अंश के टुकड़े कर-करके परिच्छिन्न करके ज्ञान जानता है। आहाहा!

ऐसा तेरा ज्ञान गुण का स्वभाव है, यहाँ तो कहते हैं। उसमें से पर्याय खिले, ऐसा उसका स्वभाव है। राग फटे नहीं, अल्पज्ञता रहे नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा तेरा स्वरूप भगवान तू परिपूर्ण प्रभु ज्ञान-दर्शन से भरपूर है। एकरूप अखण्ड वस्तु स्वभाव है या नहीं? सम्पूर्ण जाननेवाला, सम्पूर्ण देखनेवाला स्वभाववाला तत्त्व है। वह रागरूप रहे और अल्पज्ञरूप रहे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? और पर को न जाने, ऐसा स्वभाव नहीं और पर को जानने पर भी पर में तन्मय हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! यह भेदज्ञान कराते हैं। भेद वस्तु ही इस प्रकार से है। समझ में आया?

ज्ञानकर जानना तो निज और पर का समान है। देखो! यह ज्ञान से जानना जो

है, वह जानना ज्ञान द्वारा अपना और पर का तो सब बराबर है, उसमें कुछ अन्तर नहीं। **जैसे अपने को सन्देह रहित जानता है,...** देखो! **वैसा ही पर को भी जानता है, इसमें सन्देह नहीं समझना,...** लो! इतना तो स्पष्ट करते हैं। आहाहा! पर के द्रव्य, गुण और पर्यायें जिस समय में, जहाँ होंगी, जिस अंश में होंगी, सब भगवान के ज्ञान में (ज्ञात हो गया है)। केवलज्ञान एक समय का पूर्ण और सामने भी निमित्त होने की सामर्थ्य पूर्ण। ऐसी यदि सामर्थ्य निमित्त की वर्तमान से-वर्तमान में पूर्ण न हो तो निमित्त पूरा नहीं होता। समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय जैसे पूर्ण है एक समय में, (उसी प्रकार) लोकालोक में वर्तमान एक समय में निमित्त होने की सामर्थ्य पूर्ण है। भविष्य-भूत की बात नहीं। ऐसे निमित्त को जानने पर भी निमित्त को ज्ञान स्पर्शता नहीं, निमित्त में व्यापता नहीं, निमित्त यहाँ आता नहीं। आहाहा! पर का अस्तित्व स्व के अस्तित्व में आवे? और स्व का अस्तित्व पर के अस्तित्व में जाये?

मुमुक्षु : स्व-पर रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेक वस्तु रहती नहीं। अनेक, वे अनेकरूप रहकर आत्मा अनेक को जानते हुए अनेकरूप होता नहीं। पररूप होता नहीं, अपने में रहकर जानता है। समझ में आया? ....

इसमें सन्देह नहीं समझना, लेकिन निज स्वरूप से तो तन्मयी है,... पर से तन्मय नहीं, लो। अपने को जानते हुए, अपने को जानते हुए तन्मय है, पर को जानते हुए अपने ज्ञान से तन्मय नहीं, पर से तन्मय नहीं। परन्तु परसम्बन्धी का ज्ञान तो सब जैसा स्व का है, वैसा ही उसका समान है। परिज्ञान का अभाव... पर को व्यवहार से जाने, ऐसा कहना और तन्मय नहीं हुआ, इसलिए पर के ज्ञान का यहाँ अभाव है, ऐसा नहीं। ऐसा स्व-परप्रकाशक भगवान का स्वभाव है, ऐसा बराबर जानना, निर्णय करना तो आत्मा को उसे सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन की प्रतीति हो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक २७-१०-१९६५
गाथा - ५२, ५३, प्रवचन - ३४

परमात्मप्रकाश, ५२ गाथा चलती है, ५२। क्या कहते हैं? यह आत्मा स्व को, पर को जानने के स्वभाववाला यह तत्त्व है। परमात्मप्रकाश है न। यह आत्मा स्व और पर को जाननेवाला तत्त्व है। पर को अपना माने, ऐसा उसमें स्वभाव नहीं, परन्तु पर को जानना, ऐसा अपने में स्वभाव है। समझ में आया? यह आत्मा ज्ञानमूर्ति आत्मा, उसमें वास्तव में तो पुण्य-पाप के विकार और शरीर, कर्म को जानने का स्वभाव सही, परन्तु जानने के स्वभाव उपरान्त वे पुण्य-पाप के भाव और शरीर मेरे, ऐसा मानने का स्वभाव उसमें नहीं है। समझ में आया?

उसकी वर्तमान दशा में, स्वभाव चिदानन्दमूर्ति स्व-पर जानने के स्वभाव की मूर्ति आत्मा है, ऐसे अभान द्वारा वर्तमान दशा में राग, पुण्य, विकल्प, पर में सुख, शरीर, वाणी, मन मेरे, ऐसी इसने मान्यता वर्तमान दशा में भ्रम से उत्पन्न की हुई है। समझ में आया? जानने के स्वभाव के सामर्थ्य तत्त्व का सत्त्व यह आत्मा है। ऐसे आत्मा को ऐसा मानना कि यह परवस्तु मुझे ज्ञात होती है, इसलिए परवस्तु भी मेरी... समझ में आया? यह वर्तमान दशा में... उसके द्रव्य-गुण में ऐसा स्वभाव न होने पर भी उसकी अवस्था में मिथ्या भ्रम खड़ा किया है उसने। इसलिए यहाँ लोकालोक की बात जाननेवाले केवलज्ञान का दृष्टान्त दिया है।

आत्मा अपना जैसा स्वरूप स्व-पर को जानने का सामर्थ्य है, वैसा जिसे वर्तमान में प्रगट हुआ है, वर्तमान में प्रगट हुआ प्रत्यक्ष पूर्ण, वह केवलज्ञानी परमात्मा परवस्तु को जाने सही, परन्तु परवस्तु को जानने से पर में एक नहीं होते। और पर का जानना कहना, वह व्यवहार है। क्योंकि पर के साथ एक नहीं होते। अपने को जैसे जानता है आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति, वैसे दूसरे को भी जानने का स्वभाव में तो बराबर है। जैसा अपने को जाने, वैसा ही पर को जाने। उस जानने की समानता में कोई अन्तर नहीं। मात्र पर

को जानने में तन्मय नहीं होता इसलिए उसे व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? देखो! यहाँ तक आया है।

लेकिन निज स्वरूप से तो तन्मय है, और पर से तन्मय नहीं। है? देखो, यह आत्मा वर्तमान में भी ऐसा ही है, हों! वर्तमान में भी आत्मा ज्ञान के प्रकाश की मूर्ति, आनन्द का रूप आत्मा है। उस ज्ञान में राग, विकल्प, परवस्तु ज्ञात अवश्य होती है, वह तो पर को और स्व को जानने के स्वभाव की शक्तिवाला तत्त्व है। ज्ञात अवश्य हो, परन्तु वह पुण्य-पाप और दया, दान या पर में सुख, ऐसी जो कल्पना, उसमें मजा, ऐसी मान्यता, वह मिथ्याभ्रम है। समझ में आया? भगवान चैतन्य वस्तु वर्तमान में ही स्व-पर के जानने के सामर्थ्यवाला तत्त्व, सत्त्व है आत्मा। जाने भले राग, विकल्प, दया, दान आदि भाव आये, उस समय उसे जानने के स्वभाववाला भी भाव है। सूक्ष्म बात है जरा।

आत्मा राग से पर और पर में सुख है, ऐसी मान्यता से भी पर है। मुझमें आनन्द है, मुझमें मुझे शान्ति है, मुझमें मेरा पर और स्व का ज्ञान है। मुझमें मेरा स्व और पर का ज्ञान है और मेरा आनन्द, मेरा आनन्द मुझमें है। ऐसी मान्यता अनन्त काल में उसने कभी की नहीं। इसलिए इसने आत्मा जैसा है, वैसा इसने माना नहीं। आत्मा है ऐसा कि उसके अन्तर स्वरूप में तो आनन्द ही है। वस्तु है, (वह) अतीन्द्रिय आनन्दमय है। अतीन्द्रिय आनन्द और अकेला अतीन्द्रिय ज्ञान का प्रकाश पिण्ड प्रभु है। उसे उस प्रमाण माने, तब तो वहाँ आगे पर में सुख है और पर के लक्ष्य से विकल्प उठते हैं, वे मुझमें हैं, यह बुद्धि उसे रहती नहीं। मुझमें तो उनका ज्ञान है। मुझमें उस सम्बन्धी का ज्ञान मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान, उस ज्ञान में मेरा आनन्द वह मुझमें है। समझ में आया?

अर्थात् यह आत्मा ऐसा, ऐसा, इतना है। ऐसा इसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी माना नहीं। इसने माना है (कि) ऐसे पर जानने में आवे, वे मेरे हैं और पर जानने में आवे, वहाँ इसकी वृत्ति जाती है, तो मुझे इसमें ठीक पड़ता है। इस शरीर को जानता ज्ञान शरीर में ठीक पड़ता है, स्त्री को जानता ज्ञान स्त्री में ठीक पड़ता है, लड्डू को जानता ज्ञान लड्डू में ठीक पड़ता है। मौसम्बी को जानता ज्ञान मौसम्बी में ठीक पड़ता है— ऐसी जो कल्पना खड़ी करता है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? कहो, जमुभाई! वह पर को जानता है, परन्तु पर को तन्मय होकर नहीं जानता। समझ में आया?

जिस तरह निज को तन्मय होकर निश्चय से जानता है,... भगवान आत्मा केवलज्ञानी का आत्मा, वह भी उसके ज्ञान में अपने प्रकाश के स्वभाव के सामर्थ्य के कारण से जैसा अपने में तन्मय एक होकर जाने, वैसा पर में तन्मय होकर नहीं जानता, परन्तु परसम्बन्धी का ज्ञान अपने में होता है, उसे तन्मय होकर जानता है। क्या कहा? **निज को तन्मय होकर निश्चय से जानता है,...** अर्थात्? केवलज्ञानी आत्मा अपने ज्ञान को तन्मय होकर जाने, वह परसम्बन्धी का ज्ञान, उसमें तन्मय होकर जाने। पर में तन्मय नहीं। क्या कहा, समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा की केवल्यदशा केवलज्ञानी अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञदेव, वे सर्वज्ञदेव वर्तमान की दशा में जैसा अपना ज्ञान है, वैसा पर का ज्ञान—इन दो की ज्ञान की पर्याय तन्मय होकर उसे जाने। परन्तु वह तो अपना है। परन्तु पर को जानते हुए पर में तन्मय होते हैं, ऐसा नहीं। इसलिए पर को जानना, ऐसा कहना व्यवहार इस अपेक्षा से कहा है। परसम्बन्धी का जानपना अपने में नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

उसी तरह यदि पर को भी तन्मय होकर जाने, तो पर के सुख, दुःख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर... यहाँ 'ज्ञान होने पर' वजन है जरा। पर के—नारकी के दुःख, स्वर्ग के सुख कल्पना के, वह सब केवलज्ञान के ज्ञान में ज्ञात होते हैं। वे **सुख, दुःख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर...** ज्ञान होने पर। पर का ज्ञान होने से पर में तन्मय होकर जाने तो ज्ञान होने से वे केवली **सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो, यह बड़ा दूषण है।** समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो केवलज्ञानी का दृष्टान्त देकर आत्मा को कहेंगे, हों! पश्चात् अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान को स्वभाव वह आदरणीय है, ऐसा कहेंगे।

यह भगवान आत्मा वस्तुरूप से पूर्ण ज्ञानघन है। उसकी वर्तमान दशा में वर्तमान अल्पज्ञता है। वह सर्वज्ञ त्रिकाली स्व-परप्रकाशक स्वभाव का तत्त्व हूँ, ऐसा अन्तर में अनुभव करने से उसकी वर्तमान दशा में स्व-पर का ज्ञान पूर्ण प्रगट हो जाये, उसे केवलज्ञान और उसे अरिहन्त को परमात्मा कहा जाता है। उस ज्ञान में नारकी, स्वर्ग (आदि सब ज्ञात होता है)। एक मनुष्य पीड़ित है या नहीं? उस सम्बन्धी का ज्ञान है यहाँ केवलज्ञानी के ज्ञान में, परन्तु वह ज्ञान यदि वहाँ तन्मय होकर जाने तो वहाँ जो दुःख है, वह यहाँ ज्ञान में दुःख आना चाहिए। समझ में आया? यह नरक के नारकी

रवरव नरक में पड़े दु:खी हैं बहुत, वह दु:खी संयोग से नहीं। उसका स्वभाव जो आनन्दकन्द है, उसे भूलकर संयोग के अन्दर प्रतिकूलता मानकर द्वेष खड़ा करता है, उस द्वेष का उसे—नारकी को दु:ख है। माना है न, यह मुझे है, यह मुझे है। ऐसा दु:ख है उसकी दशा में। उस दु:ख का ज्ञान केवलज्ञानी को है, परन्तु उसके ज्ञान में, उसका ज्ञान होने से उसमें जाकर यदि ज्ञान करे तो उसके दु:ख का यहाँ वेदन हो जाये। मनुभाई! न्याय समझ में आता है या नहीं इसमें? समझ में आता है, हों! खजूर-बजूर का समझ में आता है या यह समझ में आता है? अरे! भगवान! ऐसी सब कल्पनायें, बापू! तेरा घर का सामर्थ्य कितना, तूने कभी प्रतीति में लिया नहीं। आहाहा! जहाँ हो वहाँ...

मुमुक्षु : कल्पना ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पना में तथ्य है झूठेपने की। झूठापना वह सच्चा है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं... क्या कहना चाहते हैं? कहना चाहते हैं कि भगवान आत्मा का स्व-परप्रकाशक स्वभाव चैतन्य का है। स्व-पर जानने का स्वभाव है, ऐसा खिल गया प्रगट, परन्तु पर को जानने पर, पर का ज्ञान आया, उसमें पर में तन्मय होकर जाने तो... पर सम्बन्धी का स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य में यहाँ ज्ञान हुआ। उसमें तन्मय (होकर) जाने तो उसके दु:ख का इस ज्ञान में वेदन आना चाहिए। समझ में आया?

पर के सुख, दु:ख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर... देखो! विशिष्टता क्या है? दूसरे प्राणी राग-द्वेष करते हैं, उसका ज्ञान केवलज्ञान में है। केवलज्ञान पूर्ण... फिर अपने आत्मा यहाँ नीचे उतारेंगे, हों! यह पहला अभी केवलज्ञान का दृष्टान्त है न। केवलज्ञान आत्मा ज्ञानप्रकाश मूर्ति प्रभु जहाँ पूर्ण प्रकाशित हो अन्तर स्वरूप के आश्रय से खिला (तो) उसके ज्ञान में यह रागी और द्वेषी, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान है। वह ज्ञान अपना है। क्योंकि स्व-पर सामर्थ्य के कारण। परन्तु वह ज्ञान राग के कारण से नहीं, वह रागी है और पर है, उसके कारण से यहाँ ज्ञान नहीं।

इसलिए कहा, **पर के सुख, दु:ख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर...** पर के राग-द्वेष और दु:ख और इन्द्रों की कल्पना के सुख या यह भोगी के भोग में कल्पना के सुख।

मानते हैं न? यह पाँच-पच्चीस (लाख रुपये), यह स्त्री, कुटुम्ब,... ऐसी उसकी कल्पना में हम सुखी हैं, यह मानता है। वह है तो दुःख, परन्तु मानता है कि हम सुखी हैं। ऐसी कल्पना को ज्ञानी जानता है। परन्तु जानते हुए कल्पना सम्बन्धी का अपना सामर्थ्य का ज्ञान अपने में आया। वह ज्ञान होने में उसका जो सुख कल्पना का है, वह सुख यहाँ आता नहीं। कल्पना का दुःख है, यहाँ आता नहीं। वहाँ राग है, वह यहाँ आता नहीं, द्वेष यहाँ आता नहीं। वहाँ सुख-दुःख और राग-द्वेष की दशा, उस सम्बन्धी अपना जो स्व-पर सामर्थ्य का ज्ञान, वह ज्ञान उसमें आया है। समझ में आया?

यह बड़ा दूषण है। सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। तीन काल में होता नहीं। भगवान आत्मा का ज्ञान, उस ज्ञान में स्वयं यह आत्मा है, ऐसा जाने। अपनी अस्ति की उपस्थिति बिना, अपनी अस्ति की उपस्थिति बिना, ज्ञान की अस्ति की उपस्थिति बिना 'यह है' ऐसा किसने जाना? यह ज्ञान की अपनी उपस्थिति में यह है, ऐसा जाना और अपनी उपस्थिति भी यह है, ऐसा जाना। यह जानने के स्वभाव का सामर्थ्य अपना आत्मा का है। पर के कारण से नहीं, पर का नहीं और पर को जानने से पर का एकमेक होकर जाना है, ऐसा नहीं। अपने में एक होकर परसम्बन्धी ज्ञान तन्मय हुए बिना दोनों को भिन्न रखकर दोनों एक हुए बिना जाना है। कहो, न्यालभाई! क्या होगा यह सब यह व्यापार-ब्यापार और सब? आहाहा!

भाई! तेरी सीमा... सीमा, तेरे गुण की सीमा अर्थात् मर्यादा और परपदार्थ की उसकी दशा, उसके गुण और द्रव्य की मर्यादा, वह द्रव्य परद्रव्य की मर्यादा पर में है, तेरी मर्यादा तुझमें है। दोनों कभी तीन काल में एक होते नहीं। भगवान का ज्ञान जब इतना बड़ा हुआ, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। तीन काल, तीन लोक को जाना तो कुछ लोकालोक के सम्बन्धी का ज्ञान आया, ज्ञान आया तो वह चीज़ उसमें आती है या नहीं? ऐसा कहते हैं मूल तो। नहीं, वह पृथक् रहकर, वह पृथक् रहकर केवलज्ञानी का ज्ञान स्व को, पर को अपने में जानता है।

सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। एकमेक कभी किसी दिन नहीं होता। **यहाँ जिस ज्ञान से सर्वव्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है,...** देखो, क्या कहते हैं? ऐसा जो यह ज्ञान, उसे

भगवान के ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द है। पूर्ण ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द है, वह ज्ञान और आनन्द में एकता है। जैसे पर को जानने में एकता नहीं, वैसे अपने को जानने में और आनन्द को जानने में उस आनन्द से भिन्नता नहीं। क्या कहा? आत्मा ज्ञान से अपने द्रव्य, गुण को जाने, पर को जाने, उस जानने के साथ तन्मय है, पर के साथ नहीं। वैसे आत्मा का ज्ञान, आनन्द को जानने पर भी आनन्द का आनन्द के साथ तन्मय ज्ञान है। तन्मय समझ में आया? तत्-मय—उसरूप। वह ज्ञान जो प्रगट हुआ भगवान को, वह आनन्दमय है, आनन्दमय है, समय एक है, तथापि ज्ञान यह आनन्द का और यह ज्ञान पूरा होने पर भी वह आनन्द और ज्ञान का एक समय तन्मय है। ज्ञान और आनन्द भिन्न हो नहीं सकते।

मुमुक्षु : तीन लोक के सुख....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन लोक के सुख कब थे? कहा न! दुःख कब थे? यहाँ तो उसका ज्ञान यहाँ के ज्ञान की सामर्थ्य दुःख को पृथक् रखकर उस सम्बन्धी उसमें उसमय हुए बिना अपने होकर जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। पर को जानना कहना, वह उपचार कैसे? यह बात यहाँ सिद्ध की है। आहाहा! बड़ा भारी विवाद उठा। समझ में आया?

वही ज्ञान उपादेय है, यह अभिप्राय जानना। इस दोहा में जीव को ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत कहा है। यहाँ ज्ञान की अपेक्षा से, सबको जानता है, इस अपेक्षा से सर्वगत (कहा है)। चार बोल थे न? उसमें एक बोल सिद्ध किया। उसे जड़ कहते हैं, शरीर प्रमाण कहते हैं, शून्य कहते हैं, और यह सर्वगत। चार बोल हैं। चार बोल थे न ५० में। समझ में आया? आहा! यह ५० में चार बोल थे, देखो! पहला बोल था जीव को सर्वव्यापक, दूसरा था जड़, तीसरा था शून्य, चौथा था देहप्रमाण। अरे! इसे बराबर...

अब यहाँ आत्मा में भी लें तो यह आत्मा ज्ञानस्वरूप, यह ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप अपने में तन्मय होकर, एकमेक होकर ज्ञान ज्ञान को जानता है। वह ज्ञान वर्तमान में राग, दया, दान, विकल्प, शरीर, वाणी, मन जो कुछ नजदीक में प्रवृत्ति हो, उस सम्बन्धी का ज्ञान, उनको—भगवान को पूरा ज्ञान है, यहाँ नजदीक में जो रागादि उत्पन्न होते हैं या शरीरादि की क्रिया होती है, उसे यह ज्ञान राग और शरीर में, राग आस्रवतत्त्व है, शरीर अजीवतत्त्व है, उसे अजीव को आस्रव को भिन्न रखकर ज्ञान ज्ञान

में रहकर ज्ञान उसे जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया ? यह ज्ञान का स्वभाव राग और शरीर में तन्मय हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं परन्तु मिथ्या भ्रम से अज्ञानी ने, यह राग मेरा और ज्ञान और दोनों एक, शरीर मेरा और क्रिया यह हो, ऐसा यहाँ ज्ञान हो, राग हो वैसा यहाँ ज्ञान हो, ज्ञान में ऐसा यहाँ हो; इसलिए यह होता है, इसलिए यह राग मेरा, उसका होता है, इसलिए वह शरीर मेरा—ऐसा इसने भ्रमणा से माना है, ऐसा वस्तु में है नहीं। गजब बात, भाई!

आत्मा को माना कैसे कहलाये ? हम आत्मा हैं। यह आत्मा का अस्तित्व, मौजूदगी, अस्ति मानी कब कहलाये ? कि आत्मा ज्ञानस्वरूप की मौजूद चीज़ है चैतन्यमूर्ति प्रकाश। उसे माना तब कहलाये कि यह आत्मा स्व और पर को जानने के सामर्थ्य की शक्तिवाला तत्त्व वर्तमान दशा में भी स्व को, पर को जानने की दशावाली पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था, उस काल में जिस प्रकार के राग-द्वेष के भाव हों, उसी प्रकार को ज्ञान जाने, तथापि उस ज्ञानकाल में जानने से राग के साथ तन्मय हो जाये तो ज्ञान और राग एक हो जाये। (परन्तु) ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आस्रव और जीव एक हो जाये, ऐसा कहते हैं। रतिभाई! अजीव और आस्रव और जीव तीन तत्त्व भिन्न हैं। फिर संवर, निर्जरा, मोक्ष और पुण्य-पाप उसमें समाहित हो जाते हैं। भगवान आत्मा चैतन्यविलासी भगवान यह आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला प्रभु। यह जाननेवाले, देखनेवाले का स्व-पर का सामर्थ्य अपने से रखता हुआ वह तत्त्व है, ऐसे तत्त्व को उस काल में जिस प्रकार का भाव, राग, दया, दान, विकल्प उठा, उसी सम्बन्धी का अपना ज्ञान, वह ज्ञान राग के साथ तन्मय होकर जाने तो राग और ज्ञान, आत्मा और आस्रवतत्त्व एक हो जाये। समझ में आया ? कैसा है यह, सूक्ष्म पड़ा कुछ ? ऐ... जमुभाई! जमुभाई को पूछना अपने।

भगवान! तू सूक्ष्म इतना है, परन्तु तूने कभी उसका विचार किया नहीं। चैतन्यस्वभाव की मूर्ति एक वस्तु है न। कल पूछते थे, भाई! लड़का एक कि यह आत्मा क्या वस्तु होगी ? यह आत्मा जानता है, वह वस्तु है, कहा। दूसरा उसे क्या कहे ? जानता है, वह वस्तु है या नहीं ? यह जानना कितने क्षेत्र में है, कितने काल से है, वह तुझे निर्णय करना चाहिए। जाननेवाला, जाननेवाला भाव है या नहीं ? जाननेवाला एक भाव है या नहीं ? भाव है वह अस्ति है या नहीं ? अस्ति है वह कितने क्षेत्र में, इसे भी

निर्णय करना पड़ेगा या नहीं ? कि यह शरीर प्रमाण आत्मा असंख्य प्रदेश, तत्प्रमाण ज्ञान है और कितने काल का है ? कितने काल का क्या ? अनादि का है।

यह भगवान आत्मा ज्ञानभावरूप तत्त्व अनादि का असंख्य प्रदेशी व्यापक, अनादि का और उस भाव का सामर्थ्य कितना ? काल अनादि का, क्षेत्र असंख्य प्रदेश, सामर्थ्य कितना ? कि सामर्थ्य उसका इतना है कि स्व-पर को जानना ऐसा द्रव्य में सामर्थ्य, गुण में सामर्थ्य और पर्याय में सामर्थ्य है। समझ में आया ? यह जानना ऐसा, उसका सामर्थ्य हो और ऐसा उसे माने, तब राग, द्वेष और विकल्प तथा शरीरादि की क्रिया को जानने सम्बन्धी ज्ञान यहाँ हो, वह तो ज्ञान अपना है, इसलिए ज्ञान होता है, परन्तु उस सम्बन्धी के ज्ञान में राग और आस्रव और अजीव यहाँ आ जाये तो ज्ञानतत्त्व भिन्न रहता नहीं। आस्रव और अजीव दोनों एक हो जाते हैं। समझ में आया या नहीं इसमें ? ऐसी बात वह कैसी यह ? दया पालने की बात हो, भक्ति, व्रत करने, करो यह। आहाहा!

मुमुक्षु : अपनी दया है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी दया है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! इसने अपनी दया कभी की नहीं। समझ में आया ? इसने अपनी दया खायी नहीं कभी।

भगवान आत्मा वर्तमान में... भाषा की विशिष्टता कैसी की है इन्होंने! समझ में आया ? '**परकीयसुखदुःखरागद्वेषपरिज्ञातो सुखी दुःखी रागी द्वेषी**' ऐसी है न भाषा ? है न शब्द ? '**रागद्वेषपरिज्ञातो सुखी दुःखी रागी द्वेषी च स्यात्।**' ऐसा शब्द है। इसलिए कहा है न इसमें ? ज्ञान का अर्थ '**परिज्ञातो**' किया। समस्त प्रकार है न इसलिए। बहुत संक्षिप्त कलश है। इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती, हों! अधिक दृढ़ता होती है। भगवान आत्मा वह चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु, उस चैतन्य में लोकालोक और स्वयं जानने का अपना स्वतः स्व के कारण से सामर्थ्य है, ऐसा जहाँ जाना, पर में तन्मय नहीं होता, पर को भिन्न रखकर जानता है। पर का जानना और स्व का जानना अभिन्न रहता है। पर का जानना और स्व का जानना अभिन्न रहता है, परन्तु परवस्तु को अभिन्न करता है, ऐसा है नहीं, उसे भिन्न रखता है, क्योंकि भिन्न है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा वर्तमान में यह ज्ञानस्वरूप प्रभु स्व-परप्रकाशक

सामर्थ्यवाला तत्त्व यह आत्मा, यह आत्मा ऐसा जहाँ बैठा आत्मा दृष्टि में बैठा तो उसका ज्ञान स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य रखता हुआ पुण्य-पाप के भाव हों, शरीरादि की क्रिया हो, उस सम्बन्धी का ज्ञान, परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान वह अपना, उस सम्बन्धी का ज्ञान वह अपना, जैसे अपना ज्ञान अपना, (उसी प्रकार) उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना। वह ज्ञान राग और पर में तन्मय होकर जाने तो ज्ञान स्वतत्त्व है, वह आस्रव और अजीवतत्त्व हो जाये, यह बड़ा दूषण लगे। समझ में आया ? कहो, इसमें समझ में आया या नहीं ? मणीभाई !

भाई ! यह परमात्मप्रकाश चलता है। परमात्मा, द्रव्य से तो तू परमात्मा ही है, परम स्वरूप ही है। परम स्वरूप स्व-परप्रकाशक स्वरूप ही तेरा, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वरूप ही तेरा है। ऐसे स्वरूप को प्रतीति में—श्रद्धा में ले, तब वह आत्मा का ज्ञान, ज्ञान हुआ, और रागादि तथा पुण्यादि जो वर्ते सामने, उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ होता है। ज्ञान होने से राग और शरीर एक हो जाते नहीं। भिन्न रखकर भिन्न का ज्ञान अपने ज्ञान में तन्मय, उसका नाम स्व-पर सामर्थ्य की आत्मा की प्रतीति हुई कहने में आती है। आहाहा ! बाबूभाई ! अरे ! इसके घर की बातें इसकी कैसे है, यह इसे सुनने को मिलती नहीं। वह कब विचारे और कब बैठे ? ऐसी की ऐसी अन्धी दौड़ से इस आत्मा की हिंसा करके चला जाता है। जैसा है, वैसा नहीं मानना, उससे उल्टा मानना, इसका नाम आत्मा की हिंसा है। रतिभाई ! समझ में आया ? इसमें कोई बहुत भंगभेद सीखना पड़े, ऐसा नहीं।

यहाँ कहते हैं, **वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है,...** आहाहा ! भगवान का ज्ञान पूर्ण हुआ, वह अतीन्द्रिय आनन्द के साथ एक है। पर का ज्ञान हुआ परन्तु पर से एक नहीं। इसी प्रकार यहाँ भगवान ज्ञान अपने ज्ञान आत्मा की प्रतीति का भान होने से उस काल में अतीन्द्रिय आनन्द के साथ ज्ञान तन्मय है। स्व-पर के प्रकाश ज्ञान के काल में अतीन्द्रिय आनन्द से आत्मा की पर्याय उस समय तन्मय है और दुःख की कल्पना राग और पर उस सम्बन्धी ज्ञान है, परन्तु उस राग और शरीर से वह ज्ञान वर्तमान में तन्मय नहीं, तथापि तन्मय मानना वह भ्रमणा और मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा ! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? ध्यान तो बहुत रखते हैं ऐसे बराबर। परन्तु यह तो उथल-पुथल की बातें हैं यह। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह कहते हैं। यह माने भ्रमणा मूर्ख होकर, ऐसा कहते हैं। दृष्टान्त नहीं दिया आँख का? कि आँख में ऐसे अग्नि दिखाई दे, वह तन्मय है? दिखती है तन्मय? मुफ्त में मानता है। तन्मय हो तो आँख गर्म हो जाये। उसी प्रकार ज्ञान शरीर को जानते हुए शरीर के साथ तन्मय हो जाये तो शरीर जड़ है (तो) ज्ञान जड़ हो जाये। चैतन्य है, वह जड़ नहीं होता; जड़ है, वह चैतन्य नहीं होता। उसी प्रकार ज्ञान, उसमें राग और पुण्य-पाप के विकल्प वृत्तियाँ उठती हैं, उन्हें ज्ञान जाने, परन्तु उनमें तन्मय हो जाये तो राग वह दूषित अचेतन संकल्प और जड़ है, चैतन्य के प्रकाश के तेज के नूररहित राग है, तो राग का ज्ञान होने पर राग में तन्मय हो जाये तो राग अचेतन, ऐसा ज्ञान भी अचेतन हो जाये। आहाहा! न्यालभाई! न्याल होने यह बात है। आहाहा!

कहते हैं, अरे! भगवान! इसमें कोई पण्डिताई की आवश्यकता नहीं है। समझ में आया? यह तो वस्तु, वस्तु है या नहीं? और है तो उसका स्वभाव (है या नहीं)? वस्तु हो, उसका कोई स्वभाव होगा या नहीं? कोई शक्ति होगी या नहीं? शक्तिवान कहना और शक्ति न हो, ऐसा होगा? तो आत्मा एक वस्तु है, वह तो स्वभाववान हुई, तो उसका स्वभाव क्या? कि जानना-देखना इसका मुख्य स्वभाव स्व-परप्रकाशक। उसके साथ आनन्द आदि फिर भेद सब साथ में। ऐसा जानने-देखने का भगवान आत्मा का स्वभाव, वह जानने-देखने के कार्य के उपरान्त दूसरा क्या करे? यह जानने-देखने के कार्य उपरान्त राग का कार्य करे, पर का कार्य करे, यह मान्यता भ्रम की इसने उत्पन्न की है। समझ में आया?

अथवा कार्य न लो तो अस्तित्व (लो)। आत्मा जानने-देखने के स्वभाव की मौजूदगीवाला तत्त्व, उसे राग के अस्तित्ववाला मानना, वह और कर्ता-कर्म में गया, यहाँ तो अस्तित्व को सिद्ध करते हैं न। लोकालोक का अस्तित्व है, यहाँ उस अस्तित्व सम्बन्धी के ज्ञान का स्व-पर(प्रकाशक) अस्तित्व यहाँ है। केवलज्ञान में स्व-पर के प्रकाश की मौजूदगी यहाँ है। लोकालोक का अस्तित्व यहाँ से भिन्न है। दो अस्तित्व है। अब दूसरे अस्तित्व का होनापना का ज्ञान अपने सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, उसमें स्वयं तन्मय है और दूसरे के अस्तित्व में यह ज्ञान तन्मय हो जाये तो लोकालोक के साथ जड़ और

राग और द्वेष तथा सुख-दु:खरूप हो जाये। ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है, यह अभिप्राय जानना।** अर्थात्? कि पूर्ण केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द वह जब उपादेय है, ऐसा कहा, तब पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द ऐसे हैं कि, पर को तन्मय हुए बिना अपने ज्ञान की पूर्णता को स्वयं को तन्मय होकर जाने। ऐसे ज्ञान का निर्णय करे, यह आत्मा (कि) यह ज्ञान पूर्ण होने की सामर्थ्यवाला मेरा तत्त्व है, उसका तत्त्व पूर्ण प्रगट हुआ। मेरा तत्त्व (ऐसा ही है)। क्योंकि यह आत्मा और यह आत्मा की जाति की शक्ति में अन्तर नहीं। तो जिसे पूर्ण ज्ञान और आनन्द जहाँ तन्मय से अपने में प्रगट हुए, ऐसे का निश्चय (हो कि) ऐसी सत्ता जगत में है, ऐसी सत्ता अस्तिवाले पदार्थ भगवान परमात्मा जगत में है, ऐसा जहाँ यह निर्णय करने जाये तो ऐसे अस्तित्व की सत्तावाला मैं भी ऐसे पूर्ण सत्ता के स्वभाववाला हूँ। ऐसे अपने द्रव्य के स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य और उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द की अन्दर प्रतीति होने पर उसकी वर्तमान दशा में स्व-पर जानने का ज्ञान प्रगट हो और अतीन्द्रिय आनन्द तन्मय होकर आनन्द का अनुभव इकट्ठा आवे। उसने आत्मा माना और जाना कहा जाता है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है... केवली को **सुखरूप है, ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है,...** लो। ऐसा केवलज्ञान और पूर्णानन्द भगवान का ज्ञान और आनन्द आत्मा को आदरणीय है। इसका अर्थ, ऐसे ज्ञान और पूर्ण आनन्द की प्रगट दशा जिसमें से प्रगटे, ऐसा आत्मा वह मेरा है। मैं पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरपूर स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य और आनन्द (स्वरूप हूँ)। ऐसे अन्तर दृष्टि आत्मा की प्रतीति होने पर इसके ज्ञान में रागादि पर का जानना हो, परमय न हो, पर का जानना हो और पर का जानना और स्व के जानने के सामर्थ्य के साथ आनन्द की पर्याय तन्मय और अभेद है। जैसे परवस्तु भेद है, इसी प्रकार जानने के साथ अपना आनन्द भेद है, ऐसा नहीं। भले शक्ति का सत्त्वरूप से भिन्न है। अभिन्न आनन्द और ज्ञान के साथ अभिन्न एक समय में है। लो! यह ५२ गाथा कही। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ५३

आगे आत्म-ज्ञान को पाकर... ऐ.. देवानुप्रिया! क्या सुना? यह किसकी बात की? दुःख के विकल्प के साथ यदि ज्ञान तन्मय हो तो ज्ञान चैतन्यस्वरूप, वह अचेतन दुःख अर्थात् राग के साथ एक होने से महादूषण आवे। आहाहा! मनुभाई! आहाहा! यह पर है, उसे पर रखकर और पर सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में रखकर और अपनी अस्ति का ऐसा स्वीकार (होने से) उसमें ही अतीन्द्रिय आनन्द का व्यक्तपना प्रगट होता है, उस ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द तन्मय है। परन्तु उस समय का विकल्प उठे दुःख का, द्वेष का, उसके साथ ज्ञान और आनन्द एक हुए नहीं, एक हैं नहीं। (एक) माने, वह उसकी भ्रमणा है, ऐसा कहेंगे। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? ... यह मोहनभाई को सुनना कितने समय से देखो अन्तराय है। लो! तुमको तो सुनने का मिलता है इतना सब। भले शरीर ऐसा पड़ा है, परन्तु ऐसा मिला तो (सही) समय और वे फँसे हैं चार महीने से लो। कहो, समझ में आया इसमें? बाहर में धूल में भी नहीं अब। यह पाँच लाख और दस लाख ज्ञान में आये। वह क्या आया उसमें? उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना ज्ञान अपने में आया है। उसके बदले यह मानता है कि मुझे पैसे आये तो पैसे और ज्ञान को एक माना। मूढ़ है। मनुभाई! मनुभाई को अभी बहुत आमदनी है वहाँ। बहुत ढ़ेर रुपये लाखों आवे बारह महीने में कितने पाँच-पाँच लाख। किसके घर में? रुपये और आत्मा एक होंगे? ऐ... फावाभाई! क्या होगा यह? यह सब क्या चलता है यह? यह भारी पागलपन, पागलपन के गाँव कहीं अलग होते हैं? आहाहा!

भगवान! उन संयोगों में पुद्‌गल आदि दिखते हैं, उन संयोगों का ज्ञान करना, संयोग को स्पर्शे बिना, वह तेरा स्व-परप्रकाश स्वभाव तेरा तुझमें है। इसके अतिरिक्त ऐसा मानना कि यह संयोगी मेरी चीज़, मेरा लाया, मेरी अस्ति में यह ऐसा, उसकी अस्ति के कारण मैं, वह भ्रमणा का बड़ा मिथ्यात्व का महापाप ओढ़ता है। अरे.. गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करे, वह टाले। कहो, जोड़े वह तोड़े। जोड़ा है किसने? इसने। तोड़े यह। आहाहा!

आगे आत्म-ज्ञान को पाकर इन्द्रिय-ज्ञान नाश को प्राप्त होता है, परमसमाधि में आत्मस्वरूप में लीन है, परवस्तु की गम्य नहीं है, इसलिए नय-प्रमाणकर जड़ भी है,... यह ज्ञान जड़ कहेंगे, हों! केवलज्ञानी का भी जड़ कहेंगे यहाँ (इस अपेक्षा से)। **परन्तु ज्ञानाभावरूप जड़ नहीं है...** हों! ऐसा। **चैतन्यरूप ही है,...** भगवान केवलज्ञानी परमात्मा और यहाँ। क्या कहते हैं ? देखो!

५३) जे णिय-बोह-परिट्ठियहँ जीवहँ तुट्टइ णाणु।
इंदिय-जणियउ जोइया तिं जिउ जडु वि वियाणु॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ :- जिस अपेक्षा आत्म-ज्ञान में ठहरे हुए जीवों के... भगवान आत्मा अपना ज्ञानस्वरूप उसमें ज्ञान स्थिर होता है। वह ज्ञान जो पर के सन्मुख में विकार और संयोग के लक्ष्यवाला ज्ञान था, वह परप्रकाशक एकान्त मिथ्याज्ञान था। वह इन्द्रियाँ और राग तथा पर से हटकर ज्ञान, ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसमें स्थिर हो। ऐसे **जीवों के इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ ज्ञान नाश को प्राप्त होता है,...** जो ज्ञान वर्तमान ज्ञान, जानने की अवस्थावाला अस्तित्व ज्ञान, होनेवाला ज्ञान, वह इन इन्द्रिय, मन और राग की ओर का जानता था, वह जानने का परप्रकाशक ज्ञान अकेला एकान्त ज्ञान मिथ्याज्ञान था। क्योंकि उसमें स्वयं जिसका ज्ञान, वह आया नहीं था। आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्य की वर्तमान ज्ञानदशा, वर्तमान ज्ञानदशा दशावान में स्थिर होने से—ज्ञानवान में स्थिर होने से उस समय इन्द्रियज्ञान रहता नहीं। समझ में आया ? उस समय इन्द्रिय के ज्ञान से अन्ध हो जाता है।

इस प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य के सूर्य का तेज प्रभु वह अपनी वर्तमान दशा जो हालत, उसे अन्तर में झुकाने से, स्थिर होने से जो ज्ञान इन्द्रिय, राग की ओर काम करता था, उस ज्ञान की वर्तमान दशा को अन्तर में स्व में झुकान से अन्दर में स्थिर हुआ (तो) इन्द्रियज्ञान रहा नहीं। इस अपेक्षा से निर्विकल्प दृष्टि की शान्ति के काल में ज्ञानी भी इस अपेक्षा से इन्द्रियज्ञानरहित जड़ हो गये कहे जाते हैं। इस अपेक्षा से, हों! ज्ञान के अभाव की अपेक्षा से नहीं। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें, भगवान आत्मा ऐसे पर को जानने में सावधानी रखता है। वस्तु तो स्वयं है, उसकी वर्तमान अवस्था में पर को जानने की सावधानी रखता है, वह सब इन्द्रिय, राग और पर का ज्ञान, उस सम्बन्धी का ज्ञान। वह ज्ञान स्व को जानने की

सावधानी में गया। समझ में आया? उस समय नगाड़े बजते हों तो भी उसे खबर नहीं होती, लो! भाई! इसलिए इन्द्रिय के ज्ञान से जड़ हो गया, इस अपेक्षा से। परन्तु .... यहाँ नगाड़े बजते थे न? किसे खबर है नगाड़े की? चन्दुभाई! आहाहा!

केवली को तो स्व-पर पूरा जागता हो गया पूरा, परन्तु यहाँ तो पूरा नहीं और एक ओर जहाँ ज्ञान अपना, अपनी ओर झुका, जाननेवाला तो ज्ञान ही है आत्मा का जानना, वह जाननेवाला, जाननेवाला ऐसे... ऐसे... ऐसे जानता (कि) यह इन्द्रियाँ और यह शरीर और यह खाया और पीया, क्रिया हो उसे जाना... जाना... जाना... वह ज्ञान जो जाननेवाला ऐसा मुड़ा था, वह जाननेवाला जाननेवाले की ओर मुड़ा। अन्तर में ज्ञान मुड़ने पर उसे ज्ञान के एकाकार में नगाड़ा बजे, उसकी खबर नहीं होती, कोई शरीर के ऊपर पानी छिड़के, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? चारों ओर धूप लगाते हों ऐसे, उसकी उसे खबर नहीं होती और ऐसा ध्यान का काल हो, ऐसी स्थिति में भी पानी का एकदम प्रवाह आया और शरीर बहा, उसकी उसे खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : आत्मा में तल्लीन हो जाता है उस समय?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है यह? यह पर में तल्लीन हुआ है तो स्व की खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। स्व के तल्लीन में पर की खबर नहीं रहती, ऐसा कहते हैं।

'**निजबोधप्रतिष्ठितानां**' निज अर्थात् अपने ज्ञान का ज्ञान करने जाने पर '**प्रतिष्ठितानां**' स्थिर **जीवों के इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ ज्ञान नाश को प्राप्त होता है,...** उसे पर का ज्ञान नहीं। **हे योगी, उसी कारण से जीव को जड़ भी जानो।** इस कारण से... भान नहीं, यहाँ इतना हुआ तो खबर नहीं? लोग नहीं कहते? कि कहाँ सोता था तू यह? यहाँ बड़े बम आये थे और चिल्लाहट मची और यह घर सुलगा। कौन जाने मुझे खबर नहीं। नींद में होता है या नहीं? हमारे एक था। नहीं वह छोटालाल? कान से बहरा नहीं था वह साधु? तपसी का। वींछिया में थे तब घर सुलगा था सामने एक। किसी का घर था सामने एक। धनजीभाई की उस ओर नहीं? धनजीभाई! उस ओर घर था वह सुलगा था तब। यह तो बहुत वर्ष की बात, उसे याद भी न रहे। घर सुलगा था और लकड़ियाँ निकाली बड़ी जली बाहर। वह सोकर उठा तब खबर पड़ी। कहे, यह क्या हुआ?

परन्तु कहाँ तू सोता था? उपाश्रय में सोता था सामने। हम तो सब जगे परन्तु लोग आये थे न तुम्हारी उस ओर घर सुलगा है। कितने वर्ष की बात होगी, ४५ वर्ष की। यह गहरे खांचे में जयन्तीभाई के पीछे सुलगा था। उसे भी खबर नहीं होती। यह बड़े लकड़े सुलगे थे ऊपर के भोम बाहर निकाले थे फिर वहाँ से निकाल निकालकर। किसी का सुलगता था, खबर नहीं, बहुत वर्ष हो गये परन्तु, हों! वह था साथ में। (संवत्) १९७८-७९ में साथ में था, लो! ७८ में। कितने वर्ष हुए? ४२-४३ वर्ष हो गये। यह वहाँ सुलगता था। वह कहे, मुझे कुछ खबर नहीं। वह पुलिस इतनी आयी थी, लकड़ियाँ जलाकर बाहर निकालीं बरामदे में, हाहाकार (हो गया)। मुझे कुछ खबर नहीं। यह भी खबर नहीं, ऐसा हुआ न बाहर का। नींद में। है न उपाश्रय के.... वहाँ उसका पाट था। उस ओर की गली के पीछे। बहुत बहरा था। ऐसे यह बहरा हो जाता है आत्मा उस समय, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान भगवान, भगवान स्वभाव चैतन्य का, वह वर्तमान ज्ञान अन्तर में ढलने से, वह ज्ञान, ज्ञान में एकाग्र होने से बाहर की उसे गम रहती नहीं। पाँच इन्द्रिय के विषय की उसे गम नहीं रहती। इस अपेक्षा से उसे—ज्ञान को इस अपेक्षा से जड़ कहा जाता है। परन्तु अपने स्वभाव के ज्ञान का उसमें अभाव है, ऐसा है नहीं। ओहोहो!

भावार्थ :- महामुनियों के वीतरागनिर्विकल्प-समाधि के समय में... छद्मस्थ का दृष्टान्त लिया, हों! फिर लगायेंगे केवली को। महा सन्त मुनि महा चारित्रवन्त ध्यान में पड़े हों। आहाहा! लो! ख्याल में आवे तब आ जाये विकल्प, अन्दर में स्थित हों, महामुनियों को वीतराग—रागरहित निर्विकल्प अभेद शान्ति के समय में अन्तर की एकाग्रता में जम गये हैं, पिण्ड हो गये हैं। शीतल... शीतल आनन्दमूर्ति प्रभु में वर्तमान स्थिर होकर जम गये हैं।

उसे **स्वसंवेदनज्ञान होने पर...** उसे अपने प्रत्यक्ष ज्ञान के वेदन काल में, **इन्द्रियजनित ज्ञान नहीं है,...** उस काल में पाँच इन्द्रिय का ज्ञान होता नहीं। यह पाँच इन्द्रिय के ज्ञानवाले को अतीन्द्रिय आत्मा कैसा है, उसे भान नहीं, लो! यह शब्द और यह रूप और यह रस और यह गन्ध और स्पर्श, राग, द्वेष और मन तथा यह.. यह और यह। उस ओर के ज्ञानवाले को आत्मा की गम नहीं। और आत्मा के गम में पड़े, उसे यहाँ इन्द्रिय

के ज्ञान की गम नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वापस टोडरमलजी ने लिया है कि परीषह के समय ज्ञान जानता नहीं, ऐसा नहीं। वह तो विकल्प आया है और न जाने ऐसा।... यहाँ तो समाधिकाल की बात है, जब स्थिरता निर्विकल्प में स्थित है, तब की बात है। यों ही उसमें (विकल्प में) आवे, वह कुछ होता है, ऐसा जाने, वह जानने में बाधा नहीं। परन्तु यहाँ तो जब स्थिर होता है, उस समय की बात लेनी है।

केवल अतीन्द्रिय ज्ञान ही है। **इन्द्रियजनित ज्ञान नहीं है, और केवलज्ञानियों के तो किसी समय भी इन्द्रियज्ञान नहीं है,...** केवली को तो कभी इन्द्रियज्ञान है ही नहीं। **केवल अतीन्द्रिय ज्ञान ही है, इसलिए इन्द्रिय-ज्ञान के अभाव की अपेक्षा आत्मा जड़...** उन केवली को भी इस अपेक्षा से जड़ कहा जाता है। महामुनि आदि धर्मध्यान में आनन्द में स्थित हों, तब इन्द्रियगम्य नहीं, इसलिए उन्हें भी जड़ कहा जाता है। वहाँ पूरे जागते तो इस ओर के जड़। समझ में आया?

यहाँ पर बाह्य इन्द्रियज्ञान सब तरह हेय है... देखो अब। यह इन्द्रियाँ और मन की ओर का जो ज्ञान वर्ते, वह हेय है, आदरणीय नहीं। आहाहा! वह राग तो हेय, भाई! निमित्त तो हेय, यहाँ इन्द्रियज्ञान सब तरह हेय। देखो तो! आहाहा! उसे भी वहाँ कभी यह क्या चीज़ है और चीज़ के सामर्थ्य का सत्त्व कितना है, कभी भरोसा लिया नहीं, प्रतीति में लिया नहीं। बातें सब धर्म की (की)। शास्त्र में ऐसा (कहा है)। अब सब कहा है शास्त्र में, सुन न! शास्त्र वह सत्य बात करते होंगे या शास्त्र असत्य (कहते होंगे)? असत्य का ज्ञान करावे, परन्तु असत्य सच्चा है, ऐसा स्थापित करते होंगे? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा का ज्ञान जो ज्ञान, उसका ज्ञान। आहाहा! वह ज्ञान का ज्ञान, अतीन्द्रिय का ज्ञान, वस्तु का ज्ञान, वह उपादेय है। पाँच इन्द्रिय और मन का वह ज्ञान हेय है, छोड़नेयोग्य है, तो राग तो कहीं छोड़ने (योग्य) और बाह्य पदार्थ तो कहीं रह गये। आहाहा! वह अजीव आदि दूसरे जीव तो आत्मा को आदरणीय नहीं, छोड़नेयोग्य हैं, यह रागादि के विकल्प शुभाशुभ छोड़नेयोग्य, परन्तु उस सम्बन्धी का इन्द्रियज्ञान भी छोड़नेयोग्य है। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान भगवान आत्मा, वह उपादेय अर्थात् दृष्टि में लेनेयोग्य है। वही शान्ति का कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ४, गुरुवार, दिनांक २८-१०-१९६५
गाथा - ५३, ५४, प्रवचन - ३५

५३ गाथा हुई, ५४। चार प्रश्न थे, उनके दो प्रश्न के उत्तर हुए। पहला प्रश्न यह था कि आत्मा सर्वव्यापक है। यह आत्मा है न वस्तु है, वह देह से भिन्न, वह ऐसे सर्वव्यापक किसी अपेक्षा से है या नहीं ? वह है। किस अपेक्षा से ? यह आत्मा अपनी अस्ति में—अपनी सत्ता में लोकालोक जानता है, वह ज्ञान मानो लोकालोक को जानता हुआ पर में व्याप्त हो, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में अपने प्रदेश अर्थात् अंशों में जो ज्ञान वर्तता है, वह ज्ञान अपना स्थान छोड़कर दूसरे स्थान में जाता नहीं। कहो, समझ में आया ? देहप्रमाण आत्मा अपना स्थान है, उसमें वह लोकालोक सब जगत का ज्ञान—जगत सम्बन्धी का स्वभाव ज्ञान (और) अपना अपने में ज्ञात हो। इससे कहीं पर में जाता है, ऐसा है नहीं। एक बात।

दूसरी बात। आत्मा को जड़ कहा, जड़। वह किस अपेक्षा से ? भगवान आत्मा अन्तर ज्ञान का समुद्र स्वभाव, वह स्वयं अपने अन्दर निर्विकल्प ध्यान में, समाधि में, शान्ति में हो, तब उसके इन्द्रिय का ज्ञान होता नहीं। इस अपेक्षा से इन्द्रिय के ज्ञान के अभाव में उसे जड़ कहा जाता है। अपने स्वभाव के ज्ञान का अभाव है, इसलिए जड़ है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? अब तीसरा बोल। पूछा था कि, आत्मा शरीर प्रमाण है या कैसे ? यह तीसरे बोल की व्याख्या चलती है।

★ ★ ★

गाथा - ५४

आगे शरीरनामा नामकर्मरूप कारण से रहित यह जीव न घटता है, और न बढ़ता है, इस कारण मुक्त-अवस्था में चरम-शरीर से कुछ कम पुरुषाकार रहता है,... शरीररहित पूर्ण परमात्मदशा आत्मा को हो, तब अन्तिम शरीरप्रमाण अपनी अवगाहना

अर्थात् आत्मा का आकार उस प्रमाण वहाँ सिद्ध परमात्मदशा में रहते हैं। यहाँ शरीर, यहाँ संसार में बढ़ता-घटता दिखता है। वह एक नामकर्म है, उसका निमित्त (और) योग्यता अपनी है। योग्यता त्रिकाली, उसका उस प्रकार का रहना, ऐसा स्वभाव नहीं। इससे नामकर्म के निमित्त से शरीरप्रमाण में संकोच-विकास होता है। यह कहते हैं, हों! देखो!

५४) कारण-विरहिउ सुद्ध-जिय वड्ढइ खिरइ ण जेण।
चरम-सरीर-पमाणु जिउ जिणवर बोल्लहिँ तेण॥ ५४॥

जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमात्मा जो ज्ञानस्वभाव से है, वह ज्ञान अपनी वर्तमान दशा में पूर्ण हो गया। ऐसे सर्वज्ञ जिनवरदेव ने ऐसा '**बोल्लहिँ**'—ऐसा कहते हैं कि, क्या?

अन्वयार्थ :- जिस हेतु... शब्दार्थ, **हानि-वृद्धि का कारण शरीर नामकर्म से रहित हुआ...** यह भगवान आत्मा जब परमात्मा होता है, तब उसका आत्मा का ऐसे संकोच-विकास नहीं होता। अभी तो बड़े शरीरप्रमाण में हो तो ऐसा आकार होता है, छोटे शरीर में हो तो ऐसा आकार आत्मा का अपना (होता है)। समझ में आया? जैसे पानी बड़े हण्डे में हो तो उसका वैसा आकार पानी का होता है और कलश में हो तो कलश प्रमाण आकार होता है। अकेला पानी हो पृथक्, उसका आकार तो जैसा हो वैसा रहे, ऐसा का ऐसा जैसे भरा हुआ साधारण हो, वैसा।

इसी प्रकार आत्मा शरीर नामकर्म के संयोग का अभाव होने से शुद्ध जीव अर्थात् परमात्मा, **न तो बढ़ता है, और न घटता है,...** असंख्यप्रदेशी आत्मघन जो वस्तु है आत्मा अरूपी, तथापि पदार्थ है न, और उस पदार्थ की अस्ति में यह सब दिखता है। समझ में आया? जिसकी सत्ता में—जिसके अस्तित्व में यह है, ऐसा दिखता है। उसके अस्तित्व में यह है, ऐसा नहीं। क्या कहा? ज्ञान की सत्ता—अस्तित्व स्वभाव आत्मा का उसमें यह यह है, ऐसा दिखता है। वह स्वयं ज्ञान सत्ता में रहा हुआ अपनी प्रसिद्धि करता है। ऐसा आत्मा अकेला शरीररहित अकेली प्रसिद्धि पूर्ण हो गयी, उसे परमात्मा कहते हैं। उसे शरीर नामकर्म का सम्बन्ध नहीं, इसलिए उसका जो आत्मा का आकार अन्तिम शरीरप्रमाण रहा, तत्प्रमाण अनन्त काल रहता है।

इससे शुद्धजीव न तो बढ़ता है, और न घटता है, इसी कारण जिनेन्द्रदेव जीव

को चरमशरीरप्रमाण कहते हैं। अन्तिम शरीर हो, वह शरीर छूट गया, तत्प्रमाण सिद्ध भगवान में आत्मा का आकार रहेगा। समझ में आया? यह वस्तु का स्वभाव सर्वज्ञ ने देखा, इससे कितने ही अन्यमति दूसरे प्रकार से कहते हैं, इससे इस वस्तु को इस प्रकार से है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

भावार्थ :- यद्यपि... यद्यपि संसारदशा में हानि-वृद्धि का कारण, संकोच-विकास का कारण **शरीरनामा नामकर्म है...** यहाँ कर्म को प्रधानरूप से क्यों कहा? है तो हानि-वृद्धि अपनी समय की योग्यता से, परन्तु उस समय-समय की योग्यता का ख्याल जगत को न आवे, (इसलिए) वह योग्यता कर्म के कारण संकोच-विकास है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? **महामच्छ का शरीर पाता है,...** हजार योजन का मच्छ होता है, हजार योजन का। एक योजन दो हजार कोस का। समझ में आया? वह शाश्वत्। यह साधारण चार कोस का एक योजन। ऐसा एक हजार योजन का मच्छ होता है मच्छ। वह अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र है। यह जम्बूद्वीप है, फिर लवण समुद्र है, फिर धातकी है पश्चात्... समझ में आया? कालोदधि समुद्र इत्यादि समुद्र और द्वीप असंख्य हैं ऐसे। चारों ओर के विस्तार में असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र विस्तार में है। उसमें अन्तिम एक स्वयंभूरमण समुद्र है, जो असंख्य योजन में चौड़ा है। उसमें हजार-हजार योजन के मच्छ बसते हैं। उसके देह का माप हजार योजन का है। चार हजार कोस का। समझ में आया? लोग नहीं कहते पानी जैसे मच्छ? जल जैसे मच्छ, ऐसा कहते हैं या नहीं? यहाँ छोटे मच्छ होते हैं, यहाँ पानी चले उसमें, उसमें बड़े-बड़े मच्छ (होते हैं)। तब आत्मा हजार योजन में हो, तब उसके शरीरप्रमाण होता है। समझ में आया? **तब तो शरीर की वृद्धि होती है, और जब निगोदिया शरीर धारता है,...** निगोद। सूक्ष्म बात है। यह काई, आलू, शक्करकन्द में जीव होते हैं, तब उनका शरीर तो अंगुल के असंख्यातवें भाग होता है। यह अंगुल है न, उसके असंख्यवें भाग में शरीर, हों! उसके प्रमाण में आत्मा उतना व्यापक है। आत्मा तो जो है, वह है, परन्तु यह छोटा शरीर हो तो छोटे प्रमाण में व्यापक, बड़ा हो तो बड़े प्रमाण में व्यापक। समझ में आया? यहाँ असंख्य प्रदेश और उसका आकार सिद्ध करते हैं।

तब घट जाता है... यह हजार योजन का मच्छ... यहाँ भी देखो न, शरीर ऐसा

लठ्ठ जैसा हो, वहाँ तक आत्मा के प्रदेश इतने चौड़े, उस प्रमाण व्याप्त हों और ऐसे क्षय हो जाये, (तब) टेंटा जैसा ऐसा शरीर (हो जाये)। यह आत्मा के प्रदेश भी उस प्रमाण में संकुचित हो जाते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा कैसे होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी योग्यता है। कैसे होता होगा क्या? वह अपना उस प्रकार का संकोच-विकास की क्रिया का कार्य द्रव्य से होता है। वह तो कल आ गया, नहीं? वह कार्य परिणामी से होता है, द्रव्य से होता है, परन्तु यहाँ शरीर नामकर्म को प्रधानरूप से कहकर, ऐसा कायम का स्वभाव उस प्रमाण नहीं। कायम का सिद्ध में शरीरप्रमाण स्वभाव रहा, परन्तु त्रिकाली ऐसा स्वभाव नहीं। समझ में आया?

देखो न, शरीर ऐसे ऐसा लठ्ठ जैसा हो और ऐसे सूख जाये जब, वर्ष, डेढ़ वर्ष और दो वर्ष जब क्षय (रोग) चले क्षय, (तब) ऐसे... ऐसे खाट में पड़ा हो तो ऐसे टेंटा चिड़िया जैसा दिखाई दे छोटा। वढ़वाण में नहीं था? वढ़वाण में। कैसे वे? दादभावाले, क्या नाम? हरजीवन का पुत्र। वह वढ़वाण के हैं न, उसे खबर होगी। हरजीवनभाई का पुत्र, उन लालचन्द की धर्मशाला में। लालचन्द की धर्मशाला। बाहर मंजिल के ऊपर थे। खबर है? ९० के वर्ष, डेढ़ वर्ष का विवाहित, तुरन्त ही वह क्षय लागू पड़ गया। ऐसा शरीर हो गया। रूपवान था, बड़ा शरीर था परन्तु वह डेढ़ वर्ष में ऐसा जीर्ण हो गया कि ऐसे शैय्या में दिखाई दे नहीं। ऐसे टेंटा जैसा। हम गये थे शाम को अन्तिम दिन में, नारणभाई थे वहाँ। उसे दर्शन देने। दीक्षा भी नारणभाई की वहाँ थी न। व्याख्यान भी बहुत बार लालचन्द की धर्मशाला में दिये थे, (संवत्) २००६ के वर्ष में। ... उतरे थे तब। वह बाद में रात्रि में (गुजर गया) जीर्ण टेंटा जैसा। साध्य सब। साध्य... साध्य। यह हड्डियाँ सब ऐसे संकुचित हो गयी थी। तत्प्रमाण आत्मा के प्रदेश संकुचित और स्थूल हों तो विकास पाते हैं, ऐसे चौड़े होते हैं। जैसे सोने की सांकल हो हजार मकोड़े की, छोटे लड़के के गले में डाले तो अधिक लपेटा हो और वह सांकल बड़े के डाले तो थोड़े लपेटा (हो)। वे मकोड़ा तो हैं उतने हैं। समझ में आया? छोटे की गर्दन में डाले तो सात-आठ लपेटा डाले तब मुश्किल से इतने यहाँ रहे न, बड़े में डाले तो यहाँ तक तीन लपेटा या चार लपेटा ऐसे रह जाये। समझ में आया?

मुमुक्षु : संकोच-विकास .... आवे तो वास्तविक स्थिति क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक स्थिति संकोच-विकास की योग्यता उसमें— पर्याय में है, परन्तु वास्तविक असंख्य प्रदेशपना उसका स्वरूप है। लोक प्रमाण पसरे ऐसा ... सुनो तो सही! आता है। पसरने का स्वभाव नहीं, पहले से स्वभाव नहीं। लोक प्रमाण प्रदेश की संख्या इतनी है। पसरने का स्वभाव पहले से ऐसा नहीं। इसलिए दीपक के साथ मिलान नहीं खाये, ऐसा दृष्टान्त देंगे। समझ में आया ?

तब हमने देखा था। आहाहा! डेढ़ वर्ष का (विवाहित) । उसमें तो दस महीने के बाद तो तुरन्त क्षय लागू पड़ गया और एकदम... शिवा गोपाल की... पुत्री थी। ... ओहोहो! भाई! इसने विचार किया नहीं कि यह आत्मा कितने क्षेत्र में चौड़ा है। यहाँ शरीर जितना है, उतने प्रमाण में चौड़ा है। यहाँ भी बालक प्रमाण में उतना चौड़ा लगे न, फिर बड़ा हुआ तो ऐसे वे प्रदेश भी चौड़े हों। समझ में आया ? यह संकोच-विकास की उसकी एक समय की पर्याय में उसकी योग्यता है। पर्याय में, हों! इससे नामकर्म का निमित्त है, उसके कारण संकोच-विकास होता है, ऐसा यहाँ कहा गया है। आहाहा!

मुक्त अवस्था में हानि-वृद्धि का कारण जो नामकर्म उसका अभाव होने से... आत्मा की शुद्ध दशा, जैसा उसका स्वभाव परमानन्द और शुद्ध है, ऐसी दशा को प्राप्त हुआ, शक्ति में शुद्धता और आनन्द था, वह अन्तर अनुभव और एकाग्र द्वारा वर्तमान दशा में पूर्ण आनन्द और शान्ति और पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ, उसका नाम मुक्ति। उस मुक्त दाा में उसका आकार, **नामकर्म उसका अभाव होने से जीव के प्रदेश न तो सिकुड़ते हैं, न फैलते हैं,...** वहाँ वे प्रदेश जितने असंख्य प्रदेश ऐसे के ऐसे हैं, ऐसे के ऐसे रहते हैं। अन्तिम शरीर के प्रमाण में। **किन्तु चरमशरीर से कुछ कम पुरुषाकार ही रहते हैं,...** अन्तिम शरीर हो, उससे जरा सा भाग यह सिर का भाग है न यह, इतना कम हो जाये। नीचे पैर के भाग में चमड़ी का भाग अमुक हो और ऊपर उतना कम हो जाये। तत्प्रमाण शरीर देह छूट गयी हो तो... समझ में आया ? शक्कर की पुतली हो शक्कर की पुतली, उसका साँचा हो न लकड़ी का ऐसा साँचा डाला हो और फिर जम गयी पुतली, लकड़ी निकाल डाले तत्प्रमाण पुतली रह जाये। उसी प्रकार यह शक्कर—आनन्द की पुतली आत्मा है। वह शक्कर अर्थात् मिठास और धोळा अर्थात् सफेद। उसी प्रकार आत्मा

श्वेत अर्थात् शुद्ध और आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय सुख की मूर्ति कातली आत्मा है। देह प्रमाण मूर्ति है। यह शरीर यह साँचा है ऊपर, हड्डियों का साँचा। समझ में आया? यह साँचा जैसे निकल जाये उसमें से (तो) मूर्ति ऐसे रहे श्वेत-मीठी। वह फिर संकोच-विकास न हो उसका। समझ में आया? लकड़ी के साँचा में शक्कर डाले तो पहले जरा सा ऐसे भीना हो भीना, वहाँ तक चौड़ा हो, फिर सूखा हो तो संकोच हो जाये इतना जरा सा। बस, ऐसा का ऐसा रहे। समझ में आया?

इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दकन्द ज्ञान का घन परमात्मा स्वयं। वह जब देहरहित हुआ, तब घन जैसा उसका अरूपी घन जो आकृति शरीरप्रमाण थी, उससे कुछ न्यून ऐसे का ऐसा रह जाये। वह अनन्त काल ऐसा रहे सिद्ध में। समझ में आया? गहने के आकार, शरीर के आकार, मकान के आकार की सब खबर उसे, लो। किस आकार में खिड़की की है और किस आकार में वस्त्र सिले हैं और किस आकार में यह क्या? लटकते तोरण, सब उसे खबर (होती है)। यहाँ यह हुआ, नारियल में यह आकार।... तेरा आकार कितना है, यह तुझे खबर है? यह विचार ही इसने कभी नहीं किया। यह मैं वह कौन हूँ? कहाँ हूँ? कितना हूँ? और किस आकार में हूँ? समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द की आत्मा को स्वयं को प्राप्ति हुई, पूर्ण शुद्धता प्रगट हुई। अन्तिम शरीरप्रमाण देह छूट गयी। पूतली रह गयी ऐसा का ऐसा आत्मा आनन्दमूर्ति ऐसी की ऐसी। बस, ऐसे ही आकार में अनन्त काल रहे। सिद्ध में ऐसे आकार में अनन्त काल रहे। समझ में आया? **इसलिए शरीरप्रमाण हैं, यह निश्चय हुआ।** वह वास्तव में बात कहने में आयी।

यहाँ कोई प्रश्न करे,... प्रश्न हुआ, देखो! **कि जब तक दीपक के आवरण है,...** यह दीपक है न दीपक? ऊपर बर्तन ढँका हो, दीपक को बर्तन ढँका हो। **तब तक तो प्रकाश नहीं हो सकता,...** तब तक तो प्रकाश बाहर न आवे, ऐसा ढँका हुआ हो तो। **और जब उसके रोकनेवाले का अभाव हुआ,...** ऊपर से ले लिया, तपेली ढँकी हुई हो और तपेला ऐसा ले लिया। **तब प्रकाश विस्तृत होकर फैल जाता है,...** दीपक का प्रकाश ऐसे पूरे कमरे में फैल जाता है, सबमें फैल जाता है। समझ में आया? **उसी प्रकार मुक्त अवस्था में आवरण का अभाव होने से...** आत्मा की मुक्तदशा हो गयी,

उसको जैसे आवरण गया। दीपक के ऊपर का बर्तन गया तो प्रकाश ऐसे फैला। उसी प्रकार मुक्त अवस्था में आवरण के अभाव से **आत्मा के प्रदेश लोक-प्रमाण फैलने चाहिए,...** जमुभाई! आत्मा असंख्य प्रदेश का घन, जब आवरण गया, दीपक को आवरण हो तो ऊपर ढक्कन हो, तब तो प्रकाश बाहर दिखाई न दे। परन्तु ढक्कन ले तो प्रकाश फैलता है या नहीं पूरे मकान प्रमाण? इसी प्रकार आत्मा यहाँ आवरण हो, तब तो इतने में भले रहे परन्तु आवरण गया तो असंख्य प्रदेश ऐसे लोकप्रमाण फैलना चाहिए न! पूरे लोकप्रमाण विस्तार पाना चाहिए या नहीं? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। **शरीर-प्रमाण ही क्यों रह गये?**

उसका समाधान यह है,... जहाँ मुक्तदशा परमात्मा आत्मा की हुई, तब शरीरप्रमाण कैसे रहा? बाहर विस्तार पाना था न। दीपक को आवरण न हो और दीपक विस्तार पाता है प्रकाश। इसका प्रकाश लोकप्रमाण क्यों नहीं हो गया? बात समझ में आयी? देखो, यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह आत्मा (किसी ने देखा नहीं)। और यहाँ दिखता है न। यह आत्मा में ऐसी एकाग्रता करे, तब उसे कुछ दिखता है कि यह यहाँ एकाग्रता करे? ऐसे एकाग्रता करे। कारण कि, जितने क्षेत्र में है, उतने क्षेत्र में वह एकाग्रता करे तो वहाँ उसका लक्ष्य आत्मा के ऊपर जाये। शरीरप्रमाण आत्मा है। ज्ञान, दर्शन आदि प्रगट करने में अन्तर एकाग्रता होती है न ऐसे? या ऐसे बाहर में ऐसा लक्ष्य करे तो ज्ञान प्रगट होता है?

मुमुक्षु : बाहर में....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में कहाँ है? स्वयं इतने में ही है यहाँ। शरीरप्रमाण, शरीर से भिन्न चिद्घन, ज्ञानघन आत्मा इतने प्रमाण में है। आकार में इतने प्रमाण में और पूरे गुण भी इतने प्रमाण में। आकार में फेरफार होता है। गुणों में—पर्याय में हीनाधिक हो, वह बात अभी नहीं। यहाँ आकार में फेरफार हो तो कर्म के निमित्त से था, ऐसा कहे। योग्यता उसकी। आवरण गया तो फिर किसलिए वे असंख्य प्रदेश ऐसे लोकप्रमाण फैलना नहीं चाहिए? दीपक की भाँति। समझ में आया?

उसका समाधान यह है कि दीपक के प्रकाश का जो विस्तार है, वह स्वभाव से होता है, पर से नहीं उत्पन्न हुआ,... दीपक तो अपने स्वभाव से प्रकाशमय है पहले

से। वह कहीं पर से प्रकाश फैला नहीं, अपना स्वभाव ही है। **पीछे भाजन आदि से अथवा दूसरे आवरण से आच्छादन किया गया,...** बर्तन ढँका या मकान की दीवारें आड़े आ गयी, दीपक हो और दीवार (आड़े आयी) तो बाहर विस्तरे नहीं। **तब यह प्रकाश संकोच को प्राप्त हो जाता है,...** तब दीपक का प्रकाश बाहर नहीं जाता। यह बाहर दीवार आड़े आयी या बर्तन आया। समझ में आया?

जब आवरण का अभाव होता है, तब प्रकाश विस्ताररूप हो जाता है,... दरवाजे खोल दिये या ऊपर ढक्कन खोल दिया (तो) प्रकाश फैल जाता है। वह तो पहले से उसका प्रकाश स्वभाव था। उसका स्वभाव संकोचरूप पहले से था, ऐसा नहीं। फैला हुआ ही था स्वभाव। समझ में आया? **इसमें सन्देह नहीं और जीव का प्रकाश अनादि काल से कर्मों से ढंका हुआ है,...** कभी अनादि काल से उसके असंख्य प्रदेश लोकप्रमाण फैले थे, ऐसा कभी था नहीं। लोकप्रमाण है उसके प्रदेश की संख्या। परन्तु वह पूरे लोकप्रमाण पहले से विस्तार था और बाद में ढंके हैं, ऐसा नहीं। दीपक की भाँति नहीं, दीपक का प्रकाश तो ऐसे विस्तार है, फिर ढँका तब कम में हुआ, संकोच हुआ और उघाड़ा तब विस्तार पाया। उसी प्रकार आत्मा असंख्य प्रदेश पहले से लोकप्रमाण था और फिर संकुचित हुआ है, ऐसा नहीं। न्याय समझ में आता है इसमें?

मुमुक्षु : संकोच-विकास कहनेमात्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संकोच-विकास है यहाँ, कहनेमात्र हो? यहाँ पर्याय में, पर्याय अर्थात् अवस्था में संकोच-विकास है, परन्तु असंख्य प्रदेश का ऐसे लोकप्रमाण विस्तार था और वह संकोच हुआ, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ कहते हैं। विस्तार का अर्थ, यहाँ पूरे लोकप्रमाण (होता है), ऐसा नहीं। निगोद के शरीरप्रमाण संकोच और हजार योजन के मच्छ प्रमाण विस्तार, इतना संकोच-विस्तार—ऐसा यहाँ कहना है। क्या कहा? संकोच अर्थात् निगोद के शरीरप्रमाण जीव रहा और विस्तार अर्थात् लोकप्रमाण, ऐसा नहीं। संकोच-विस्तार उसका पर्याय में आकृति में इतना अनादि का है कि निगोद के शरीर में जाये तो इतने में व्यापे, महामच्छ में जाये तो इतना व्यापे। परन्तु वह असंख्य प्रदेश ऐसे विस्तार लोकप्रमाण थे, ऐसा उसका स्वभाव कभी प्रगट हुआ है ही नहीं।

जीव का प्रकाश अनादि काल से कर्मों से ढंका हुआ है,... कर्म अर्थात् निमित्त

से बात की है, हों! उसके प्रदेश का लोकप्रमाण व्यापना अनादि से नहीं। **पहले कभी विस्ताररूप नहीं हुआ।** पहले असंख्य प्रदेश में लोकप्रमाण थे और फिर निगोद के शरीरप्रमाण हुए, ऐसा नहीं। संसार में संकोच-विस्तार तो शरीरप्रमाण था, छोटा शरीर तो छोटा संकोच, बड़ा शरीर तो बड़ा (विकास)। देखो! हाथ होते हैं न कितनों के ऐसे पतले इन लड़कों के छोटे, देखो, हो जाते हैं न उसे बाल लकवा, पैर का बाल लकवा नहीं होता? पहले दोनों पैर समान भी हों, परन्तु उसमें एक पैर ऐसा हो जाये। पतला-पतला सब (लगे)। आत्मा के प्रदेश इतने प्रमाण में ही चौड़े हैं वहाँ, इस ओर इतने जाड़े पैर में जाड़े प्रमाण और पतले पैर में पतले प्रमाण। समझ में आया? यह नहीं बालक को लकवा होता है? होता है न। उसी प्रकार यह क्षय दूसरा क्या। क्षय का दृष्टान्त दिया न। ऐसी ऐसे अँगुली हो बड़ी। सर्वत्र प्रदेश हैं आत्मा के। देखो! यहाँ सर्वत्र है या नहीं? परन्तु ऐसे संकोच पाकर ऐसी पतली हो जाये तो वे उसके प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं अन्दर। समझ में आया?

अरे! यह और गजब। खेत की बातें करे, मकान की बातें करे, तो यह आत्मा की बातें। देखो! यह मलूकचन्दभाई, लो! बड़ा शरीर है या नहीं? उसके प्रमाण में आत्मा के प्रदेश चौड़े हैं या नहीं? और एक ओर यह लो! लो ठीक। उसका शरीर देखो तो इतना पसलियों जैसा। उसमें उसके प्रमाण में प्रदेश व्याप्त हैं। यह देखो तो उससे डबल, कितने गुना जाड़ा होगा।

मुमुक्षु : उसमें प्रदेश अधिक और इसमें प्रदेश कम।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश समान। समझ में आया? जाजम होती है न जाजम पूरे उसके प्रमाण में, उस जाजम को चौड़ी करे तो पूरे उसके प्रमाण में समाये और ऐसे इकट्ठी करे तो इतने में रहे, परन्तु कहीं वह जाजम बढ़ नहीं जाती। उसके प्रदेश ऐसे आ गये हैं, उसके ऐसे हो गये हैं। कहो, बराबर है या नहीं?

यह तुम्हारे और दोनों के, लो! डबल होंगे। कितना होगा? ८५ होगा? कितना है? ८१। इतना भी नहीं, कहो। इसके कितने गुणा होंगे? दो सौ? पाँच मण। यहाँ ८१। दो मण। यह दो मण, यहाँ पाँच मण, ढाई गुणा है। इस शरीर का ढाई गुणा है, परन्तु उसके आत्मा के प्रदेश तो उसी प्रमाण में ऐसे व्याप्त इतने शरीर में... उसके प्रमाण में

व्याप्त हैं। प्रदेश तो उस प्रमाण में संकोच और विकास हुए हैं। छूट गया, मुक्तदशा हो तब अन्तिम शरीर प्रमाण ऐसे के ऐसे रहते हैं। वे असंख्य प्रदेश कभी विस्तार पाये थे पहले और फिर संकोच पाये और आवरण जाने के बाद विस्तार पावे, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

शरीर-प्रमाण ही संकोचरूप और विस्ताररूप हुआ,... देखो! ओहोहो! एक अंगुल का असंख्यवाँ भाग, उसमें असंख्य तो निगोद के शरीर हैं। यह काई, आलू, शक्करकन्द एक इतने में एक शरीर में अनन्त जीव हैं। एक-एक जीव अंगुल के असंख्यवें भाग में व्याप्त है, है प्रदेश सबके समान। सब जीवों के प्रदेश समान, परन्तु वह संकोच में इतने में आ गया। बाहर निकले, जहाँ मरकर मछली हो, वहाँ के परिणाम में मच्छ हो तो हजार योजन में प्रदेश व्यापे। प्रदेश बढ़े-घटे नहीं, उसके ऐसे चौड़ाई और संकोच में फेरफार हुआ है। चैन का मकोड़ा कहा न? उस चैन के मकोड़े सोना के। हजार मकोड़ा की हो। वह छोटी-बड़ी नहीं। वह तो छोटे में डाले तो अधिक लपेटा और बड़े में डाले तो थोड़े लपेटा। बड़े शरीर में तो चौड़े प्रदेश हुए हैं, छोटे शरीर में संकोच (हुए हैं)। ऐसा ही उसका अनादि असंख्यप्रदेशी स्वरूप है। आहाहा!

इसलिए जीव के प्रदेशों का प्रकाश संकोच विस्ताररूप शरीरनामकर्म से उत्पन्न हुआ है,... वह कहीं पहले विस्तार था और फिर संकोच हुआ, ऐसा नहीं। वह नामकर्म का निमित्त और संकोच की पर्याय अनादि से ऐसी है। और विस्तार हो तो वह वहाँ उसकी अपनी योग्यता से वहाँ होता है। विस्तार पूरे लोकप्रमाण की बात नहीं, हजार योजन के प्रमाण की। और लोकप्रमाण समुद्घात होता है केवलज्ञानी, वे भी असंख्य प्रदेश लोकप्रमाण होते हैं, परन्तु अभी कर्मसहित है। समझ में आया? वे वापस अपने प्रदेश संकुचित होकर यहाँ शरीरप्रमाण रहे, पूर्ण दशा हो गयी... वह शरीरप्रमाण आत्मा वहाँ मुक्तदशा में ऊर्ध्वलोक में रहता है। दृष्टान्त देते हैं।

इस कारण सूखी मिट्टी के बर्तन की तरह... यह मिट्टी का बर्तन होता है न गीला नया बनाया हुआ कुम्हार का, मिट्टी के पिण्ड का बर्तन। परन्तु जब तक उसमें गीलापन है गीलापन, तब तक गीलापन है तो पहले ऐसे दल फीका हो, फिर सूखे, सूखता जाये वह। समझ में आया? यह कड़ाही है, यह ... यह सब मिट्टी के बनाते हैं या नहीं? जब

तक उसमें गीलापन हो पानी का, तब तक उसका ऐसे जरा जाड़ा दिखाई दे। वह पानी सूख जाये तो संकोच दिखाई दे। इस सूखी मिट्टी के बर्तन में सूख हुआ पानी रहित, फिर उसे संकोच-विकास नहीं होता। वह तो फिर इतना का इतना बर्तन रहे। समझ में आया?

कारण के अभाव से... कारण कौन? वह लीलप, गीला, गीलापन। मिट्टी में गीलेपन की भीनाश का अभाव। **संकोच-विस्ताररूप नहीं होता, शरीरप्रमाण ही रहता है,...** इसी प्रकार आत्मा कर्म का निमित्त है, तब तक संकोच-विस्तार की पर्याय की योग्यता से होता है। कर्म हट गया, जैसे मिट्टी में से गीलापन गया तो बर्तन ऐसा का ऐसा रहता है। इसी प्रकार कर्म का निमित्त गया तो आत्मा ऐसा का ऐसा असंख्य प्रदेशी रहता है। **अर्थात् जब तक मिट्टी का बर्तन जल से गीला रहता है,...** गीला-भीना। **तब तक जल के सम्बन्ध से वह घट बढ़ जाता है,...** लो! समझ में आया?

और जब जल का अभाव हुआ, तब बर्तन सूख जाने से घटता-बढ़ता नहीं है... पानी निकल गया तो पानी का बर्तन ऐसा ही रहता है, घटता-बढ़ता नहीं। **उसी तरह इस जीव के जब तक नामकर्म का सम्बन्ध है, तब तक संसार-अवस्था में शरीर की हानि-वृद्धि होती है,...** देखो, यह वापस कोई ऐसा कहे, देखो यह कर्म के कारण हुआ, देखो, कर्म के कारण हुआ। ऐसा सिद्ध नहीं करना, उसकी पर्याय जब तक कर्म के निमित्त में है, तब उसे संकोच-विकास होने का स्वयं का पर्याय का धर्म है। द्रव्यस्वभाव धर्म नहीं, इसलिए वहाँ कर्म के कारण कहा गया है। समझ में आया? किसी परद्रव्य के कारण परद्रव्य में कुछ हो, यह बात तीनों काल में है नहीं। ओहोहो!

संसार-अवस्था में शरीर की हानि-वृद्धि होती है, उसकी हानि-वृद्धि से प्रदेश सिकुड़ते हैं और फैलते हैं। सिकुड़ते-फैलते हैं। 'प्रदेश संकोच' का अर्थ जरा सूक्ष्म है, हों! प्रदेश स्वयं एक है, वह संकोच-विकास नहीं होता। अधिक प्रदेश में ऐसे आ जाते हैं और ऐसे फैलते हैं। समझ में आया?

इस कारण शरीर के न होने से प्रदेशों का संकोच-विस्तार नहीं होता, सदा एक से ही रहते हैं। जिस शरीर से मुक्त हुआ, उसी प्रमाण का कुछ कम रहता है। दीपक का प्रकाश तो स्वभाव से उत्पन्न है,... स्वभाव से दीपक का प्रकाश पहले से ही

है। **इससे आवरण से आच्छादित हो जाता है।** आवरण आया, ढक्कन (आया)। **जब आवरण दूर हो जाता है, आच्छादित हो जाता है। जब आवरण दूर हो जाता है, तब प्रकाश सहज ही विस्तरता है। यहाँ तात्पर्य है कि जो शुद्ध बुद्ध ज्ञानस्वभाव परमात्मा...** ओहो! शुद्ध स्वरूप, बुद्ध—ज्ञान का पिण्ड प्रभु। जो परमात्मा **मुक्ति में तिष्ठ रहा है, वैसा ही शरीर में भी विराज रहा है।** आत्मा जैसे मुक्ति में विराजता है परमात्मा, ऐसा ही आत्मा शरीर में विराजता है। समझ में आया? परम आनन्द और परम ज्ञान की मूर्ति शरीर की आकृति प्रमाण भले पर्याय हो, परन्तु उसका स्वभाव शुद्ध और परमानन्द यहाँ विराजमान है, ऐसा ही है आत्मा। ऐसे स्वभाव का भान करके उसकी ओर का ध्यान करना, वह आत्मा को शान्ति और मुक्ति का उपाय है।

आत्मा की बात बहुत घट गयी, घट (गयी)। बाहर की थोथा की बात रह गयी। धर्म के नाम से भी क्रिया यह और यह। परन्तु कौन है वह, क्या है वह, कैसे प्राप्त हो और कैसे वह संकोच और हीन दशा को पाया है अथवा आकार में संकोचपने को पाया है, क्या है यह? यह उसकी यह खबर कराते हैं। समझ में आया? भगवान शुद्ध है और बुद्ध है। आत्मा पवित्र है और पवित्र है परन्तु है क्या पवित्र? कि ज्ञान का प्रभु पिण्ड पुंज है। शरीरप्रमाण ज्ञान का बड़ा सूर्य है। ऐसा शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा अन्तर्मुख दृष्टि करके वह आदरणीय है। समझ में आया?

जैसे शुद्ध-बुद्ध भगवान सिद्धपद में विराजते हैं, सिद्ध—सिद्ध भगवान, वैसा शरीर में विराज रहा है। उसकी पर्याय में जरा मलिनता है, उसे न देखो तो वस्तुस्वरूप तो शुद्ध बुद्ध ज्ञानघन है। अकेला ज्ञान और आनन्द का दल है। दल, दल। यह दल के लड्डू नहीं होते? ऐसे ज्ञान और आनन्द का दल है। परन्तु अरूपी? अरूपी भी वस्तु है या नहीं? समझ में आया? उसे रूप, यह रंग, गन्ध, रस, स्पर्श यह नहीं उसमें, परन्तु उसमें अनन्त गुण शान्ति, दर्शन, आनन्द आदि ऐसी अनन्त शक्तियों का संग्रह पिण्ड वह भगवान आत्मा अपना है। आहाहा! समझ में आया? वह इस शरीर में ऐसा ही विराज रहा है, फेरफार नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, दो बार क्या कहा? बुद्ध अर्थात् ज्ञान कहा था

अन्दर। ध्यान रखो तो सब अर्थ अन्दर साथ ही आ जाते हैं। जेचन्दभाई! इतना ध्यान का बेखबर हो गया। शुद्ध अर्थात् पवित्र और बुद्ध अर्थात् ज्ञान, ऐसा कहा था। देखो! इसमें भी अर्थ है, देखो! बुद्ध अर्थात् ज्ञान। इसमें अर्थ है। ज्ञान जानना... जानना... जानना... जानना... वह पवित्र स्वरूप वह आत्मा है। जिसकी सत्ता में... कहो, जमुभाई! कहते थे कि, यह दिखता नहीं। दिखता नहीं क्या? जिसकी सत्ता में यह दिखता है, वह सत्ता दिखती है इस ज्ञान में। अरे! क्या कहा? जिसकी प्रथम अस्ति जहाँ ज्ञान की न हो तो 'यह है' ऐसा किसने जाना? किसकी सत्ता में जाना? इस जड़ की सत्ता में जाना? जड़ सत्ता द्वारा जाना? ज्ञान की सत्ता में जाना, ज्ञान सत्ता द्वारा जाना। कभी निवृत्त हुआ नहीं न परन्तु यह। अपनी पहिचान, पहिचान करने को निवृत्ति नहीं मिलती। बाहर के कारण से निवृत्त हो तब न। मर गया ऐसा का ऐसा अनन्त काल से। समझ में आया?

दिखता है अर्थात्? आँख से कहाँ देखना है? आँख तो यह जड़ है। आँख को जाननेवाला कौन है? यह आँख है, ऐसा निर्णय किसने किया? ज्ञान ने या आँख ने? यह तो मिट्टी कोडा जड़ है, धूल काला और सफेद। ज्ञान की सत्ता में—अस्तित्व में आँख है, ऐसा ज्ञात होता है। जिसमें आँख नहीं, परन्तु जिसमें आँख सम्बन्धी का, अपने सम्बन्धी का ज्ञान है। समझ में आया? ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या है यह। यह तो सब साधारण बात है। अभी यह कुछ बहुत ऐसी नहीं। कल जरा सूक्ष्म थी और रात्रि की और बहुत सूक्ष्म थी। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कि जो शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव परमात्मा मुक्ति में तिष्ठ रहा है, वैसा ही शरीर में भी विराज रहा है। ऐसा ही भगवान आत्मा है न, अस्ति है न, वस्तु है न, अस्तिवाला सत् है न। वह सत् भगवान अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान आनन्द... वह पर को जानते हुए स्वयं प्रसिद्ध होता है।

मुमुक्षु : स्वयं प्रसिद्ध होता है, पर नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर नहीं। समझ में आया? यह शरीर है, ऐसा जो जाना, वह जाननेवाला प्रसिद्ध होता है या शरीर प्रसिद्ध होता है? अरे! भगवान कभी भी मांडी ही नहीं न अपनी, ऐसे का ऐसा माथापच्ची कर-करके तेली के बैल की भाँति राग-द्वेष, पर यह किया, और मर गया हैरान हो-होकर। यह शरीर है, उसमें प्रसिद्धि किसकी हुई?

ज्ञान की प्रसिद्धि हुई। ज्ञान ने जाना कि यह शरीर। प्रसिद्ध ज्ञान करता है। वह ज्ञान प्रसिद्धि में दो प्रकार की प्रसिद्धि आती है। वह ज्ञान हूँ, यह प्रसिद्धि हुई और ज्ञान ने यह शरीर जाना, यह शरीर, (तो) शरीर की प्रसिद्धि—देह सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ प्रसिद्ध होता है। समझ में आया? कठिन भाई यह!

देखो! यह नौ बजते हैं। ऐसा ज्ञान ने जाना है या नहीं? तो ज्ञान की अस्ति की प्रसिद्धि हुई न कि जिसमें यह ज्ञात हुआ। वह ज्ञात नहीं हुआ, ज्ञात हुआ है ज्ञान। ज्ञान जानता है, उसमें प्रसिद्धि दो प्रकार की हुई। ज्ञानवाला तत्त्व हूँ, ऐसी प्रसिद्धि हुई और यह एक चीज़ है, यहाँ ज्ञात होती है तो यह एक चीज़ है, उसकी भी प्रसिद्धि पर में हुई। स्व और पर की प्रसिद्धि करनेवाला ज्ञान है। समझ में आया? यह तो साधारण बात है, उसमें कहीं बड़े भंग-भेद सीखना पड़े, ऐसा नहीं। इसने भी कभी (दरकार की ही नहीं)।

मुमुक्षु : भंग-भेद तो तुरन्त याद रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके भंग-भेद? संसार के न? बोरी के या फलाना के, चावल के, दाल के और ढींकणा के। महासुख वहाँ रहता है और त्र्म्बक यहाँ रहता है, वह वहाँ रहता है। तीनों की कितनी आमदनी करते हैं, वह सब याद रहता है। परन्तु यह क्या करते हैं आमदनी में? कहीं आमदनी जाती है? या नुकसान खाते जाता है आत्मा का धन्धा? आहाहा!

भगवान शरीर में विराजमान है। देखो! यह सिद्ध भगवान है, ऐसा किसने जाना यहाँ? यह ज्ञान की प्रसिद्धि है। ऐसा एक ज्ञान है आत्मा का, वह आत्मा, वह 'मैं हूँ' सिद्ध का जाननेवाला, ऐसी मेरी सत्ता की प्रसिद्धि (होती है) और एक सिद्ध दूसरे हैं, ऐसी सत्ता की प्रसिद्धि ज्ञान अपने स्व-परप्रकाश से प्रसिद्धि करता है। समझ में आया? मोक्ष में आता है, नहीं? बन्ध अधिकार में, नहीं? यह राग है वह ज्ञान प्रसिद्धि पाता है, राग का नहीं। ज्ञान ज्ञानपने की प्रसिद्धि (करता है कि) मैं ज्ञान हूँ—ऐसा प्रसिद्ध होता है। वह जब राग हुआ, वह राग प्रसिद्धि पाता नहीं, राग का ज्ञान यहाँ हुआ, वह ज्ञान का ज्ञान और राग का ज्ञान, ऐसा ज्ञान प्रसिद्धरूप से पाता है। अज्ञानी को ऐसा भास होता है

कि राग प्रसिद्धरूप से पाता है। तब यहाँ ज्ञान और राग का ज्ञान, ऐसे प्रसिद्धपने पाता है। कठिन, भाई!

वैसा ही शरीर में भी विराज रहा है। लो! जैसे भगवान मुफ्त में 'णमो सिद्धाणं' वे भगवान विराजते हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' यह वस्तु स्वयं यह देह, हड्डियों को तो जानता है, जाननेवाला देह हड्डियोंरूप हुआ नहीं। समझ में आया? परन्तु उसका द्विरूप प्रसिद्ध करता है आत्मा। मैं हूँ, यह है—उसका ज्ञान डबल ज्ञान प्रसिद्ध करता है आत्मा। भारी सूक्ष्म, भाई! **जब राग का अभाव होता है,...** देखो! अब क्या कहते हैं? है तो यहाँ यह, परन्तु नजर में कब आवे? ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के राग (में) अटका हुआ ज्ञान, वह राग को देखता है, परन्तु मैं कौन हूँ और उसका जाननेवाला कौन—उसे देखता नहीं। जब यह आत्मा राग का अभाव, अर्थात् विकल्प जो पुण्य-पाप के हैं कि जो ज्ञान उन्हें जानता है, वह राग से पृथक् होकर यह आत्मा ज्ञानमूर्ति है, ऐसा जाने तब वह आत्मा रागरहित पर्याय काल में वह आत्मा उपादेय गिनने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

जब राग का अभाव होता है, उस काल में... देखो! है न? उस समय है न? समझ में आया? '**रागादि रहित काले**' ऐसा है, देखो! क्या कहते हैं? है तो ऐसा सिद्ध जैसा। शरीर प्रमाण, शरीर से भिन्न, आकार शरीरप्रमाण, भाव शरीर से भिन्न, सामर्थ्य भिन्न। वह भाव कब भासन हो इस वस्तु का? वह पुण्य-पाप के राग में एकत्व जो है, उसके विकल्प में से हटकर अर्थात् वर्तमान राग की वृत्ति उठती है, उसमें से हटकर यह ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द हूँ, ऐसे अन्तर में रागरहित श्रद्धा, ज्ञान की पर्याय से वह आत्मा दिखता है, आत्मा उपादेय ज्ञात होता है। आहाहा!

उपादेय समझ में आया? आदरणीय। ऐसे अनादि से पुण्य के पाप के भाव आदरणीय माने हैं और यह बाहर का माना है, वह कहीं आदरणीय हो नहीं जाता। यह शरीर, स्त्री, पुत्र, यह... यह... यह... मुझे आदरनेयोग्य है। आदरनेयोग्य तो भी इसके हुए नहीं। यह राग-द्वेष आदरनेयोग्य, वे इसकी पर्याय में एकाकार हुए हैं, वस्तु में हुए नहीं। क्या कहा, समझ में आया? भगवान चैतन्य भगवान आत्मा जाननेवाला, जिसकी आँखें जानना, उस स्वरूप परमात्मा स्वयं। यह शरीर स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, पैसा वे

मेरे, ऐसा इसने माना भले हो, परन्तु वे इसके पास आये नहीं और इसके होते नहीं। एक समय भी इसके हुए नहीं। अब इसके हुए हैं क्या? पर्याय में राग और द्वेष, पुण्य और पाप, विकार वह क्षणिक विकाररहित चीज़ है, ऐसी दृष्टि नहीं, इसलिए एक समय की दशा में 'यह विकार मेरे' ऐसी एक समय की विकार की एकताबुद्धि उनमें हुई है। समझ में आया?

मुमुक्षु : विकार की एकताबुद्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा, क्या कहा यह? शरीर-बरीर हुआ नहीं, चिल्लाहट मचाये तो भी। इस शरीर के प्रति द्वेष करके द्वेष में एकत्व हुआ है ज्ञान, एक समय जितना। वस्तु नहीं। यह शरीर तो एक समय भी इसके साथ एक हुआ नहीं। क्या कहा? यह तो मिट्टी जड़ है, वह तो अरूपी भगवान रूपरहित चीज़ है। यह शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, पैसा, बँगला यह सब बाहर... मकान अर्थात् हजीरा। समझ में आया? वे सब पर हैं। वे तो एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा के साथ एक हुए ही नहीं। वह मूढ़ भी... इसलिए (कहते) हैं। समझ में आया? परन्तु राग और द्वेष वे मेरे, ऐसा मिथ्या भाव और अनुकूल का राग और प्रतिकूल का द्वेष, वे विकारी वृत्तियाँ जो होती हैं क्षणिक, उन्हें त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के साथ तो सम्बन्ध नहीं। परन्तु एक समय की दशा में एकपने माना है, इस मान्यता से एकत्व हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... सुहाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुहाता है इसे, सुहाया है न अनादि का। उठना न हो न, तो जागता हो तो भी हुँकार न दे। ऐसा होगा या नहीं? ऐई! उठना न हो न नींद में से, आँख तो भले ऊँची न करे परन्तु सुने ... उठ। सुनता अवश्य है, उसे उठना नहीं, खाट में से उठना नहीं। समझ में आया? होते हैं न कितने ही आलसी लड़के सात, आठ बजे तक सोवे, आठ बजे तक, लो! निश्चिन्तता से पड़े रहे। आवाज आवे कान में, परन्तु जवाब किसलिए दे? जवाब दे तो उठ झट, ऐसा कहे। उसी प्रकार यह उठता ही नहीं, उसे आवाज लगाये तो भी ऊंघता है। आहाहा!

अरे! जाग रे जाग तू चैतन्यसूर्य प्रभु है, भाई! यह पुण्य-पाप के राग में एकत्व

किया, वह तेरे स्वभाव में एकत्व कभी हुआ नहीं। एक समय, एक समय—एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग। उसमें तूने माना है, मान्यता द्वारा खड़ी की है उठाईगीर ने। आहाहा! यह राग की एकत्वबुद्धि को क्षणभर उसकी ओर से हटकर, यह चैतन्य अन्दर में रागरहित दृष्टि के काल में वह आत्मा उपादेय है। समझ में आया? यह आत्मा, वह राग (रूप हुआ नहीं)। क्योंकि वस्तु आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका स्वभाव (ऐसा है)। वह रागरहित श्रद्धा-ज्ञान करे, उस काल में उसे यह आत्मा एकाकार उसमें हुआ, इसलिए इस अपेक्षा से वह उपादेय और अंगीकार करनेयोग्य हुआ। समझ में आया?

उस काल में यह आत्मा परमात्मा के समान है, वही उपादेय है। देखो! उस समय परमात्मा के समान। परन्तु राग की रुचि छोड़कर यह स्वभाव सन्मुख का का काल करे, तब वह आत्मा परमात्मा के समान आदरणीय हुआ अर्थात् उसमें एकाकार हुआ। इसके बिना आदरणीय उसे (होता नहीं)। लक्ष्य में तो, यह चीज़ क्या है, उस चीज़ की तो दृष्टि हुई नहीं, दृष्टि बिना वह चीज़ क्या, उसे तो आदरणीय माना नहीं। समझ में आया? राग और द्वेष की लागणी / वृत्ति उठती है, ऐसे विकार के भाव से चैतन्य उपादेय है, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि राग वह उसके स्वरूप में नहीं। यह परमात्मस्वरूप है आत्मा। तो आत्मा परमात्मस्वरूप, वह राग और पुण्य के विकल्पों का प्रेम छोड़कर यह रागरहित दृष्टि करे, रागरहित ज्ञान करे, उस काल में आत्मा परमात्म-समान अंगीकार करनेयोग्य होता है। समझ में आया? वापस यह सार लिया इसका।

मुमुक्षु : किसी प्रकार से बैठता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे बैठाना चाहिए या कोई बैठा दे, ऐसा है? इसने विपरीतता की है, वह विपरीतता इसे छोड़ने की है। जिसने विपरीतता की, वह छोड़े; दूसरा कौन छोड़े? दूसरे ने उसकी की, वह उसे छोड़े, इसकी इसने की तो यह छोड़े। आहाहा! अरे!

अन्त में यह आया, हों! '**शुद्धबुद्धस्वभावः परमात्मा तिष्ठति**' समझ में आया? '**तत्सदृशो रागादिरहितकले**'। स्व-शुद्धात्मा भगवान आत्मा जो शरीर और वाणी से एक तो कभी हुआ नहीं। परन्तु शुभ-अशुभ विकल्प की कृत्रिमता, विकार, उसे यह स्वभाव

सन्मुख का आदर नहीं था, इसलिए उसके साथ एकता हुई। कहीं तो इसका अस्तित्व इसे स्वीकार करना चाहिए। इसलिए यह चैतन्यप्रकाश रागरहित जिस दृष्टि से देखना चाहिए, उस प्रकार से नहीं तो फिर उससे विरुद्ध जो पुण्य-पाप के भाव, उनमें एकाकार होकर, वही आत्मा है, ऐसा इसने माना।

वह आत्मा इसे उपादेय कब हो? यह पुण्य-पाप की वृत्तियाँ उठती हैं, इनसे हटकर-विमुख होकर स्वसन्मुख जाये, उस पहलू को रागरहित दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया? वह रागरहित... समझ में आया? काल में—उस काल में क्योंकि यह ऐसे जब दृष्टि गयी, तब उस काल में यह आत्मा आदरणीय हुआ। **वही उपादेय है।** उस आत्मा को वही आदरणीय है। बाकी राग, द्वेष, विकल्प आदि आदर करनेयोग्य नहीं। यह वस्तु आदर करनेयोग्य है। ऐसा जो तात्पर्य निकालना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक - २९-१०-१९६५
गाथा - ५५, प्रवचन - ३६

गाथा - ५५

५५वीं गाथा, परमात्मप्रकाश पहला भाग। **आगे (आत्मा) आठ कर्म और अठारह दोषों से रहित हुआ विभाव-भावों कर रहित होने से शून्य कहा जाता है,...** यह चौथा बोल। चार बोल है न? कौनसे चार बोल? धर्मचन्दभाई! क्या याद रहे चार बोल? दोपहर के चार अलग और यह चार अलग, हों! एक तो यह कहा कि, जीव सर्वगत है। इस आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, वह जानना, सब जगत—लोकालोक को जानने का स्वभाव है। इस अपेक्षा से व्यवहार से सर्वगत है, ऐसा कहा जाता है। बाकी है तो अपने असंख्य प्रदेश में रहा हुआ, वह कहीं दूसरे लोकालोक में पसरता और फैलता नहीं। एक बात सर्वगत की ली थी। दूसरी बात। दूसरी कौनसी कही? जड़ कही, जड़। जीव को जड़ कहा। किस प्रकार से? कि आत्मा अपने आनन्दस्वरूप, इस इन्द्रियज्ञान का जो लक्ष्य है, उसे छोड़कर अपने आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप की शान्ति के अन्तर वेदन काल में उसे इन्द्रियज्ञान होता नहीं। इसलिए इन्द्रियज्ञानरहित उसे जड़ कहा जाता है। परन्तु उसके चैतन्य के स्वभाव का ज्ञान का अभाव है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? धर्मचन्दभाई को ऐसा हो जाये कि, यह क्या... ऐसा हो जाये। तुम्हारा बचाव करते हैं, हों! कहो, समझ में आया इसमें? चार बोल यह। वे दोपहर में चार बोल तो कल पूरे हो गये हैं। यह चार बोल दूसरे हैं कि भाई! यह आत्मा है वस्तु महा चिदानन्दस्वरूप अनादि-अनन्त वस्तु पदार्थ है। उसे पर में व्यापे बिना पर का जानना है, इसलिए उसे व्यवहार से सर्वगत कहा जाता है और उसे जड़ भी कहा जाता है। क्योंकि अपने ज्ञान के अन्तर आनन्द में जब स्थिर हो, तब इस इन्द्रियज्ञान की उसे खबर नहीं। इस अपेक्षा से उसे जड़ भी कहा जाता है और केवलज्ञानी को भी इस अपेक्षा से जड़ कहा जाता है। दो बोल (हुए)।

तीसरा, इस शरीर के आकार प्रमाण, ऐसा कहा। शरीरप्रमाण यह आत्मा है। ऐसा कहा न तीसरा। शरीरप्रमाण आत्मा है। उसका आत्मा के आकार का संकोच-विकास होता है, उसमें नामकर्म के सम्बन्ध से यहाँ निगोद के शरीर में जाये, तब आत्मा संकुचित हो जाता है। हजार योजन के मच्छ में जाये, तब विस्तार पाता है। प्रदेश तो असंख्य हैं, वे हैं, परन्तु ऐसे संकोच और विकास उसके प्रदेशों का होता है। और सिद्ध में फिर उनका संकोच है नहीं। अन्तिम देह छूट गया, तत्प्रमाण असंख्य प्रदेश का घन ऐसा आकार रहता है। ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा बताया।

अब यह शून्य कहा है उसे। वह भी कहते हैं शून्य कहा है न? कि, हाँ। किस अपेक्षा से? भगवान आत्मा अभी या सिद्ध में आठ कर्म, विकारी भाव से शून्य है सिद्ध भगवान। इस आत्मा का अन्तर स्वभाव भी, आठ कर्म जड़ मिट्टी और भावकर्म पुण्य-पाप के भाव, उनसे आत्मा का स्वभाव पर-विकार से खाली है। परन्तु अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द स्वभाव से वह भरपूर है। समझ में आया? यह कहेंगे।

५५) अट्ठ वि कम्मइँ बहुविहइँ णवणव दोस वि जेण।
सुद्धहँ एक्कु वि अत्थि णवि सुण्णु वि वुच्चइ तेण॥ ५५॥

यह भगवान आत्मा अन्दर वस्तु है, पदार्थ है, चैतन्य आनन्दघन शरीर प्रमाण आत्मा का आकार और अन्दर स्वभाव का दल चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। वह और सिद्ध भगवान, दो।

अन्वयार्थ :- जिस कारण आठों ही अनेक भेदोंवाले कर्म... है न '**बहुविधानि**' और '**नवनव दोषा**' नौ नौ अर्थात् अठारह। यह दोष है क्षुधा, तृषा आदि है या नहीं? अठारह दोष है न? भगवान को केवली को नहीं। **अठारह ही दोष इनमें से एक भी शुद्धात्माओं के नहीं है,...** यह दोष सिद्ध भगवान को एक भी है नहीं। क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, रोग नहीं, शरीर नहीं, जरा नहीं, बुढ़ापा नहीं, आठ कर्म नहीं।

इसी प्रकार आत्मा भी यह शुद्ध स्वरूप उसका है शक्ति का सत्त्वरूप, उसमें क्षुधा, तृषा आदि का दोष उसके मूल स्वरूप में नहीं। आठ कर्म भी उसके मूल स्वरूप में नहीं। कहो, समझ में आया? **अठारह ही दोष इनमें से एक भी शुद्धात्माओं के नहीं**

है, इसलिए शून्य भी कहा जाता है। इसलिए आत्मा को शून्य भी कहा जाता है। पर के अभाव की अपेक्षा से उसे परपना उसमें नहीं, इसलिए शून्य कहा जाता है। समझ में आया? देखो! जैसे यह अँगुली है, इस अँगुली में इस अँगुली का शून्यपना है। इस अँगुली में यह अँगुली है? इस अँगुली में यह अँगुली है? वरना दो किस प्रकार रहेंगे? उसका इसमें शून्यपना है और इसका इसमें भरपूर अशून्य है। इसका इसमें अस्तिरूप है और उसमें इसका शून्यपना है। समझ में आया? बराबर है या नहीं? यह अँगुली है न, उसमें इस अँगुली का शून्यपना है या इस अँगुली का दोपना इसमें आ गया है? यह अँगुली अँगुलीरूप से भरपूर है। देखो न, यह खून और रजकण के पिण्ड का तत्त्व पूरा उसरूप से भरपूर है, परन्तु उस अँगुली से यह खाली है। इसी प्रकार आत्मा वस्तु स्वरूप अन्दर अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा उसका स्वभाव त्रिकाल ध्रुव शुद्ध, उससे तो वह भरपूर है, परन्तु आठ जड़ कर्म और पुण्य-पाप के विकारी भाव से शून्य है। उनसे खाली है, उनसे खाली न हो तो खाली हो सकता नहीं। किसका?

मुमुक्षु : शून्य का।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शून्य का अर्थ ही यह है। प्रत्येक द्रव्य अपने से अशून्य है, पर से शून्य है। ऐसा पाठ है प्रवचनसार में। क्या? प्रत्येक पदार्थ (कि) आत्मा है, वह अपने से अशून्य है, अशून्य अर्थात् कि उसमें शून्यपना नहीं, स्वभाव है। ज्ञान, दर्शन, यह सत्ता चैतन्य ज्ञान आनन्द जिसमें—जिसके अस्तिपने में जानना-देखना, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, स्वच्छता इत्यादि, उनसे वह अशून्य है, अर्थात् कि भरपूर है और परद्रव्य से वह शून्य है। यदि परद्रव्य उसमें आ जाये तो दो द्रव्य एक हो जाये। उसकी सप्तभंगी है। समझ में आया? तुमने क्रमसर कब कहाँ अभ्यास किया है? कहो, समझ में आया?

वह दृष्टान्त नहीं दिया यह? यह लकड़ी है, लो लकड़ी। यह है या नहीं? वस्तु है या नहीं? इसमें सुगन्ध है। यह है सूखड़ की, तो सूखड़ की सुगन्ध है, कोमलता है, यह आकार है, उसरूप यह अस्ति है, उसरूप यह है, है तो उसके भावरूप से, उसकी शक्तिरूप से, उसकी दशारूप से है। वह अँगुलीरूप से नहीं, अँगुलीरूप से शून्य है, अँगुलीपना उसमें अभाव है। अभाव अर्थात् उसमें शून्य है। पर से शून्य और स्वभाव से भरपूर। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या ? तीनों काल में।

यहाँ तो सिद्ध और आत्मा दो की बात करते हैं। सिद्ध भगवान जो अशरीरी परमात्मा हो गये, जो स्वरूप था अन्दर ज्ञान, दर्शन, आनन्द, उसके अन्तर में प्रवेश करके, एकाकार होकर और शक्ति थी, उसे वर्तमान दशा में प्रगटता परमात्मा हुए। उन सिद्ध को आठ कर्म भी नहीं और पुण्य-पाप का विकार भी नहीं, इसलिए सिद्ध शून्य है। इसी प्रकार यह आत्मा भी अभी, अभी ... समझ में आया ? **शुद्धात्माओं के नहीं है, इसलिए शून्य है।** शुद्धात्मा यह एक शुद्धात्मा है। आहाहा! इसने कभी ... किसी का घर भरा हो, उससे इसका घर खाली, उससे तो खाली है। इसके घर में भरपूर हो, उससे भरपूर है। या दूसरे के घर से यह भरपूर है ? दोनों भाई हों और दो कमरे हों....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब इसके पुत्र के रुपये से इसका नहीं इसे। परन्तु इसके पुत्र का आत्मा भी पैसे से शून्य है।

आत्मा वस्तु है या नहीं ? यह देह के रजकण से (भिन्न) वस्तु जानने के भाववाला, अस्तिवाला तत्त्व जानता है... जानता है... जानता है... जानता है... है, जानता है, है, ऐसा जाने, ऐसा अस्तिवाला पदार्थ है। तो वह जानता है, इतना नहीं। जानता है तो जानना हुआ। यह है, ऐसा अस्तित्व हुआ। श्रद्धा करता है, ऐसी श्रद्धा हुई। उसमें टिकता है, यह जानना उसमें टिकना, यह चारित्र हुआ। जानना, उसे टिका रखना, यह वीर्य हुआ। ऐसे ऐसे, आत्मा अस्तिवाले आत्मा में अनन्त गुण हैं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे से वह अशून्य है, भरपूर भगवान है, वह भरपूर भगवान है। अपनी शक्ति के—स्वभाव के गुण से भरपूर भगवान है और कर्म और शरीर तथा विकार और विभाव से शून्य है। आहाहा! अरे! कहो, मोहनभाई! इस दुःख की दशा से खाली आत्मा है, ऐसा कहते हैं। ऐ जेचन्दभाई! शरीर का रोग, शरीर, आठ कर्म, पुण्य-पाप के भाव और मुझे दुःखदायक है, ऐसा जो विकल्प उससे, भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति उस विकार के भाव से रहित है, शून्य है। आहाहा! कब ?

मुमुक्षु : दु:ख मिटे तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। दु:ख मिटे तब क्या? आहाहा! अरे! इसका अस्तित्व कैसा है? कितना है? किस प्रकार से है? उसकी इसे खबर नहीं होती और दुनिया की पड (पंचायत) मांडी बड़ी। दुनिया के चतुर संसार में भटकनेवाले। मोहनभाई! ... तुम चतुर कहलाते थे न। दुनिया के सब होशियार मनुष्य कहलाओ। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! यह आत्मा जिस भूमिका में, जिसकी अस्ति में यह है—ऐसा ज्ञात होता है, वह है या नहीं? वह है, उसमें ज्ञान-आनन्द आदि भरपूर है, परन्तु जो चीज़ ज्ञात होती है, वह चीज़ उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब, भाई! यह तो अभी इसे एकड़ा सीखना पड़े।

देखो! **भावार्थ :- इस आत्मा के शुद्धनिश्चयनयकर...** शुद्धनिश्चयनयकर अर्थात् भगवान आत्मा ऐसे चिद्घन ज्ञानस्वरूप जो पूर्ण शुद्ध, जिसकी एक समय की अवस्था-हालत में पुण्य-पाप के भाव, सुख-दु:ख की कल्पना और आठ कर्म का सम्बन्ध (दिखता है), वह सब स्वरूप में नहीं। यदि अन्तर में हो तो निकलकर परमात्मा नहीं हो सकता। समझ में आया? यह विवाद वापस। व्यवहार है या नहीं? परन्तु व्यवहार से है अर्थात्? व्यवहार है। राग-द्वेष दु:ख की कल्पना, कर्म का सम्बन्ध, वह व्यवहार अर्थात् वर्तमान है। अब है, वह त्रिकाल वस्तु में नहीं। प्रयोजन सिद्ध करना है, आत्मा की शान्ति प्रगट करनी है। तब कब शान्ति प्रगट होगी? कि जो अशान्ति के विकल्प, कर्म का सम्बन्ध... जो वस्तु भगवान चिदानन्द चिद् सत्ता—ज्ञान सत्ता, आनन्द सत्ता, सत्ता अर्थात् अस्तिवाला ऐसा स्वभाव ध्रुव, ध्रुव, उसमें वह राग और कर्म और विभाव नहीं।

ऐसे आत्मा की ओर दृष्टि किये बिना इसे शान्ति हो, ऐसा नहीं। यह रागवाला हूँ और दु:खी हूँ और कर्मवाला, वह तो सब दु:खरूप है। समझ में आया? अब इसे कुछ स्वतन्त्र सुखी होना है या नहीं? इसे स्वतन्त्र शान्ति चाहिए है या नहीं? अर्थात् कि इसे धर्म चाहिए है या नहीं? तो धर्मी ऐसा भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त बेहद सत्ता अस्तिवाला शान्ति आदि गुण से भरपूर है और यह पुण्य-पाप और विकार और यह दु:ख के विकल्प से शून्य है। ऐसे पर से शून्य और अपने से भरपूर, उस पर दृष्टि देने से आत्मा को मोक्ष के मार्ग की शुरुआत—(बन्धन से) छूटने की (शुरुआत) वहाँ से

होती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! व्यवहार और निश्चय के झगड़े खड़े करते हैं। यहाँ यह तो व्यवहार और निश्चय दो है। अब है परन्तु क्या करना है तुझे अब? राग और पुण्य और भाव और कर्म वे हैं। कहो, अब है फिर करना क्या है तुझे? वह भी है और यह भी है, अब क्या करना है तुझे? कह। महान चिदानन्द सत्ता के सन्मुख तुझे देखना है या विकार और कर्म का वर्तमान सम्बन्ध, उसके सामने तुझे देखना है? वह तो तूने अनादि से देखा है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? मैं रागवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, कर्मवाला हूँ, शरीरवाला हूँ। वह तो है, है न व्यवहार से है। व्यवहार अर्थात् एक समय की अवस्था में इतना अस्तित्व का सम्बन्ध है। अब है, उसे क्या करना है तुझे? कह। तुझे शान्ति चाहिए है? पूरा महान है, ऐसा पदार्थ दृष्टि में लेना है या यह कृत्रिम विकार और शरीर का सम्बन्ध इतना तुझे दृष्टि में रखना है? आहाहा! समझ में आया?

यह तुम तो बहुत होशियार कहलाते हो वहाँ गाँव में। इसे सब परिवार में भी ऐसा कहते हैं कि भाई! वीर्यवाला मनुष्य, रखो सामने बैठाओ। किसे कहना वीर्य? 'घट पट आदि जान तू, जिससे उसको मान' आता है न? 'जाननहार को माने नहीं, कैसा तेरा ज्ञान?' आता है? यह शरीर है, यह है... यह है... यह है। ठीक, अब फिर करना क्या है तुझे? मुझमें राग है, वह पुण्य है, यह पापभाव है, इससे कर्म बँधा लगता है। परन्तु है अब परन्तु तुझे करना क्या है, कह? इतने हैं उसमें तुझे रहना है? वह तो रहा है अनादि काल से दुःखी होकर। रतिभाई! आहाहा! तेरे दुःख के दिन टालना है और कुछ सुखी होना है या नहीं? मर गया हैरान करके निगोद में से होकर बड़ा हैरान... हैरान। क्या मोहनभाई! अभी छोड़ा नहीं था इसने इसके बहनोई का? सब कितना दुःखी हो गया, कोई मेरे जैसा दुःखी नहीं, लो! ठीक। यह उसका भाई कहे, महाराज! मुझे दुःख बहुत है, वहाँ उसका बहनोई कहे कि दुःखी है। ऐई!

मुमुक्षु : तो सुखी कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखी यह लड़के-बड़के अच्छे और पैसा-बैसा व्यवस्थितवाला, वह सुखी, ऐसा होगा? धूल में भी सुखी नहीं, सुन न! स्त्री और पुत्र और पैसा वह तो जड़, परवस्तु है। परवाला मानना, वह तो महा मिथ्यात्व का दुःख है। मिथ्या—असत्य

मान्यता असत्य। जैसा सत्य है, वैसा न मानना, इसका नाम असत्य और असत्य तो दुःखरूप ही होता है। असत्य सुखरूप होगा? झूठ सुखरूप होगा? समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में... **इस आत्मा के शुद्धनिश्चयनयकर ज्ञानावरणादि आठ द्रव्यकर्म नहीं है, क्षुधादि दोषों के कारणभूत कर्मों के नाश हो जाने से क्षुधा-तृषादि अठारह दोष कार्यरूप नहीं हैं,...** सिद्ध को (नहीं), ऐसे यहाँ भी नहीं। कहेंगे अभी। समझ में आया? सिद्ध भगवान को आठ कर्म नहीं। परमात्मा अशरीरी 'णमो सिद्धाणं' उन्हें विभाव नहीं, क्षुधा, तृषा के दोष नहीं। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा शुद्ध सत्ता वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... के अस्तित्व में भरपूर भण्डार ज्ञान, आनन्द, शान्ति और शुद्धता ऐसा पदार्थ, उसकी अन्तर दृष्टि, उसे देखने के ज्ञान से देखें तो वह अपने स्वभाव से भरपूर पदार्थ है, और पुण्य-पाप के विकार, दुःख की दशा, यह शरीर और रोग, इसका उसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया?

और अपि शब्द से सत्ता चैतन्य ज्ञान आनन्दादि शुद्ध प्राण होने पर भी... सिद्ध को सत्ता है, सिद्ध को अस्तित्व है। वह चैतन्यगुण सत्ता है प्राण, ज्ञान प्राण है चैतन्य में दर्शन-ज्ञान आये, ज्ञान को भिन्न किया, आनन्द आदि शुद्ध प्राण, सिद्ध भगवान को शुद्ध प्राण हैं। **होने पर भी इन्द्रियादि दश अशुद्धरूप प्राण नहीं हैं,...** अशुद्ध प्राण नहीं सिद्ध को, इसी प्रकार भगवान आत्मा को यहाँ सत्ता अस्तिवाला अस्तित्व है। सत्; सत् अर्थात् है; है अर्थात् आदि-अन्तरहित तत्त्व है। ऐसे को शुद्ध सत्ता है, उसमें आनन्द है, चैतन्य है दर्शन-ज्ञान और ज्ञान की प्रधानता से भिन्न करके ज्ञान है। ऐसे आनन्द आदि स्वभाव से भरपूर भगवान वर्तमान में, वर्तमान में राग की वर्तमान अवस्था की एक अवस्था की धार उसके स्वरूप में नहीं। समझ में आया? **इसलिए संसारी-जीवों के भी शुद्धनिश्चयनय से शक्तिरूप से शुद्धपना है,...** लो! वे यह संसारी सब आत्मायें भगवान। आहाहा!

मुमुक्षु : लाभ पंचमी है आज।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ पंचमी व्यापार की या आत्मा की? इसका धन्धा शुरु करते है, इससे लाभ पंचमी कहलाती है। सौभाग पंचमी कहलाती है। श्वेताम्बर में ज्ञान पंचमी कहते हैं। पुस्तकें निकालकर पूजे, बारह महीने पड़ी हो न। क्यों बाबूभाई! सही

बात है न? पुस्तकों को दीपक-बीपक, धूप दे न... वह व्यापार यह है। बाहर वे बहियाँ पूजे फिर व्यापार आज से शुरु करे। यह भगवान आत्मा, आहाहा!

दो अस्तित्व के भाग। क्या? दो अस्तित्व के भाग। अर्थात्? एक ओर यह पुण्य-पाप के भाव वर्तमान, वर्तमान यह कर्म का सम्बन्ध, वह वर्तमान यह एक भाग और एक भाग पूरा अखण्डानन्द पूर्ण शुद्ध एक भाग कि, जिसमें यह पुण्य-पाप और शरीर नहीं। अब यह भाग लेना है या यह भाग लेना है? ऐसा कहते हैं। ऐई! संसार में तो अच्छा भाग उठावे। अच्छा भाग हो वह मेरा। अच्छा भाग वह तेरा ले यह। अच्छा तेरा वह तेरा। शरीर तो बाहर जड़ है, उसका सम्बन्ध वर्तमान एक समय का ऐसा सम्बन्ध कहलाये। सम्बन्ध होने पर भी इसमें नहीं, सम्बन्ध होने पर भी इसमें (आत्मा में) नहीं। अब पुण्य-पाप के विकार का सम्बन्ध एक समय का है। शुद्ध स्वरूप में उसका नहीं। अब इस भाग को तो स्वीकार किया है अनादि से, अब क्या करना है तुझे? कह। समझ में आया? यह आनन्द का लसलसता भगवान आत्मा अन्दर रह जाता है बड़ा। उस भाग का तूने कभी आदर किया नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

कहते हैं, सर्व संसारी जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से अर्थात् सच्चे सत् की निश्चय दृष्टि लें तो, निश्चय अर्थात् सच्ची दृष्टि, पूरा भगवान पूर्ण स्वरूप वस्तु है, उसके स्वभाव से भरपूर—भरित अवस्था अर्थात् ऐसे समुद्र भरा है उसमें। चैतन्य रत्नाकर अनन्त गुण की खान प्रभु है, उसमें इतनी खान है कि एकाग्र होकर निकाल तो केवलज्ञान और केवलदर्शन निकले, इतनी खान है। ... ऐसी खान को तुझे स्वीकार करना है या यह पुण्य-पाप और शरीर को तुझे स्वीकार करना है? क्या करना है तुझे? यह तो स्वीकार किया है अनादि से अब। चन्दुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : रोकड़ा .... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ रोकड़ा यह पुण्य-पाप और शरीर मेरे, उसमें रोकड़ा दु:ख है। तुरन्त प्रत्यक्ष दु:ख है। उसके (आत्मा के) अन्दर में एकाकार हो तो उसे भी वहाँ प्रत्यक्ष आनन्द है। आहाहा! रोकड़ा आनन्द—सुख है। अरे! एक भाग निकाल दे दृष्टि में से। राग, पुण्य-पाप, कर्म, शरीर एक भाग—एक समय जितना भाग। भगवान ऐसे चिदानन्द सत्ता अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यसत्ता में दृष्टि दे, प्रत्यक्ष आनन्द। यह

दिया हुआ भाग रहा हुआ, उसमें एकाकार हो, प्रत्यक्ष दुःख। अब जो भाग तुझे पसन्द पड़े, वह ले।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! परन्तु झगड़ालु लड़के हों तो वापस न माने। भाग लेकर, खा जाये और फिर कहे कि नहीं, नहीं, बापू! यह ... छोटा आया था। उस तरबूज के भाग करे न दस, लड़के सात-आठ हों तो। फिर नीचे जरा जाड़ा हो और ऊपर थोड़ा हो और किसी का नीचे पतला हो तो सहज लाल लम्बा हो। उसकी होती है न तरबूज की लाल, क्या कहलाता है उसका? मावा-गर्भ ऐसा ऊँचा हो कहीं अधिक, ... यहाँ छोटा हो और उसको इतना बड़ा हो, वहाँ ... होंवे सब समान। फिर उसको झगड़ालू को कहे, पहले ले ले लेना हो तो, बाद में तूफान नहीं कर। फिर खाकर कहे, इसका तो बड़ा यह है, बेंत तक लम्बा। परन्तु तुझे इतना था, उसका सब समान होता है, तुझे खबर नहीं। यह फाँक करे न फाँक बड़ा तरबूज हो अधमण... यह भाग किसे लेना? कि बराबर भाग करेंगे। तुझे देंगे नहीं अकेले को। उस भाग में भाग में मिठास है लालिमा की सबको समान रहे, किसी को चौड़ा हो तो थोड़ा हो ऐसा, ऐसे दल में थोड़ा और उसमें लम्बा हो परन्तु दल अधिक न हो, हो समान। वह होशियार हो तो किया हो। परन्तु वह झगलाडू खाकर फिर कहे, नहीं, मेरा छोटा है। अब नहीं चले, छोड़ दे तूफान तेरा।

यहाँ कहते हैं कि, एक बार तू झगड़ा छोड़ दे और यह पुण्य और पाप तेरे और शरीर मेरा ऐसा झगड़ा खड़ा किया है, छोड़ दे, यह चीज़ तेरी नहीं। तुझमें टिके ऐसी नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध और सच्चा। जो वस्तु शुद्ध वस्तु है और वह सच्ची सत्य त्रिकाली है। उसे निश्चय दृष्टि से देखें तो भगवान शुद्धरूप है। ऐसा शुद्धपना होने पर भी **लेकिन रागादि विभाव-भावों की शून्यता ही है।** ऐसे भगवान आत्मा में शुद्ध, शुद्ध सत्, शुद्ध सत्, सत् निश्चय त्रिकाल ऐसे स्वभाव को देखें तो वह शुद्ध ही है और वे पुण्य-पाप के विकल्प कृत्रिम जो विभाव उठता है, उससे शून्य है, उससे खाली है। समझ में आया? इससे भरपूर, तथापि उनसे खाली है। अस्ति-नास्ति की। आहाहा!

इस प्रकार महान वस्तु ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव से भरपूर महान सत्ता, इससे

वह वस्तु है। है, ऐसा दृष्टि में लेने से 'यह है' ऐसी प्रतीति होगी। और उसमें पुण्य-पाप के भाव कृत्रिम उठते हैं, वे उसमें नहीं। उसमें नहीं, इसलिए ऐसे स्वभाव की श्रद्धा करने से शुद्धपने की पर्याय का प्रगटपना, आनन्द का शान्ति का होगा। वह तेरे आत्मा की प्रसिद्धि है। राग-द्वेष और पुण्यपने से तू प्रसिद्धि मानता है, वह तेरी प्रसिद्धि हैरान (होने की) गति है। मेरा पुण्य बहुत, मेरे पैसे बहुत, हमारे लड़के बहुत, हमारा पुण्यभाव, भाव करे न पुण्य—शुभ, वह हमारे बहुत। उससे प्रशंसा लेने जाता है, वह उसमें तेरी निन्दा होती है। कहो, मोहनभाई! गजब बात, भाई! उसमें तेरी निन्दा होती है। यह चिदानन्द परिपूर्ण हूँ, ऐसा नहीं। उसकी प्रशंसा नहीं, यह रागवाला, पुण्यवाला, उसके फलवाला (ऐसा मानने से), भगवान पूर्णानन्द की निन्दा होती है। इस प्रशंसा से प्रसन्न होता है, वह फोड़ा निकला और प्रसन्न होता है। अरे! गजब बात, भाई! हम पैसेवाले, हम पुत्रवाले, कितने वाळा तुझे लगे हैं? हम पुण्यभाववाले, पापभाववाले, हमारा जगत में बड़ा मान, तुम्हारा ऐसा मान है नहीं, गिने कौन? हमारा चलन है कुटुम्ब में, जाति में, देश में, व्यापार में हमारा चलन, तुम्हारा नहीं। बहुत अच्छी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब वाळा लगे हैं तुझे। यह पानी पीते हैं न, नहीं? वाळा आते हैं न? वे पैर में नहीं निकलते? डोरी जैसे। पग हो जाये वैसा। भाई! यह वाळा, वह मूढ़ता है, वह तेरा शाश्वत् स्वरूप नहीं है। आहाहा!

तेरा शाश्वत् स्वरूप शुद्धस्वरूप परमानन्द अनाकुल सत्त्व सत्तारूप स्वभाव, उसे देखें तो वह भरपूर तत्त्व है। उसे देखने से यहाँ विकार से वह शून्य है, सर्वथा शून्य है, ऐसा नहीं। विकार से शून्य है, परन्तु अपने स्वभाव से भी शून्य है—ऐसा नहीं। आहाहा! ईश्वर तो ऐसा दिखता है, ऐसी ईश्वरता मुझमें, ऐसी ईश्वरता मुझमें, मैं ईश्वर? पामरता इसे सुहाती है। पामरता की प्रसन्नता है, प्रभुता की प्रसन्नता इसे नहीं होती।

तथा सिद्ध जीवों के तो सब तरह से प्रगटरूप रागादि से रहितपना है,... यहाँ इसका स्वभाव शाश्वत् शुद्धस्वभाव से देखें तो वह राग से शून्य है, परन्तु पर्याय में जरा राग है। भगवान को तो वह भी नहीं, सिद्ध को। यहाँ जैसा था, वैसा भान होकर और नहीं था, ऐसा निर्णय किया था और नहीं था, उसमें स्थिर हुए थे, वह नहीं था जिसमें,

उसमें स्थिर हुए थे, नहीं था, उससे रहित हो गये। समझ में आया? सिद्ध भगवान को तो वर्तमान में भी इच्छा, द्वेष, शरीर कुछ है ही नहीं। ओहो! यह परमात्मा की व्याख्या चलती है। आहाहा! एक जरा-सा मान में बिक जाता है। आहाहा! अरे! परन्तु कहाँ गया परन्तु तू? एक अच्छा कहे न पैसावाला कहे, लड़केवाला... अभी सब हाम, दाम, और ठाम है। हाम—हिम्मत है, दाम—पैसा है, ठिकाना—गाँव में मकान है। अब उसे क्या कमी रही? कमी रही एक सुख की, भरा रहा वह दुःख में। ऐसे ही थे, हों! हमारे जीवाभाई थे न, जीवा वकील थे उमराला में जीवा वकील। ओहो! भाई! हाम, दाम और ठाम है। परन्तु वह सब छोड़कर बैठे हैं। जीवा वकील थे, गाँव में ब्राह्मण ... मन्दिर की उस ओर मकान है। हाम, दाम, ठाम कहनाा किसे?

भगवान आत्मा, आहाहा! जिसमें अनन्त बल (-हाम), असंख्य प्रदेशी जिसमें अनन्त गुण रहे, ऐसा स्थान और दाम अनन्त लक्ष्मी अपनी। वह तो स्वयं हाम, दाम, ठामवाला स्वरूप है। यह उसे पुण्यवाला और पापवाला और पुण्य-पाप के भाववाला, उस विकारवाला मानना, वह महाभ्रान्ति का भ्रम असत्य है। आहाहा! दूसरे के भी कुछ पैसे और पैसे और पुत्र बराबर हो न, वहाँ इसे दाह होती है कि उसे व्यवस्थित। परन्तु वह व्यवस्थित मानता है, वही मूढ़ है। उसकी मूढ़ता की तू प्रशंसा करता है। छोटाभाई! आहाहा! उसे व्यवस्थितता (है), हों! पुत्र भी सब पहुँच गये छोटी उम्र में। बीस वर्ष से लड़का हुआ उसे, अभी तो चालीस वर्ष हुए तो पहुँच गया। कोई दूसरा पहुँच गया। उसके यह पाँच, पाँच लड़के पहुँच गये और मुझे तो अब पचास वर्ष में (-उम्र में) पुत्र सोलह वर्ष का है। होली सुलगाता है परन्तु कैसी! ऐ छोटाभाई! तुम्हारे तो कहाँ है कुछ? पुत्र कुछ नहीं, हों! कुछ नहीं, ऐसा नहीं कहा। हमारे मकान, हमारी उपज, हमारा किराया, हमारा यह, हमारा यह। हमने पहले कमाया था तो अब निश्चिन्तता से खाते हैं। पहले कमाया तो अभी (खाते हैं)। क्या है परन्तु यह तुझे? ऐसी परवस्तु से अपनी अधिकाई और प्रशंसा स्वीकार करना और पर की ऐसे बाहर के अधिकार से उसे भी अधिक स्वीकारना, वह बड़ा अपनी दृष्टि में चैतन्य का खून करता है। आहाहा! कहो, रतिभाई!

इसी अपेक्षा से आत्मा को शून्य भी कहते हैं। ज्ञानादिक शुद्धभाव की अपेक्षा

सदा पूर्ण ही है,... भगवान सिद्ध भगवान भी ज्ञानानन्द से शक्ति से और पर्याय से पूर्ण है और यह आत्मा इसकी शक्ति से पूर्ण है, पर्याय में भले पूर्ण न हो, परन्तु वस्तु से तो **ज्ञानादिक शुद्धभाव की अपेक्षा सदा पूर्ण ही है, और जिस तरह बौद्धमती सर्वथा शून्य मानते हैं, वैसा अनन्तज्ञानादि गुणों से कभी नहीं हो सकता।** बौद्ध कहते हैं शून्य हो जाओ शून्य। फिर और क्या रह जाये वस्तु? शून्य हो गया, उसका नाम मोक्ष। यहाँ कहते हैं कि विकार से शून्य होना, इसका नाम मोक्ष। अपने से शून्य होना, इसका नाम मोक्ष, ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने तो क्या करे? उसके आत्मा में जो बैठा हो शल्य (बैठा) हो, वह कौन... उसे अन्दर बैठ गया हो। आँख में जहाँ पीलिया हो उसे पीला भासित हो, उसे कहे, ...! सफेद है। चल चल। कहो, दूसरे सफेद देखनेवाले कहे, परन्तु यह चीज़ सफेद है। नहीं, नहीं। परन्तु तुमने तो पहले सफेद नहीं देखती थी। अब पीली कहाँ से हुई। नहीं, नहीं, वह सफेद देखी थी, भूल गया वापस। पीला... पीला पीलिया होता है न। आँख भी पीली, उसे सब पीला लगता है। इसी प्रकार वस्तु के भान बिना वह दूसरी चीज़ ही उल्टी लगे। बापू! आहाहा! बड़ा पढ़ा-गुना हो तो भी वह कहाँ पठन काम आवे, ऐसा है यहाँ? वह तो यहाँ अब सीधी और सादी लगती है तुमको। आहाहा!

अनन्तज्ञानादि गुणों से कभी नहीं हो सकता शून्य... ऐसा कहते हैं। भगवान सिद्ध हो या संसारी हो, उसका भरपूर स्वभाव, स्वभाव, आहाहा! अरे! उसके भाव की अनन्तता का क्या कहना! ऐसे एक चैतन्यप्रभु जिसमें अनन्त-अनन्त गुण संख्या से, सामर्थ्य से अनन्त-अनन्त ऐसा भगवान वह अशून्य अर्थात् स्वभाव से भरपूर है। वह विकार से शून्य है, इसलिए सर्वथा शून्य है—ऐसा नहीं। समझ में आया? **ऐसा कथन श्री पंचास्तिकाय में भी किया है—'जेसिं जीवसहावो' इत्यादि। इसका अभिप्राय यह है, कि जिन सिद्धों के जीव का स्वभाव निश्चल है,...** सिद्ध भगवान का स्वभाव जैसा अत्यन्त शुद्ध था, वैसा पर्याय में शुद्ध हो गया, शुद्ध हो गया। सोलहवान सोना स्पष्ट, वैसे सिद्ध की पर्याय—अवस्था शुद्ध हो गयी। समझ में आया?

कि जिन सिद्धों के जीव का स्वभाव निश्चल है, जिस स्वभाव का सर्वथा

अभाव नहीं है,... स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है। दूसरे का—विभाव का अभाव है, विभाव उसका, परन्तु इसका सर्वथा अभाव नहीं। यह सर्वथा शब्द प्रयोग किया है उसमें। उसमें—टीका में, ऐसा कि जीव का स्वभाव मुख्यरूप से विकार नहीं, मुख्यरूप से जो कहा था ऐसा नहीं, वह तो सर्वथा नहीं वह भाव? कि, नहीं स्वभाव है। **वे सिद्धभगवान देह से रहित हैं,...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु देह से रहित अकेला चैतन्य हीरा, पूर्णानन्द का कन्द प्रभु, राग और शरीर से भिन्न पड़ा हुआ और स्वभाव से अभिन्न दशा में रमता हुआ परमात्मा देह से भिन्न है। समझ में आया? **और वचन के विषय से रहित हैं,...** वचनगम्य क्या सिद्ध को क्या कहना? ओहो! घी के स्वाद को भी वाणी द्वारा कहा नहीं जा सकता। यह भगवान आत्मा वचन से अगम्य है। घी का स्वाद खाया हो न घी का स्वाद, मीठा घी का स्वाद, उसे किस पदार्थ के साथ तुलना करके कहेंगे? कैसा घी का स्वाद? गुड़ जैसा? शक्कर जैसा? केला जैसा? घी-केला जैसा? घी-केला होता है न यह तालाब में। उस घी का स्वाद कैसा? आता है? किसके साथ (मिलान करे)? ... घी का स्वाद किसके साथ कहना? जाने सही, परन्तु किसी के साथ मिलान नहीं किया जा सकता। मीठा बहुत। मीठा कैसा? मिश्री जैसा? मिश्री जैसा नहीं। केला जैसा? केला जैसा नहीं। किसके जैसा होगा? राजेन्द्र! घी का स्वाद किसके जैसा? बस, ज्ञान में ज्ञात अवश्य हो, परन्तु किसी के साथ तुलना नहीं की जा सकती। घी का स्वाद ख्याल में आता है कि ऐसा मीठा, किस पदार्थ के साथ कहकर मैं मेरी मिठास को पूरा कह सका हूँ, ऐसा कोई पदार्थ और वाणी है नहीं। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धड़ाका बुलावे ऐसा है यह। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, वह स्वभाव वचन से गम्य नहीं। समझ में आया? 'वचनों से नहीं कह सकते।' क्या कहे? श्रीमद् ने नहीं कहा... ?

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब;
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब। अपूर्व... २०

वह तो ज्ञान में ज्ञात होता हैं। वह घी का स्वाद ज्ञान में ज्ञात होता है। तथापि धी तो जड़ और जड़ का ज्ञान, वह नहीं, परन्तु अपने ज्ञान में जो आया। उस ज्ञान में ख्याल आया, तथापि उसे कोई वाणी द्वारा, वाणी के वाहन द्वारा दूसरे को सन्तोष हो, ऐसा मिलान कर कहा जा सके, ऐसी वाणी में सामर्थ्य नहीं। तो यह भगवान आत्मा उसका जाननेवाला। आहाहा! यह पुण्य और पाप के विकल्प से भगवान रहित है, ऐसे सिद्ध सर्वथा रहित हैं। उनके स्वरूप को वाणी से किस प्रकार कहना? समझ में आया? वह वाणी से कहने में आया है, वह सब स्थूल, स्थूल रीति से कहा है। आहाहा!

...ऐसा जरा और जो अन्दर दिखता है न काला, सफेद और पीलापना नहीं ऐसा... वह थोड़ी बात कर जरा, कहे, क्या दिखाई दिया अन्दर? वह अन्धेरा दिखता है, वह क्या दिखाई दिया? कहे। तो उसके जाननेवाले की क्या बात? समझ में आया? अन्दर भूरा ऐसा दिखता है। ऐसा देखते हैं न ऐसा। चित्र, चित्र। यह भूरा दिखता है, वह आत्मा नहीं एक ओर। उसका किस प्रकार से चित्रामण करना? कहो। आँख मींचकर जहाँ हो न, दबाव देकर ऐसा हो। चित्र... आहाहा! भाई! वह भगवान की, वह चैतन्य की शक्ति है और उसके स्वभाव को वाणी से क्या कहे? आहाहा! उसके देखने के एक क्षण में ऐसा अन्धेरा किया और ऐसे चित्रपट ऐसा दिखाई दे न सब ऐसा, उसे भी चित्राम का जिसे ख्याल में हो कि ऐसा है, तथापि ऐसा .... उसका चित्राम किस प्रकार देना? ऐसा भगवान आत्मा पुण्य-पाप के राग और शरीररहित की अन्तर शक्ति का तत्त्व भान में आने पर भी उसका चित्रामण किस प्रकार करना? समझ में आया? वह वाणी से अगोचर है। आहाहा!

जिनका स्वभाव वचनों से नहीं कह सकते। अब वचन मिट्टी, जड़, धूल, उसे गम्य नहीं कि यह कौन है। क्या? यह वाणी जड़, मिट्टी, उसे गम्य नहीं कि आत्मा अन्दर कौन है। आत्मा को गम्य है कि यह जड़ है। जड़ के रजकण उठें, उसे गम्य नहीं कि यह कौन है अन्दर। समझ में आया? ऐसे,

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लचका छोड़े ऐसा है यह। कहते हैं कि तू ज्ञानगम्य है, बाकी सब बातें हैं। सिद्ध भी ज्ञानगम्य है और सिद्ध कैसे हैं, ऐसा जानना हो तो तू तेरे

स्वसंवेदन ज्ञान से तुझे देख (तो) सिद्ध कैसे हैं, तुझे ज्ञात हो जायेंगे। समझ में आया? आहाहा!

लोगस्स में आता है न? सिद्धासिद्धि मम दिसंतु। हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद दिखलाओ। कुछ माँगा? दूसरा कहे, हे भगवान! मुझे कुछ चाहिए नहीं, मात्र मैं मेरे, आपके स्वरूप को प्रत्यक्ष ज्ञान में देखूँ, इतना मुझे चाहिए है। यह स्तुति में आता है, हों! दूसरा कुछ नहीं माँगता स्वामी, एक आपके, आपके केवलज्ञान को प्रत्यक्ष मैं अन्दर देखूँ, इतना माँगता हूँ बस। ऐसी स्तुति आती है, हों! अपने को कुछ सब याद रहता है? क्या आता है? 'दूसरा कुछ नहीं माँगू स्वामी एक प्रत्यक्ष चैतन्य... ' आपका केवलज्ञानमयी आत्मा है न, प्रभु! वह मुझे प्रत्यक्ष होओ! इतना बस प्रत्यक्ष ज्ञात होओ, इतनी ही मेरी माँग है। समझ में आया? वह ज्ञानगम्य वस्तु है बस। कितने ही इशारे से प्रकाश बताया जाता है, वचन से गम्य नहीं।

यहाँ मिथ्यात्व रागादिभावकर शून्य... देखो! यह भ्रान्ति से भगवान शून्य है। मैं ऐसा होऊँगा, मैं ऐसा होऊँगा, मैं रागवाला होऊँगा, फलाना—ऐसी सब भ्रान्ति से भगवान चिदानन्द प्रभु शून्य है। **एक चिदानन्दस्वभाव से पूर्ण...** परमात्मप्रकाश में भी वर्णन किया है न! प्रत्येक गाथा में थोड़ी बात ... हों! एक चिदानन्दस्वभाव, एक चिदानन्दस्वभाव वापस ऐसा। वह ज्ञान-आनन्दस्वभाव, एकरूप ज्ञान-आनन्दस्वभाव। एक... एक... एक अर्थात् अखण्ड, एकरूप ज्ञान-आनन्दस्वभाव पूर्ण **जो परमात्मा कहा गया है अर्थात् विभाव से शून्य और स्वभाव से पूर्ण कहा गया है,...** लो! एक दो शब्द छोड़ दिये। वह भगवान आत्मा विभाव से शून्य और स्वभाव से पूर्ण। समझ में आया?

अरे! एक-एक शब्दों में बहुत भरा हुआ है, उसका भाव समझे तो। आहाहा! वाणी का गम्य नहीं फिर। आहाहा! ...है, अलिंगग्रहण में है। ... यह सब सब बात हो, वह निमित्तमात्र है। अलिंगग्रहण के पाँच-छह अर्थ किये हैं न? प्रवचनसार में। परमात्मप्रकाश में। समझ में आया? एक बार तेरे विश्वास में तो ले। विश्वास से काम लिये हैं राग के, पुण्य के और शरीर के इस विश्वास से। जो क्षणिक विकार है, संयोगी चीज़ है, उसका विश्वास किया है। जो त्रिकाली आनन्दकन्द है और अपना स्वरूप ही ऐसा है, उसका उसने अनन्त काल में एक समय भी वास्तविक—यथार्थ विश्वास किया

नहीं। समझ में आया? यह परमात्मा शून्य नहीं। पर से शून्य है, स्वभाव से शून्य नहीं। वस्तु उसमें, वस्तु में क्या कहना? समझ में आया?

वही उपादेय है,... यह आत्मा अन्तर दृष्टि में लेनेयोग्य है, इसका नाम उपादेय है। समझ में आया? **ऐसा तात्पर्य हुआ।** लो! यह इस गाथा का तात्पर्य हुआ। शब्दार्थ कहा, नयार्थ कहा, फिर ... यह उसका तात्पर्य। यह तीन प्रकार के आत्मा के कथन, उसमें पहले अधिकार में सब बहुत बात हो गयी, लो!

अब, **आगे द्रव्य, गुण, पर्याय के कथन की मुख्यता से तीन दोहे कहते हैं—** अब द्रव्य, गुण और पर्याय। देखो! यह वस्तु आयी। वस्तु जो है, वह द्रव्य है; उसकी शक्तियाँ गुण हैं और उसकी अवस्था क्या है, उसका कथन कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ६, शनिवार, दिनांक - ३०-१०-१९६५
गाथा - ५६, प्रवचन - ३७

गाथा - ५६

५६ गाथा, परमात्मप्रकाश पहले भाग की है। अब द्रव्य, गुण, पर्याय के कथन की मुख्यता से तीन दोहा कहे जाते हैं। देखो! इस परमात्मप्रकाश में आत्मा आदि, जड़ आदि क्या वस्तु है, उसका यह कथन द्रव्य, गुण और पर्याय का है।

५६) अप्पा जणियउ केण ण वि अप्पेँ जणिउ ण कोइ।
दव्व-सहावेँ णिच्चु मुणि पज्जउ विणसइ होइ॥ ५६॥

अन्वयार्थ :- यह आत्मा... जो आत्मा है न आत्मा अन्दर आत्मा, वह **किसी से भी उत्पन्न नहीं हुआ,...** किसी से उत्पन्न हुआ नहीं। समझ में आया? है, वह किससे उत्पन्न हो? इस प्रत्येक देह में आत्मा भिन्न-भिन्न चीज़ है। सत् सत् है, है, उसका न होनापना कब हो? सहज है, उसका न होनापना भूतकाल में नहीं होगा? है वह नहीं था? और है, वह भविष्य में न हो, ऐसा होगा? है, वह किसी से उत्पन्न हुआ नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आत्मा किसी से उत्पन्न हुआ नहीं और आत्मा से कोई दूसरा पदार्थ उत्पन्न हुआ नहीं। कहो, बराबर है?

आत्मा सच्चिदानन्द सत्स्वरूप सत्, सत्। प्रत्येक का भिन्न-भिन्न की बात है, हों! सत् है, 'है' वह किसी से उत्पन्न नहीं होता और 'है' वह किसी को उत्पन्न नहीं करता। कहो, समझ में आया? **द्रव्यस्वभावकर नित्य जानो,...** वह वस्तुरूप से तो नित्य है, नित्य पदार्थ शाश्वत्, शाश्वत्-नित्य है। **'पर्यायः विनश्यति भवति' पर्यायभाव से विनाशीक है।** उसकी अवस्था है और अवस्था-हालत-दशा, वह विनाशीक है, बदलती है, उपजती है, बदलती है। वस्तुरूप से तो ध्रुव चिदानन्द है। पर्याय में, हालत में बदलाव और उपजना होता है।

भावार्थ :- जरा लम्बी बात है इस गाथा में सब। **यह संसारी जीव...** यह संसारी

आत्मा **यद्यपि व्यवहारनयकर शुद्धात्मज्ञान के अभाव से...** आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द है, उसके ज्ञान के अभाव के कारण से। वस्तु शुद्ध चिदानन्दमूर्ति आनन्दकन्द, ज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा है, ऐसे वस्तु के स्वभाव के ज्ञान के अभाव में, **उपार्जन किये...** देखो, यह किया। यह ज्ञान का अभाव है, इसलिए कर्म उपार्जन किये। समझ में आया? **उपार्जन किये ज्ञानावरणदि शुभाशुभ कर्मों के...** ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि आठ कर्म, उनमें शुभ-अशुभकर्म अघाति कर्म है, उसमें शुभ-अशुभ के भेद पड़ते हैं।

उसके **निमित्त से नर-नारकादि पर्यायों से उत्पन्न होता है,...** उस कर्म के निमित्त से... अपना शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, भव के भाव और भव के कार्य जो कर्म, भव का कारण विकार और उसका कार्य, उससे रहित आत्मा है। ऐसी शुद्ध चैतन्यघन वस्तु अनादि-अनन्त उसके अन्तरज्ञान के अभाव में उपार्जन किये, बाँधे हुए, हुए आठ कर्म शुभाशुभ, उनसे आत्मा मनुष्य होता है, नारकी होता है, देव होता है, पशु होता है। पर्याय में पशु आदि होता है। समझ में आया? **और विनशता है,...** एक भव में उपजे, उसका नाश होकर दूसरे भव में जाये। ऐसे अनादि से, भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द है, ज्ञान की ही वह तो मूर्ति ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है, उसके भान बिना बाँधे हुए कर्म से उपजे भव और उस भव का नाश हो, ऐसा अनादि से हुआ करता है। कहो, समझ में आया इसमें?

और आप भी शुद्धात्मज्ञान से रहित हुआ... स्वयं भी शुद्ध ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अपने भानरहित हुआ। **कर्मों को उपजाता (बाँधता) है,...** ऐसा। कर्म को उपजाता है। समझ में आया? **(बाँधता) है, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शक्तिरूप (तो) शुद्ध ही है,...** वस्तु ज्ञायकभाव देखो तो वह शुद्ध चिदानन्द एकरूप है। पर्याय में उसके भान बिना इसने कर्म बाँधे और उपजे-विनशे। समझ में आया? और कर्म बाँधे, परन्तु शुद्ध वस्तु... वस्तु... वस्तु... ज्ञानघन चिद्स्वरूप 'चिद्रूपो अहं' अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसे शक्ति से देखें (तो) शुद्ध है। **कर्मों से उत्पन्न हुई नर-नारकादि पर्यायरूप नहीं होता,...** वह शुद्ध चैतन्यमूर्ति नारकीरूप से, मनुष्यरूप से, देवरूप से, पशुरूप से होता नहीं, पर्याय होती है। समझ में आया? **कर्मों से उत्पन्न हुई**

नर-नारकादि पर्यायरूप नहीं होता,... भगवान अन्दर शुद्ध वस्तु स्वयं है ध्रुव नित्य, वह कहीं इस मनुष्यरूप से, देवरूप से उपजे ? उसके अज्ञान से बाँधे हुए कर्म के कारण से नारकी-मनुष्य आदि हो, परन्तु वस्तु जो है, वह तो नित्य शुद्ध ध्रुव अनादि-अनन्त है। ऐसा शुद्धस्वभाव वह नारकीरूप होता नहीं, मनुष्यरूप होता नहीं, देवरूप हुआ नहीं, पशुरूप होता नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

और आप भी कर्म-नोकर्मादिक को नहीं उपजाता... वस्तुस्वरूप है, वह कर्म को कहाँ उपार्जित करता है ? वह तो उसका अज्ञानभाव कर्म को उपार्जित करता है। वस्तुस्वरूप जो है, वह कर्म को उपार्जन नहीं करता। समझ में आया ? कर्म अर्थात् आठ और नोकर्म अर्थात् यह शरीर, उसे उपजाता नहीं। **व्यवहार से भी न जन्मता है,...** क्या कहते हैं ? वस्तु... वस्तु जो चिदानन्द घन ध्रुव तत्त्व है, वह कहाँ व्यवहार से जन्मता है ? वह तो शरीर और रागादि पर्याय में जो जन्मा, वह तो व्यवहारनय से पर्यायनय का उपजना हुआ, वस्तु व्यवहार से भी उपजती नहीं। और क्या कहा ? शाश्वत् ज्ञायकभाव, वह स्वयं कहीं अपने भाव को छोड़कर ध्रुव को (छोड़कर) कर्मरूप से, शरीररूप से, नारकीरूप से होता है ? उसके स्वभाव का अभान, उससे बाँधे हुए उस पर्याय में—अवस्था में—हालत में मनुष्य और देव (रूप से उपजता है)। वह स्वयं ध्रुव है, वह कहीं मनुष्य और देवरूप होता नहीं। यह व्यवहार से जो होता हो, वह ध्रुव होता नहीं, ऐसा कहते हैं, गजब बात! कहो, सुना या नहीं ? ऐई सिद्धार्थ! सिद्धार्थ कहे, आत्मा आया कहाँ से ? यह पूछता था। नहीं ? आया, आया कहाँ ? है। आवे यहाँ उस भव में से आया, परन्तु वस्तु तो अनादि की है। है, वह कहाँ जाये ? यह कहता था अनादि की ... यह तो कहे अनादि का है। समझ में आया ?

भगवान वस्तु है। है, उसका किया हुआ कब हो ? है, वह तो है ही। आदि नहीं, अन्त नहीं, वह वस्तु अन्दर सत्... सत्... सत्... सत्... शाश्वत् ध्रुव है। उसके भान बिना उसकी दशा में विकार करके कर्म उपार्जित करे और उसके कारण से पर्याय में भव हो। पर्याय में भव हो, पर्याय में कर्म उपार्जित करे, पर्याय में जन्म हो, पर्याय में मरण हो। वस्तु को जन्म-मरण कहाँ है ? समझ में आया ? **व्यवहार से भी न जन्मता है,...** यह क्या कहा ? व्यवहार से भी जो रागरूप से, कर्मरूप से जो हुआ, वह ध्रुव, ध्रुव

वस्तु नहीं हुई। पर्याय में उसकी अवस्था में यह सब हुआ है। समझ में आया इसमें?

न किसी से विनाश को प्राप्त होता है,... वस्तु जो है ध्रुवपना शाश्वत् कन्द दल चैतन्य ध्रुव नित्य, वह किसी से किसी में व्यवहार से उपजता भी नहीं और किसी से व्यवहार से नाश भी होता नहीं। **न किसी से विनाश को प्राप्त होता है, न किसी को उपजाता है,...** वह कोई राग को और कर्म को कहीं ध्रुव उपार्जित नहीं करता। **कारण-कार्य से रहित है...** आहाहा! यह तो एक समय की अवस्था—हालत में सब गड़बड़ है। समझ में आया? वस्तुरूप से नित्य, नित्य ध्रुव... ध्रुव कन्द, ध्रुव सत्त्व पूरा जो है, वह तो नहीं व्यवहार से कर्म में भव में आता, वह व्यवहार से उसका नाश भी उसमें होता नहीं। समझ में आया?

अरे! इसे नित्य वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। मैं त्रिकाल अनादि-अनन्त शाश्वत् वस्तु हूँ। यह सुख-दुःख की कल्पनायें भी वस्तु में कहाँ है। शरीर का संयोग तो पर्याय में भी नहीं। उसकी पर्याय में भी शरीर, कर्म का, जड़ का अन्तर में संयोग नहीं, निमित्तरूप से भले सम्बन्ध हो। पर्याय में उसका प्रवेश नहीं। परन्तु पर्याय में—अवस्था में जो राग-द्वेष, अज्ञान, पुण्य-पाप, वह वर्तमान उसकी दशा में, एक समय की दशा में है। वह दशा दूसरे समय भले हो, तीसरे समय में हो। परन्तु वस्तु जो ध्रुव है, उसमें एक समय की विकारी अवस्था प्रवेश नहीं करती।

मुमुक्षु : गड़बड़....

पूज्य गुरुदेवश्री : गड़बड़ किसे कहना? गड़बड़ मचायी अर्थात् कि वह अन्ध होकर राग-द्वेष किये, वह गड़बड़। यह कहते हैं, शब्द का अर्थ... कहो, समझ में आया इसमें? अखण्डनाथ ध्रुव चैतन्य नित्यानन्द नित्य प्रभु में गड़बड़ अर्थात् विकार कैसा? ऐसा। विकार तो उसकी वर्तमान दशा में, हालत में, हालत में विकार और हालत में विकार का अभाव, हालत में भव और हालत में एक भव का अभाव, दूसरे भव का (उत्पाद)। वस्तु ध्रुवरूप से है, उसमें भव का उपजना भी नहीं और भव का अभाव उस वस्तु में—ध्रुव में नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, वह पर्याय में होता है, उसकी अवस्था में होता है। समझ में आया? यहाँ तो एक समय की अवस्था में उत्पाद-व्यय है, यह बताना है और ध्रुव तो ऐसा का ऐसा है, ऐसा बताना है। उसकी इसे भी कभी... इसे समझना कठिन पड़ता है कि यह मैं कैसा हूँ। दुनिया की समझण में देखो तो चतुर का पुत्र हो जाये।

वस्तु है सत्... सत्... सत्... सत्... है ध्रुव, उसकी अवस्था बदलती है, पर्याय बदलती है। उसमें संसार की उत्पत्ति, भव की उत्पत्ति, दूसरे भव काल में उस भव का नाश, ऐसे समय-समय की पर्याय अवस्था में होओ। ध्रुव है, उसमें जन्मना क्या, मरना क्या, उपजना क्या और टलना क्या? समझ में आया? आहाहा! **न किसी को उपजाता है, कारण-कार्य से रहित है...** कौन? वस्तु ध्रुव नित्य द्रव्यस्वभाव, द्रव्यस्वभाव। पर्याय उसकी है पर्याय, परन्तु एक समय की अवस्था में वह सब है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। एक समय की अवस्था में संसार, राग-द्वेष, राग-द्वेष का अभाव, सिद्ध की उत्पत्ति, वह सब पर्याय की अपेक्षा से है। समझ में आया? पर्याय अर्थात् हालत, उसकी अपेक्षा से संसार अर्थात् संसरण। शुद्ध चैतन्यमूर्ति में से हटकर मैं राग हूँ, पुण्य हूँ, शरीर हूँ—ऐसी मान्यता और राग-द्वेष उसकी दशा में है। उसमें वह पर्याय उपजे और उस पर्याय का नाश हो। ध्रुव स्वयं नित्य वस्तु है, वह पर्याय—एक क्षण में कहाँ आ जाती है? और एक क्षण में कहाँ उपजती है? और एक क्षण में कहाँ नाश पाती है? समझ में आया इसमें? अरे! आहाहा!

यहाँ 'परमात्मप्रकाश' द्रव्य-परमात्मा अभी लेना है। वस्तुरूप से अनादि-अनन्त सत्, सत् कन्द, सत् के चैतन्य आनन्द का घन, पिण्ड वस्तु ध्रुव है। उस ध्रुव पर पर्याय जो क्षण-क्षण में हो, वह पर्याय में, अवस्था में जन्म-मरण, जन्मना, मरना, भव का उपजना, भव का अभाव, कर्म का उपजना, कर्म से उपजना, कर्म को उपार्जित करना, यह सब पर्याय-अवस्था में है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? भगवान **कारण-कार्य से रहित है अर्थात् कारण उपजानेवाले को कहते हैं।** कारण उपजानेवाले को कहते हैं। तो भगवान ध्रुव वस्तु, नित्य वस्तु, वह विकार को उपजानेवाली नित्य वस्तु नहीं है। समझ में आया? **कारण उपजानेवाले को कहते हैं। कार्य उपजनेवाले को कहते हैं।** उपजनेवाला। उपजे वह कार्य, उपजावे वह कारण। उपजावे वह कारण,

उपजे वह कार्य। आत्मा ध्रुव, संसार के विकाररूप उपजे या विकार को उपजावे, ऐसे कारण-कार्यरहित ध्रुव नित्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह द्रव्य वस्तु। गुण की शक्ति त्रिकाली द्रव्य में आ गयी। वह द्रव्य ही एकरूप। अनन्त गुण उसमें एकरूप आ जाते हैं। द्रव्य उसे कहते हैं कि अनन्त गुण का एकरूप। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सहारा ले उसमें क्या, सहारा तो पर्याय लेती है। वस्तु तो ध्रुव है, नित्य है। पर्याय आश्रय ले (तो) निर्मलता होती है। पर्याय पर का आश्रय ले तो विकार होता है, बस। समझ में आया? आहाहा! अरे! उसके निधान कैसे हैं कैसे, इसकी खबर नहीं होती। धूल के... बारह महीने में सब जाँच करे कितने पैसे हुए। धनतेरस की पूजा धन की, धूल की।

मुमुक्षु : यह भूला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूला, वह कहाँ भूला परन्तु कितना? अरे! भगवान! ऐसे नित्य है। देखनेवाली दृष्टि है, वह पर्याय है, पर्याय-अवस्था, परन्तु जो वस्तु देखना है, वह तो नित्य ध्रुव है। यहाँ पर्याय और ध्रुव दो भिन्न है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

वस्तु जो है सदृश शक्ति का सत्त्व ज्ञान, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व अनन्त गुण का एकरूप वस्तु, वह तो ध्रुव, स्वयं ध्रुव वह भव के उत्पन्न का कारण नहीं और भवरूप से उपजे, ऐसा वह कार्य नहीं। उपजानेवाला कारण नहीं और उपजनेवाला कार्य नहीं। उपजता है, वह विकार और विकारपने के कारण से कर्म बाँधे भले, वह उपजे कर्मरूप से, विकाररूप से और विकार के कार्यरूप से वापस नाश हो। परन्तु वस्तुरूप से है, वह कारण-कार्यरहित है। वह विकार को उपजावे आत्मा, ऐसा कारण नहीं और विकार का नाश करे, ऐसा वह कार्य नहीं। भव का अभाव करे, उसका वह कारण नहीं और भव का नाश करे, ऐसा वह कार्य भी नहीं। आहाहा! गजब! समझ में आया?

कारण उपजानेवाले को कहते हैं। उपजानेवाले (को) कारण (कहते हैं)।

भगवान ध्रुवस्वभाव भव को उपजावे? ध्रुवस्वभाव भव को उपजावे? और कार्य उपजनेवाले को कहते हैं। ध्रुवस्वभाव भवरूप से उपजे? ध्रुवस्वभाव भवरूप से उपजे? ध्रुवस्वभाव संसार की पर्यायरूप से उपजे? कहो, समझ में आया या नहीं? ऐसा कैसा? ऐसी व्याख्या? भाई! एक राजा और रानी और आन-फान हो तो उसमें से समझ में आये। यही कहते हैं कि राजा तू चैतन्य राजा है। आहाहा! यह तेरी वर्तमान अवस्था में सब भव का उपजना, भव का नाश होना, वह अवस्था में है। इस संसार का उपजना और संसार का नाश होना, वह अवस्था में है। पर्याय है अवश्य, परन्तु पर्याय वह ध्रुव में नहीं; ध्रुव, वह संसार का कारण नहीं और संसार का कार्य स्वयं उपजावे, वह स्वयं है नहीं। संसार के कार्यरूप से उपजे, वह भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'निरखे ध्रुवनी तारी।' वह ध्रुव ध्रुव तारा है। वह ध्रुव तारा नहीं आता? यह आनन्दघनजी कहते हैं उसे। ध्रुव वस्तु ध्रुव नित्य, अचल नित्य वस्तु है। जो पर्याय देखती है, वह पर्याय वर्तमान अवस्था है, परन्तु जो अन्दर देखती है, वह ध्रुव वस्तु है। ध्रुव वस्तुरूप से ध्रुव देखती नहीं और ध्रुव उपजती नहीं और ध्रुव विनशती नहीं। आहाहा! समझ में आया? सोना, सोनापना कायम रखकर उसकी अवस्था में कुण्डलरूप से उपजे, कड़ारूप से नाश हो। कड़ा का व्यय, कुण्डल का उपजना, वह अवस्था में है। सोनापना जो ध्रुव है, वह कड़ा की पर्यायरूप से ध्रुव हुआ नहीं। कुण्डल की पर्यायपने का नाश (हुआ परन्तु) ध्रुव का (नाश) हुआ नहीं। अवस्था का उपजना और अवस्था का विनशना है। सोनापना, पीलापना, चिकनापना जो ध्रुव है, वह ध्रुव कुण्डलरूप से उपजता नहीं, कड़ारूप से नाश होता नहीं। अर्थात् उपजने के कारणरूप ध्रुव नहीं और कार्यरूप भी ध्रुव नहीं। गजब बात, भाई!

स्वयं कोई वस्तु है या नहीं? अवस्था है भले। अब यहाँ पर की बात अभी नहीं। उसमें अवस्था हो। भव, भव का अभाव, विकार, विकार का अभाव, विकार का उपजना, विकार का नाश होना, यह उसकी दशा में, हालत में, पर्याय में है परन्तु वस्तु जो ध्रुवरूप से है, वह ध्रुव स्वयं उपजता है राग में? ध्रुव स्वयं राग को नाश करता है? अथवा ध्रुव स्वयं राग का नाश होने से स्वयं नाश हो जाता है? वह तो ध्रुव तो है, वह है। समझ में आया?

सो ये दोनों भाव वस्तु में नहीं हैं,... देखो! ध्रुव नित्य... नित्य... नित्य... सत् प्रभु में भव का उपजना, भव का विनशना ध्रुव में नहीं। कैसी शैली खड़ी की है यह! समझ में आया? **इससे द्रव्यार्थिकनयकर जीव नित्य है,...** वस्तु द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसकी दृष्टि से देखें तो वह नित्य ही है। उसमें भव और भव का अभाव और भव को उपजावे और भव को विनाश करे, वह वस्तु में अन्दर है नहीं। द्रव्यरूप से वस्तु, हों! पर्यायरूप से का प्रश्न अभी नहीं। समझ में आया?

और पर्यायार्थिकनयकर... कितने यह तो गाथा में कितने नये शब्द आयेंगे बहुत। वस्तु जो ऐसे आत्मा नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... वह नित्य वस्तु है, वह उसकी अवस्था जो अनित्य है, क्षणिक दशा, उसमें वह आता नहीं और उस अवस्था का नाश होने पर उसका नाश होता नहीं। समझ में आया? वह वसतुरूप से ध्रुव (रहता है)। द्रव्य अर्थात् यह द्रव्य अर्थात् पर्याय और द्रव्य, दोनों ऐसा नहीं। द्रव्य अर्थात् उसका त्रिकाली ध्रुव अंश, त्रिकाली ध्रुव अंश, वह द्रव्यार्थिकनय। द्रव्य अर्थात् सामान्य अंश को लक्ष्य में लेनेवाले ज्ञान से देखे तो वह वस्तु नित्य ऐसी की ऐसी है। समझ में आया?

पर्यायार्थिकनयकर उत्पन्न होता है,... लो! पर्याय की अपेक्षा से रागरूप, भवरूप, मुक्त अवस्थारूप इत्यादि इत्यादि, इसका स्पष्टीकरण आगे आयेगा, उपजता है। समझ में आया? कहो, पोपटभाई! आहाहा! पर्यायार्थिकनयकर अवस्था की दृष्टि से, अवस्था से, हालत से, पर्याय से, दशा से वह नरपने, मनुष्यपने; यह देह की बात नहीं (किन्तु) अन्दर गति की योग्यता; उसरूप से, मनुष्यरूप से, भव की अवस्थारूप से, अवस्थादृष्टि से उपजता है और अवस्थादृष्टि से नाश होता है। वस्तुदृष्टि से उत्पन्न और नाश है नहीं। आहाहा! समझ में आया या नहीं? अब इसे कितना सस्ता करके रखना? यह महिलाओं को समझ में आये, ऐसा कैसे करना इसमें? महिलायें है ही नहीं, यहाँ तो सब आत्मा है। महिलायें किसे कहना और पुरुष किसे कहना? समझ में आया? यह शरीर के आकार की बात भी यहाँ नहीं अभी तो। उसके आत्मा में जो ध्रुवपना त्रिकाल और उसकी अवस्था में भव का उपजना और विनशना, वह सब अवस्था की हालत में है। ध्रुवपने में तो ऐसा का ऐसा है। आहाहा!

यहाँ पर शिष्य प्रश्न करता है,... यह सब आया सही न। पर्याय से वस्तु जो है ध्रुव, वह ध्रुव स्वयं पर्याय में, भव में आती नहीं अर्थात् उपजने में आती नहीं और वस्तु स्वयं है, वह विनशने में आती नहीं। उपजती नहीं और विनशती नहीं, वह ध्रुव। उपजे और विनशे, वह तो पर्याय—अवस्था होती है। तब शिष्य का प्रश्न हुआ। **कि संसारी जीवों के तो नर-नारकी आदि पर्यायों की अपेक्षा उत्पत्ति और मरण प्रत्यक्ष दिखता है,...** संसारी जीव है, उसे तो यह भव का भाव और यह भव का अभाव, ऐसा तो दिखता है। अब यहाँ उत्पाद-व्यय, शिष्य को प्रश्न सिद्ध का उत्पन्न होता है। यह सिद्ध को क्या समझना? तुमने तो नित्य ठहराया, उसमें कुछ उपजना, विनशना कुछ है ही नहीं। तुमने तो तीनों काल के द्रव्य में, ध्रुव में कुछ उपजना, विनशना है नहीं, ऐसा सिद्ध किया। समझ में आया?

संसारी जीवों के तो नर-नारकी... यह नर-नारकी का जगत में (नाम आने पर) उसका ख्याल जाता है, उस जड़ के ऊपर। यह नर-नारकी यह देह नहीं, वह तो जड़ है यह तो। उसमें उसकी मनुष्यपने की योग्यता से उदयभाव है न अन्दर गति, उसे मनुष्यपना कहना। यह (शरीर) तो मिट्टी है, उसे मनुष्यभव कहाँ? (कहते हैं)। मनुष्यभव तो जीव काव उदयभाव है। इसलिए यह नहीं, यह तो मिट्टी, जड़ है, उसे कब मनुष्यपना हो, इसकी नजर भी जाये मनुष्यपना (अर्थात्) शरीर। शरीर के रजकण अवस्था मनुष्यरूप से हुए हैं? उसे मनुष्य कहा जाता है? वह तो जड़ है, मिट्टी है वह तो। आत्मा वस्तु जो ध्रुव है, उसकी वर्तमान अवस्था में मनुष्य की योग्यता प्रमाण जो भाव है, उसे मनुष्य कहा जाता है। इसी प्रकार देव में भी देव की योग्यता प्रमाण उसे हो न कि, मैं देव हूँ, यह इन्द्राणी है, फलाना, ढींकणा। यहाँ मनुष्यरूप से मनुष्य वह जो अन्दर भाव, पर्याय में भाव (होता है) वह मनुष्य भव और मनुष्य भव के अभाव की बात चलती है, यह देह की बात नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्दर में उदयभाव है, उसमें एकताबुद्धि से (होता है)। यही कहते हैं न, वस्तु को भूला है तो एकताबुद्धि करता है उसमें। अज्ञानभाव से। कहा न? शुद्ध चिदानन्द को भूलकर पर्याय में विकार को उपार्जित किया, उससे हुई भव की

योग्यता, वह भव मैं, ऐसा मानकर पर्याय में उपजता और विनशता है, ध्रुव में नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? तुम्हारे भाई को पूछते हैं। .... कहते हैं....

मुमुक्षु : ....मनुष्यपना मिला....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मनुष्यपना मिला अर्थात्? यह तो फिर निमित्त की बात है, परन्तु अन्दर पर्याय की योग्यता मनुष्यपने की। जीव तो वह है, यह मनुष्यपना है? यह तो जड़ है, मिट्टी है। उसमें निमित्तरूप से यह शरीर है। उसमें करनेयोग्य, मनुष्यपना मिला, उसमें करनेयोग्य आत्मा का हित, इस पर्याय में इस भव में है, ऐसा कहना चाहते हैं। कहीं जड़ से होता होगा? समझ में आया? परन्तु बात यह है न, उसकी पर्याय भी देह से भिन्न है, यह उसे भासित नहीं होता। द्रव्य तो पर्याय से भिन्न। समझ में आया? उसके भव की अवस्था और भव का अवस्था का भाव, वह इसकी पर्याय में है, उसके कारण से नहीं। समझ में आया? यह वस्तु जो है भगवान आत्मा ध्रुव शुद्ध शुद्ध, उसे भूलकर उसकी दशा में भव और भव का अभाव और इस भव का अभाव और दूसरे भव का भाव है। वह तो यहाँ सिद्ध में भी ले लेंगे अब। यह देह तो मिट्टी जड़ है। उसे मनुष्य का उदय है मनुष्यगति का? उसे मनुष्यगति का उदय है? मनुष्यगति का कर्म बँधा हुआ वह भले जड़, अब उसके उदय का फल वह इसे है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य का सिर क्या किसे, यह तो निमित्त की बातें हैं। मनुष्य का सिर कैसा और हाथ कैसे? वह तो जड़ का सिर है। यहाँ तो उसकी पर्याय में भी उसका भिन्नपना वह पर्याय में कैसे होता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? भगवान आत्मा नित्य ध्रुव होने पर भी, शुद्ध चिदानन्द आनन्द की मूर्ति होने पर भी, उसे भूलकर उसकी दशा में यह सब भव का भाव और भव का अभाव और सब हुआ करता है। उसे भव है? देह को भव है? जड़ को भव, पुद्गल को भव है? पुद्गल को भव का अभाव है? समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : मनुष्य होकर प्रसिद्धि तो करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करेगा? वह तो जड़ है, ऐसे प्रसिद्धि करता है। जीव मनुष्य जो है, ऐसे यह जड़ प्रसिद्ध करता है? परन्तु यह निमित्त प्रसिद्ध ऐसा करे कि, यह मनुष्य के भववाला इतना। परन्तु इससे यह मनुष्यभव हो गया? यह भव हो गया? मनुष्यभव जीव को हो या मनुष्यभव देह—जड़ को हो? मनुष्यभव जीव की पर्याय—अवस्था में हो। उसमें तो न हो और ध्रुव में न हो। क्या कहा? कठिन बात, भाई!

मनुष्यभव जो कहलाता है। वह आत्मा की पर्याय में, मनुष्यभव अर्थात् उसकी योग्यतावाला उसे पर्याय में मनुष्यभव कहा जाता है। शरीर को मनुष्यभव कहा जाता है? ध्रुव में मनुष्यभव है? उसकी पर्याय—अवस्था में यह मनुष्य की योग्यतावाला है कि मैं मनुष्य हूँ, ऐसा है न? ऐसी योग्यता उसकी पर्याय में है। उस पर्याय की योग्यता का नाश होकर देव की पर्यायरूप से (उपजे)। देव के आत्मा की पर्यायपने की बात है, हों! देव का शरीर अलग। अरे... गजब बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय माने नहीं, वह है न उसे, उस समय कि मैं मनुष्य ही हूँ, देवरूप से (हो तो) देव हूँ, पशुरूप से पशु हूँ। भव भव, हों! उसका भव। गति का उदयभाव, गति का उदयभाव वह जीव में—पर्याय में होता है, गति का उदयभाव उसको—जड़ को होता है? समझ में आया?

यहाँ तो यह देह की बात ही नहीं। देह तो पुद्गल निमित्तरूप से आवे और जाये, उसकी पर्याय से उपजे। उसके परमाणु जो हैं, वे ध्रुव रहकर यह मनुष्य की इस पर्यायरूप से ऐसे दिखायी दे इस पर्यायरूप से, व्यय होकर देव की पर्याय (रूप से दिखाई दे), वे परमाणु, वह तो परमाणु की पर्याय की बात है। आत्मा की पर्याय की उसमें यह बात नहीं। यहाँ आत्मा की पर्याय की बात है। मलूकचन्दभाई! जहाँ हो, वहाँ ऐसे चिपटा न! बस! इस मनुष्यदेह में मैं उत्पन्न हुआ, देह देहरूप से उत्पन्न हुई, देहरूप से उत्पन्न हुआ। देहरूप से आत्मा उत्पन्न होता होगा? देह तो परमाणुओं का पिण्ड है, वे परमाणु मिट्टी, उनकी पर्याय है, पर्याय। उसमें तो परमाणु उपजे उसरूप से। आत्मा उसमें उत्पन्न हुआ है? समझ में आया? यहाँ तो अभी पर्याय जो होती है, वह ध्रुव में

नहीं, (ऐसा) सिद्ध करना है। और वह पर्याय, जड़ में यह पर्याय नहीं और जड़ के कारण से नहीं यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : जड़ की शक्ति जड़ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की शक्ति जड़ में, यहाँ कहाँ आ गयी। यह देहरूप से परमाणु उत्पन्न हुए। आत्मा उत्पन्न हुआ है, इस देहरूप की पर्यायपने? पूर्व भव का मनुष्यदेह था, वह छूटकर उसकी यह पर्याय हुई, वह इस पर्यायरूप से यह देह और यह परमाणु उत्पन्न हुए हैं या आत्मा इसरूप उत्पन्न हुआ है? वे तो परमाणु उत्पन्न हुए हैं। परमाणु रजकण जो है पोईन्ट, वे बहुत इकट्ठे हुए। वे रजकण शाश्वत् ध्रुव, परन्तु इस अवस्था का बदलना, वह तो उन परमाणु में अवस्था का उपजना (हुआ), ध्रुवरूप से परमाणु (रहा) और अवस्थारूप से उपजना और विनशना वह तो परमाणु में हुए, आत्मा में कहाँ आये उसमें? समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा की बात चलती है। आत्मा जो है, उसके दो भाग—एक ध्रुव भाग, नित्य भाग। वह नित्यपना उसकी पर्याय में आता नहीं, वह नित्यपना नाश होता नहीं। नित्यपना जो है, वह उपजता नहीं पर्याय में और वह नित्यपना पर्याय का गया, तो उसमें वह नाश होता नहीं। वह तो उत्पाद-व्यय के कारण रहित और उसके कार्यवाला (अर्थात्) यह उत्पाद का कार्य यहाँ होता है और उसका कारण होता है, ऐसा वह आत्मा नहीं। ओहोहो! समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका धूल का? वह तो उसकी पर्याय हुई, उसमें तू कहाँ आया? ऐसा कहते हैं। वज्रवृषभनाराच यह पर्याय हुई हड्डियों की मजबूत अन्दर, उसरूप से तो परमाणु उसरूप से पर्याय उत्पन्न हुई है। परमाणु ध्रुव रहकर पर्यायरूप से उपजते हैं, लो यह। वापस ध्रुवरूप से पर्याय भी आयी नहीं। परमाणु का जो सत्त्व जो ध्रुव है, वह कहीं इस पर्यायरूप से आता है? वह तो पर्यायरूप से उपजे और पर्यायरूप से विनशता है, वह भी ध्रुव परमाणु की। आत्मारूप से उपजे और आत्मा की अवस्था उस पर्यायरूप से भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अरे! इसके तत्त्व के दो भाग, वे पर से भिन्न। द्रव्य और पर्याय पर से भिन्न, शरीरादि से भिन्न। वह तो मिट्टी है, पर है। पर्यायरूप से उपजा अर्थात् शरीररूप से उपजा आत्मा? भव का अभाव किया तो इस शरीर का अभाव किया? अभाव है ही। आत्मा की पर्याय में तो शरीर का अभाव ही है और शरीर का भाव उसमें है ही नहीं, पर्याय उसमें है ही नहीं, इसलिए उसरूप से उपजना और उसरूप से अभाव होना, वह पर्याय में भी है नहीं, पर्याय में भी नहीं। समझ में आया? गजब बात लम्बी हुई परन्तु।

संसार का भव और संसार का अभाव ऐसा सिद्धभाव, वह आत्मा के ध्रुव में नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। वह कहीं जड़ में नहीं, ऐसा है। जड़ में तो है नहीं उसकी बात। उसकी पर्याय में यह है, यह सिद्ध करना है। यह सिद्ध उत्पाद-व्यय पर्याय में है; ध्रुव में नहीं। ध्रुव उसमें आता नहीं, ध्रुव उसे पाता नहीं। तथा वह उपजे, विनशे पर्याय, वह शरीर के-जड़ के कारण से उपजे-विनशे, ऐसा है ही नहीं। वह पर्यायनय के विषय से स्वयं ही उपजती और विनशती है।

पररूप से भी उन रजकणों में नयी-नयी अवस्था होना, उनमें नहीं होता? यह पहली यह परमाणु की अवस्था आटारूप थी। वह आटा यहाँ आया या नहीं? दाल, भात लादा यहाँ। छोटा शरीर था, फिर यह दाल, भात और जो कुछ आया, वह इस पर्यायरूप से हुआ, देखो। रजकण तो वे हैं। रजकण की ध्रुवता तो नित्य रही, परन्तु उसकी अवस्था की यह खूनरूप से अवस्था हुई। यह खूनरूप से अवस्था, वह रजकण ध्रुव स्वयं नहीं आये, परन्तु पर्याय उसमें उपजी है। आहाहा! ले, यह तो कहाँ वापस गया परमाणु में। परमाणु का ध्रुवपना, वह पर्यायरूप से उपजा है? परमाणु का ध्रुवपना, उस पर्याय का व्यय होने पर उसके ध्रुव का नाश हुआ है? समझ में आया? ऐसी की ऐसी मजदूरी करके समय बिताया इसने। मोहनभाई! आहाहा! अरे! एक बार समझे तो यह न्याल हो गया। न्यालभाई! न्याल का रास्ता यह है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इसकी नजरें कहाँ डलाते हैं? यह आत्मा है, वह नित्य वस्तु है ध्रुव। वह स्वयं ध्रुव है, वह पर्यायरूप से उपजना और पर्यायरूप से विनशना, वह ध्रुव नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह पर्याय किसकी? जड़ की नहीं। जीव के अस्तित्व में, भव के भाववाला उपजना और भव के भाव का अभाव होकर देवरूप से

उपजना, देव के भाववाली अवस्था—वह सब अवस्था में होता है। उस अवस्था का वास्तविक कारण द्रव्य-ध्रुव नहीं है, तथा वह उसका कार्य नहीं है और उसका वह कारण नहीं। उस अवस्था का वह द्रव्य कारण नहीं, तथा वह कार्य भी नहीं कि यह हुआ, वह उसका कार्य है। किसी का कार्य नहीं। वह तो वस्तु ऐसी की ऐसी है। पर्याय स्वतन्त्र, ध्रुव भी स्वतन्त्र और पर तो स्वतन्त्र कहीं रह गये। समझ में आया?

कहते हैं, शिष्य का प्रश्न हुआ सिद्ध का। इतना तो शिष्य समझा कि यह कुछ... यह आत्मा को उत्पाद-व्यय बताते हैं। ध्रुवपना नहीं और अकेला उत्पाद-व्यय बताते हैं। उपजे और विनशे तो यह सिद्ध को क्या समझना? **कि संसारी जीवों के तो नर-नारकी आदि पर्यायों की अपेक्षा उत्पत्ति और मरण प्रत्यक्ष दिखता है, परन्तु सिद्धों के उत्पाद, व्यय किस तरह हो सकता है?** आपने तो कहा कि, उत्पाद-व्यय में ध्रुव आता ही नहीं तो सिद्ध को क्या है यह? समझ में आया? **क्योंकि उनके विभाव-पर्याय नहीं है,...** उन्हें विकार तो है नहीं। यहाँ तो विकार दशा में है तो उस विकार का अभाव होकर, दूसरे विकार में उपजे। उन्हें तो विकार नहीं तो उन्हें उपजना-विनशना पर्याय में कैसे लागू पड़ता है? पर्याय में कैसे लागू पड़ता है? ऐसा पूछता है। पर्यायार्थिकनय से बात आयी न, उसमें से प्रश्न आया। समझ में आया इसमें?

अरे! सर्वज्ञ के घर में जिन परमेश्वर ने क्या कहा (खबर नहीं होती)। हम जैन हैं। सिर फोड़ो। जैन क्या कहलाता है और उसका तत्त्व क्या, यह खबर नहीं। हम जैन हैं। अरे! बापू! जैन अर्थात् सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ अरिहन्त तीर्थंकर ने कहे हुए तत्त्व कैसे? ध्रुव क्या? पर्याय में क्या है? पर की पर्याय के साथ तो सम्बन्ध की बात भी नहीं यहाँ। यह पर्याय पर को उपजावे या यह पर्याय पर में उपजे, ऐसा तो नहीं, परन्तु ध्रुवपना पर्याय को उपजावे-विनशावे, ऐसा नहीं। समझ में आया?

तो भगवान! शिष्य को प्रश्न हुआ प्रभु! यहाँ तो ठीक। क्योंकि विकार है अवस्था में। पर्याय से, पर्याय से उपजना, विनशने की व्याख्या है न अभी तो। ध्रुव तो उसमें आता नहीं। ध्रुव... ध्रुव सदृश त्रिकाल (रहता है)। अब पर्यायरूप से यहाँ भव का विभाव उत्पन्न हुआ, उसका अभाव हुआ। यह तो ठीक विभाव। परन्तु जहाँ स्वभाव है, वहाँ और यह उत्पाद-व्यय क्या? वहाँ तो कुछ विभाव भी नहीं, विकार भी नहीं,

सदोषता नहीं। समझ में आया? कर्म-फर्म एक ओर रखो। यह विभाव नहीं, ऐसा कहा न? देखो न! विभावपर्याय नहीं है, ऐसा पूछा। यहाँ ऐसा शिष्य का प्रश्न है। सिद्ध में विकारी अवस्था नहीं, स्वभावपर्याय ही है। वहाँ तो अकेली स्वभावदशा है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसी पर्याय है सिद्ध भगवान को।

और वे सदा अखण्ड अविनश्वर ही हैं। वह पर्याय तो ऐसी की ऐसी रहती है। स्वभावपर्याय कहीं नाश होती नहीं। विभाव का तो ऐसे नाश होना होता है, यह ख्याल में आता है। वह तो एकरूप अखण्ड केवलज्ञान, केवलदर्शन ऐसे-ऐसे अखण्ड, अखण्ड, अखण्ड (रहता है)। उसने प्रश्न क्या किया है? यह पर्याय की बात करते हैं, हों! सदा अखण्ड अविनश्वरी पर्याय की बात करते हैं। क्या कहा? भगवान आपने तो ऐसा कहा कि, जो ध्रुव वस्तु है, स्वयं उसकी अवस्था में आती नहीं, अर्थात् अवस्थारूप से उपजे-विनशे नहीं। तो हम कहते हैं कि वह तो विभाव में तो लागू पड़े। संसार में विभाव अवस्था हुई और विभाव जाये। भव हुआ और भव का अभाव हो। भव अर्थात् वह योग्यता, हों! भव की। परन्तु इन सिद्ध को क्या समझना? आपने तो पूरा एक सिद्धान्त लिया था कि ध्रुव, वह पर्यायरूप से आता नहीं और पर्याय उपजे और विनशे। तो सिद्ध में उपजे-विनशे वह तो स्वभाव अखण्ड हो गया निर्मल। सिद्ध भगवान जो आत्मा हुआ अपने स्वरूप का भान करके, स्थिर होकर परमात्मा हुआ, उन सिद्ध भगवान को तो जो दशा प्रगट हुई अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, वह तो अखण्ड ऐसा का ऐसा रहता है। वहाँ खण्ड कम-ज्यादा होता है? कम-ज्यादा हो, तब तो उपजना-विनशना लगे। समझ में आया? क्या प्रश्न किया, वह समझ में आता है इसमें? हमको तो ऐसा समझ में आता है कि विभावरूप से कम-ज्यादा हो, तब तो वह उपजे-विनशे। अब वहाँ एकरूप धारा रहे, वहाँ उपजे-विनशे क्या होगा? ऐ... रतिभाई! यह शिष्य को पकड़ने का प्रश्न उठा, यहाँ से उठा है।

स्वभाव-पर्याय ही है, और वे सदा अखण्ड अविनश्वर ही हैं। कौन? स्वभाव-पर्याय। क्या? वे सिद्ध भगवान हुए, ध्रुव तो ऐसा का ऐसा अखण्ड, पर्याय में भव का अभाव होकर सिद्ध की पर्याय प्रगट हुई। सिद्ध, वह पर्याय है; वह कोई द्रव्य-गुण नहीं। परमात्मदशा है, दशा है, हालत है। हालत जो उत्पन्न हुई वह तो स्वाभाविक है और वह

अखण्ड है, एकरूप अखण्ड है, उसमें फिर खण्ड उपजना-विनशना खण्ड की भाँति वहाँ कहाँ आया?

इसका समाधान यह है... कहे हुए प्रश्न का उत्तर यह है कि **जैसा उत्पन्न होना, मरना, चारों गतियों में संसारी जीवों के है, वैसा तो उन सिद्धों को नहीं है,...** देखो! जैसा संसारी जीव में एक मनुष्यभव छूट जाये, देवभव हो, देवभव छूट जाये और एकेन्द्रिय जीव हो। देव मरकर एकेन्द्रिय हो। आहाहा! नाटक, वह क्या नाटक! बड़ा देव हो दूसरे देवलोक का, हों! देव दो सागर की स्थिति-आयुष्य। एक सागरोपम में दस क्रोड़क्रोड़ी पल्योपम (जाते हैं)। एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाते हैं)। ऐसा जिसे अमर लोग कह दे। ऐसा देव पुण्य के कारण से हुआ, परन्तु आत्मा का नहीं। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति सम्यक् भान बिना पुण्य बाँधकर वहाँ गया, वह वहाँ मूर्च्छा से वापस एकेन्द्रिय में फूल में अवतरित हो। फूल यह दिखता है वह जड़ नहीं, ... बात नहीं, हों! एकेन्द्रिय की पर्यायरूप से वहाँ उपजे। हीरा में उपजे, कोई पानी में जीव (हो)। पानी के जीव हैं, हों! एकेन्द्रिय, वहाँ देव मरकर जाये। महाराज! वहाँ तो विभाव में तो ऐसा उपजना-विनशना भासित हो, भासित हो वहाँ, परन्तु जहाँ एक धारारूप से सिद्ध भगवान तो पूर्णानन्द की दशा केवलज्ञान पूर्ण हो गयी। उसमें उपजना-विनशना किस प्रकार से? भाई! जैसा संसार में मरना और गतियों का है, **वैसा तो उन सिद्धों को नहीं है, वे अविनाशी हैं,...** क्या? वह पर्याय, हों! पर्याय, इस अपेक्षा से—विभाव की अपेक्षा से है नहीं। **परन्तु शास्त्रों में प्रसिद्ध अगुरुलघुगुण की परिणतिरूप अर्थपर्याय हैं,...** यह सूक्ष्म बात है जरा। **वह समय-समय में आविर्भावतिरोभावरूप होती है।** एक अगुरुलघुगुण की पर्याय भगवान सर्वज्ञ ने कही है, जानते हैं। सूक्ष्म बात है। श्रुतज्ञान में सब आ जाये तो केवलज्ञान में क्या बाकी रहे? ऐसा एक भाव एक समय-समय में सब संसारी जीवों को, पुद्गलों को और सिद्धों को समय-समय में षड्गुण हानि-वृद्धि की एक स्वाभाविक अर्थपर्याय सदा ही हुआ करती है कि जो ज्ञान में—छद्मस्थ के ख्याल में वह आ नहीं सकती। समझ में आया?

आविर्भाव—वह एक समय अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग में उन सिद्ध को अगुरुलघुगुण की पर्याय, परिणति ली है न पर्याय, वह समय-समय में आविर्भाव—

प्रगट होती है और ढँक जाती है, प्रगट होती है और ढँक जाती है। परन्तु वह एक समय में ही सब होता है, हों! षड्गुणहानिवृद्धि। सूक्ष्म बात है यह। यह कहेंगे केवलीगम्य है यह। **समय-समय में पूर्वपरिणति का व्यय होता है और आगे की पर्याय का आविर्भाव (उत्पाद) होता है।** यहाँ तो वापस एक समय की अगुरुलघु परिणति में पूर्व पर्याय का व्यय और उत्तर पर्याय का उत्पाद (होता है), इस अपेक्षा से सिद्ध में भी होता है। **इस अर्थपर्याय की अपेक्षा उत्पाद-व्यय जानना,...** एक तो इस अपेक्षा से उत्पाद-व्यय जानना। वह भी उत्पाद-व्यय लिया, हों! इसमें। एक समय-समय में भले छह हो, परन्तु पहले समय में षड्गुणहानिवृद्धि, दूसरे समय में उसका नाश हो जाये।

अन्य संसारी-जीवों की तरह नहीं है। सिद्धों के एक तो अर्थपर्याय की अपेक्षा उत्पाद व्यय कहा है। यह अगुरुलघु की अपेक्षा से। **अर्थपर्याय में षट्गुणी हानि और वृद्धि होती है।** यह सूक्ष्म बात कही। **१. अनन्त भागवृद्धि, २. असंख्यात भागवृद्धि, ३. संख्यात भागवृद्धि...** इसकी जरा बड़ी सूक्ष्म व्याख्या है। **४. संख्यात गुणवृद्धि, ५. असंख्यात गुणवृद्धि, ६. अनन्त गुणवृद्धि। १. अनन्त भाग हानि, २. असंख्यात भाग हानि, ३. संख्यात भाग हानि, ४. संख्यात गुणहानि, ५. असंख्यात गुणहानि, ६. अनन्त गुणहानि। ये षट् गुणी हानि-वृद्धि के नाम कहे हैं।** होते हैं समय-समय में, परन्तु एक समय में हो, वह दूसरे समय में नहीं होता; एक समय में हो, वह दूसरे समय में नहीं होता, इतना यहाँ सिद्ध करना है। एक समय में सब हो एकसाथ, परन्तु एक समय में उत्पाद, वह दूसरे समय में नहीं, उसका नाश। ऐसी अपेक्षा से सिद्ध में भी षड्गुणहानिवृद्धि होती है। आहाहा! उसमें तो कुछ ध्यान न रखे तो समझ में आये ऐसा नहीं कुछ। वे तो वार्ता राजा-बाजा की हो न जरा दूसरा विचार जाये तो और सांध दे एक बात को।

मुमुक्षु : ....बात भूले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात भूले नहीं वापस। ठीक गाली दी हो तो गाँठ बाँधे। मुझे (गाली दी)। अब तुझे कहाँ? सुन न! वह तो जान न, यह तो कहते हैं ऐसा हुआ। गाली तो जड़ की पर्याय थी। जानने में आयी तुझे। क्या? कि यह कुछ हुआ, दूसरा क्या। परन्तु तुझे क्या है? जानने में आवे और चिपके (कि) मानो परद्रव्यरूप हो गया

और परद्रव्य मुझमें घुस गया। आहाहा! करता है अपनी भ्रमणा का दुःख और यह उसके कारण हुआ, यह उसके कारण हुआ। मूर्खता कितनी!

इनका स्वरूप तो केवली के गम्य है, सो इस षट्गुणी हानि-वृद्धि की अपेक्षा सिद्धों के उत्पाद-व्यय कहा जाता है। एक बात, एक बात। सिद्ध की एक समय की पर्याय में ऐसे षड्गुणहानि-वृद्धि एक समय में, हों! ऐसा एक समय में वह दूसरे समय में नहीं, उसका उत्पाद-व्यय, उत्पाद हुआ उसका व्यय। ऐसा वहाँ सिद्ध में होता है।

मुमुक्षु : बारह भाग पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में बारह। परन्तु एक समय का दूसरा समय में न रहे, इतना यहाँ सिद्ध करना है। बारह भाग का तो एक समझाया एक समय की स्थिति का। अब जरा दूसरी बात है, वह थोड़ी लम्बी है, वह आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ७, रविवार, दिनांक - ३१-१०-१९६५
गाथा - ५६-५७, प्रवचन - ३८

(परमात्मप्रकाश) पहला भाग, ५६वीं गाथा चलती है, अन्तिम पीछे से चलता है देखो! अधिकार क्या चलता है? कि, उत्पाद-व्यय और ध्रुव। आत्मा में... आत्मा वस्तु है, वह ध्रुव है। वस्तु ध्रुवरूप से त्रिकाल है। उसमें उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्यय अर्थात् परिणमना, पर्याय का होना, अवस्था का होना। उस अवस्था का होना और व्यय होना, वह पर्याय अर्थात् अवस्थादृष्टि के विषय में है। वस्तु जो ध्रुव है, उसमें वह उपजना और विनशना ध्रुव में नहीं। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म है जरा, ध्यान रखे तो (समझ में आये ऐसा है)। यह आत्मा वस्तु ध्रुव नित्य स्तम्भ ज्ञान आदि गुण का नित्य स्तम्भ ध्रुव वस्तु। उसमें उजपना-विनशना है, उत्पाद-व्यय, वह पर्यायनय का—अवस्था का विषय है और वह है, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। द्रव्यार्थिक अर्थात् कि जो द्रव्य—त्रिकाली ध्रुव—(उसे) जो ज्ञान का अंश विषय करे, उसे द्रव्यार्थिकनय का ध्रुव कहा जाता है। और जो वर्तमान अवस्था का विषय करे, लक्ष्य करे—ऐसे ज्ञान को व्यवहार पर्यायनय कहा जाता है। पर्यायनय कहो या व्यवहारनय कहो। समझ में आया?

अब कहते हैं, संसारी जीव को तो भव होते हैं विभाव संसार। मनुष्यभव का उत्पाद और पूर्व के देवभव का व्यय। उसे तो उत्पाद-व्यय, इस प्रकार विभाव में घटित होता है। ध्रुवपना कायम रहकर मनुष्यभव का (उत्पाद होता है)। मनुष्यभव अर्थात् यह देह नहीं, मनुष्य के अन्दर गति की योग्यता। उसका उत्पाद और पूर्व में मनुष्य में था, उस मनुष्यगति का अभाव। इस गति का उत्पाद, और यह उत्पाद और वापस देव में जाये तो देवगति का उत्पाद-उपजना और मनुष्यगति का व्यय होना। ध्रुव तो कायम है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि भाई! संसारदशा में तो भवभ्रमण के एक भव का अभाव और

दूसरे का उत्पाद, उसमें तो यह उत्पाद-व्यय घटित हो सकते हैं। परन्तु तुम तो सब में उत्पाद-व्यय सिद्ध करना चाहते हो। तो सिद्ध में उत्पाद-व्यय किस प्रकार घटित होंगे? यह प्रश्न शुरु हुआ है। समझ में आया? जब संसारी आत्मा है... यहाँ जीव की बात चलती है, हों! अभी। सब द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या आयेगी ५७ (गाथा) में। यहाँ तो भगवान आत्मा ध्रुव कायम रहनेवाला, सदृशरूप से ध्रुव नित्य। अनन्त आत्मायें नित्य हैं वस्तु से, ध्रुव से टिकनेवाले स्वतत्त्व की अपेक्षा से, वह द्रव्यार्थिक अर्थात् जो द्रव्य कायम चीज़ है, उसे देखनेवाले नय से देखें तो वह कायम ध्रुव है। उसमें पलटना आदि नहीं। पलटना उसकी दशा में है, अवस्था में है। वह अवस्था-हालत है, उसमें पलटे भव हो, जाये; भव हो, जाये; भव हो और जाये। वह उसकी पर्याय की बात है, हों! शरीर की यहाँ बात नहीं। समझ में आया? भाव की बात है। यहाँ शरीर की कहाँ (बात है)? शरीर तो जड़ है उसे कहाँ... उसके उत्पाद-व्यय तो जड़ के हैं, वे अलग आयेंगे। उन्हें यहाँ कुछ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? वहाँ क्यों बैठे? मोहनभाई? बाद में क्यों आये?

मुमुक्षु : मनुष्यभव किसे कहना यह समझाओ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्यभव किसे कहना, नहीं समझाना। आत्मा ध्रुव नित्य है, यह समझाना है और उस नित्य ध्रुव में उजपना, बदलना ध्रुव में नहीं। उपजना, बदलना, उसकी अवस्था में, हालत में, हालत में, दशा में है। तो उपजे मनुष्यभव तो अन्दर पर्याय मनुष्य की, हों! यह देह की नहीं। मनुष्य के योग्य गति का उत्पाद और देव की गति का व्यय। देव में से आया वह। समझ में आया? इसी प्रकार मनुष्य का व्यय और मनुष्य का उत्पाद, मनुष्य में से मनुष्य हो। ऐसा मनुष्य में से देव हो तो मनुष्य की अवस्था का अभाव, देव की अवस्था का उत्पाद, ध्रुव वस्तु तो ध्रुव ही है। अवस्था में उपजना-विनशना विभाव में, परिभ्रमण में ऐसा अनादि से हो रहा है। तब शिष्य का प्रश्न है कि तुमने वहाँ उत्पाद-व्यय, उपजना—अभाव / व्यय सिद्ध किया, परन्तु सिद्ध भगवान में किस प्रकार से? वे तो अविनाशी हैं, उन्हें कुछ भव नहीं, भव करना नहीं। एक भव जाकर दूसरा भव हो, ऐसा तो उन्हें नहीं। वह तो उनकी पर्याय तो शुद्ध अविनाशी है। समझ में आया? यह भव का नाश हो और नया हो, नाश हो और नया हो, ऐसा वहाँ

नहीं। तो सिद्ध भगवान परमात्मा जो सिद्ध हुए, उन्हें अवस्था नयी होना और पुरानी अवस्था जाना, वह उन्हें किस प्रकार से तुम घटित करते हो?

तब एक बोल ऐसा कहा कि भाई! भगवान ने एक षड्गुणहानि-वृद्धि का एक गुण अगुरुलघु देखा है। उनकी पर्याय में—अवस्था में षड्गुणहानि-वृद्धि होती है। वह तो एक समय में षड्गुणहानि-वृद्धि। ऐसे स्वाभाविक पर्याय से उत्पन्न हो पहले समय में, दूसरे समय में उसका व्यय होकर दूसरी उत्पन्न हो। इस अपेक्षा से सिद्ध में भी अगुरुलघुगुण की षड्गुणहानि-वृद्धि की एक समय-समय की होती पर्याय की अपेक्षा से वह उत्पाद-व्यय उनमें—सिद्ध में भी घटित हो सकता है। कहो, समझ में आया? यह एक बोल आया है।

इनका स्वरूप तो केवली के गम्य है, षटगुण हानि-वृद्धि का। **सो इस षट्गुणी हानि-वृद्धि की अपेक्षा सिद्धों के उत्पाद-व्यय कहा जाता है।** है? ओहोहो! घर का माप करना, वह तो सब माप करे। कितने सरिया और कितने....

मुमुक्षु : २०२२ के वर्ष का उत्पाद हुआ और २०२१ के वर्ष का व्यय हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह २२ वर्ष में कहाँ गयी थी।

यहाँ तो पर्याय में एक स्वयं गति हो गयी और नयी गति हुई, उसकी बात चलती है। इसी प्रकार यहाँ वर्तमान समय में भी एक वर्तमान गति का उत्पाद है, उसका जाये और दूसरे समय में वापस नया उत्पाद हो। यह तो सामान्य पूरी गति रूप से वर्णन किया है, परन्तु आत्मा में समय-समय में मनुष्यगति का जो उत्पाद है, वह दूसरे समय नहीं रहता। ऐ... छोटाभाई! गजब बात, भाई! ऐसा भले उसमें विभाव में उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय हो, परन्तु यह सिद्ध में किस प्रकार?

कहते हैं, भाई! सिद्ध भगवान में यद्यपि इस अगुरुलघु की षड्गुणहानि-वृद्धि की पर्याय तो छहों द्रव्यों में है। परन्तु अब सिद्ध में हमारे उत्पाद-व्यय सिद्ध करने के लिये उसका आधार लेते हैं। उस पर्याय में सर्वज्ञ भगवान ने एक समय में सिद्ध की अवस्था में एक समय में षट् प्रकार की हानि और षट् वद्धि एक समय में भगवान ने देखी है। वह एक समय, वह दूसरे समय में रहता नहीं। पहले समय में षड्गुणहानि-

वृद्धि का जो उत्पाद, वह दूसरे समय में उसके उत्पाद में रहता नहीं। वह दूसरे समय में षड्गुणहानि-वृद्धि की पर्याय व्यय होती है और नये षड्गुणहानि-वृद्धि की पर्याय उत्पन्न होती है। इस अपेक्षा से सिद्ध को भी पर्याय में उत्पाद-व्यय घटित होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

दूसरा बोल। अथवा, अब यहाँ से लिया जाता है। **अथवा समस्त ज्ञेयपदार्थ...** इस जगत के तीन काल—तीन लोक के पदार्थ, **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणमते हैं,...** जगत के अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था से जाये, ध्रुव टिके। ऐसे अनन्त परमाणु और अनन्त आत्मायें समस्त ज्ञेय पदार्थ, समस्त ज्ञेय पदार्थ। **ज्ञेयपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणमते हैं, सो सब पदार्थ सिद्धों के ज्ञान-गोचर हैं।** सिद्ध के केवलज्ञान में वे सब अनन्त पदार्थ उत्पाद-व्यय और ध्रुव ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं। एक समय में ज्ञान में ज्ञात होते हैं। समझ में आया? **ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है, सो जब ज्ञेय-पदार्थ में उत्पाद-व्यय हुआ, तब ज्ञान में सब प्रतिभासित हुआ,...** अनन्त पदार्थ... जैसे यह अँगुली देखो! इस अँगुली से यह अँगुली ऐसी है या नहीं? इसकी पर्याय ऐसी है। भगवान के ज्ञान में इस प्रकार से भासित है और यह अँगुली वापस ऐसे हुई तो यह दूसरा समय उसमें हुआ। वहाँ भी दूसरे समय में इस प्रकार से हुआ, ऐसा ज्ञान जहाँ परिणमा, दूसरे रूप से भासित हुआ। समझ में आया? इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ—प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण वर्तमान अवस्था से दूसरी अवस्थारूप हो, वह पहली अवस्थारूप से ज्ञान में जाना था। यहाँ जहाँ बदला तो वहाँ भी ज्ञान बदला उस जाति का। आहाहा! कठिन भाई! इसे घर की बात समझना कठिन पड़ती है। पर की पंचायत माँडी है।

कहते हैं कि जो अनन्त पदार्थ हैं, वे समय-समय में अवस्थारूप से परिणमते हैं, नयी-नयी अवस्था। कहा न, हाथ का कहा कि, हाथ ऐसा है, उससहित की पर्याय केवलज्ञान में तत्प्रमाण भासित हुई है, वर्तमान सिद्ध में। वह जब ऐसे हुई, तब यहाँ समय बदला, वहाँ भी समय बदला। ऐसे हुई तो इस प्रकार से केवलज्ञान में भासित हुआ है। बदला न वहाँ वह। समझ में आया? इसी प्रकार अनन्त द्रव्यों की जो वर्तमान अवस्थारूप से है, तत्प्रमाण भगवान के ज्ञान में ज्ञात हुआ। वह अवस्था जहाँ पलटी तो

वहाँ भी ज्ञान में पलटा। यहाँ पलटा, वहाँ भी ज्ञान उस प्रकार से जानने में पलटा है। समझ में आया? कहाँ गये जमुभाई! समझ में आया या नहीं यह?

ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है,... क्या कहते हैं? वह ज्ञेयाकार, जो ज्ञेय है अनन्त द्रव्य, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु जो उनकी वर्तमान पर्याय है, उनका गुण है और उनका द्रव्य है, ऐसा भगवान के ज्ञान में उस प्रकार से ऐसा वर्तमान भासित हुआ। जो यहाँ पर्याय पलटी, यहाँ तो वहाँ भी ज्ञान में ऐसा हुआ कि यह पर्याय पलटी ऐसा ही जहाँ ज्ञान में पलटा हुआ। पहले यह वर्तमान जितने द्रव्य, गुण, पर्याय है, उस प्रकार से वहाँ ज्ञान का उत्पाद था। वहाँ जहाँ ऐसा पलटा तो वहाँ भी उसका उत्पाद— नया उत्पाद वापस ऐसा हुआ, उस प्रकार के ज्ञान का। गजब बात, भाई! यह तो साधारण बात है, हों! इसमें कहीं बहुत वैसी नहीं परन्तु कभी मेहनत ही की नहीं। ऐसा का ऐसा मुफ्त का हैरान होकर कमाया, खाया और पीया और मर गया ऐसा का ऐसा। खाने-पीने की कल्पना, हों! जेचन्दभाई! यह कहते हैं। अभी चिल्लाहट मचाते थे कि यह दूसरे सब सुखी और मैं दुःखी। परन्तु दुःख है कहाँ? यह सब, यह सब ऐसे... ऐसे हो गया है शरीर को, हिलता नहीं और... यह पैर काँपते हैं।

मुमुक्षु : वह दुःख कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है। ऐसा नहीं, भाई! वह मूढ़रूप से माना है इसने। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निरोग कहना किसे? निरोग की व्याख्या क्या? शरीर की अवस्था निरोगरूप से परिणमे, वह तो जड़ की अवस्था हुई, उसमें निरोगपना आत्मा में कहाँ आया? आत्मा उसका जाननेवाला (रहता है) कि यह अवस्था जड़ की इस प्रकार से हुई। ऐसा आत्मा ने जाना, जाना उसमें दुःख कहाँ आया? परन्तु मूढ़ उठाईगीर उठाकर ऐसा कहता है कि यह जानने में आया, यह इसमें ऐसा क्यों? यह

मुझमें ऐसा कैसे ? ऐसी कल्पना उसे दु:खरूप होती है। आहाहा! होती है जड़ में, ज्ञात होती है ज्ञान में, होती है मुझे—ऐसी मान्यता खड़ी करके दु:खी होता है। आहाहा! समझ में आया ? उसके पैर चले जड़ में और पैर चले जड़ में और उसे ठीक पड़ता है, ऐसा वह मानता है। उसे ठीक पड़े...

मुमुक्षु : ....प्रभु! नजर से दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर से दिखता नहीं। सुनो! खोटी नजर करके देखता है। ऐसा है। समझ में आया ? नजर से दिखे तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य ऐसा जाने कि इस शरीर की यह अवस्था उसके पास है, यह उसका जाननेवाला है। जाननेवाला है, इसलिए शरीर ठीक है, इसलिए उसे ठीक पड़ता है, ऐसा ज्ञान देखता नहीं। ज्ञान ने मूढ़ होकर कल्पना की कि इसे शरीर अच्छा, स्त्री अच्छी, लड़के अच्छे, सब अच्छे पके। ऐसा अज्ञानी को उसके ज्ञान में यह भासित होता है। वह मानता है कि मुझे ठीक है, वह मूढ़ है और दूसरा मानता है कि उसे ठीक है, वह मूढ़ है। दूसरी चीज़ में अवस्था हुई, वह तो ज्ञान जाननेवाला है। उसमें उसमें अच्छा और मुझे बुरा आया कहाँ से ? समझ में आया ? आहाहा! वल्लभदासभाई! भारी गजब!

यहाँ तो कहते हैं, देखो! सिद्ध भगवान का ज्ञान, ऐसा यह ज्ञान। इस ज्ञान में शरीर की यह अवस्था है, वह ज्ञान जानता है, वह ज्ञान का अपना उत्पाद। अब यहाँ जहाँ कुछ बदला तो यहाँ भी ज्ञान बदला। वह ज्ञान, ज्ञान का बदलना उसके कारण से नहीं, है स्वयं के कारण से, उसमें दु:ख क्या आया ? सरोगता शरीर में थी, निरोगता थी, ऐसा ज्ञान ने जाना। शरीर में, मुझे नहीं। सरोगता है, यह ज्ञान ने जाना कि यह सरोगता है। वह यहाँ अवस्था है, फिर यहाँ अपनी अवस्था पलटी। उसमें पलटी में 'यह मुझे दु:ख है', यह कहाँ से आया ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा नहीं ? मूढ़ ने माना है। निरोगता, वह मुझे ठीक है, यह आया कहाँ से ? निरोगता। निरोगता जड़ की अवस्था है। जड़ की अवस्था चैतन्य को ठीक, इसका अर्थ क्या ? समझ में आया ? जड़ की निरोग अवस्था के काल में ज्ञान

ने जाना कि यह उसकी अवस्था निरोग है। ऐसा ज्ञान ने जाना। वह क्षण में एकदम अवस्था पलटी। पलटी तो जड़ में गयी। जड़ में पलटी, आत्मा में नहीं, आत्मा का ज्ञान पलटा। जो उसे निरोगरूप से ज्ञान जानता था, वह सरोगरूप से ज्ञान में जानने में आया, ज्ञान में जानने में आया। उसमें दुःख आया, वह कहाँ से आया? और निरोग के समय ज्ञान ने जाना था, उसमें निरोगता से उसे सुख है, यह उसमें कहाँ से आया? समझ में आया? मुफ्त में कल्पना उठाईगीर अपने लिये और दूसरे के लिये मुफ्त की खड़ी करता है। मोहनभाई! आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा! यह तो रामजीभाई बोले उसे शरीर अच्छा है इसलिए। ऐई! परन्तु मुझे अच्छा नहीं, उसका क्या करना? ऐसा कहते हैं। परन्तु अच्छा किसका? शरीर का या आत्मा का?

मुमुक्षु : .... मुद्दे की...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या मुद्दे की परन्तु? शरीर की अवस्था आयी, उसमें आत्मा को क्या? भाई के घर में कुछ अच्छा हो, उसमें बनिया साथ में (रहे), उसमें उसे क्या? कहो। इसी प्रकार जड़ में कुछ हो, उसमें आत्मा को क्या? परन्तु स्वामी होकर पड़ा है न अन्दर। उस दृष्टि से दूसरे को स्वामी मानता है वापस। आहाहा! पाँच-पाँच लड़के, चार-चार तो पहुँचे व्यवस्थित कमाने में, ... हो गये, एकाध अभी पढ़ेगा, वह पाँच वर्ष में इकट्ठा हो जायेगा। यह भी गिनती कैसी करे उल्टी न! समझ में आया? किसे पहुँचे? कौन करे? क्या कहता है तू यह?

भगवान आत्मा ध्रुवरूप से कायम रहा हुआ है। उसकी अवस्था में परिणमन ज्ञान का, दर्शन का, आनन्द का इत्यादि पर्याय होती है। उस पर्याय में यह वस्तु पलटी, ऐसा यहाँ जाना। पर्याय पहले थी, वह यहाँ जाना, बाद में हुई—ऐसा जाना। जानने के उपरान्त इसमें दूसरा कहाँ से आया? जानने के उपरान्त यह निरोग थी और सरोग हुई, ऐसा जाना। जानने के उपरान्त मैं दुःखी हूँ, यह आया कहाँ? जानने के उपरान्त यह विपरीतता अन्दर घुसाई वह भ्रमणा से विपरीतता की है। समझ में आया? आहाहा! कहो, बराबर होगा या नहीं इसमें? हिम्मतभाई! अब इसमें पूरे दिन... यह क्या है इसकी उसे खबर पड़ती नहीं। ऐसा का ऐसा अन्ध का अन्ध, अन्ध से अन्ध पलाप वैसे चलता जाता है।

यहाँ तो सिद्ध की बात करनी है अब। वह तो यहाँ ऐसा है, हों! परन्तु यह तो संसार का उत्पाद-व्यय तो प्रत्यक्ष दिखता है न! ऐसे कहता था न वह? अब हमारे इसका क्या समझना? भगवान! सिद्ध परमात्मा ध्रुव वस्तु तो द्रव्यरूप से तो ध्रुव है सिद्ध भगवान, परन्तु उनकी जो केवलज्ञान की पर्याय है, उस केवलज्ञान की पर्याय में यह लोकालोक ज्ञेय है ज्ञान में जाननेयोग्य उसकी अवस्था पलटती है तो पहली अवस्था थी उसे उस प्रकार से ज्ञान ने जाना, वह अवस्था पलटी तो वहाँ ज्ञान ने भी उस प्रकार से जाना। उसके कारण से वह स्वयं अपने कारण से पलटती है, परन्तु दूसरे को पलटाने का क्या हेतु, ऐसा यहाँ से समझाया। ज्ञेय पलटने से ज्ञान पलटता है, वह स्वयं से पलटता है, उसके (—ज्ञेय के) कारण से नहीं। परन्तु उसे ख्याल में आवे कि एकरूप नहीं रहा ज्ञान। एकरूप यों भी ज्ञान उत्पाद-व्ययरूप ही होता है। केवलज्ञान भी कहीं ध्रुव नहीं, ध्रुव तो गुण है त्रिकाल। उसकी पर्याय—नयी अवस्था उपजे, वह केवलज्ञान की पर्याय पहले समय में उत्पन्न हुई, वह दूसरे समय में रहती ही नहीं। दूसरे समय में नयी केवलज्ञान की पर्याय होती है। परन्तु यह झट न समझे, इसलिए यहाँ से लिया है कि देख भाई! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में यह वस्तु वर्तमान जिस प्रकार से ज्ञेय हैं, यह भाषा, वे ज्ञेय गुलाँट खाते हैं दूसरे समय में सभी, ऐसे पलटते हैं, तो ऐसे ज्ञान में भी उस प्रकार का पलटा हुआ। पलटा तो स्वयं से हुआ है। समझाने की पद्धति इस प्रकार से की है। आहाहा! समझ में आया? उस केवलज्ञान में भी उत्पाद-व्यय हुआ या नहीं? आहाहा!

समस्त ज्ञेयपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणमते हैं,... यहाँ सिद्ध तो उन उत्पाद-व्यय का करना है। **सो सब पदार्थ सिद्धों के ज्ञान-गोचर हैं। ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है,...** ज्ञेयाकार जो ज्ञेय अनन्त हैं, उनरूप यहाँ ज्ञान की अवस्था है। **सो जब ज्ञेय-पदार्थ में उत्पाद-व्यय हुआ,...** ज्ञेय पदार्थ में पहली अवस्था थी, उसका व्यय हुआ, बाद की अवस्था उपजी, **तब ज्ञान में सब प्रतिभासित हुआ...** तो ज्ञान में वह भास हुआ। **इसलिए ज्ञान की परिणति की अपेक्षा...** ज्ञान की पर्याय की परिणमने की अपेक्षा से, **उत्पाद-व्यय जानना।** समझ में आया? यहाँ से समझाया। एक अगुरुलघु से समझाया, एक यहाँ ज्ञेय पलटते हैं इस अपेक्षा से ज्ञान पलटता है, ऐसा समझाया। पलटता है तो

स्वयं के कारण से, हों! आहाहा! परन्तु उस पलटने में पहले समय का ज्ञान था, इस प्रकार से जानने का और यहाँ गुलाँट खाया तो दूसरे समय का उस प्रकार का जानने का ज्ञान स्वयं से परिणमा। समझ में आया या नहीं?

भगवान के ज्ञान में वर्तमान में ऐसा भासित हुआ कि यह जीव मनुष्य के अन्तिम समय में है। ज्ञान में भासित हुआ। वह जीव दूसरे समय में सिद्ध हुआ। समझ में आया? तो ज्ञान में क्या भासित हुआ? किस प्रकार भासित हुआ? यहाँ ऐसा उसका ज्ञान भासित हुआ या नहीं? ज्ञान में पलटा हुआ या नहीं? वह केवलज्ञान पर्याय है, कहीं गुण नहीं। समझ में आया?

यह जीव इस समय में... भगवान महावीर का जीव पावापुरी के स्थान में अन्तिम समय में चौदहवें गुणस्थान में थे, उस पर्यायरूप से। सिद्ध ने ऐसा जाना था या नहीं? और उनके ज्ञान में ऐसा जाना था या नहीं? समझ में आया? वह अवस्था पूरी होकर सिद्ध हुए। ज्ञान में ऐसा आया या नहीं केवलज्ञान में भी कि यह अवस्था गयी? यह सिद्ध अवस्था हुई, वह अवस्था पलटी या नहीं अपने ज्ञान में? बहुत सूक्ष्म है न्यालभाई! आहाहा! यह तो ऐसी वस्तु है न? ध्रुवपना कायम रहकर और उसमें पलटा नहीं खाता, पलटा उसकी पर्यायनय के विषय में है। उसका उत्पाद-व्यय सिद्ध करना है। तो संसारी के उत्पाद-व्यय तो साधारण प्राणी कहता है कि हमको समझ में आया। समझे न? परन्तु यह सिद्ध को किस प्रकार से? देख भाई! एक अगुरुलघु की अपेक्षा से षड्गुणहानि-वृद्धि की पर्याय है, वह दूसरे समय में रहती नहीं, इस अपेक्षा से उत्पाद-व्यय।

दूसरा इस समय के ज्ञान का परिणमन लोकालोक के ज्ञेयाकाररूप परिणमता था अपनी पर्याय, दूसरे समय में पूरे लोक का पूरा पलटा एक समय में पूरे ज्ञेय का, ज्ञेय का दूसरा समय हो गया सबका, पलटा सब द्रव्यों का (हो गया)। ऐसा ज्ञान में आय। ज्ञान भी पूरा एक दूसरे समय... इस अपेक्षा से सिद्ध की पर्याय में भी उत्पाद-व्यय घटित होते हैं। आहाहा! अरे! परन्तु स्वभाव वह कहीं वस्तु! वह तो पर्यायनय की अचिन्त्यता बताते हैं, ध्रुव का तो क्या कहना! आहा! ध्रुव तो ऐसा पिण्ड भगवान अकेला पड़ा है। परन्तु ऐसी पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन... उस ज्ञान में भी अनन्त ज्ञेय जिस प्रकार से वर्तमान है, उस प्रकार से भूत, वर्तमान, भविष्य जाना। वह पर्याय वर्तमान थी, वह भूत

हो गयी ज्ञेय में, और भविष्य की पर्याय वर्तमान आयी तो यहाँ ज्ञान ने भी ऐसा जाना। ज्ञान ने ऐसा जाना। ज्ञान की पर्याय में जो भूत पर्याय वर्तमान थी, उसे वर्तमानरूप से पहले जाना, वर्तमान भूत हो गयी और भविष्य की वर्तमान आयी तो उसमें इसी प्रकार से ज्ञान पलटा या नहीं यहाँ? समझ में आया?

यह तो यहाँ ज्ञान का पलटा ऐसा यहाँ और यहाँ का पलटा यहाँ, ऐसे दोनों आमने-सामने हैं। किसी के कारण से कोई नहीं। आहाहा! एक उसके ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय कितनी सामर्थ्य धराती है, ऐसा कहते हैं। ऐसे जितने लोकालोक के ज्ञेय हैं, जिस प्रकार से वर्तमान उत्पादरूप से है, ध्रुवरूप से भले रहे और व्ययरूप से, उस प्रकार से ज्ञान ने जाना है एक समय में। दूसरे समय में वह उत्पाद गया और दूसरा उत्पाद आया। उसका परिणमन यहाँ ज्ञात हुआ, ज्ञान में ऐसा ज्ञात हुआ। दोनों को सम्बन्ध है—निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध। निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध का अर्थ पृथक्-पृथक् कार्य हो रहे हैं, उसे निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध कहा जाता है। समझ में आया?

अथवा... तीसरा बोल, अभी तीसरा बोल उत्पाद-व्यय को सिद्ध करने के लिये। सिद्ध का, हों! सिद्ध का। **अथवा जब सिद्ध हुए,...** भगवान आत्मा सिद्ध हुए, **तब संसार-पर्याय का विनाश हुआ, सिद्धपर्याय का उत्पाद हुआ,...** पहली संसारपर्याय थी, चौदहवें गुणस्थान में अन्त में उदयभाव का अंश व्यय हो गया, सिद्धपर्याय का उत्पाद हो गया, संसार पर्याय का व्यय, सिद्ध का उत्पाद हुआ। वह भी उत्पाद-व्यय हुआ न पूरा बड़ा ऐसा। संसार पर्याय का व्यय और सिद्ध का उत्पाद और ध्रुवपना तो कायम है। समझ में आया? चक्रवृद्धि के ब्याज निकाले बनिया फुरसत से बैठे। दस लाख में डालकर फिर वापस ब्याज निकाले। चह चक्रवृद्धि ब्याज कहलाता है। दस लाख का चार आना रूप से दिया हो तो दस लाख का चार आनारूप से एक दिन का जो ब्याज आवे, उसमें डाले। मिलाकर दूसरे दिन का दस लाख का उस ब्याज सहित चार आना का वापस मिलाकर डाले, तब चक्रवृद्धि ब्याज कहलाये न। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उत्पाद-व्यय का है, ऐसा कहते हैं। यह तो और बड़ा... मनुष्य था वहाँ कहाँ ढोर में कुछ भान, उस निगोद में पड़ा है। ... तथापि उसकी

उत्पाद-व्यय की पर्याय, वह पर्यायनय का विषय है, द्रव्य का नहीं। द्रव्य तो ध्रुव। आहाहा! समझ में आया? संसारपर्याय का नाश और सिद्धपर्याय का उत्पाद। **तथा द्रव्य स्वभाव से सदा ध्रुव ही है।** द्रव्य वस्तु जो चैतन्य ध्रुव है, वह तो ध्रुव है। जो अनादि का ध्रुव है, वह तो ध्रुव ही है सिद्ध। उनकी पर्याय जो थी संसार का नाश और सिद्ध की उत्पत्ति तो उत्पाद-व्यय सिद्ध में भी इस प्रकार से... एकदम संसार का व्यय, सिद्ध का उत्पाद, ऐसा। समझ में आया?

मोक्ष की पर्याय का उत्पाद, संसारपर्याय का अभाव। देखो! ऐसे लोहा है न, लोहा। ऐसा है। ऐसे छुरी मारी तो जंग का व्यय, प्रकाश का उत्पाद, ध्रुवपना लोहा तो ऐसा का ऐसा है। लोहा ध्रुवरूप से तो है। ... नहीं करते? ऐसा किया, वह व्यय हो गया जंग का और प्रकाश का उत्पाद, लोहा तो ध्रुव ऐसा का ऐसा है। छुरी कहीं चली गयी है? इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ में नयी अवस्था का उत्पाद होना, पुरानी अवस्था का जाना, एक समय में होता है। आहाहा! ध्रुवरूप से तो कायम है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐसा विषय कभी चले, इसलिए जरा लोगों को कठिन लगता है, परन्तु यह तो बहुत सादी बात है। इसमें जरा ध्यान रखे तो इसमें कहाँ... वस्तु है, वस्तु में नया-नया परिणमन है, परिणमना है। वह परिणमना उस पर्याय का है, ध्रुव परिणमता नहीं। अब परिणमन में दो प्रकार—पूर्व की अवस्था का जाना और नयी का होना। वह संसार में विभावरूप से और सिद्ध में स्वभावरूप से। यह सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। यह प्रभाकरभट्ट समझता था, वह ... वह तो विस्तार के लिये उसके बहाने कहा गया है। ऐसे नहीं कहा जाता। कहो, समझ में आया? ओहो!

सिद्धों के जन्म, जरा, मरण नहीं हैं,... अविनाशी पर्याय सिद्ध करे। **सिद्धों के जन्म, जरा, मरण नहीं हैं, सदा अविनाशी हैं।** देखो, पर्याय में अविनाशी। समझ में आया? पर्याय अर्थात्? वह कहीं यह संसार के जन्म, मरण ऐसा उसे नहीं। **सिद्ध का स्वरूप सब उपाधियों से रहित है, वही उपादेय है,...** आत्मा को अन्दर आदरनेयोग्य सिद्ध की पर्याय अत्यन्त निर्मल है, ऐसा निर्मल पर्याय का धाम भगवान वह आत्मा द्रव्य

में दृष्टि देने से सिद्ध की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? अब यह ५६ (गाथा) हुई। यह जीव की बात की थी, अब सब द्रव्य, गुण, पर्याय की बात करते हैं।

मूल यह द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान ही घट गया न, यह झगड़े उठे। द्रव्य, गुण, पर्याय की बात नहीं आती? यह एक बार लिखा था उस सूरतवाले ने। सूरतवाला था न वह कौन? साकरचन्द था एक बड़ा लेखक, श्वेताम्बर। उसने लिखा था। यहाँ से शुरु हुआ न लेख जब, वह लेख पड़ा है यहाँ कभी का—बहुत वर्ष का। कि अपने में तो यह चार ग्रन्थ है, द्रव्य-गुण-पर्याय के साधारण। जब से द्रव्य, गुण, पर्याय का सोनगढ़ से शुरु हुआ, तब से अपने साधु में भी उथल-पुथल खड़ी हुई है। यह द्रव्य और यह गुण और यह पर्याय। अपने तो मूल में तो नहीं था परन्तु दो, चार ग्रन्थ फिर हुए। समझे न? द्रव्यानुयोग तर्कणा है न? उसमें से यह बनाया है, भाई यशोविजय ने। ऐसा कि यह उसमें साधारण, परन्तु यहाँ से जब शुरु हुआ सोनगढ़ से... यह तो बहुत वर्ष की बात है, हों! एक लेख है। साकरचन्दभाई है एक कोई। उथल-पुथल खड़ी हुई, श्वेताम्बर के साधु में भी उथल-पुथल हुई। ...! यह पर्याय ऐसा कहते हैं और यह गुण ऐसा कहते हैं। ... दूसरा कुछ लिखा है, कुछ है अवश्य। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ५७

आगे द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप कहते हैं:— यह ५७। इस जगत का स्वरूप ही इस प्रकार से है। द्रव्यरूप से अर्थात् कायम शक्तिवानरूप से, गुणरूप से अर्थात् शक्तियों रूप से और पर्याय अर्थात् अवस्थारूप से, हालतरूप से। यह द्रव्य, गुण और पर्याय। उसमें एक-एक तत्त्व को तीनों यह होते हैं द्रव्य, गुण और पर्याय।

५७) तं परियाणहि दव्वु तुहुँ जं गुण-पज्जय-जुत्तु।
सह-भुव जाणहि ताहँ गुण कम-भुव पज्जउ वुत्तु॥ ५७॥

देखो! भगवान ने ऐसा कहा।

अन्वयार्थ :- जो गुण और पर्यायोंकर सहित है, उसको हे प्रभाकरभट्ट! तू द्रव्य

जान... क्या कहते हैं ? हे भाई ! जो द्रव्य कहते हैं वस्तु, वह उसके गुण और पर्यायसहित हो, उसे द्रव्य जान। देखो ! यह एक पूरा सिद्धान्त। द्रव्य अर्थात् वस्तु उसे कहते हैं कि उसके गुण कायम रहनेवाले और अवस्था होती हुई, उससहित का द्रव्य, उसे द्रव्य जान। पर सहित का द्रव्य, वह द्रव्य नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा ! यह बड़ा विवाद उठा। शरीर के द्रव्य, गुण, पर्याय रजकण-रजकण का द्रव्य परमाणु, गुण—शक्ति और पर्याय-अवस्था, उसके सहित को तू गुण-पर्यायसहित के द्रव्य को जान। उसके बदले किसी के गुण, पर्यायसहित के अपने द्रव्य को जाने, वह मूढ़ हो गया। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ पहला शब्द क्या है ? '**परियाणहि दव्वु**' क्या ? '**तुहुँ**' तू '**गुण-पज्जय-जुत्तु**' प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण, उसे द्रव्य कैसे कहते हैं ? द्रव्य किसलिए (कहते हैं) ? कि एक द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी शक्तियाँ... द्रव्य अर्थात् वस्तु, अब उसकी शक्ति होती है न ? गुण—स्वभाव, वह स्वभाव गुण और वर्तमान अवस्था। उस गुण और अवस्थासहित को द्रव्य कहा जाता है। दूसरे के गुण और अवस्थासहित के वह द्रव्य कहने में आता है, ऐसा है नहीं। भाई ! बात तो बहुत लॉजिक से है, परन्तु अब इसने कभी कुछ सिर ऊँचा किया नहीं न। ... की नहीं, दरकार कि क्या है यह ? क्या कहा ?

द्रव्य उसे जान, वस्तु उसे जान, आत्मा उसे जान, परमाणु उसे जान कि वह-वह द्रव्य अपने कायम के गुण और वर्तमान होती अवस्था सहित—युक्त, उस द्रव्य को गुण-पर्यायसहित को द्रव्य जान। परमाणु को भी उसके गुण और पर्यायसहित के उस परमाणु को द्रव्य जान। दूसरे का आत्मा भी वह द्रव्य, उसके गुण और पर्यायसहित का वह द्रव्य, ऐसा तू जान। चन्दुभाई ! यहाँ पर यहाँ लड़के का आत्मा और उसका शरीर। उस लड़के का आत्मा, उसे द्रव्य किस प्रकार से तू जान ? कि उसके गुण और पर्यायसहित वह द्रव्य, ऐसा जान। इस शरीर का एक-एक रजकण, उस रजकण के रंग, गन्ध आदि गुण और उसकी अवस्था, उसके सहित के उस परमाणु को द्रव्य जान। परन्तु उसके सहित को तू आत्मा है, ऐसा न जान। समझ में आया या नहीं ? कितने द्रव्यवाला एक द्रव्य ? क्या कहा ? कितने द्रव्यवाला एक द्रव्य, ऐसा कहा ? कितने गुण और पर्यायवाला द्रव्य, वह तो उसका स्वयं का हुआ। आहाहा ! मलूकचन्दभाई ! हें ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवद्रव्य ऐसा। बहुत जीव और अजीववाला वह जीवद्रव्य। स्त्री, पुत्र, परिवार वह जीव और उनके शरीर, पैसा, धूल, वह अजीव। यह एक जीवद्रव्य बहुत जीव और अजीववाला, वह जीवद्रव्य। वल्लभदासभाई! ऐ... जयन्तीभाई! अरे! ऐसा जीवद्रव्य नहीं होता। भाई! तूने विचार नहीं किया। द्रव्य वस्तु उसे कहते हैं, वस्तु उसे कहते हैं, पदार्थ उसे कहते हैं, द्रव्य भगवान उसे कहते हैं कि उस द्रव्य के जो कायम रहनेवाले गुण और उनकी वर्तमान अवस्था गुण-पर्यायसहित, उसे द्रव्य कहते हैं। दूसरे द्रव्यसहित को द्रव्य कहते हैं, ऐसा वस्तु में नहीं हो सकता। समझ में आया? यहाँ तो एक-एक शब्द में भेदज्ञान है। आत्मा को द्रव्य ऐसा जान कि कर्मसहित वह आत्मा, ऐसा द्रव्य जान, ऐसा कहा? आत्मा द्रव्य ऐसा जान कि कर्मसहित आत्मा को द्रव्य जान, ऐसा कहा भगवान ने? ऐसा है?

मुमुक्षु : मुश्किल से मजा करते थे उसमें....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। मुश्किल-मुश्किल से मूढ़ता में मजा करते थे। बात सच्ची है, हों! एक व्यक्ति ऐसा कहता था, आकर कहता था, मुश्किल-मुश्किल से चलते थे, वहाँ ऐसा मारा बीच में कि लकड़ी उठायी नहीं जा सकती, लकड़ी से मरता नहीं। लकड़ी घुसायी। एक व्यक्ति आया था विरमगाँव से। कस्टम का (अधिकारी)। श्वेताम्बर था। सुना सही, फिर सुनकर अन्दर आया। इस लकड़ी से मारा नहीं जा सकता, फलाना... हम चलते थे, उसमें यह बीच में घुसाया। आहाहा! कहो, यह बात तो समझ में आती है या नहीं?

द्रव्य किसे कहते हैं? यह सिद्धान्त पहला। '**दव्वु तं परियाणहि तुहुँ जं गुण-पज्जय जुत्तु**' यह एक शब्द। वस्तु उसे कहते हैं कि उसके गुण और उसकी पर्यायवाले को द्रव्य कहते हैं। आत्मा उसे कहते हैं कि उसके अनन्त गुण और उसकी पर्यायवाले को द्रव्य कहते हैं। कर्म का रजकण उसे कहते हैं कि उसके अनन्त गुण और उसकी पर्याय (सहित) को उसका द्रव्य परमाणु को कहते हैं। आत्मा के पास है, इसलिए आत्मा को द्रव्य वह है या कर्म आत्मा का हो गया और आत्मा कर्म का हुआ, ऐसा कभी

तीन काल में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐ दास! क्या होगा यह? मिल-बिल का कितना किया होगा यह? मिलवाला आत्मा, मिल का मालिक आत्मा; इस प्रकार से द्रव्य की पहिचान होगी? घर-परिवार का तो सही, मिल का नहीं अब। चन्दु का पिता तो है या नहीं? नहीं? यह तो इनकार करते हैं यहाँ, देखो!

कहते हैं कि, द्रव्य को पहिचानना हो तो अर्थात् कि पदार्थ को जानना हो तो वह पदार्थ उसके अनन्त गुण वर्तमान वर्तते और उसकी अवस्था क्षण-क्षण में वर्तती, उन गुण-पर्याय '**जुत्तु**' उस द्रव्य को तू द्रव्य जान, ऐसा कहा। वरना करो दलील। उसमें क्या! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह का वह हुआ। वह तो यह गुण, गुण का समूह द्रव्य हो गया। उस गुणसहित को द्रव्य जान, पर्यायसहित को द्रव्य जान। और गुण किसे कहना? गुण किसे कहना, खबर है? द्रव्य के सम्पूर्ण भाग में, सम्पूर्ण अवस्था में (व्यापे, वह गुण)। हो गया... हालत आ गयी। गुण किसे कहना? कि द्रव्य के पूरे भाग में अर्थात् क्षेत्र आ गया और प्रत्येक हालत में अर्थात् काल आ गया, अवस्था हो गयी। पूरा हो गया। गुण और पर्यायसहित के को द्रव्य कहना।

मुमुक्षु : .... किस प्रकार से कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में हो गया। तीन काल की पर्याय का पिण्ड, वह गुण और अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य। यहाँ तो वर्तमान लेना है न। वह तो चाहे जो व्याख्या लो न। यहाँ तो वर्तमान में एक समय की जितनी पर्यायें हैं और एक समय के जितने गुण हैं, भूत-भविष्य की पर्याय गुण में समा गयी। क्या कहा? वर्तमान आत्मा, वर्तमान परमाणु उसे कहते हैं कि, द्रव्य उसे कहते हैं कि उस द्रव्य के उसके गुण अनन्त और उसकी पर्याय अनन्त बस। भूत, भविष्य की अभी बात नहीं। द्रव्य उसे कहते हैं। पर्याय-गुणसहित को द्रव्य कहते हैं। भूत, भविष्य को समय-समय में ऐसा कहते हैं वापस। प्रत्येक समय में, ऐसा कहते हैं। संसारी से लेकर सिद्ध, निगोद से लेकर .... और परमाणु से लेकर स्कन्ध, उसकी व्याख्या विस्तार करेंगे अन्दर। समझ में आया?

आहाहा! अरे! भगवान! यह निर्णय करने जाये न, तो स्थिर हो जाये अन्दर ऐसा है।

यह अलग अकेला तू द्रव्य। द्रव्य किसे जाने? उसके गुण-पर्यायवाला द्रव्य। अर्थात् यह द्रव्य, गुण-पर्यायवाला। अर्थात् यह गुण और पर्याय, इस द्रव्य के, इतना लक्ष्य उसके द्रव्य के ऊपर जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... निकलेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या निकलता है यह। यह गुण और पर्याय (युक्त) द्रव्य। ऐसे द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाने से पर्याय में सुख की दशा प्रगट होती है। उस पर्यायसहित, वह द्रव्य। पहले दुःख की पर्याय और गुणसहित का द्रव्य। ऐसे दुःख की पर्यायसहित का और गुणसहित का द्रव्य, उस द्रव्य का निर्णय करने जाये, वह गुण-पर्यायसहित द्रव्य। यह गुण-पर्याय, वह द्रव्य। वह द्रव्य ऐसा निर्णय किया, वह इस पर्याय में दुःख की पर्याय का व्यय हुआ और आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई सम्यग्दर्शन, उससहित की पर्याय अर्थात् द्रव्य। आहाहा!

यह किसके लिये चलता है यह? '**परियाणहि**' शब्द पड़ा है न? '**परियाणहि**' बराबर समस्त प्रकार से जान। भगवान आत्मा द्रव्य, उसे कहना (कि) उसके अनन्त गुण और पर्यायसहित द्रव्य। इस प्रकार जहाँ यह द्रव्य ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो उसे द्रव्य के लक्ष्य से निर्मल पर्याय उत्पन्न हुए बिना रहती नहीं। पहले लक्ष्य नहीं था, तब तक था तो वही द्रव्य। द्रव्य तो उन गुण और पर्यायसहित का ही द्रव्य था, परन्तु उसे 'यह द्रव्य' ऐसा ख्याल में नहीं था। समझ में आया?

यह पर्याय ज्ञान की, यह गुण, उससहित द्रव्य। ज्ञान की पर्याय, गुण कायम, उससहित का द्रव्य। ऐसे द्रव्य पर लक्ष्य जाने से उस द्रव्य में जो पहली पर्याय थी, वह पर्याय व्यय हो गयी और दूसरी पर्याय नयी सम्यग्ज्ञान की उत्पन्न हुई। उस सम्यग्ज्ञान की पर्यायसहित, गुणसहित का वह द्रव्य। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कुछ नहीं वहाँ अब क्या? वहाँ सोजिश है मुफ्त की किसी की। कहाँ है? इसका यह बाप वहाँ जाये तो सामने देखता नहीं वह। खबर

नहीं तुमको। पैसे हुए। पैसे किसको हुए ? किसी को हुए नहीं। पैसे का रजकण... पैसे को पहिचानना हो तो किस प्रकार से पहिचानना ? कि उसके गुण और पर्यायवाला द्रव्य, ऐसे पहिचानना। यह जीव को जीव पहिचानना हो तो किस प्रकार पहिचानना ? दूसरे जीव को भी। उसके अनन्त कायम रही हुई शक्तियों का पिण्ड गुण और उसकी पर्यायसहित का, उसे द्रव्य कहना। पैसेवाले को द्रव्य कहना आत्मा, ऐसा यहाँ कहा नहीं। आहाहा ! ऐ... भीखाभाई ! यह तो पहले से जरा शब्दार्थ कहा। समझ में आया ?

अब गुण और पर्याय की व्याख्या। वह तो द्रव्य-वस्तु की कही। गुण किसे कहना ? **'सह-भु' जो सदाकाल पाये जावें, नित्यरूप हों, वे तो उन द्रव्यों के गुण हैं,...** भगवान आत्मा वह वस्तु, वह गुण-पर्यायसहित। अब गुण किसे (कहना) ? यह द्रव्य की व्याख्या की। अब गुण। वह द्रव्य के साथ कायम रहे, वस्तु के साथ कायम रहे। स्वभाव अनन्त ज्ञान, दर्शन, गुण, वह उसे गुण कहते हैं। सहभावी—उसके साथ कायम रहे। साथ में द्रव्य है तथा उसके गुण अनन्त साथ में रहे, ऐसे को गुण कहा जाता है। कहो, साथ में क्या रहे ? गुण। उन गुणसहित का... पर्यायसहित का द्रव्य कहा, यह साथ रहे, उसे गुण कहा। उसे अन्वय कहेंगे। सहभावी और अन्वय। समझ में आया ? यह सहभावी तो शब्द चलता है।

'सह-भुव' साथ में होनेवाले, साथ में नित्यरूप, उसे गुण कहते हैं। द्रव्य के साथ-साथ क्या कायम रहे ? कर्म रहते होंगे ? स्त्री-पुत्र कायम साथ में रहते होंगे ? उसका गुण कहलाये ? अधिक पैसावाला बड़ा गुणी। नहीं ? साथ में रहनेवाले आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त गुण साथ में रहनेवाले, उन्हें गुण कहा जाता है। एक परमाणु को यह एक पॉईन्ट रजकण द्रव्य कहते हैं। गुण-पर्यायवाला वह द्रव्य। गुण-पर्याय कहेंगे, हों ! 'गुण-पर्यायवत् द्रव्यं' कहेंगे टीका में। आधार देंगे। यह परमाणु भी गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अवस्था, वह गुण-पर्याययुक्त द्रव्य। अब गुण किसे कहते हैं ? परमाणु के साथ में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, अस्तित्व आदि अनन्त गुण रहे, उसे गुण (कहते हैं)। नित्य रहे, द्रव्य के साथ नित्य रहे, उसे गुण कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

कोई केवली की कथन पद्धति, सन्तों की कहने की पद्धति और... ओहोहो !

गजब बात है! एक-एक बोल में पूरा समझा देते हैं। कोई भी एक बोल लो, उसमें भेद... भेद... भेद... भेद... भेद... भेदज्ञान। द्रव्य के गुण किसे कहते हैं? कि जो गुण द्रव्य के साथ सदा रहे। पर्याय नित्य नहीं रहती। दूसरी चीज़ तो उसके साथ है ही नहीं। द्रव्य के साथ कायम परमाणु रहते हैं? परमाणु तो उसके साथ में गुण उसके—परमाणु के रहे, आत्मा के साथ आत्मा के गुण कायम रहनेवाले हैं। आहा! ऐसा विचार भी कभी किया नहीं। मूढ़पने में व्यर्थ गँवाया, पावक में पूळा जलाया। क्या कहा? अग्नि के ढ़ेर में पूळा डालकर जला दिया। मूढ़पने में अवतार व्यर्थ गँवाया। आहाहा!

भगवान आत्मा और परमाणु, उसके सब गुण उस वस्तु के साथ कायम रहते हैं। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति आदि गुण हैं। शान्ति अर्थात् चारित्र। ऐसे गुण त्रिकाल द्रव्य के साथ ही होते हैं। परमाणु के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण परमाणु के साथ नित्य रहते हैं। उसे गुण कहा जाता है। और **'क्रम-भुव'। जो द्रव्य की अनेकरूप परिणति क्रम से हों अर्थात् अनित्यपनेरूप समय-समय उपजे, विनशे, नानास्वरूप हों, वह पर्याय कही जाती हैं।** तीन की व्याख्या हो गयी संक्षिप्त। क्या कहा? और द्रव्य जो है, वस्तु जो है, उसकी अनेकरूप परिणति पर्याय, पर्याय—अवस्था क्रम-क्रम से हो। गुण नित्य रहे, अवस्था क्रम-क्रम से हो। '**क्रम-भुव**' है न? पहली अवस्था हो वह दूसरी अवस्था में न रहे। गुण तो एक साथ अनन्त रहे और पर्याय '**क्रम-भुव**' क्रमभावी—जिस समय में जो है, वह बाद में (नहीं)। अनित्य है, इसलिए बाद में वह नहीं रहती। ऐसे क्रम-क्रम से हो, वह पर्याय का लक्षण है। एक साथ नित्य रहे, वह गुण है। द्रव्य, गुण और पर्यायसहित के को द्रव्य कहा जाता है। यह तीन लक्षण सामान्य रीति से गाथा के वर्णन किये। अर्थ आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ८, मंगलवार, दिनांक - ०२-११-१९६५
गाथा - ५७, प्रवचन - ३९

परमात्मप्रकाश ५७वीं गाथा।

भावार्थ :- जो द्रव्य होता है, वह गुण-पर्यायकर सहित होता है। क्या कहते हैं? इस जगत के अन्दर भगवान तीर्थंकरदेव ने जाति से छह द्रव्य देखे, संख्या से अनन्त। वह प्रत्येक द्रव्य वस्तु उसके गुण-पर्यायसहित है। समझ में आया? देखो, है? **गुण-पर्यायकर सहित होता है।** गुण अर्थात् त्रिकाली शक्ति और पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था, उससहित हो, उसे द्रव्य कहा जाता है। समझ में आया? इसका स्पष्टीकरण करते हैं, देखो! **यही कथन तत्त्वार्थसूत्र में कहा है 'गुणपर्यायवद् द्रव्यं'।** वहाँ गुणपर्यायवद् द्रव्यं कहा है, यहाँ **'गुण-पज्जय-जुत्तु'** कहा है, इतना पाठ में शब्द में अन्तर है।

अब गुण-पर्याय का स्वरूप कहते हैं:- अब कहते हैं, देखो! **'सहभुवो गुणाः क्रमभुवः पर्यायाः' यह नयचक्र ग्रन्थ का वचन है, अथवा...** दूसरा लक्षण कहते हैं, दूसरे प्रकार से, **'अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायाः' इनका अर्थ ऐसा है,...** अब अर्थ करते हैं। **कि गुण तो सदा द्रव्य से सहभावी हैं,...** क्या कहते हैं? यह आत्मा है न आत्मा, उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह गुण तो सहभावी हमेशा साथ में एकरूप नित्य रहते हैं। समझ में आया? जरा ध्यान रखना पड़ेगा, हों! यह सब विषय ऐसा है। सूक्ष्म है। यह आत्मा है न, यह आत्मा द्रव्य कहते हैं, एक-एक द्रव्य। वह द्रव्य अर्थात् क्या? कि वस्तु। वस्तु अर्थात् क्या? कि गुण-पर्यायसहित, गुण-पर्यायसहित। वह गुण अर्थात् क्या? कि उस द्रव्य में कायम रहनेवाले आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि, यह परमाणु में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श आदि। यह गुण, उसे सहभावी, वस्तु में सदा ही एकरूप नित्य रहनेवाले, उन्हें गुण कहा जाता है। समझ में आया?

गुण तो सदा द्रव्य से सहभावी हैं, द्रव्य में हमेशा एकरूप, नित्यरूप पाये जाते हैं,... दो भाषा है। क्या कहा? आत्मा है वस्तु। उसमें उसके गुण जो हैं, वह एकरूप

रहते हैं, सदृश है और वह नित्य है, उसे गुण कहते हैं। उन गुणसहित को द्रव्य कहते हैं। समझ में आया? उस कर्मसहित को आत्मा कहते हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा। शरीरसहित आत्मा, ऐसा नहीं कहा। उस शरीर का एक-एक रजकण उसमें नित्य जो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वह सहभावी नित्य एकरूप नित्य रहते हैं, ऐसे गुणसहित को परमाणु कहते हैं। वह साथ में है, इसलिए आत्मासहित परमाणु कहते हैं, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

एक-एक परमाणु में द्रव्य कैसे कहते हैं, उसे रजकण को वस्तु? कि उसके नित्य जो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श एकरूप सदृशरूप से नित्य द्रव्य में रहनेवाले, इसलिए उसे गुण कहते हैं। उस गुणसहित को द्रव्य कहा जाता है। समझ में आया? आत्मा वस्तु है। वह आत्मा गुण-पर्यायसहित को वस्तु कहते हैं। तो उसके गुण क्या? कि जानना-देखना, आनन्द, अस्तित्व आदि कायम रहनेवाले। कायम रहनेवाले एकरूप नित्य रहनेवाले, उन्हें गुण कहते हैं। उन गुणसहित को द्रव्य कहते हैं। वजुभाई! इसमें क्या परन्तु इसमें सीधी बात है, इसमें कुछ बहुत लम्बी बात कहाँ है? यह आत्मा है न, यह आत्मा शरीरसहित है, इसलिए आत्मा कहते हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु शरीररहित का आत्मा तो बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह रहा, यह शरीररहित ही आत्मा है। आत्मा अर्थात् कि शरीररहित, आत्मा अर्थात् कर्मरहित, आत्मा अर्थात् स्त्री, पुत्र, परिवार के मकान, पैसा रहित। तब सहित क्या? समझ में आया?

एक-एक आत्मा अर्थात् अन्दर आत्मा एक-एक अर्थात् ... यहाँ तो सहित की बात है, रहित की तो यह तो एक समझाने को कही। वह यह आत्मा जो उसे आत्मा कहते हैं कि जो आत्मा शरीररहित, कर्मरहित, स्त्री-पुत्ररहित, मकान-पैसारहित। अब रहित वह तो वह आत्मा। परन्तु अब सहित क्या? कि, यह आत्मा अपने कायम ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व कायम एकरूप और नित्य (रहे)। उसमें अनेकरूप और अनित्य, ऐसा आयेगा। ध्यान रखना। समझ में आया?

यह तो तत्त्वज्ञान की पहली बात है। यह वस्तु समझे बिना यह किसी की

अवस्था किसी में डाले और किसी का गुण किसी में डाले। अनादि से भ्रम सेवन करता है। समझ में आया? कर्म है, उसके रजकण हैं कर्म के। वे एक-एक रजकण इस आत्मा से रहित, दूसरे परमाणु से रहित, आत्मा के गुण से रहित, आत्मा की पर्याय से रहित है। उन रजकण में उनके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण सदृश एकरूप नित्य रहनेवाले गुणवाला, उसे परमाणु द्रव्य कहते हैं। आत्मा साथ में है, इसलिए आत्मासहित को परमाणु कहते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? जेचन्दभाई! इस शरीर में रोग आया तो, कहते हैं कि, रोग की पर्यायसहित और उसके रंग, गुण सहित परमाणु को द्रव्य कहते हैं। परन्तु उस रोगसहित पर्याय आत्मा को है, यह मूढ़ मानता है। उसमें है नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु दुःख होता हो और....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दुःख की पर्यायसहित यह द्रव्य है। दुःख की पर्याय, शरीर के रोगसहित है, इसलिए दुःख की पर्याय है, ऐसा नहीं। दुःख की पर्याय उसमें है, उस आत्मा में। यह बाद में आयेगा। उस पर्यायसहित, गुणसहित, वह आत्मा है। परन्तु पर्याय में दुःख हुआ, कर्मसहित है इसलिए दुःख हुआ, शरीरसहित है इसलिए दुःख हुआ—ऐसा नहीं। आहाहा! कहो, बराबर है यह? अरे... भाई! यह पर्याय में आयेगा, अभी तो यहाँ अपने गुण लिये जाते हैं न। क्या कहा?

गुण तो सदा द्रव्य से सहभावी हैं,... एक-एक आत्मा और एक-एक रजकण परमाणु भिन्न-भिन्न वह वस्तु। उसे द्रव्य क्यों कहते हैं? कि उसके गुणसहित वह द्रव्य है, उसके स्वभावसहित वह द्रव्य है। वस्तु है, उसकी त्रिकाली शक्तिरहित द्रव्य नहीं होता। वह वस्तु है, उसकी त्रिकाली शक्ति एकरूप और नित्य। जैसे वस्तु—आत्मा नित्य है, वैसे रजकण, वे नित्य हैं। कायम है न? तो उसके साथ ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण वे एकरूप रहनेवाले हैं, परिणमते नहीं, ऐसा कहना है और नित्य रहनेवाले। एकरूप नित्य रहनेवाले द्रव्य के साथ उस गुणसहित को आत्मा कहते हैं। पर्यायसहित बाद में लेंगे। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी वस्तु ही ऐसी है। वस्तु इस प्रकार से है। अब उसे करना है किस प्रकार? कहो। नहीं, उस प्रकार से करना है? क्या कहा? देखो!

अब फिर पर्याय आती है न। **और पर्याय नानारूप होती हैं,...** देखो! और आत्मा में तथा परमाणु में प्रत्येक में। पर्याय अनेकरूप है। उसमें एकरूप था, इसमें अनेक है। वह एकरूप सदृश थे गुण और यहाँ पर्याय अनेकरूप, अनेक अर्थात् भिन्न-भिन्न है। **जो परिणति पहले समय में थी,...** देखो, फिर वह बदलती है। नित्य नहीं, ऐसा बताना है। अनेकरूप है और **परिणति पहले समय में थी, वह दूसरे समय में नहीं होती, समय-समय में उत्पाद-व्यय होता है, इसलिए पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है।** फिर से, देखो इसका अर्थ। यह आत्मा है उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द वह शाश्वत् रहनेवाले एकरूप नित्य, उसे गुण कहते हैं। उस गुणवाला द्रव्य और उसमें पर्याय अनेकरूप है। अनेकरूप और वह एक समय में हो, वह दूसरे समय में नहीं रहती। प्रत्येक आत्मा में और प्रत्येक रजकण में जो एक समय की वर्तमान अवस्था होती है, वह दूसरे समय में नहीं रहती, उसे क्रमवर्ती पर्याय कहते हैं। वह क्रमवर्ती पर्याय, सहवर्ती गुण, उसे द्रव्य कहते हैं। समझ में आया?

'दव्वु गुण-पज्जय-जुत्तु' इस शब्द की व्याख्या चलती है। आहा! पैसेवाला, वह आत्मद्रव्य; स्त्री-पुत्रवाला, वह आत्मद्रव्य—ऐसे तीन काल में—तीन लोक में नहीं, ऐसा कहते हैं। वजुभाई! यह मनुष्यवाला, वह आत्मद्रव्य; वाणीवाला, वह आत्मद्रव्य। (जहाँ) कर्मवाला आत्मद्रव्य नहीं, फिर प्रश्न कहाँ रहा? समझ में आया? आत्मा वस्तु, उसे भगवान त्रिलोकनाथ ने देखा और ऐसा है कि यह आत्मा अपने गुण और पर्यायसहित, उसे आत्मा कहते हैं। उसका लक्ष्य यह गुण-पर्यायसहित उस **'जुत्तु'** वह आत्मा, उनके सहित वह आत्मा, उनके युक्त वह आत्मा। कर्मयुक्त और शरीरयुक्त, वह आत्मा, उसे आत्मा नहीं कहा जाता। आहाहा!

मुमुक्षु : भिन्न करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न ही है, करके नहीं। उसे खबर नहीं। भिन्न है, उसे माना है एक उसकी भ्रमणा से। थोड़ा सूक्ष्म आया। क्या कहा?

यह अन्दर आत्मा उसे कहते हैं। ऐसा है, भगवान ने ऐसा देखा है, भगवान ने ऐसा कहा, तीर्थंकरदेव ने ऐसा देखा और कहा और ऐसा है। कैसा है ? कि, यह एक आत्मा जो अन्दर है, उसे आत्मा द्रव्य कहते हैं, वस्तु (कहते हैं)। तो उस वस्तु में बसे हुए क्या हैं ? गुण और पर्याय। उसके अनन्त गुण एक समय में रहनेवाले नित्य और पर्याय क्रम-क्रम से अनेक होनेवाली। वह अनेक पर्याय हो, ज्ञान की अवस्था, दर्शन की अवस्था, भले राग की अवस्था, दुःख की अवस्था—वे सब अवस्थायें और गुण, वह अवस्था और गुणसहित, उसे आत्मा कहते हैं। कर्मसहित को आत्मा और शरीरसहित को माना, वह मूढ़ अज्ञानी है। ऐसी (वस्तु) है नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? कहो, इसमें मकानवाला आत्मा कितना कहलाता होगा ?

मुमुक्षु : जितने हों उतने मकानवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो ठीक। चार नहीं, तीन है। ... कहो, समझ में आया ? ऐई !

कहते हैं कि, आत्मा उसे कहते हैं, एक-एक आत्मा उसे कहते हैं और इस प्रकार से है, इस प्रकार से है, उसे ऐसा कहते हैं और ऐसा उसे जानना चाहिए। वजुभाई ! यह आत्मा वस्तु—पदार्थ है। उस वस्तु के अन्दर नित्य रहनेवाले, कायम रहनेवाले, एकरूप रहनेवाले, हमेशा रहनेवाले ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। और उनकी समय-समय में पर्याय बदले, अनेक-अनेक (पर्याय) समय-समय में बदले। ऐसी अवस्थावाला और ऐसे गुणवाला, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, पोपटभाई ! भारी परन्तु खिचड़ा किया है न इसने भी। इतने लड़केवाला और इतनी स्त्रीवाला। स्त्री भी किसी को अधिक होती है, हों ! इसलिए फिर कोई कहे कि इतनी स्त्री कैसे कही ? काठी को बहुत स्त्रियाँ होती हैं। यह गुंडाळा में एक था, नहीं ? गुंडाळा में। खाचर कैसा कुछ ? बहुत स्त्रियाँ। पूछे, तुम्हारे घर में कितनी रानी हैं ? मुझे खबर नहीं, कामदार को पूछो। यह गजब ! वह एक काठी था। सोने की मूँठ और तलवार रखता था। मैंने देखी हुई, गुंडाळा में। वहाँ उतरते थे न। गुंडाळा है न यहाँ गढडा के पास। उसे दो, तीन, चार कुछ स्त्रियाँ थीं। आमदनी होगी दस-बीस हजार की, जो हो वह। तुम्हारे कितनी रानियाँ हैं दरबार आपा ? कामदार को खबर, मुझे खबर नहीं। ऐसे बेचारे अफीमिया अफीम पीवे वे पड़े रहें।

... तू कौन है? यहाँ तो यह कहते हैं कि काठी और वह आपो नहीं। वह आपो नहीं, वह आपो ऐसा ले न। आपो अर्थात् आत्मा। आत्मा तू कौन है? कहाँ है? कैसा है? किस प्रकार से है? खबर नहीं। यह हम कर्मसहित हैं, शरीरसहित हैं, वह आत्मा। नहीं, किसने कहा तुझे यह? कर्म तो रजकण जड़ हैं, शरीर तो जड़ है। जड़सहित आत्मा है? समझ में आया? '**दव्वु गुण-पज्जय-जुत्तु**' वापस आया था न? '**परियाणहि**'। उसे जान, भाई! तेरा आत्मा, यह पर्यायें जो क्षण-क्षण में हों, ज्ञान की अवस्था बदले, दर्शन की बदले, चारित्र की बदले, दुःख की बदले... समझ में आया? अस्तित्व की— ऐसे अनन्त गुण की अवस्था बदलती है, हों! अस्तित्वगुण की बदलती है। अस्तित्वगुण कायम रहे परन्तु उसकी पर्याय एकरूप नहीं रहती। अस्तित्व सत्... सत्... सत्... सत्... उसकी भी पर्याय क्रम... क्रम... क्रम से... बदलती है। वह पर्याय और गुणसहित, उसे द्रव्य कहते हैं। इसलिए उसका लक्ष्य द्रव्य के ऊपर जाना चाहिए। परन्तु ऐसे पर्याय-गुणवाला वह द्रव्य। कर्मवाला द्रव्य, शरीरवाला द्रव्य, स्त्रीवाला द्रव्य, वह वस्तु तीन काल में ऐसी है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो रागसहितवाला भी द्रव्य लेना है। राग, विकार वह पर्याय है चारित्रगुण की। दुःख, वह पर्याय है, परन्तु वह पर्याय और त्रिकाल आनन्दगुण और चारित्रगुण, उससहित का द्रव्य, ऐसी उसकी दृष्टि जाने से, द्रव्य का लक्ष्य होने से उसे सम्यग्ज्ञान होता है। उसकी पर्याय में विकार है, विकारसहित द्रव्य ऐसे लक्ष्य में लिया, तब उसे विकाररहित पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब सीखना पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, ऐसा इसे जानना नहीं पड़ेगा? है, ऐसा इसे जानना नहीं पड़ेगा? है, ऐसा इसे जानना नहीं, तब है ऐसा नहीं इसे जानना?

मुमुक्षु : यही सीखना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह सीखना है, ऐसा इसे सीखना पड़ेगा या नहीं? यह सीखा नहीं कभी। है, ऐसा सीखा और जाना, सब एक ही है वह तो। है ऐसा जानना, नहीं, ऐसा जानना, उसमें नहीं ऐसा 'नहीं' जानना। है ऐसा 'है' जानना, उसमें नहीं, वैसा नहीं जानना। जैसा है, वैसा जानने का अर्थ क्या हुआ?

यह आत्मा उसे कहते हैं कि उसके जो अनन्त गुण एक समय में रहे हुए सदा ही नित्य और समय-समय में होती उनकी पर्याय, हों! भले दु:खरूप या अस्तित्व की शुद्धरूप, कोई दु:खरूप पर्याय या चारित्र की रागरूप पर्याय या अस्तित्व की शुद्धरूप पर्याय, ऐसी अनन्त गुण की वर्तमान पर्याय का एकरूप न रहना और गुण का एकरूप नित्य रहना, ऐसा जो आत्मा, उसे द्रव्य कहते हैं। उसका लक्ष्य, उसकी दृष्टि पर्याय-गुणसहित द्रव्य में जाती है। यह कर्मवाला और स्त्रीवाला और पुत्रवाला, ऐसा अन्दर है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण कहा न। वह गुण में जाता है, वह अपेक्षित धर्म में जाता है। उसका कुछ नहीं। वह पर्याय अपेक्षित धर्म में जाती है।

परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि, यहाँ गुण कायम रहनेवाले हैं और उनकी पर्याय क्षण-क्षण में बदलती है। **'दव्वु गुण-पज्जय-जुत्तु'।** यह परमाणु और कर्म जो है अन्दर कर्मरूप परमाणु परिणमा है, उस परमाणु को द्रव्य क्यों कहा? कि आत्मा के साथ रहा, इसलिए द्रव्य, ऐसा नहीं। उसकी कर्मरूप पर्याय है परमाणु में, उसे द्रव्य क्यों कहा? वह आत्मा के साथ है, इसलिए ऐसा नहीं। वह परमाणु को द्रव्य इसलिए कहा कि, उसकी कर्मरूपी पर्याय परमाणु में और दूसरी इत्यादि अस्ति आदि पर्याय और कायम रहनेवाले गुण, वह पर्याय और गुणसहित के परमाणु को द्रव्य कहा जाता है, आत्मा के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं उन्हें। समझ में आया? कहो, छोटाभाई! विवाद तो सब ही यह (निकाले कि) क्या अभी आत्मा कर्मरहित है? कर्मरहित तो सिद्ध है। अब सुन न! तीनों काल आत्मा कर्मरहित है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

एक द्रव्य, दूसरे द्रव्यसहित है, इसका अर्थ क्या? एक वस्तु, दूसरी वस्तुसहित है, इसका अर्थ क्या? यह तो एक निमित्तरूप से है, उसका ज्ञान कराया है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु जितने भगवान ने अनन्त द्रव्य देखे, उन्हें बतलाया वैसे हैं। बतलाया उनमें जैसे हैं वैसे। यह आत्मा अर्थात् तू आत्मा अर्थात् कौन? कि, उसमें अनन्त कायम रहनेवाले गुण नित्य और क्षण-क्षण में पलटती पर्याय, वह पर्याय-गुण

'**जुत्तु**'—सहित, उसे आत्मा कहा जाता है। उसमें कर्मवाला या कर्मरहित यह सम्बन्ध उसमें है नहीं। समझ में आया?

यह तो कर्म का निमित्तपना है, उसका ज्ञान कराना हो तब यह बात। परन्तु इस प्रकार से जाने—उसके ज्ञान में ज्ञान होने पर वर्तमान में मैं मेरी पर्याय-गुणसहित हूँ, उसमें निमित्त यह है, ऐसा उसके ज्ञान में आ जाता है। परन्तु यह उनके सहित हूँ, ऐसा नहीं। सहित तो मेरे गुण-पर्यायसहित हूँ। आहाहा! समझ में आया? कोई भी आत्मा को कोई दूसरा ऐसा माने कि, यह आत्मा कैसा है? कि, इसे अधिक लक्ष्मीवाला, अधिक पुत्रवाला, अधिक कीर्तिवाला यह आत्मा। तो भगवान कहते हैं कि मूढ़ है, पापी है। तेरी दृष्टि सच्ची कहाँ हुई है तेरी? ऐसे आत्मा को किसने कहा है? अधिक संख्या में साथ में पैसा, लक्ष्मी, शरीर—ऐसा वह आत्मा, लक्ष्मीवाला आत्मा, पुत्रवाला आत्मा—ऐसा कहाँ है आत्मा? आत्मा तो गुण-पर्यायवाला आत्मा, ऐसा कहा है और ऐसा है। धर्मचन्दभाई! नेमिदासभाई! कहो, पुत्ररहित आत्मा है इसमें? परन्तु यह पुत्ररहित हूँ, इसलिए ठीक नहीं, इसका अर्थ क्या? परन्तु उसके बिना ही है। पुत्ररहित ही आत्मा है। जिसे पुत्र हो, वह पुत्र का पुत्र हैं, उनका आत्मा का आत्मा है और उनका रजकण का रजकण है। गजब बात भाई! और अपने आँक से वापस दूसरे का टाँके (मूल्यांकन करे) कि मेरे पास शरीर रोगी, उसका निरोगी, मुझे पैसे थोड़े, उसको अधिक। परन्तु तुझे और उसे दोनों को आत्मा में नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु दिखते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है? दिखता है क्या? वह तो पुद्गल का संयोग वहाँ उसमें द्रव्य और गुण-पर्यायसहित द्रव्य है, ऐसा दिखता है। परमाणु, उसके गुण-पर्यायसहित है, ऐसा द्रव्य दिखता है। उसके साथ है, ऐसा कहाँ दिखता है? एक है कभी? तीन काल में नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी जैन में जन्मे, उसे भगवान क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : पण्डित....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित की कहाँ बात है? यह तो एक साधारण बात है।

तू है या नहीं? है तो तेरा सहितपना क्या? तेरा सहितपना क्या? गुण और पर्यायसहितपना। पर सहितपना वह स्वरूप है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ओहोहो! क्यों सुजानमलजी! यह बात तो साधारण एक जैन... सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव कहते हैं कि द्रव्य किसे कहते हैं? अब यह तो साधारण व्याख्या है। वस्तु तू तुझे किसे कहते हैं? तू तेरा किसे कहते हैं? कि तेरे गुण और पर्यायसहितवाला उसे तुझे कहते हैं। परवाला तुझे कहते हैं, ऐसा तू है नहीं।

इस रोग के शरीरवाला आत्मा है, ऐसा है? तब किसकी चिल्लाहट मचाता है यह? यह हाँ तो बराबर पाड़ी थी इसने कि इस सहित आत्मा नहीं, वह तो गुण-पर्यायसहित आत्मा है और यह परमाणु भी खराब है, ऐसा नहीं। यह अवस्था जो रोग की हुई खराब, ऐसा नहीं। वह तो पर्याय और गुणसहित ही द्रव्य ऐसा है। खराब कहना किसे? क्या कहा? परमाणु में यह पर्याय हुई खून की या यह कफ की, वह पर्याय जो हुई, उस पर्यायसहित का, गुणसहित का तो द्रव्य है। वह द्रव्य ही ऐसा है। अब उसे खराब किस प्रकार से कहना?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही कब परन्तु? वह तो....

मुमुक्षु : मुफ्त की पूँजी ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुफ्त की लेकर लगा है। है नहीं और किसी की पूँजी मेरे घर में आ गयी। आहाहा!

कहते हैं, पर्याय नानारूप, नाना अर्थात् अनेकरूप और **परिणति पहले समय में थी,...** यह आत्मा में पहली अवस्था थी, वह दूसरे समय में बदलती है। यह बदलना अपने... सहित है। यह बदलना पर के कारण से नहीं। क्या कहा? आत्मा गुणसहित है, ऐसा (ही) पलटने की पर्यायसहित है। वह पलटने की पर्यायसहित है। वह पलटने की पर्याय पर के कारण से पर पलटती है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और यह परमाणु भी उसके गुण और उसकी पलटने की पर्यायसहित वह परमाणु है, पलटने की पर्यायसहित वह परमाणु है। दूसरे ने उसे पलटाया, उसमें वस्तु

में है नहीं। वह तो उसका पर्यायधर्म पलटना, एकरूप न रहना और गुण को एकरूप रहना, उस सहित वह परमाणु है। आत्मा को एकरूप गुण से रहना, पर्याय से एकरूप न रहना, ऐसे पर्याय-गुणसहित तो आत्मा है। समझ में आया? अब इसमें परपदार्थ में सुख है, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है, कहते हैं। परपदार्थ तेरी पर्याय में नहीं, तेरे गुण में नहीं और पर में सुख है, यह माना कहाँ से तूने? कह। कहो, समझ में आया? यह अन्तर में सुख है। यह भरत पूछता था कल कि यह अन्तर में सुख है। है न श्रीमद् में? अन्तर में सुख है, श्रीमद् में लिखा है और यह बाहर में क्यों सुख मानते होंगे? ऐई!

आत्मा अपने गुण और पर्याय में है। अब वह स्वयं पर में है नहीं और पर से है नहीं। पर से नहीं, पर में नहीं, तथापि पर से मुझे सुख मानता है, यह उसकी—अज्ञानी की भ्रमणा है। आहाहा! पोपटभाई! यह मिथ्यात्व भाव है। अपने आनन्दगुणसहित आत्मा और आनन्दगुण की वर्तमान पर्याय पलटे, (उसके) सहित आत्मा, वह आनन्दगुणसहित आत्मा और आनन्दगुण की पर्याय पलटे, (उसके) सहित आत्मा है। उसके बदले पर में मुझे सुख है, ऐसी मान्यतासहित आत्मा, (- ऐसा माननेवाले ने) मिथ्या श्रद्धा खड़ी की है। आहाहा! समझ में आया?

आनन्दसहित आत्मा। आत्मा द्रव्य है, आनन्द नित्य रहनेवाला गुण है, हमेशा रहनेवाला और उस आनन्दगुण की वर्तमान पर्याय है। भले विकाररूप हो, परन्तु उस विकाररूप पर्यायसहित, गुणसहित यह द्रव्य है, ऐसे लक्ष्य जाने से द्रव्य के आनन्द का भान हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! '**दव्वं जाणइ**' ऐसा कहा न। इसने ऐसी नजर की नहीं। समझ में आया? मैं आनन्द के गुणवाला हूँ, आनन्द के नित्य गुणसहित हूँ और उसकी पलटती पर्याय एकरूप न रहे, ऐसी पर्यायसहित हूँ। भले आनन्द की वर्तमान दुःखरूप पर्याय हो, परन्तु उस पर्यायसहित हूँ। वह पर्याय और इस आनन्दगुणसहित द्रव्य है, ऐसा द्रव्य का निर्णय करने पर उसकी पर्याय में आनन्द आये बिना नहीं रहता और दुःख की अवस्था का व्यय हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? भले राग हो, राग। वह राग है, वह चारित्रगुण की एकरूप नहीं रहनेवाली पर्याय है और चारित्रगुण कायम रहनेवाला वह गुण है। उस पर्याय और गुणसहितवाला तो यह द्रव्य है। ऐसे द्रव्य में लक्ष्य जाने से उसका—द्रव्य का ज्ञान होने से उसकी पर्याय में सम्यक्

श्रद्धा, आनन्द की पर्याय आये बिना रहती नहीं। ऐसा कहते हैं। यह परमात्मप्रकाश बताते हैं, भाई! परमात्मप्रकाश, आहाहा! परमात्मप्रकाश, भगवान आत्मा परमात्मा, उसके अनन्त गुण शक्ति, उसकी वर्तमान पर्याय, ऐसा सहित यह द्रव्य है—ऐसा निश्चित करने से वह परमात्मा स्वयं है, ऐसा उसकी दृष्टि में हो जाता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? इसमें तो कहीं बहुत भंगभेद पड़ने जैसे नहीं अधिक। परन्तु कभी इसके सोपान पर चढ़ा नहीं। पोपटभाई ने कहा न? हें?

मुमुक्षु : पद-पद में परमात्मा बतलाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पद-पद में परमात्मा है। वह पर्याय-गुणवाला, यह परमात्मा है, परम स्वरूप का धारक आत्मा। ऐसा निर्णय करने पर उसकी पर्याय में जो नहीं जाना अनादि से, वह जानने का श्रद्धा का, आनन्द की पर्याय आदि प्रगट हो, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा विचित्र है न, नजर....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु नजर कब की है? करने का प्रयत्न कहाँ किया है इसने? फिर किया नहीं और रहती नहीं। रतिभाई! पर में कैसे एकाग्र हो जाता है। एकाग्र होनेवाला तो स्वयं है या नहीं? हें? एकाग्र (होना) आता है या नहीं? क्योंकि ऐसे पर में हो जाये। यह... यह... यह... यह... यह... यह... जिसमें यह नहीं और वह इसमें नहीं। शरीर, यह... यह... यह... यह... उसका लक्ष्य करके एकाग्र होता है? वह होता है अपनी पर्याय में एकाग्र, उसमें नहीं। समझ में आया? उसमें नहीं, पर में नहीं।

यह यहाँ कहते हैं कि परन्तु वह पर्याय और गुणवाला द्रव्य, ऐसा जहाँ लक्ष्य कर... उसमें एकाग्र होगा। जैसा यहाँ एकाग्र होता है, पर के लक्ष्य से विकार में एकाग्र होता है, स्व के लक्ष्य से अविकार में, अविकारी से एकाग्र होगा। आहाहा! यह समझण हुई कि यह द्रव्य... तब पूरा हो गया। लक्ष्य बदल गया, रुचि बदल गयी, ज्ञान सम्यक् हो गया, श्रद्धा हो गयी, शान्ति आयी, आनन्द आया, सब हो गया, परन्तु '**दव्वु परिजाणहि**' उसे द्रव्य जान। ऐसे नहीं। यह पर्याय-गुणसहित उसे यह द्रव्य जान। आहाहा! कठिन बात न भाई! पर से तो हटा परन्तु गुण-पर्यायवाला यह द्रव्य, वहाँ गया। समझ में

आया? सीखा नहीं कभी। ऐसे के ऐसे सब सीखे डॉक्टर के और ऐसे खोटे-खोटे बकवास। नहीं? जैसा है, वैसा होना चाहिए या नहीं? दूसरे प्रकार से हो तो पास होगा? देखो! इस प्रकार से श्लोक में कुछ बात ही अलग प्रकार की डालते हैं, प्रत्येक में कुछ अन्तर। आहाहा! '**परिजाणहि**'।

कहते हैं, भाई! **समय-समय में उत्पाद व्ययरूप होता है, इसलिए पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है।** लो! इतनी व्याख्या की। **अब इसका विस्तार कहते हैं**—अब इसका विस्तार करते हैं। इतना मूल शब्द का अर्थ किया, अब विस्तार करते हैं। **जीवद्रव्य के ज्ञान आदि अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, आदि अनन्त गुण हैं,...** भगवान आत्मा वस्तु—पदार्थ—अस्ति—तत्त्व—वस्तु उसके ज्ञान, दर्शन; यह जानने की पर्याय नहीं, हों! गुण कायम रहें वे, कायम ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, स्वच्छत्व, विभुत्व, प्रभुत्व इत्यादि ऐसे अनन्त गुण हैं। कहो, समझ में आया?

और पुद्‌गलद्रव्य के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण इत्यादि अनन्त गुण हैं,... और रजकण में एक-एक परमाणु में रंग, गन्ध, रस और स्पर्श। रंग अर्थात् पर्याय नहीं लेना बाहर की, वह तो रंग अर्थात् कायम रहनेवाली शक्ति। रजकण में कायम रहनेवाली रंगशक्ति, गन्धशक्ति, रसशक्ति, स्पर्शशक्ति, अस्तित्वशक्ति, वस्तुत्वशक्ति। एक-एक परमाणु में अनन्त शक्तिरूप से गुण नित्य एकरूप परमाणु में रहे हैं। उन्हें गुण कहा जाता है। वह द्रव्य की व्याख्या की और यह गुण की व्याख्या की वापस। समझ में आया?

यह दो की बात की—जीव और पुद्‌गल। जीव में भगवान आत्मा सिद्ध हो या निगोद का जीव हो। क्या कहा? सिद्ध का जीव हो या निगोद का जीव हो। वे अनन्त जीव, वह जीव उसे कहते हैं कि उसके कायम रहनेवाले अनन्त गुण उसमें हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। सिद्ध को अनन्त गुण हैं अन्दर। सिद्ध पर्याय है, फिर आयेगा। सिद्ध वर्तमान पर्याय है, वह फिर आयेगी। सिद्ध का आत्मा कैसे कहते हैं? कि उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सदृश कायम नित्य रहनेवाले गुण हैं उसमें। निगोद के जीव को जीव क्यों कहते हैं? कि उसमें सहभावी साथ में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अस्तित्व गुण—अनन्त गुण हैं इसलिए (कहते हैं)। समझ में आया? सिद्ध और संसारी की पर्याय में अन्तर है, गुणों में अन्तर नहीं। आहाहा!

जीवद्रव्य में जीवद्रव्य कितने लेना? अनन्त, जितने जीव हैं उतने। उन सबमें एक-एक में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य मुख्य लिये मुख्य। ऐसा सुखगुणसहित आत्मा, ज्ञानसहित आत्मा, दर्शनसहित आत्मा, वीर्यगुणसहित आत्मा। ऐसे अनन्त गुण हैं, ऐसे अनन्त गुणसहित आत्मा है। समझ में आया? एक रजकणसहित है, ऐसा नहीं, परन्तु अनन्त गुणसहित है अवश्य। समझ में आया? ओहोहो! इसके घर में क्या है, उसकी इसे खबर नहीं होती और नजर कहीं (करता है)। जो इसमें नहीं—शरीर, स्त्री, पुत्र, मकान, पैसा, गहने और वस्त्र सभी आत्मा में नहीं और उनमें यह आत्मा नहीं। समझ में आया?

और पुद्गल एक-एक परमाणु द्रव्य कहते हैं, उसमें स्पर्श, रस गुण, हों! गुण-शक्ति, गन्ध, वर्ण, रंग इत्यादि अनन्त गुण। **सो ये गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं,...** दोनों में। आत्मा में और परमाणु में। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द कायम रहनेवाले सिद्ध और निगोद सबको और परमाणु एक हो या स्कन्ध में हो, परन्तु उस परमाणु में अस्तित्वगुण, रंग, गन्ध आदि वे कायम रहनेवाले सहभावी (गुण हैं)। समझ में आया? **अन्वयी हैं,...** अर्थात् कि द्रव्य के साथ रहनेवाले हैं, अर्थात् कि **सदा नित्य हैं,...** कहो, अनन्त गुण कैसे? कि, सहभावी, अन्वयी, सदा नित्य और **कभी द्रव्य से तन्मयपना नहीं छोड़ते।** चार बोल। व्याख्या चार की एक-एक की। अपने एक-एक शब्द किसलिए जाने देंगे?

एक आत्मा वस्तु है अन्दर स्वयं उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि सहभावी—साथ में रहनेवाले अनन्त गुणोंसहित आत्मा है। परमाणु शरीर, कर्म, उनके साथ यहाँ बात नहीं। है ही नहीं फिर (कहाँ बात है)? यहाँ तो सहित की बात कहनी है न। रहित की तो उनसे रहित है तो प्रश्न क्या? वह उसके गुणसहित है, उसकी पर्यायसहित है। वे अनन्त गुण आत्मा में—द्रव्य में साथ में रहते हैं। अन्वयी है अर्थात् कि अनु—जो आत्मा, उसके साथ सहचारी रहते हैं कायम और सदा नित्य है। उस द्रव्य में गुण सदा नित्य है, कायम नित्य है और **कभी द्रव्य से तन्मयपना नहीं छोड़ते।** उस वस्तु से एकपना गुण का छूटता नहीं। वस्तु से गुण का, गुण का वस्तु से एकपना—तन्मयपना, तद्रूपपना, एकपना कभी छूटता नहीं। इसी प्रकार परमाणु में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श वे

सहभावी गुण हैं। एक-एक परमाणु में। वे अन्वय हैं—रजकण के साथ इकट्ठे हैं, सदा नित्य है और उस परमाणु से उसके गुण, द्रव्य से उसके गुण रंग, गन्ध, रस, स्पर्श एकपना कभी गुण द्रव्य से छोड़ते नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐई...किरीट! वहाँ तो सब गप्प मारते हैं, हों! वहाँ कॉलेज में सब। कहो, भरतभाई! कहो, यह समझ में आता है या नहीं यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझे नहीं, अब वहाँ क्या है? कष्ट में मरने जैसा है वहाँ। आहाहा!

अरे! भगवान! यह धर्म के नाम से मारकर उल्टा मारा है अभी। यह गुण और पर्यायसहित का आत्मा, उसे परसहित का मानना और पर के कारण से हैरान मानना, यह कहते हैं, खोटा है, ऐसा कहते हैं। तेरी पर्याय के कारण, गुण के कारण तू जहाँ है, वहाँ है, ऐसा कहते हैं। निगोद में हो, देव में हो, जहाँ हो वहाँ, सिद्ध में हो, वह तेरी अवस्था और गुणसहित में तू है। पर के कारण से वहाँ संसार में है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। क्या कहा? मलूकचन्दभाई!

संसार में आत्मा है, वह कर्म के कारण से है, ऐसा नहीं। उसकी पर्याय और गुणसहित है, इसलिए वह आत्मा वहाँ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आचार्य की पद्धति इतना संक्षिप्त में कहकर गागर में सागर भर दिया है। ऐसा है और ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। नहीं, वह अस्ति हो नहीं, अस्ति वह नहीं, (ऐसा) हो नहीं। **कभी द्रव्य से तन्मयपना नहीं छोड़ते।** एक यह रजकण है परमाणु। उस रजकण में जो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वह सदा अन्वयी है, सहभावी है, तन्मयपना छोड़ते नहीं और वे गुण सदा द्रव्य के साथ नित्य रहे हुए हैं। ओहोहो!

अब पर्याय। **तथा पर्याय के दो भेद हैं—एक तो स्वभाव, दूसरी विभाव।** एक स्वभाव अवस्था और एक विकारी अवस्था। उस स्वभाव अवस्था सहित है और विकारी अवस्था भी सहित ही है। यहाँ '**गुणपज्जयजुत्तु**' द्रव्य सिद्ध करना है न! आहाहा! दोनों अवस्था। जिसे जो प्रकार... कहेंगे, जिसे जो हो वह। **स्वभाव, दूसरी**

विभाव। जीव के सिद्धत्वादि स्वभाव-पर्याय हैं,... सिद्ध भगवान परमात्मा को सिद्ध आदि उसकी स्वभावपर्यायसहित वह जीव है। सिद्ध भगवान का जीव... पर्याय हों! गुण तो त्रिकाली कायम है। पर्याय सिद्ध की केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि सिद्ध पर्याय। केवलज्ञान, उसे गुण में लेंगे, परन्तु वह द्रव्य की पर्याय अब लेनी है। उसके द्रव्य की जो वर्तमान सामान्य सभी पर्यायें, वह स्वभाव पर्याय सिद्ध को है।

और केवलज्ञानादि स्वभाव-गुण हैं। इस अपेक्षा से वर्णन किया है। पर्याय... इस प्रकार। निर्मल है न अर्थपर्याय। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि उसे गुण कहा गया है। समझ में आया? **स्वभाव-पर्याय हैं, और केवलज्ञानादि स्वभाव-गुण हैं।** वह है तो स्वभावपर्याय, परन्तु उसका यह भेद किया इतना। समझ में आया? मतिज्ञान को विभाव में लेंगे न, इस अपेक्षा से। समझ में आया? सिद्धत्वादि स्वभावपर्याय। वास्तव में तो वह व्यंजनपर्याय उसकी है। द्रव्य की पर्याय पूरी एक साथ सब, सिद्ध की पूरी पर्याय। और केवलज्ञान आदि स्वभाव गुण है तो पर्याय, परन्तु केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, स्वच्छता, विभुता पूर्ण पर्याय उसकी स्वभाव गुण की पर्याय का एक भाग स्वभाव गुण कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... पर्याय का एक भाग....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की बात चलती है।

ये तो जीव में ही पाये जाते हैं, अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते। क्या? जीव को सिद्धत्व आदि स्वभावपर्याय केवलज्ञान स्वभाव गुण, **ये तो जीव में ही पाये जाते हैं, अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते। तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, ये स्वभावगुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं।** त्रिकाली गुण, गुण। वे त्रिकाली सब द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघु, यह स्वभावगुण सब द्रव्यों में—सभी द्रव्यों के अन्दर है, छहों द्रव्यों में यह सब गुण हैं। छहों द्रव्य इन गुणसहित है। अब पर्याय लेंगे।

अगुरुलघु गुण का परिणमन षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप है। सूक्ष्म बात है, हों! यह थोड़ी, पर्याय की। **यह स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में हैं,...** लो! स्वाभाविक पर्याय... उस स्वभावपर्याय में केवलज्ञान आदि पर्याय ली थी, सामान्य द्रव्य लिया। अब यह

षड्गुणी (हानि-वृद्धि) पर्याय तो सभी द्रव्यों में है। **स्वभावगुण सभी द्रव्यों में हैं, कोई द्रव्य षट्गुणी हानि-वृद्धि बिना नहीं है, यही अर्थ-पर्याय कही जाती हैं,...** इसे इस अपेक्षा से अर्थपर्याय कहा है। समझ में आया? **वह शुद्ध पर्याय है।** है तो वह शुद्ध पर्याय। सिद्धत्व आदि। वह तो त्रिकाल शुद्ध पर्याय है।

यह शुद्ध पर्याय संसारी जीवों के... इतनी सिद्ध... वह शुद्ध पर्याय संसारी जीवों को सदा ही है। **सब अजीव-पदार्थों के सदा ही है तथा सिद्धों के पायी जाती है,...** यह जरा सूक्ष्म बात है। परन्तु पहले दो कहे कि **सिद्धपर्याय तथा केवलज्ञानादि गुण सिद्धों के ही पाया जाता है,...** समझ में आया? पहली पर्याय कही वह तो सिद्ध को स्वभावपर्याय और केवलज्ञान आदि गुण, ऐसी पर्याय सिद्ध को ही होती है। समझ में आया? बहुत बोल आये हैं। उसमें भी कहाँ याद रखने जैसा है, उसमें तो वस्तु यह है। उसमें कहाँ... भंग-भेद याद रखने जैसा कुछ नहीं। वस्तु, उसके गुण, उसकी अवस्था। स्वाभाविक अवस्था—एक द्रव्यपर्यायरूप, एक गुणपर्यायरूप। षड्गुणहानिवृद्धि पर्याय तो सभी द्रव्यों को है।

संसार का याद नहीं रखते? कितनी दवायें आती होंगी, कितना याद रखते होंगे। पाँच सौ दवायें सब याद रखे। इस जगह यह दवा पड़ी है और यहाँ इतनी प्रयोग हुई है और यहाँ आयी है और नयी आयी है। ममता की सब बात याद रखे। दुकान में पाँच हजार चीजें हों तो सबकी त्रिपट्टी बात इसे याद हो। इस भाव में आयी है, इतनी बिकी है, इतनी पड़ी है, नयी इस भाव में आयी है। पोपटभाई! यह है न परन्तु हमको तो सब खबर है या नहीं? दुकान के नाम... इतनी पड़ी हो दुकान में माल सब उसे खबर हो, लो। इतने गोदाम। है न हमारे पालेज में तेरह गोदाम हमारे कुँवरजीभाई को, लो। तेरह गोदाम। किस बड़े गोदाम में कितनी मैथी की बोरी, कितनी गेहूँ की बोरी, कितनी बिकी और कितनी गयी, वह सब आणन्दजी को (खबर हो), आणन्दजी को अधिक। वे पड़े अब खाट में। आहाहा! जिसकी ममता, उसकी संख्या सब याद। परन्तु मुझमें क्या है और मैं कौन हूँ, उसकी खबर नहीं। बकवास चला करे, बकवास। यह किसकी बात चलती होगी, ऐसा लगे इसे।

यह सिद्ध की व्याख्या की। अब कहते हैं, संसारी जीवों को मतिज्ञान आदि

विभावगुण है। देखो! उसे सिद्धत्वपर्याय नहीं, तथा वह केवलज्ञान आदि गुण नहीं। संसारी जीव निगोद से लेकर... समझ में आया? यह चौदहवें गुणस्थान तक, उसे वह केवलज्ञान इतना नहीं लेना। **मतिज्ञानादि विभावगुण...** चार ज्ञान तक लेना, लो। **और नर-नारकी आदि विभावपर्याय ये संसारजीवों के पायी जाती हैं।** देखो! ओहोहो! चौदहवें में भी वह पर्याय है न मनुष्य की एक, विभाविक मनुष्यपर्याय है। समझ में आया? और मतिज्ञान आदि चार लेना, नीचे बारहवें (गुणस्थान) तक। .... मान बैठा, परन्तु कहते हैं कि यह बँगला-शरीर मिला जरा वहाँ, वह मैं। उसे साफ-सूफ रखना, खड़काना, पिलाना, नहलाना।

मुमुक्षु : इसके बिना व्यवस्थित चलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चले—न चले, उसके कारण से है, धूल भी चलती नहीं। मर जाये चिन्त करके तो भी। ऐसा है या नहीं? उसकी इसे तो खबर है या नहीं इसे? बहुत ध्यान रखे तो भी चलता है? पैर ऐसे-ऐसे हो जाये, घड़ीक में यहाँ खड़ा रहे, उसमें हो जाते हैं। वह तो शरीर है, उसकी पर्याय कैसे होना, यह आत्मा के आधीन नहीं। आत्मा कल्पना करे, इसलिए शरीर को ऐसे स्थिर रख सके, (ऐसा) बिल्कुल नहीं। उसकी पर्याय प्रमाण वह द्रव्य रहेगा। आत्मा की पर्याय प्रमाण वह द्रव्य रहेगा, ऐसा नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

ननूर हो गया है ननूर। ननूर अर्थात्? नूररहित। इसे चोट लगती नहीं। आहाहा! कहाँ? किसमें मैं? कहाँ मैं माना है, उसकी इसे खबर नहीं। जिसमें मेरापन कहीं नहीं... जिसमें गुण-पर्यायरहित मैं नहीं, उसे अपना नहीं मानकर, जिसमें तीन काल में मेरापन नहीं, वे सब गुण और पर्यायवाला द्रव्य है, (उसे) इन्द्रिय से ज्ञान देखता हो, उसे देखता है। यह अतीन्द्रिय वस्तु क्या है, उस ओर पर्यायसहित का द्रव्य क्या है, उसे देखता नहीं। आहाहा! माने न। पाँच-पच्चीस लाख रुपये और दो-पाँच बँगले हों और स्त्री, पुत्र ठीक हों तो हम सुखी हैं। इसलिए कहाँ से परन्तु? वह वस्तु कहाँ तुझमें है, कहाँ तेरी है, कहाँ तेरी दशा में आयी है?

मुमुक्षु : .... परन्तु सुख तो होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसमें सुख होता है? कहाँ था? वह तो कल्पना खड़ी की, उसका लक्ष्य करके कल्पना खड़ी करता है, वह कल्पना उसमें आती है।

मुमुक्षु : अमेरिका जा आये, साहेब! तो भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अमेरिका धूल में भी जा आये नहीं वहाँ। अपनी पर्याय में था वहाँ भी, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। किसी क्षेत्र में और किसी भाव में आत्मा जाता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। अपने क्षेत्र में और अपने गुण-पर्याय में ही सदा रहता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा देकर, खर्च करके गये और आप कहते हो कि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कहाँ इसका था? समझ में आया?

यहाँ क्या कहते हैं? कि नरक में हो या मनुष्य में हो या देव में हो, उसकी विकारी पर्यायसहित और उसके अनन्त गुणसहित वहाँ रहा हुआ है। अथवा मतिज्ञान आदि गुण विभाव है न, केवल (ज्ञान) तो नहीं, इसलिए मति-अज्ञान आदि गुण कहो या मतिज्ञान आदि सम्यक्, ऐसे गुणसहित और ऐसी पर्यायसहित में वह रहा हुआ है। पर के क्षेत्र से रहा नहीं, पर की पर्याय से रहा नहीं, अपनी पर्याय से खाली कभी रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? वाह!

है या नहीं परन्तु? प्रत्यक्ष यह दिखता है या नहीं उसमें? परन्तु इसे खबर (नहीं)। विचार करे नहीं, मन्थन करे नहीं। संसारी जीव। यह निगोद से लेकर। चार ज्ञान तक यहाँ लेना। **विभावगुण और नर-नारकी आदि विभावपर्यायसहित है।** वह विभावपर्यायसहित है, विभावगुणसहित है, वह स्वयं के कारण से है। आत्मा मतिज्ञानादि या मति-अज्ञानादि गुण और विभाव नरकादि की पर्यायसहित द्रव्य है। वह जहाँ है, वहाँ यह पर्यायसहित द्रव्य है। समझ में आया? मनुष्यपने में यहाँ, मनुष्यपना अर्थात् यह देह नहीं, मनुष्यगति की पर्याय जो विकारी है, उससहित और मतिज्ञानादि जो पर्याय है, उसे यहाँ गुण कहना, उनके सहित यह जीवद्रव्य है। कहो, समझ में आया?

मनुष्यदेह सहित है, ऐसा नहीं। उसकी विकारी पर्यायसहित और मतिज्ञानादि गुणसहित द्रव्य है यहाँ। समझ में आया इसमें ? कहो, रतिभाई ! जँचता है या नहीं इसमें ? यह तो लॉजिक से तो बात है, न्याय से तो बात चलती है।

अभी कहाँ है आत्मा ? कि, उसकी वर्तमान पर्याय और त्रिकाली गुण, उनके सहित का वह द्रव्य है। दूसरे पदार्थसहित द्रव्य नहीं। दूसरे पदार्थ उनके गुण-पर्यायसहित द्रव्य है। अब जो उनके गुण-पर्यायसहित द्रव्य है, यह आत्मा अपनी पर्याय-गुणसहित है। वह दूसरे की पर्याय को मेरा माने कि, दूसरी पर्याय को करूँ, यह बात कहाँ है ? ऐसा कहते हैं। जिसके अस्तित्व में दूसरे द्रव्य की पर्याय नहीं, उसकी पर्याय उसके द्रव्यसहित है, उसकी पर्यायसहित उसका द्रव्य है, उसकी पर्याय का वह स्वामी द्रव्य है। उसके बदले दूसरे की पर्याय को मैं करूँ, वस्तु में कहाँ है ? समझ में आया ? आहाहा ! कठिन बात, भाई ! क्या होगा इसमें ?

ये तो जीव-द्रव्य के गुण-पर्याय कहे... लो ! यह तो एक जीवद्रव्य के गुण और पर्याय कहे। सिद्ध आदि अनन्त निगोद जीव उनके अनन्त गुणसहित हैं, सिद्ध, उनकी पर्याय और केवलज्ञान आदि गुणसहित है। संसारी जीव मतिज्ञानादि गुण, नरकादि की व्यंजन आकृति पर्यायसहित है। इस प्रकार से जीव जो तीन काल में वर्ते, वे इस प्रकार से वर्तते हैं, यह जीव की व्याख्या हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कार्तिक शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक - ०३-११-१९६५
गाथा - ५७ - ५८, प्रवचन - ४०

५७ गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश। जीव की व्याख्या आ गयी। **ये तो जीव-द्रव्य के गुण-पर्याय कहे...** यहाँ तक आया है। है न? जीव है, वह अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य और ज्ञान, दर्शन आदि गुण और पर्याय के दो प्रकार किये, नर-नारकी आदि एक पर्याय और केवलज्ञान आदि उसे भी पर्याय में लिया है। सिद्ध की पर्याय शुद्ध है और यह अशुद्ध पर्याय है संसारी की। ऐसी व्याख्या की।

पुद्गल के परमाणुरूप तो द्रव्य... यह परमाणु यह रजकण है, उसे भगवान द्रव्य कहते हैं। रजकण वह जड़, चैतन्य से भिन्न। **तथा वर्ण आदि स्वभावगुण...** उस रजकण में रंग, गन्ध, रस है, वह उसका स्वाभाविक—अनादि स्वाभाविक, एक में है, इसलिए स्वाभाविक गुण है। **एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप होना,...** वह स्वाभाविक पर्याय है। स्वाभाविक गुणपर्याय कहो या स्वाभाविक पर्याय है। ऐसा वहाँ लेना। सुधारने का है। समझ में आया? यह रजकण है न, एक जड़ मिट्टी पॉईन्ट उसका अन्तिम टुकड़ा, उसमें वह वस्तु परमाणु को द्रव्य कहते हैं और उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण जो कायम रहनेवाले, उन्हें स्वभाव गुण कहते हैं और उनका वर्णान्तर-रूपान्तर अवस्था में होता है, एक वर्ण से दूसरे वर्ण में रंग आदि पलटे, उसे स्वभावपर्याय कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यह भूल है थोड़ी लेखन में। यह एक परमाणु की व्याख्या की।

एक परमाणु के तीन बोल। जैसे जीव में द्रव्य, गुण और पर्याय, ऐसे तीन वर्णन किये। वैसे एक परमाणु में तीन। परमाणु स्वयं द्रव्य; उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, उसके स्वभाव गुण और एक ही परमाणु स्वयं रंग, गन्ध, आदि पर्याय पलटे, वह स्वभावपर्याय उसे कहा जाता है। कहो, क्या कहा? यह परमाणु की पर्याय परमाणु से बदलती है, आत्मा से नहीं—ऐसा कहते हैं। इसमें नहीं लिखा? ऐ... नेमिदासभाई! इसमें नहीं आता?

मुमुक्षु : आ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया? किस प्रकार से आ गया? कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पर्याय उसकी है। परमाणु रजकण है, उसमें रंग, गन्ध, स्पर्श कायम के स्वभाव गुण हैं और उसकी वर्तमान अवस्था पलटे एक रंग से दूसरा रंग, एक गुण से दूसरा गुण हो इत्यादि, वह उसकी अवस्था है। वह अवस्था चैतन्य नहीं कर सकता, ऐसा आया इसमें। वह परमाणु की पर्याय परमाणु करता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, समझ में आया?

अब स्कन्ध। **एक परमाणु में जो तीन इत्यादि अनेक परमाणु मिलकर स्कन्धरूप होना,...** देखो! यह शरीर। देखो, यह शरीर, यह वाणी, वे सब **विभावद्रव्यव्यंजन-पर्याय हैं।** यह शरीर विभावद्रव्य... द्रव्य। क्योंकि अकेला परमाणु नहीं। अकेला परमाणु हो, तब तो द्रव्य शुद्धद्रव्य कहा जाये और उसके गुण भी शुद्ध गुण कहे जायें और उसकी पर्याय भी शुद्ध पर्याय कही जाये। अब दो, तीन आदि यह इकट्ठे हुए, देखो यह शरीर, यह लकड़ी, ये परमाणु इन्हें विभावद्रव्य व्यंजनपर्याय (कहते हैं)। विकारी द्रव्य की आकृतिरूप यह शरीर की पर्याय। यह शरीर की पर्याय शरीर से हुई है, आत्मा से नहीं, कर्म से नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा आया या नहीं?

विभाविकपर्याय यह स्कन्ध की या इस परमाणु के संयोग से उसकी पर्याय हुई है, कर्म से नहीं। कर्म की विभाविकपर्याय कर्म के स्कन्ध से हुई है, उसकी विभाविकपर्याय उसके स्कन्ध से—उससे हुई है, कर्म से नहीं। पैसा जो हुआ है नोट, वह स्कन्धपर्याय है। बहुत परमाणुओं की मिली हुई विभाविक स्कन्ध द्रव्यपर्याय है। यह पूर्व का उसका पुण्य था, तो यह ऐसा हुआ है, ऐसा नहीं —ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कहाँ गया पुण्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य पुण्य में रहे। कहाँ गये क्या! पुण्य वह विभाविक स्कन्ध की पर्याय है। पुण्य के रजकण बहुत रजकण का पिण्ड, पुण्य के अन्दर बहुत रजकण का पिण्ड, वह विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है। और पैसा भी विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय

है। एक की द्रव्यव्यंजनपर्याय से दूसरे की द्रव्यव्यंजनपर्याय हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया या नहीं? पुण्य से पैसा आता है, ऐसा इनकार करते हैं इसमें। कहा न, यह क्या कहा जाता है यह? पैसा, वह स्कन्ध है, बहुत रजकणों की विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है। वह स्वयं से हुई है, कोई पुण्य से नहीं या दूसरे के परिणाम से नहीं, वह स्कन्ध स्वयं से हुआ है। सुना नहीं कभी यह उल्टे के कारण। जेचन्दभाई! देखो! यह क्या कहते हैं यह? यह मुफ्त की बात नहीं। परमाणु तो एक ओर रखो अब।

परन्तु यह **अनेक परमाणु मिलकर स्कन्धरूप होना,...** यह शरीर, लड्डू, दाल, भात, समझ में आया? सोने की ईंट या यह मकान या जो बहुत रजकण मिलकर स्कन्ध अर्थात् पिण्ड उसकी विभाविक द्रव्य अर्थात् वस्तु की विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय उस-उस स्कन्ध की उससे हुई है, दूसरे स्कन्ध से नहीं, दूसरे चैतन्य से नहीं। समझ में आया? देखो, यह अँगुली है, वह विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है जड़ की। बहुत रजकण मिलकर विकारी द्रव्यव्यंजनपर्याय है। वह अपनी द्रव्यव्यंजन विकारी उसकी पर्याय है। आत्मा ने की नहीं, कर्म ने की नहीं, कर्म से हुई नहीं।

मुमुक्षु : कर्म तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाल दिये। निकाल नहीं दिये, कर्म को कर्मरूप से रखा। कर्म भी उन बहुत परमाणुओं से मिली हुई विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय पिण्ड है। निकाल कहाँ डाला है? कहो, समझ में आया इसमें? ऐ... जमुभाई! यह दूसरे का फेरफार करने का कहते थे, वह निकाल दिया, यह सच्ची बात है। समझ में आया? शरीर में यह पैर चलते नहीं। वे ऐसे अनन्त परमाणु के स्कन्ध की विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है। किसके कारण से? कि उसके स्वयं के कारण से, कर्म के कारण से नहीं। आत्मा ने मूर्खता की थी पूर्व में अशुभभाव की, उससे वह (कर्म) बँधे और उसके कारण से ऐसा हुआ, ऐसा नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। छोटाभाई!

मुमुक्षु : परन्तु शास्त्र में तो आता है कि यह कर्म से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त का ज्ञान (कराया)। यह वस्तु ऐसी है। वह तो निमित्त का, उस समय निमित्त कौन था, उसके पास, यह ज्ञान कराने की बात है, वस्तु ऐसी नहीं। कठिन बात भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम कौन करता है ? परिणाम अपने में करे, पैर इससे हो ? पैर हैं, वह विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है, वह उसके कारण से है, क्या आत्मा के कारण से है ? क्षण-क्षण में विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय का... फिर यहाँ तो अभी द्रव्यव्यंजनपर्याय लेते हैं बाद में।

द्व्यणुकादि स्कन्ध जो वर्ण आदि हैं, वे विभावगुण कहे जाते हैं,... यह उसमें जो अन्दर रंग, गन्ध, रस, स्पर्श शाश्वत् रहनेवाले, उसका नाम विभाविक गुण है। **और वर्ण से वर्णान्तर होना,...** उसमें पर्याय का बदलना, उसमें ऐसे इस वर्ण से वर्णान्तर, रस से रसान्तर, स्कन्ध से स्कन्ध (हो), वह उसकी—जड़ की विभावपर्याय है। दो से लेकर अनन्त परमाणु स्कन्धरूप से (हों), उसे द्रव्यव्यंजन, विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय (कहते हैं)। आकृति है इसलिए। उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श शाश्वत् गुण, उन्हें विभावगुण कहा उस स्कन्ध की अपेक्षा से और उसकी वर्तमान पर्याय वर्ण से, गन्ध से, रस से पलटती है उसकी, उसे विभाविकपर्याय कहा गया है। कहो, समझ में आया ? विभाविकपर्याय वह किसे है ? स्कन्ध की स्कन्ध में स्कन्ध के कारण से।

मुमुक्षु : पृथक् है उसे स्वाभाविक....

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक् है, उसे स्वाभाविक। वह एक रजकण है। कहो, समझ में आया ?

यह मकान है न, मकान—मन्दिर, वे अनन्त स्कन्ध हैं। उसमें एक-एक स्कन्ध बहुत परमाणुओं की विभाविक द्रव्यव्यंजन पर्याय है। उसमें रंग, गन्ध, स्पर्श, शाश्वत् गुण विभाविक गुण हैं। और उनकी विभाविक पर्याय है उसकी। वह पर्याय उसकी है, वह कारीगर ने की है या दूसरे ने की है, यह बात है नहीं। दूसरे से हुई नहीं, उससे हुई है।

मुमुक्षु : कारीगर बिना मकान हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कारीगर बिना हुआ है, यहाँ ऐसा कहते हैं। बनने का... जड़ है, जड़ की पर्याय विभाविक पर्याय है। ज्ञान है, उसका यहाँ कहाँ काम है यहाँ ?

यहाँ तो पुद्गल जड़ की बात चलती है। ज्ञानवाले द्रव्य कार्य करे, तब तो जगत में जड़ सिद्ध होंगे ही नहीं। ऐ... धर्मचन्दभाई! ज्ञानवाले ही द्रव्य काम करे, तब तो जगत में जड़ हो सकते ही नहीं, अकेला चैतन्य ही हो, ऐसा होगा। इसलिए तो यहाँ चैतन्य की पहली बात करके बाद में पुद्गल की करते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह कपड़े का टुकड़ा जो है, वह अनन्त द्रव्यव्यंजनपर्याय—विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय, द्रव्यव्यंजनपर्याय, हों! उसके गुण विभाविक गुण और उसकी प्रगट विभाविक पर्याय, वह उसकी उससे है। क्षण-क्षण में हो, वह उससे होती है, दूसरे हाथ से नहीं और दूसरे आत्मा से नहीं। यहाँ तो अस्तित्व सिद्ध करते हैं। समझ में आया? मलूकचन्दभाई! पुद्गल में से ऐसा निकाला वापस। परन्तु उस पुद्गल का...

पहले जीव की व्याख्या की। जीव स्वयं द्रव्य, उसके ज्ञान, दर्शन आदि गुण और उसकी वर्तमान पर्याय। स्वाभाविक पर्याय कहो या मतिज्ञानादि विभाविक पर्याय है। विभाविक गुणपर्याय इत्यादि-इत्यादि, वह उसके कारण से उसमें है। वह कर्म के कारण से ठहराने की उसमें नहीं। ऐसा यह सिद्ध किया पहले। अब यहाँ कर्म जो बँधे मतिज्ञानावरणीय कर्म, वह पुद्गल अनन्त परमाणु का स्कन्ध द्रव्यव्यंजनपर्याय है। वह आत्मा ने मति की हीनता की, इसलिए स्कन्धपर्याय हुई, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। ऐई! समझ में आया? केवलज्ञानावरणीय प्रकृति है, वह अनन्त परमाणुओं की द्रव्यव्यंजनपर्याय है, उसमें गुण विभावगुण है और वर्तमान उसकी पर्याय विभाविक व्यंजनपर्याय है, उससे स्कन्ध है। आत्मा ने राग किया, ज्ञान की हीनता की, इसलिए स्कन्ध की अवस्था ऐसी हुई, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब स्वतन्त्र। परमाणु, उस परमाणु की वर्तमान स्कन्ध और परमाणु की पर्याय।

मुमुक्षु : इसमें झगड़ेवालों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ेवाला तो भाई झगड़ा किया ही करे। वह तो, वह तो क्या करे इसमें? दूसरा क्या हो? झगड़ा किसलिए किया है, इसकी उसे खबर नहीं। किसलिए करता हूँ, उसका भान नहीं।

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव (ने) केवलज्ञान में पुद्गलों की ऐसी स्थिति ज्ञान में ज्ञात हुई, वैसी कही। इस जगत में पृथक् परमाणु हैं, उन्हें द्रव्य, गुण और पर्याय शुद्ध कहते हैं, स्वभाव कहते हैं। इकट्ठे दो से लेकर अनन्त, फिर बहुत स्कन्ध हो या दो हो, उन सब स्कन्ध को, स्कन्ध द्रव्यरूप से विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय, गुणरूप से विभाविक गुण, पर्यायरूप से विभाविकपर्याय का अस्तित्व उस स्कन्ध में स्कन्ध के कारण से है। दूसरे स्कन्ध के कारण से नहीं तो आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है। तो यहाँ कहे, आत्मा कर्म बाँधे और आत्मा छोड़े। यह बात है नहीं। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया। कर्म के अनन्त रजकण, वे विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है। द्रव्यरूप से, हों! और उनका वर्ण है, वह विभाविक गुण है और उसकी पर्याय है, वह विभाविक अवस्था है। वह तो पुद्गल का स्वरूप है, पुद्गल स्वरूप है, वह जीव ने नहीं किया। उसका अस्तित्व उसके कारण से है, इस जीव के अस्तित्व के कारण नहीं, ऐसा नहीं आया इसमें? ऐई! आहाहा! स्कन्धों का अस्तित्व विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय का, विभाविक गुण का, पर्याय का उससे है। उसे स्कन्ध विभाविक आदि ऐसा है। अब उसके कारण से यह है, ऐसा कहाँ आया इसमें? ऐई! क्या है यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह जड़ है, द्रव्य है या नहीं? द्रव्य है या नहीं? वस्तु है या नहीं? तो वस्तु में गुण है या नहीं? गुण है तो उसकी पर्याय है या नहीं? अकेला परमाणु द्रव्य, गुण, पर्याय शुद्ध। बहुत परमाणुओं का इकट्ठा वह विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय। विभाविक गुण और विभाविक पर्याय। वस्तु है या नहीं? अरे.. अरे... गजब बात, भाई! आहाहा! समझ में आया?

देखो, यह एक अक्षर पड़ता है न? एक अक्षर, इस अक्षर में अनन्त रजकणों की विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है, द्रव्यरूप से और उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श कायम रहनेवाले, उन्हें विभाविकगुण कहते हैं और उनकी विभाविक यह पर्याय हुई ऐसे दिखती है, वह पर्याय है, ऐसी अवस्था वर्तमान जितनी, वह उसके स्कन्ध का, उस स्कन्ध का रूप है। उस स्कन्ध का द्रव्य, गुण, पर्याय रूप है। आत्मा से हुआ, आत्मा के

अस्तित्व से उसका अस्तित्व है या अँगुली के अस्तित्व से उसका अस्तित्व है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहन निकले वहाँ? नाम भूल जाता है कभी? जमुभाई को कोई कालोभाई कहे तो? दूसरा नाम आवे तो कहे, मुझे बुलाते नहीं लगते, वे किसी को बुलाते हैं। भूल हुई लगती है। अरे! यह तो जमु... कहे और तो भी ऐसा मुख रखकर कहता हो और ऐसा करके किसी के सामने, ऐई जमुभाई! तो वह जाने कि मुझे नहीं कहता, उसके सामने देखकर कहता है। वह जानो। यहाँ किसलिए कहते हैं यह। देखो!

५७) तं परियाणहि दव्वु तुहुँ जं गुण-पज्जय-जुत्तु।
सह-भुव जाणहि ताहँ गुण कम-भुव पज्जउ वुत्ते॥ ५७॥

भगवान ने ऐसा कहा है कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्यायसहित है। ऐसी बात चलती है यहाँ। यह बात है न! ऐसा तू बराबर जान '**परियाणहि**'। तब आत्मा वस्तु है, वह स्वयं द्रव्य है और यहाँ ज्ञानादि गुण है और उनकी पूर्ण शुद्धपर्याय या अशुद्ध आदि पर्यायसहित वह द्रव्य है। स्वयं के कारण से है। और परमाणु और स्कन्ध स्वयं के कारण से है। उसमें कहा न? यह स्कन्ध है, देखो! यह स्कन्ध है। अपने अँगुली का अधिक ठीक पड़ता है, यह शरीर में उस आत्मा से... यह शरीर स्कन्ध है उसे, कहते हैं कि इस स्कन्ध को द्रव्यव्यंजनपर्याय जान पुद्गल को। उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श को विभाविक गुण जान और उसकी इस अवस्था को तू विभाविक पर्याय जान, ऐसा कहा है। वह आत्मा का है और उसका है, ऐसा जान, ऐसा नहीं कहा यहाँ। छोटाभाई! गजब परन्तु भाई! घुंट गये हैं अंक उल्टे न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों में जरा भी कुछ अन्तर नहीं, ऐसा कहते हैं। ... उसमें कुछ है। उसमें आत्मा है और यह है और अकेला यह है। कुछ अन्तर है? नहीं। यह स्कन्ध भी विभाविक द्रव्य है, विभाविक गुण है और विभाविक पर्याय है, ऐसा तू जान—ऐसा कहा है। जीव यहाँ है, इसलिए कुछ अन्तर है, ऐसा नहीं कहा। यह भी

विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय, विभाविक गुण और विभाविक पर्याय, ऐसा तू जान। जीव नहीं निमित्त, इसलिए ऐसा दूसरा जान, ऐसा है नहीं। गजब बात, भाई! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? यह तो सादी बात है या नहीं? यहाँ कहाँ तुमको बड़े व्यापार और वकालत के दृष्टान्त नहीं यह कहीं। व्यापारी को दृष्टान्त नहीं आते उस वकालत के....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किससे? किसे? धूल हो। अरे! भगवान!

यहाँ तो कहते हैं कि यह शरीर जो है, यहाँ तो उसमें अनन्त स्कन्ध हैं, हों! एक शरीर स्कन्ध नहीं। वह एक-एक स्कन्ध भिन्न-भिन्न स्वयं से अनन्त परमाणु के पिण्डरूप द्रव्य अर्थात् अपनी आकृति के व्यंजनपर्यायरूप से रहा हुआ है। वह द्रव्य का स्कन्ध उसके गुणरूप से लो तो विभाविक गुण है, उसकी अवस्थारूप से लो तो उसकी विभाविक पर्याय—अवस्था है। ऐसा उसे जान। उसे ऐसा कहा नहीं कि उससे आत्मा में कुछ होता है, उससे आत्मा में कुछ होता है, ऐसा जान, ऐसा है? क्या कहा? उसे ऐसा जान कि यह परमाणु अनन्त मिला हुआ स्कन्ध द्रव्यव्यंजनपर्याय है, ऐसा जान। उसके गुण को विभाविक गुणरूप से जान और उसकी पर्याय को विभाविक पर्यायरूप से जान। ऐसा कहा कि उसके कारण से आत्मा में शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं? लाभ होता है, ऐसा कहा है? आहाहा! भगवानजीभाई! कभी सुना नहीं किसी दिन।

यहाँ तो वापस कहा कहाँ तक कि, '**जुत्तु**' और '**वुत्तु**'। प्रत्येक वस्तु स्वयं उसे कहते हैं कि उसके गुण और पर्यायसहित (हो), ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसे भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में भगवान ऐसा फरमाते थे। है न? '**वुत्तु**'। '**उक्ता**' है न? '**पर्यायाः**' देखो! **कही जाती है,...** आहाहा! कोई गाथा कोई ले न। ऐई! देवशीभाई! क्या है यह? यह पत्थर के काम करते हैं न देवशीभाई। कहाँ गये? कहते हैं कि वह पत्थर है, वह अनन्त परमाणुओं का विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है। व्यंजन अर्थात् द्रव्य का पूरा रूप। समझे न? वह परमाणु का स्कन्ध है, उसका द्रव्यरूप है, व्यंजन आकार। और उसके गुण हैं, वह विभाविक गुण हैं और अवस्था उसकी विभाविक पर्याय है, वह स्कन्ध है। स्कन्ध ऐसा

है, ऐसा तू जान। यह देवशीभाई के विकल्प के कारण वहाँ ऐसा स्कन्ध आता है, रचा जाता है, ऐसा है नहीं। मगनभाई! ऐसा कभी सुना था वहाँ?

यह भगवान केवलज्ञानी परमात्मा द्रव्य, गुण और पर्याय की ऐसी व्याख्या करते हैं। आहाहा! '**परियाणहि**' वापस, अकेला जान, (ऐसा) नहीं। बराबर जान। परि— समस्त प्रकार से। बराबर ज्ञान को ऐसा लक्ष्य करके उसे जान, ऐसा लक्ष्य करके उसे जान। जाननेवाले को लक्ष्य करके जान और उसे भी तेरे लक्ष्य से ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा जान। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें से योगफल क्या निकला?

पूज्य गुरुदेवश्री : योगफल निकला आत्मा का ज्ञान। आत्मा स्वयं अपने गुण-पर्यायसहित है, ऐसा करके द्रव्य को जान कि यह द्रव्य ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। ऐसे द्रव्यसहित के ज्ञान में यह स्कन्ध ऐसे हैं, ऐसा तेरे लक्ष्य से, उसे तू जान। आहाहा! समझ में आया? जानने का कहा है। ऐसा यह जान, ऐसा यह जान। ऐसा नहीं कि ऐसे-ऐसे तू कुछ कर और उसने उसका किया, ऐसा कुछ इसमें नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्यत्र कहीं लिखा हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यत्र लिखा हो तो निमित्त के कथन। लिखे क्या? वह तो निमित्त से बतलाया हो, साथ में कौन था इतना बतलाने के लिये। बाकी दूसरे से हुआ है, यह कुछ है नहीं। यह तो आत्मा जैसे राग करे तब कर्म बँधे तो कहा कि भाई! आत्मा ने राग किया और उस समय में यह हुआ, ऐसा। यह तो वह निमित्त है, ऐसा बतलाया, परन्तु वह होने की काल की पर्याय तो उससे ही उस काल में, उस समय में उससे हुई है। विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय, विभाविक गुण और विभाविकपर्याय, उससे वह स्कन्ध है। क्या आत्मा से है? आत्मा के कारण से कर्म है? और कर्म के कारण से यहाँ विकार है? नहीं। यह बात तो पहले आ गयी। समझ में आया? संसार में मति आदि चार ज्ञान या मति आदि दो अज्ञान हो, इस आत्मा के कारण से वह है, उसकी पर्याय के कारण से है, वह पर के कारण से है, ऐसा है नहीं। यह ज्ञानावरणीय का उदय था, इसलिए यहाँ मतिज्ञान में हीन हुई, ऐसा है ही नहीं, यहाँ तो कहते हैं। छोटाभाई!

आहाहा! परन्तु... भगवान आत्मा वस्तु, उसके अनन्त गुण, उसकी वर्तमान में हीन पर्याय या सिद्धों को पूर्ण पर्याय, उस हीन पर्यायसहित, गुणसहित वह द्रव्य। पूरी गुण और (पर्याय) सहित वह द्रव्य, ऐसा जान—ऐसा कहा है। उसकी हीन पर्याय है, इसलिए वह कर्म से है, ऐसा जान—ऐसा नहीं कहा। गजब! यह द्रव्य, गुण और पर्याय का ज्ञान घट गया न, इसलिए सब विवाद उठा। सुननेवाले को खबर नहीं होती, कहनेवाले को खबर नहीं होती, फिर यह गड़बड़-गड़बड़ उठी।

यह तो भगवान केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे। उन छह द्रव्यों में अनन्त आत्मा देखे, अनन्त परमाणु देखे, अनन्त रजकण के स्कन्ध का सम्बन्ध स्कन्ध देखा। अब उसकी दो बात। चार को एक ओर रखो, चार बाद में कहेंगे। उसमें अनन्त आत्माओं में उसका द्रव्य है वह जीव, उसका गुण ज्ञान, दर्शन आदि गुण और उसकी पर्याय जो है, वह परिपूर्ण पर्याय हो सिद्ध आदि की तो वह परिपूर्ण स्वभावसहित की पर्यायसहित द्रव्य जान। अपूर्ण हो तो अपूर्ण पर्यायसहित, विकारसहित आदि गुणसहित, उसे द्रव्य जान। ऐसा यहाँ कहा है। परमाणु को ऐसा जान कि, उसके द्रव्य, गुण, पर्याय शुद्धव्यंजनपर्याय है, शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय है, ऐसा जान। स्कन्ध को ऐसा जाने कि विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय, विभाविकगुण और विभाविकपर्याय है, ऐसा जान। समझ में आया? जान, जान और जान है। उसमें कहीं कर, कर और कर, ऐसा नहीं दूसरे में कुछ। कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत रखना पड़े?

कहो, यह स्कन्ध की व्याख्या की। यह सब स्कन्ध, हों! जगत के। परमाणु के अतिरिक्त दो परमाणु से लेकर तीन, चार, पाँच, अनन्त। यह नाक, कान, यह सब अनन्त परमाणु का स्कन्ध है। अँगुली, लड्डू, दाल, भात, सब्जी, दियासलाई, यह वस्त्र-कपड़ा, यह सब गहने वह अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है। वह एक-एक अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध, उसे पूरे द्रव्य की अपेक्षा से द्रव्यव्यंजन कहते हैं, उसकी आकृति को पर्याय और उसके गुण को विभाविक गुण कहते हैं, कायम रहनेवाले। वे स्कन्धरूप से इकट्ठे हैं, इस अपेक्षा से विभाविक, बाकी गुण तो गुण ही है अन्दर। और उसकी

वर्तमान पर्याय हुई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की पलटकर पर्याय होती है, उसे विभाविकपर्याय कहा जाता है। ऐसा वह स्कन्ध का द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप है। ऐसा उस स्कन्ध का द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप स्वयं से है। ऐसे पर्याय-गुणसहित उस द्रव्य को जान। ऐसा नहीं कहा कि साथवाला है, उससे तू उस द्रव्य को जान। क्या कहा? समझ में आया? कहो, इसमें तो समझ में आये ऐसी बात है, इसमें कहीं बहुत ऐसा कठोर भंगभेद नहीं। क्यों, ऐई! कैसा है? यह सीधी बात है या नहीं?

यह कहते हैं कि, मैसूर के रजकण का स्कन्ध उसकी पर्याय से है, विभाविक पर्याय से है, हराम उस साथवाले से हो तो। अनन्त स्कन्ध जो पिण्डरूप हैं, वह द्रव्य की व्यंजनपर्याय आकृतिरूप से कहा जाये और उसके गुणों को विभावगुण कहा जाये और उसकी पर्याय को विभाव व्यंजनपर्याय कहा जाये। फलाने के कारण से फलाना और फलाने के कारण से फलाना, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उड़ जायेगा सब यहाँ से। यह बात तो कही नहीं गयी वहाँ? वह आत्मा में जितनी यहाँ पर्याय होती है, वह उसकी पर्यायसहित और उसके गुणसहित द्रव्य को जान। साथ में वहाँ है, इसलिए उससे वहाँ पर्याय हुई, ऐसे द्रव्य को जान—ऐसा है नहीं। यह बात तो हो गयी जीव में। यहाँ तो अभी पुद्गल की चलती है। आहाहा! समझ में आया?

अब परमाणु। यह स्कन्ध की व्याख्या की। बहुत रजकणों का पिण्ड जगत में सब जितने सब भगवान परमात्मा कहते हैं, वे सब स्कन्ध अपने गुण, पर्याय से उस द्रव्य को जान। वह विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय को, उसकी पर्याय विभाविक और विभाविक गुणसहित उस द्रव्य को जान। बस, इतनी बात है। आहाहा! कहो, भरतभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? ऐसी गजब बात! कॉलेज में ऐसा आता होगा कुछ?

अब परमाणु एक है न, उस शुद्ध द्रव्य में एक वर्ण... यह उसमें आ तो गया है उसमें, समझे न? स्वभावपर्याय में, हों! पहले। परन्तु उसे अधिक स्पष्टीकरण करते हैं। एक परमाणु में एक रंग होता है न एक रंग, रंग अर्थात् गुण नहीं, उसकी वर्तमान

अवस्था। काली, पीली, हरी, चिकनी, रूखी, स्पर्श आदि। एक रंग की पर्याय, एक गन्ध की, एक रस की और दो स्पर्श की, वह पर्याय परमाणु में होती है। समझ में आया ? **परमाणु शुद्ध द्रव्य में एक वर्ण (पर्याय), एक रस (पर्याय), एक गन्ध पर्याय और शीत उष्ण में से एक (पर्याय) तथा रूखे-चिकने में से एक, ऐसे दो स्पर्श, इस तरह पाँच गुण तो मुख्य हैं,...** उसे पाँच गुण कहे इस अपेक्षा से। है तो पर्याय। पर्याय को गुण कहा। जैसे उस मतिज्ञान को गुण कहा था विभाविक, उसे इस अपेक्षा से गुण कहा है। **इनको आदि से अस्तित्वादि अनन्त गुण हैं,...** ऐसे तो अस्तित्व आदि गुण तो अनन्त हैं त्रिकाली, परन्तु उसकी वर्तमान पर्यायसहित की यहाँ व्याख्या करनी है। अस्तित्व गुण की वर्तमान पर्याय, परिणमता है न अस्तित्व। अस्तित्वपना परमाणु प्रत्येक में अस्तित्वगुण है। वह अस्तित्वगुण है, उसका परिणमन, अस्तित्व गुण वह त्रिकाल है, उसका परिणमन वर्तमान है, पर्याय वर्तमान है।

इनको आदि से अस्तित्वादि अनन्त गुण हैं, वे स्वभाव-गुण कहे जाते हैं,... यदि उसके गुणरूप से कहो तो स्वभावगुण और पर्यायरूप से कहो तो स्वभावपर्याय कही जाती है। **और परमाणु का जो आकार वह स्वभावद्रव्य व्यंजनपर्याय है,...** उसमें नहीं आया था। एक परमाणु जो है एक रजकण, उसका आकार एक स्वाभाविक द्रव्य-आकृति-व्यंजनपर्याय कही जाती है। **तथा वर्णादि गुणरूप परिणमन, वह स्वभावगुण व्यंजन-पर्याय है।** यह जरा पाठ में है सही न, इसलिए डाल दिया है। यह वह का वह। जो पहले कहा था कि वर्ण से वर्णान्तर, वर्ण से वर्णरूप कहा था तीसरी लाईन, इस ओर में पहली शुरुआत करते हुए, उस बात को यहाँ पर्याय में जरा एक गुण, दो गुण, ऐसा स्पष्ट करके बात की। उसे और उसे यहाँ कहा कि, वह वर्णादि गुण का परिणमन है। वह सब बात एक की एक है। वह स्वभावगुणपर्याय है, स्वभावगुणपर्याय है। समझ में आया ?

जीव और पुद्गल इन दोनों में तो स्वभाव और विभाव दोनों हैं,... लो! जीव और पुद्गल में तो स्वभाव और विभाव दोनों हैं। और धर्मास्तिकाय नाम का पदार्थ... अब यह चार की बात नहीं आयी थी। एक धर्मास्ति (द्रव्य) भगवान ने देखा है लोकप्रमाण। धर्मास्ति द्रव्य है लोकप्रमाण, एक अधर्मास्तिद्रव्य है लोकप्रमाण भगवान

केवली ने देखा हुआ। आकाश द्रव्य है और काल असंख्य द्रव्य हैं काल असंख्य (कालाणु)। **इन चारों में अस्तित्वादि स्वभाव-गुण ही हैं,...** इन चार में तो अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनन्त स्वभाव गुण ही हैं, इनमें विभाव नहीं। चार में विभाव नहीं। **और अर्थपर्याय षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप स्वभाव-पर्याय सभी के हैं।** षड्गुण हानि-वृद्धि है न, इन चार में स्वाभाविक है। **धर्मादि के चार पदार्थों के विभावगुण-पर्याय नहीं हैं।** कहो, समझ में आया?

कितना स्पष्ट किया है! विभावपर्यायसहित (होवे) तो भी उसे द्रव्य जान। यहाँ विभाविकगुण, पर्यायसहित (होवे) तो भी उसे द्रव्य जान। ऐसे-ऐसे द्रव्य जान, ऐसा कहा है। समझ में आया? ओहोहो! यह बात पूरी पड़ी रही न, इसलिए स्वतन्त्रता की गन्ध चली गयी। सब स्वतन्त्र है। वस्तु स्वतन्त्र, उसका गुण स्वतन्त्र, उसकी पर्याय स्वतन्त्र। कोई कर्ता-बर्ता नहीं, ईश्वर-फिश्वर कोई है नहीं। तथा एक द्रव्य की पर्याय का कर्ता दूसरा नहीं। आहाहा! यह बात वीतराग की बात जगत को बैठना भारी कठिन। पण्डितों को कठिन पड़ती है। आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने ज्ञान में छह द्रव्य देखे। उन छह द्रव्य को गुण-पर्यायवाले देखे। तो सिद्ध को देखा, वह गुण और पर्याय -स्वभावसहित देखा। संसारी को, गुण और अपूर्ण विभावपर्यायसहित देखो। परमाणु को शुद्ध द्रव्यव्यंजनपर्याय और गुण और पर्याय स्वभावसहित देखा, स्कन्ध को आकृति का विभाविकद्रव्य और विभाविकगुण और विभाविकपर्यायसहित देखा। इस प्रकार से वस्तु जगत में है। आहाहा! ऐसा जैसे है, वैसे जान, इसका नाम ज्ञान कहा जाता है। जैसा है, उसे उससे उल्टा जाने तो? आत्मा में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान हीन दशा स्वयं की पर्याय से है, ऐसा जाने तो वह बराबर जाना कहलाये। परन्तु वह कर्म के कारण से हीन है, ऐसा जाने तो वह बराबर जाना कहलाये नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... विवाद ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विवाद तो विवाद ही है न अज्ञानी को जहाँ हो वहाँ। यह तो ऐसी वस्तु है। अब ऐसी खुल्ली बात प्रगटरूप से भगवान ने वर्णन की हुई यह है।

'वुत्तु'—भगवान ने ऐसा कहा है। आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव आचार्य दिगम्बर मुनि थे जंगलवासी—जंगल में रहनेवाले दिगम्बर। भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा तू जान, उससे विपरीत जान तो द्रव्य का स्वरूप ऐसा नहीं और भगवान ने ऐसा कहा नहीं। तू भगवान को मानता नहीं और द्रव्य, गुण, पर्याय को मानता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकालोक का ज्ञान यहाँ का स्वभाव जानने का है। **'परियाणहि'** किसलिए कहा? सब जानने का उसका एक समय का स्वभाव है अभी। आहाहा! परन्तु यह है वैसा जान, ऐसा। जैसा नहीं वैसा जान, वह तो ज्ञान खोटा (हुआ)। भगवान आत्मा उसे वर्तमान विकार हो पुण्य और पाप आदि और मति आदि की हीन दशा हो, वह पर्यायसहित, गुणसहित द्रव्य जान, ऐसा कहा है। ऐसा है, इसलिए कर्मसहित वह है, ऐसा जान—ऐसा कहा नहीं। छोटाभाई! आहाहा! अरे! भगवान! जैन सम्प्रदाय की जैन की बात कान में (सुनने को) मिले नहीं, वह किस प्रकार समझे? यह सब तकरार—विवाद। समझ में आया?

यह घड़ा है न, घड़ा? कहते हैं कि घड़ा एक विभाविक द्रव्यव्यंजनपर्याय है, विभाविक द्रव्य। बहुत रजकण हैं न, इसलिए विभाविक। उसके गुण विभाविक गुण और उसकी पर्याय जो है, वह विभाविकपर्याय, ऐसे उस स्कन्ध को तू जान। ऐसा वहाँ नहीं कहा, कुम्हार है तो ऐसा होता है, ऐसा जान। ऐसा वहाँ नहीं कहा। कुम्हार के स्कन्धों का देह अलग, उसका आत्मा अलग, उसके आत्मा को उसकी गुण-पर्यायसहित जान। शरीर के स्कन्ध को उसकी गुण-पर्यायसहित जान। घट को उसकी पर्याय-गुणसहित द्रव्य जान। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई! किरीट! ऐसा कैसा परन्तु यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सम्बन्ध टूट जाता है। यही कहते हैं कि सम्बन्ध नहीं और मुफ्त का माना है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक पाठ बैठे तो सब हल हो जाये ऐसा है बस। ....

देखो न, कितना कहा! परमात्मप्रकाश है। तो तेरा परमात्मा द्रव्य—वस्तु है, उसके अनन्त गुण हैं और उसकी वर्तमान पर्याय हीन है। तो हीन पर्यायसहित तेरा द्रव्य है, ऐसा अभी जान। पर के कारण से ऐसा कुछ है, ऐसा है नहीं। आहाहा! निगोद के आत्मा को कैसे जान? कहा। भाई! निगोद के आत्मा को जानने का क्यों कहा भगवान ने? कि निगोद का आत्मा है द्रव्य। अनन्त है न, एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं न? यह आलू, शक्करकन्द (उसमें) अनन्त (जीव हैं)। एक इतना राई जितना लो तो उसमें असंख्य शरीर हैं। एक शरीर में अनन्त आत्मा हैं। उस आत्मा को कैसे जान? कि वह आत्मा है द्रव्य, उसके गुण अनन्त और उसकी वर्तमान हीन अवस्था जो है, तो संकल्प-विकल्प है, उस पर्यायसहित, गुणसहित उस द्रव्य को जान। क्योंकि ऐसा है वह, ऐसा है वह। वह कैसा है? कर्म के कारण से है, या पर के कारण से है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय के कारण से है। पर्याय के कारण से, गुण के कारण से द्रव्य है, ऐसा कहा यहाँ।

अनादि का यह निगोद में—नित्यनिगोद में भी है, वह अपने से पर्याय और गुणसहित द्रव्य है; पर के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसा आया इसमें? सुरेन्द्रनाथ! आया? ओहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ाया नहीं। है, उसमें उससे ऐसी पर्यायसहित द्रव्य को जान, ऐसा कहा। क्या कहा? जो द्रव्य में वर्तमान में संकल्प-विकल्प और अल्प ज्ञान है, ऐसी पर्यायसहित, उसके त्रिकाली गुणसहित उस द्रव्य को जान, ऐसा कहा। उड़ाया कहाँ, है—ऐसा जान, ऐसा कहा है यहाँ तो। पोपटभाई! जैसी उसकी वर्तमान अवस्था, उसके गुणसहित का द्रव्य जान। किसके कारण से? स्वयं के कारण से। यह तो कहा नहीं था? तेरे ज्ञान में,... कल कहा नहीं था कल? सब आया था कलश में, नहीं? समस्त संसारी जीव सर्व काल में शुद्ध है, सर्व काल में शुद्ध है और समस्त को जानते हैं। आहाहा! अरे!

भगवान आत्मा का स्वभाव तो सबको जानने का है। जानना... जानना... जानना... जानना... यह ऐसा, यह ऐसा—ऐसा जान बस। आहाहा! क्या हो? सर्वज्ञ क्या करते हैं? जानते हैं? सर्वज्ञ अपनी पर्याय-गुणसहित का द्रव्य, उसे स्वयं को जानते हैं। दूसरे की पर्यायसहित के गुणसहित का द्रव्य, उसे जानते हैं। बस। वह पूर्ण ज्ञान से जाने, तू अपूर्ण ज्ञान में ऐसा ही जान। समझ में आया? भाई! यह तो सब सिद्धान्त हैं, फिर उसकी यह चाबियाँ उसके फिर भंगभेद निकालना हों उतने निकलें। चार पैसे का सेर तो मण का ढाई। फिर साढ़े सैंतीस सेर का कितना? तो साढ़े सैंतीस आना। ऐसे यहजो अकेले नियम हैं वस्तु के। आहाहा! मन्त्र हैं।

मुमुक्षु : कोई शास्त्र के लेखन में ऐसा हल माँगे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें है न, यह भरा है न। हल माँगे कहाँ? यह क्या भरा है देखो न, क्या कहा? '**तं परियाणहि दव्वु।**' उसे तू वस्तु जान। किसे? कि, '**जं गुण-पज्जय-जुत्तु**'। वह वस्तु उसके गुण कायम और वर्तमान अवस्था सहित के द्रव्य को तू द्रव्य जान। यह सब हल। क्या बाकी रह गया इसमें? कहो, न्यालभाई! इसमें क्या हल बाकी रहा है अब? परन्तु वह तो ऐसा है, ऐसा जान, दूसरा क्या? तुझे ख्याल नहीं कि ऐसा है, ऐसा है? ऐसा है, ऐसा जान। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करे तो होता है न जानना। जानना, वह करना नहीं? कि मुझे यह पर्यायसहित का यह द्रव्य है, ऐसा ज्ञान (कर)। वह ज्ञान हुआ, ऐसी श्रद्धा हुई, वह धर्म हुआ। दूसरे के द्रव्य ऐसे, उसकी पर्याय-गुणसहित है, ऐसा जान। तो स्व-परप्रकाशक जानने का मेरा स्वभाव है, ऐसा जाना। वह यह जाना, इसका नाम इसने श्रद्धा की, यह उसका नाम समकित और उसका नाम ज्ञान। ओहोहो! गजब बातें हैं!

सम्यग्ज्ञान मुनि को है, चार ज्ञान मुनि को और चारित्र है। तो कहते हैं कि, हे जीव! तू तेरी वर्तमान पर्याय चार ज्ञान की या चारित्रपर्यायसहित की और अनन्त गुणसहित उस द्रव्य को जान। और साथ के जितने सब पदार्थ हैं, उन्हें भी उनकी पर्याय जो वर्तमान वर्तती है, गुण कायम वर्तते हैं, उन पर्याय और गुणसहित उस द्रव्य को

जान। आहाहा! यह जानने की क्रिया नहीं आयी? वह गुण की क्रिया नहीं आयी? गुण का गुण नहीं आया यह? आहाहा! वीतरागियों के कथन—दिगम्बर सन्तों के कथन अलौकिक बात! अलौकिक बात!! एक-एक बात में पूरा भर देने की सामर्थ्य है! इतना इसमें भरा है, कितना भरा है, इसमें एक-एक में! यह चारों ओर से एक बात में पूरा, एक बात में पूरा, एक श्लोक में पूरा, गजब बात!! समझ में आया?

लो, यह छहों द्रव्य आ गये। समझ में आया? एक आकाश के लिये कि, **घटाकाश मठाकाश...** कहा जाता है, वह तो एक उपचार से कहा जाता है। कुछ है नहीं, कुछ होता नहीं। आकाश तो आकाश है। आकाश, उसकी निर्मल पर्याय, निर्मल गुणसहित को आकाश जान। आहाहा! कितना आकाश? लोकालोक ऐसे आकाश को... यहाँ जीव को कहते हैं। उसका इतना, यहाँ तू तेरे पर्याय-गुण में रहा हुआ द्रव्य, उसके इस आकाश को उसकी पर्याय के गुणसहित के उस आकाश को जान। आहाहा!

मुमुक्षु : वह नाम में बड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा तो तू जाननेवाला है। वह क्षेत्र से बड़ा है। समझ में आया?

ये षट्द्रव्यों के गुण-पर्याय कहे गये हैं। इन षट् द्रव्यों में... देखो, अब आया। **शुद्ध गुण, शुद्ध पर्यायसहित जो शुद्ध जीवद्रव्य है, वही उपादेय है**—वह शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय निर्मल। शुद्ध निर्मल केवलज्ञानादि पर्याय, शुद्ध गुण—ऐसा आत्मा उपादेय है। अर्थात् वह आत्मा उपादेय करने जाता है, वहाँ अन्दर द्रव्यस्वरूप शुद्ध है, उसे उपादेय हो जाता है। उसका नाम उपादेयपना। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति जो अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप उसे आदरणीय करना, वह इन सब द्रव्य-गुण-पर्याय के सार का तात्पर्य है। आहाहा! इसमें तो दृष्टान्त देना हो, उतने दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ५८

आगे जीव के विशेषपनेकर द्रव्य-गुण-पर्याय कहते हैं—५८ (गाथा)।

५८) अप्पा बुज्झहि दव्वु तुहुँ गुण पुणु दंसणु णाणु।
पज्जय चउ-गइ-भाव तणु कम्म-विणिम्मिय जाणु॥ ५८॥

वह समुच्चय था छहों का। अब अलग करते हैं।

अन्वयार्थ :- हे शिष्य! तू आत्मा को तो द्रव्य जान और दर्शन-ज्ञान को गुण जान,... क्या कहा? हे आत्मा! तू वस्तु है अनादि-अनन्त, उसे द्रव्य जान। उसके दर्शन-ज्ञान को गुण जान। लो! देखा? दर्शन-ज्ञान, दृष्टा-ज्ञातापना त्रिकाल, उसे तू गुण जान। आत्मा के देखना, जानना त्रिकाल गुण को तू गुण जान। **'चतुर्गतिभावान् तनुं'।** यह चार गति जो पर्याय है और शरीर को तू कर्मजनित विभावपर्याय जान, विभावपर्याय जान। शरीर का निमित्त, वह विभावपर्याय जड़ की और देखो, अब निमित्त यहाँ डाला और यहाँ तेरी विकारी पर्याय मनुष्य, देव आदि पर्याय, हों! यह देह नहीं, ऐसी पर्याय और गुण, ऐसे द्रव्य को तू जान। वह विभावपर्याय समझ।

भावार्थ :- इसका विशेष व्याख्यान करते हैं—शुद्धनिश्चयनयकर... भगवान आत्मा वस्तु स्वयं है आत्मा, शुद्धनिश्चयनय अर्थात् सच्ची सत्य दृष्टि से देखें तो **शुद्ध...** है। भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र द्रव्य-गुण आदि से है, **बुद्ध...** है—अकेला ज्ञान का पिण्ड है। आत्मा ज्ञान का पुंज—पिण्ड है। **अखण्ड...** है। एक द्रव्य, इसलिए अखण्ड है। स्वभाव **अखण्ड स्वभाव, आत्मा को तू द्रव्य जान,...** देखो! ऐसे आत्मा को द्रव्यरूप से जान। वस्तुरूप से ऐसा जान। शुद्ध हूँ, ज्ञान का पिण्ड हूँ, अखण्ड स्वभाव—ऐसे आत्मा को तू द्रव्य जान, वस्तु जान।

चेतनपने के सामान्य स्वभाव को दर्शन जान,... उस आत्मा में एक दर्शन नाम का गुण है कि जो सभी चीज़ों को भेद किये बिना अभेद से देखे, ऐसे दर्शन को तू गुण जान। **और विशेषता से जानपना उसको ज्ञान समझ।** और उस आत्मा में एक ज्ञानगुण है कि जो सभी चीज़ों को भिन्न-भिन्न जिस प्रकार से है, अनेकरूप से जिस प्रकार से है, उस प्रकार से भिन्न-भिन्नरूप से राग बिना ज्ञान जाने, उसे तू ज्ञानगुण जान। **ये दर्शन-**

ज्ञान आत्मा के निज गुण हैं,... वह अपना गुण है। सामान्यरूप से सब तीन काल—तीन लोक को देखना और विशेषरूप से भिन्न-भिन्न सब जानना, ऐसा सामान्य-विशेष अपना आत्मा का गुण है। वह आत्मा का गुण है। आहाहा!

गुड़ का गुण क्या? कि मीठा। अफीम का गुण क्या? कड़वा। नमक का गुण क्या? खारा। तेरा गुण क्या? इन सभी पदार्थों को सामान्यरूप से भेद बिना देखना और भेद करके जानना, वह तेरा गुण है। आहाहा! समझ में आया? जितनी वस्तुएँ हैं, उन सभी वस्तुओं को, आत्मा का एक दर्शन नाम का गुण है कि जो यह वस्तु यह और यह वस्तु यह—ऐसा भिन्न किये बिना महा अस्तिरूप से, महासत्तारूप से जैसा है, वैसा जो देखता है, वह दर्शनगुण। और महासत्ता के जितने प्रकार भिन्न-भिन्न हैं, उतने भिन्न-भिन्नरूप से (जाने, वह ज्ञानगुण है)। ओहोहो! एक गुण ऐसा और एक गुण ऐसा। तेरा द्रव्य कितना? आहाहा!

भगवान! तू कैसा? कि द्रव्य अखण्ड शुद्ध। गुण कैसा? एक गुण सब चीज़ों को भिन्न-भिन्न किये बिना देखे और उसके साथ का एक गुण सबको भिन्न-भिन्न करके जाने। ऐसा तेरा दो गुणवाला तू आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? **उनमें से ज्ञान के आठ भेद हैं,...** अब ज्ञान के आठ भेद हैं। समझ में आया? यह आत्मा है आत्मा, आत्मा, उसमें ज्ञान नाम का एक गुण है, जानना नाम की शक्ति है। वह जानना नाम की शक्ति का गुण त्रिकाल है, उसकी वर्तमान अवस्था के आठ प्रकार हैं। समझ में आया? **उनमें केवलज्ञान तो पूर्ण है,...** यह आत्मा वस्तु, ज्ञानगुण, उसकी वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान वह पूर्ण है। अर्थात् स्व को-पर को तीन काल परिपूर्ण जाने, ऐसी आत्मा की एक पर्याय है। गुण-द्रव्य में तो शक्ति थी, यह प्रगट में पर्याय की बात करते हैं। यह आत्मा वस्तु, उसका ज्ञान कायम गुण, उसकी वर्तमान अवस्था की आठ दशा। उसमें एक दशा केवलज्ञान, वह पूर्ण दशा है कि जिसमें सब पूर्ण ज्ञात होता है। **अखण्ड है,...** वह दशा—केवलज्ञान अखण्ड है। सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा की पूर्ण पर्याय को प्राप्त करे, वह अखण्ड है। वह पर्याय शुद्ध है। समझ में आया?

तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान... पर्याय के भेद, हों! **सम्यक्ज्ञान...** आत्मा में ज्ञानगुण की एक सम्यक् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय-

ज्ञान की दशा है। **और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन मिथ्या ज्ञान, ये केवल की अपेक्षा सातों ही खण्डित हैं,...** केवलज्ञान की अपेक्षा से ये सातों ही खण्डित और अधूरे हैं। भगवान का ज्ञान केवलज्ञान, वह परिपूर्ण है। आहाहा! **अखण्ड नहीं...** ये चार ज्ञान और तीन अज्ञान खण्डित हैं, अखण्ड नहीं। **और सर्वथा शुद्ध नहीं है,...** केवलज्ञान, वह आत्मा की सर्वथा शुद्ध दशा है। उसे आत्मा परिपूर्ण प्रगट हुआ और पर्याय हुई उसे कहा जाता है।

अशुद्धता सहित हैं,... ये सात तो अशुद्धता सहित है। चार ज्ञान कम, तीन अज्ञान विपरीत अशुद्धतासहित। **इसलिए परमात्मा में एक केवलज्ञान ही है।** परमात्मा जो सर्वज्ञ प्रभु हुए, वे अरिहन्त सर्वज्ञ, उनकी ज्ञानदशा परिपूर्ण हो गयी। वे परमात्मा परिपूर्ण है। उसमें एक ही केवलज्ञान है, उसमें ज्ञान के आठ भेद में से सात भेद हैं नहीं, इसलिए उसे अखण्ड और शुद्ध कहा जाता है। इस प्रकार से आत्मा के परमात्मा का स्वरूप पर्यायसहित है, उसे तू बराबर जान, ऐसा कहते हैं। दूसरे दर्शन की व्याख्या आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक - ०४-११-१९६५
गाथा - ५८ - ५९, प्रवचन - ४१

परमात्मप्रकाश, पहले भाग की ५८वीं गाथा। यह क्या बात चलती है ? यह जीव है जीव, वह स्वभाव से वस्तु अखण्ड है अनादि, अनादि। यह आत्मा। शुद्ध, बुद्ध, अखण्ड स्वभाव, उसे द्रव्य जानना, ऐसा आया है न ? यह आत्मा शुद्ध है, पवित्र है और बुद्ध अर्थात् अकेला ज्ञान का पिण्ड है और वह अखण्ड है। ऐसे स्वभाववान को जीव कहना, उसे द्रव्य कहना, ऐसा कहा। समझ में आया ? उसे द्रव्य जानना। द्रव्य अर्थात् वस्तु अर्थात् शुद्ध है, ज्ञानपिण्ड है, एक अखण्ड है, ऐसे स्वभाववन्त को जीवद्रव्य कहा जाता है। उसमें गुण दर्शन और ज्ञान मुख्यरूप से दो, मुख्यपने की बात है।

यह दर्शन और ज्ञानगुण है उस आत्मा में। उसमें उस ज्ञानगुण की आठ अवस्थायें हैं। वह अवस्था अपने में अपने कारण से है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? आत्मा वस्तु अखण्ड शुद्ध चैतन्य पदार्थ है। उसका दर्शन और ज्ञान, ऐसे दो गुण स्वभाव हैं, गुण स्वभाव। उसका ज्ञानगुण, उसकी आठ दशायें हैं। मति, श्रुत और अवधि अर्थात् विभंग, ऐसी तीन दशायें भी उस ज्ञानगुण की आत्मा में, आत्मा से, आत्मा में है। वह दूसरी चीज़ के कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? मति-अज्ञान हो, श्रुत-अज्ञान हो या विभंग (अवधि) हो, परन्तु वह ज्ञान की विपरीत पर्याय भले अज्ञान, परन्तु है वह आत्मा की, आत्मा में, आत्मा के कारण से। द्रव्य जो अखण्ड, उसका ज्ञानगुण एक अखण्ड, उसकी यह पर्यायें आठ, परन्तु वे पर्यायें गुण की अवस्था है, वे कोई पर की नहीं, कर्म के कारण से नहीं। आत्मा में मति, श्रुत और अवधि तीन अज्ञान, वे भी स्वयं के कारण से है। और ज्ञान की पाँच दशाओं में चार दशायें सम्यक् मति, सम्यक् श्रुत, सम्यक् अवधि और मनःपर्यय, यह ज्ञान की पर्यायें आत्मा की अपनी अवस्था अपने कारण से है। समझ में आया ? और केवलज्ञान, वह आत्मा की पूर्ण शुद्ध दशा है। यह चार ज्ञान और तीन अज्ञान, ये खण्ड हैं, अशुद्ध हैं;

इसलिए यह आदरणीय नहीं, हेय है। और आत्मा अखण्ड गुण ज्ञान, उसकी पर्याय पूर्ण केवलदशा, वह शुद्ध है, वह अखण्ड है, इसलिए वह पर्याय आदरणीय अर्थात् प्रगट करनेयोग्य है। समझ में आया?

वह प्रगट कैसे हो? कि जो आत्मा है, उसमें उसका ज्ञानगुण है। उस गुण के धारक आत्मा में दृष्टि करने से वह केवलज्ञान की पर्याय गुण में से परिणमकर आती है। केवलज्ञान वह पर्याय भी संहनन है, मनुष्यदेह है, इसलिए है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह ज्ञान की बात की, आठ की कही न!

अब दर्शन की इसमें नहीं, टीका में है। अब आत्मा में एक दर्शन नाम का गुण त्रिकाल है। वस्तु स्वयं अखण्ड शुद्ध-बुद्ध, उसका दर्शन नाम का गुण है, उसकी चार दशायें हैं। केवलदर्शन, अवधिदर्शन, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन। यहाँ से शुरु किया। अचक्षु, चक्षु, अवधि और... उसमें देखो यहाँ से शुरु किया है, हों! पहला केवलदर्शनम्। केवलदर्शन, वह सकल अखण्ड है। शुद्ध है, अखण्ड है। शुद्धम् पूरा अखण्ड है केवलदर्शन, हों! केवलदर्शन पर्याय।

आत्मा वस्तु का दर्शनगुण, उसकी केवलदर्शन पर्याय, वह पूरी अखण्ड है और शुद्ध है। यह सकल, अखण्ड और शुद्ध तीन। सकल, अखण्ड, पूर्ण अखण्ड है ऐसा। और शुद्ध इसलिए केवलदर्शन की पर्याय आदरणीय अर्थात् प्रगट करनेयोग्य है। वह प्रगट कैसे हो? कि दर्शन गुण का धारक जो आत्मा, उसका अन्तर का आश्रय करने से केवलदर्शन की पर्याय प्रगट होती है। कहो, समझ में आया इसमें? उसमें तीन चक्षु आदि त्रयं विकल और अशुद्ध है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन; यह आँख से देखना नहीं परन्तु उसकी देखने की योग्यता और चक्षु के अतिरिक्त चार इन्द्रियाँ... और अवधि, यह तीन विकल है। विकल अर्थात् खण्ड है और अशुद्ध है; इसलिए वे हेय हैं। दर्शन की तीन पर्यायें अवधिदर्शन, अचक्षुदर्शन और चक्षुदर्शन की पर्याय की बात है, हों! यह होता है अपने में, अपने गुण की पर्याय है। वह पर्याय होना अपने में, अपने कारण से। परन्तु यह तीन खण्ड है, अशुद्ध है। इसलिए केवलदर्शन प्रगट करनेयोग्य है। केवलदर्शन वह आत्मा के दर्शनगुण की शुद्ध अखण्ड दशा है। वह दशा आत्मा के आश्रय से प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? यह बात इसमें नहीं, नीचे टीका में है।

अब '**गुणास्त्रिविधा भवन्ति**' ऐसा है अन्दर। गुण के तीन प्रकार हैं। दूसरे सब गुण लेना है। वे दो कहे न, अब दूसरे सब गुण लेना है ज्ञान-दर्शन के गुणों की बात की, उनकी पर्याय की बात की। अब उस गुण के तीन प्रकार हैं। साधारण हैं, कितने ही असाधारण हैं, कितने ही साधारण और असाधारण हैं। इसकी व्याख्या करेंगे, हों! साधारण अर्थात् बहुतों में हो, वह साधारण और खास में हो और दूसरे में न हो, वह असाधारण।

पुद्गल में अमूर्तगुण नहीं पाये जाते,... ध्यान रखना! यह परमाणु है न, पुद्गल जड़, रजकण या स्कन्ध, इसमें अमूर्तपना नहीं। है? **इस कारण पाँचों की अपेक्षा साधारण,...** क्या कहा? इस पुद्गल के अतिरिक्त पाँच पदार्थ हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म और काल, इस अपेक्षा से अमूर्तपना साधारण है। पाँच में सबमें है। अमूर्तपना पुद्गल के अतिरिक्त पाँच पदार्थों में साधारण है, सबमें है, बहुत में है। समझ में आया? यह तो सीधी बात है या नहीं? अमूर्तपना पुद्गल के अतिरिक्त पाँच में—बहुतों में है, इसलिए साधारण है। पुद्गल की अपेक्षा से साधारण है। पुद्गल में अमूर्तपना नहीं, इस अपेक्षा से पाँच में पुद्गल की अपेक्षा से असाधारण कहा जाता है। नेमिदासभाई! यह नेमिदासभाई को कहा, वाँचन करो थोड़ा वाँचन करो... कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु इस प्रकार से अब तो सीखना पड़ेगा या नहीं? क्या कहा?

यह आत्मा में द्रव्यपना, गुणपना और पर्यायपना। ऐसे जड़ में, जड़ अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त पाँचों ही, उनमें द्रव्यपना, गुणपना और पर्यायपना है। उसके प्रकार वर्णन करते हैं। आत्मा में भगवान आत्मा जो द्रव्यपना तो उसका शुद्ध-बुद्ध और अखण्ड स्वभाव और उसका गुणपना ज्ञान और दर्शन ऐसा लिया पहला। मुख्यरूप से लिया न। उसकी पर्यायें आठ और चार लीं। एक-एक पर्याय पूरी है, वह आदरणीय है और खण्ड है, वह अशुद्ध है।

अब उस जीव में वापस दूसरे अनन्त गुण हैं। दो तो मुख्य खास उसकी वस्तु कही। जीव और सब पुद्गलों में या छहों द्रव्यों में अनन्त गुण हैं। उनमें पुद्गल में अमूर्त गुण नहीं। है पुद्गल में अमूर्तपना? इस अपेक्षा से पाँचों की अपेक्षा से साधारण। पाँच पदार्थ हैं पुद्गल के अतिरिक्त, उन सबमें अमूर्तपना है। बहुतों में है, इसलिए

साधारण और पुद्गल की अपेक्षा से वह पुद्गल में नहीं, इस अपेक्षा से पाँच में असाधारण कहलाता है। समझ में आया इसमें? समझ में आया या नहीं? यह परमाणु है पुद्गल, उनमें अमूर्तपना नहीं, एक बात। अब पाँच पदार्थ हैं, उनमें अमूर्तपना है, परन्तु बहुत है न, इस अपेक्षा से उसे साधारण कहा। इस एक में—इसमें नहीं, इस अपेक्षा से उसका ही अमूर्तगुण, इसलिए असाधारण कहा। समझ में आया?

अब प्रदेशगुण, प्रदेशगुण लेना है। प्रदेशपना, बहुत प्रदेशपना। बहुत प्रदेशपना—आत्मा के असंख्य प्रदेश, धर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश, आकाश के अनन्त प्रदेश, पुद्गल में भी दो से आदि बहुत प्रदेश। एक परमाणु अलग। तो **प्रदेशगुण काल के बिना (अथवा परमाणु के बिना) पाँच द्रव्यों में पाया जाता है,...** दूसरे भी बहुत पुद्गल हैं न? दो परमाणु से लेकर अनन्त पुद्गल हैं, इस अपेक्षा से। **पाँच की अपेक्षा यह प्रदेशगुण साधारण है,...** क्योंकि काल और एक परमाणु को छोड़ दें तो सब परमाणु और सब आकाश आदि (द्रव्य) हैं, उन सबमें प्रदेश गुण है। इसलिए उस प्रदेश गुण को साधारण कहा गया है। साधारण अर्थात् बहुतों में है, इसलिए साधारण कहा गया है। आहाहा! घर के गोदड़ा की इसे सब खबर हो। गद्दे, गोदड़े कितने रखे हैं। यह क्या है, उसकी बात यहाँ है। तुझमें गुण क्या, उसकी अस्ति क्या, उसके प्रदेश क्या, क्षेत्र क्या—यह सब बताते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल का मुख्यपना नहीं, यहाँ तो ज्ञान का ही मुख्यपना है। आहाहा! ज्ञान जानता है कि यह पुद्गल है, ऐसा जाना किसने? इसलिए मुख्यपना हो गया ऊर्ध्वपना ज्ञान का, ऊर्ध्व गुण है न, उसका ऊर्ध्वत्व। आहाहा! मान बैठा है पुद्गल का मुख्यपना। खो गया है, ऐसा है। समझ में आया? एक परमाणु और एक काल एक प्रदेशी है, उनमें अधिक प्रदेश नहीं। उसकी अपेक्षा से... यह एक ओर छोड़ दो, अब कहेंगे। अधिक परमाणु और अधिक प्रदेशवाले धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, इस अपेक्षा से प्रदेश गुण को साधारण कहा जाता है। बहुतों में है, इसलिए साधारण (कहा जाता है)। और काल तथा परमाणु में नहीं पाने से काल और परमाणु की अपेक्षा से असाधारण है। एक काल में दो प्रदेश नहीं, बहुत प्रदेश नहीं। एक परमाणु

में भी बहुत नहीं। इसलिए एक परमाणु और काल की अपेक्षा से दूसरे में (रहे हुए), प्रदेश को असाधारण कहा जाता है। समझ में आया? पोपटभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह और दूसरे प्रकार का साधारण। यह तो साधारण वनस्पति और असाधारण (प्रत्येक) वनस्पति नहीं आती? साधारण वनस्पति और असाधारण वनस्पति। एक शरीर में अनन्त इकट्ठे (रहे), उसे साधारण वनस्पति कहा जाता है। निगोद एक शरीर में अनन्त इकट्ठे, वह साधारण। एक शरीर में एक-एक, उसे असाधारण, असाधारण अर्थात् प्रत्येक।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधारण। लौकिक की बात है। साधारण ... पड़ता है न।

कहते हैं, यहाँ तो देखो वस्तु को क्षेत्र से और उसके गुणों से किस प्रकार से छहों द्रव्यों के अन्दर में है, उसका यहाँ भगवान ने कहा, उसका विवेचन है। हे भाई! अमूर्तपना पाँचों ही द्रव्यों में है, एक पुद्गल में नहीं। इन पाँचों में—बहुत में हुआ न, इस अपेक्षा से उसे साधारण कहा, परन्तु उसमें—पुद्गल में नहीं, इस अपेक्षा से खास उसमें है, इसलिए उसे असाधारण कहा। अब परमाणु और कालाणु में अधिक प्रदेश नहीं, एक ही (प्रदेश) है। इसलिए इनके अतिरिक्त के सभी द्रव्य प्रदेश बहुत हैं, इसलिए बहुतों की अपेक्षा से उसे साधारण कहते हैं। बहुत में बहुत हैं, बहुत में बहुत हैं, बहुत द्रव्यों में बहुत हैं, इसलिए साधारण कहते हैं और काल तथा परमाणु की अपेक्षा से, काल और परमाणु को एक प्रदेश है, बहुत प्रदेश नहीं, इसकी अपेक्षा से बहुतों में, इसकी अपेक्षा से बहुत भले हों, परन्तु इसकी अपेक्षा से उसे असाधारण कहते हैं। समझ में आया?

... परमाणु का... उसके प्रदेश अधिक नहीं। इस अपेक्षा से अधिक प्रदेश यहाँ हैं, इस अधिक की अपेक्षा से उसे साधारण कहते हैं, इसकी अपेक्षा से, परन्तु इन दो की अपेक्षा से उसमें बहुत नहीं, इसलिए उन्हें असाधारण कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **पुद्गलद्रव्य में मूर्तिकगुण असाधारण है,...** देखो! पुद्गल (द्रव्य) में मूर्तिक

तो असाधारण है, क्योंकि पाँच में नहीं। उसमें ही है, उसमें ही है, इसलिए असाधारण। **इसी में पाया जाता है, अन्य में नहीं...** लो! **और अस्तित्वादि गुण इसमें भी पाये जाते हैं, तथा अन्य में भी,...** पाया जाता है। देखो! अस्तित्व अर्थात् होनापना प्रदेशत्वगुण, वह परमाणु में भी है, छहों द्रव्यों में है, इसलिए उन गुणों को साधारण कहा गया है। सबमें रहे हुए हैं, इसलिए उन्हें साधारण (कहा जाता है)। वह का वह गुण सबमें रहा हुआ है, ऐसा नहीं। परन्तु जैसा अस्तित्व परमाणु में अस्तित्वगुण है, वैसा जीव में अस्तित्वगुण है, वैसा आकाश में अस्तित्वगुण है, इस अपेक्षा से अस्तित्व है, ऐसे गुण की अपेक्षा से सबमें है, इसलिए उसे साधारण कहा जाता है। समझ में आया? इसमें तो बहुत सादी बात है। यह कहीं बहुत ऐसी नहीं, परन्तु जो साधारण....

मुमुक्षु : शब्द सुनते हुए उलझ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं शब्द सुनते हुए उलझता नहीं, इसे पकड़ना नहीं आता, इसलिए उलझता है। समझ में आया? रात्रि में पूछेंगे तो आयेगा या नहीं? नेमिदासभाई! हाँ तो करो। कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहा? अस्तित्व आदि गुण इसमें भी पाया (जाता है), इसमें अर्थात् पुद्गल में भी और सबमें भी है। इसलिए वह अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व आता हैं न छह (गुण) नहीं आते? छह गुण आते हैं न। ऐसे अनन्त गुण उन सबमें है, इसलिए साधारण। सबके एक हैं, ऐसा नहीं, परन्तु सबमें हैं, इसलिए उसे साधारण कहा जाता है।

चेतनपना पुद्गल में सर्वथा नहीं पाया जाता। चेतनपना पुद्गल में बिल्कुल नहीं। **पुद्गल-परमाणु को...** बस इतनी बात। **पुद्गल-परमाणु को द्रव्य कहते हैं।** अब पुद्गल की व्याख्या द्रव्य-गुण की लेते हैं जरा। पुद्गल-परमाणु को द्रव्य कहते हैं। उसका स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वह मूर्तिक, वह पुद्गल का विशेष गुण है। और **अन्य सब द्रव्यों में जो उनका स्वरूप है,...** इतनी बात यहाँ कही। अब इसका स्पष्टीकरण है न। **'शेषद्रव्याणामपि यथासंभवं ज्ञातव्यम्'** इसका स्पष्टीकरण करते हैं। अब दूसरे चार द्रव्य रहे, परमाणु और जीव के अतिरिक्त। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। उनके स्वरूप है, वह द्रव्य है। त्रिकाली उसका स्वरूप है, वह द्रव्य। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। अस्तित्व आदि उसके गुण और स्वभाव परिणति पर्याय। उनमें तो

स्वभावपर्याय परिणति है। चार में कोई विभाव (पर्याय नहीं)। धर्मास्ति, अधर्मास्ति देखो! यह जगत के पदार्थ। यह आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय में जानने की सामर्थ्यवाला आत्मा है। समझ में आया?

जीव और पुद्गल के बिना अन्य चार द्रव्यों में विभाव-गुण और विभाव-पर्याय नहीं है,... जीव और पुद्गल के अतिरिक्त दूसरे चार में विकारी गुण और विकारी पर्याय नहीं। **जीव पुद्गल में स्वभाव-विभाव दोनों हैं।** जीव और पुद्गल में दोनों हैं, स्वभाव और विभाव। परमाणु स्वभाव है, स्कन्ध विभाव है। जीव में भी केवलज्ञान आदि स्वभाव है, चार ज्ञान वह विभाव है, अशुद्धता आदि, रागादि विभाव है। **उनमें से सिद्धों में तो स्वभाव ही है, और संसारी में विभाव की मुख्यता है।** ऐसा कहना है। है तो स्वभाव सही उनमें भी, परन्तु मुख्यता विभाव की है। संसारी जीव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि है, उतनी शुद्धता हो, दूसरी अशुद्धता है, परन्तु अशुद्धता की मुख्यता है। सिद्ध को अकेले स्वभाव की अकेली स्वभावता है।

पुद्गल परमाणु में स्वभाव ही है,... लो! एक रजकण तो अकेला स्वाभाविक ही वस्तु है। **और स्कन्ध विभाव ही है।** स्कन्ध में स्वभाव नहीं, विभाव ही है। **इस तरह छहों द्रव्यों का संक्षेप से व्याख्यान जानना।** बहुत संक्षिप्त में छह की व्याख्या की। यह चौदह ब्राह्मण्ड में छह पदार्थ हैं, उनका यह साधारण, असाधारण, साधारण-असाधारण गुण और पर्याय से व्याख्या की। स्वभाव की ... की। कहो, समझ में आया इसमें? लो! यह गाथा पूरी हुई ५८। कहो, भीखाभाई! क्या इसमें समझ में आया या नहीं बराबर? अभी थोड़ा-थोड़ा। ऐसा है।

देखो! ऊपर से लेते हैं। एक तो जीव वस्तु, जीव वस्तु वह शुद्ध, बुद्ध और अखण्ड एक स्वभावपदार्थ। एक-एक जीव, हों! भिन्न। उस जीव के ज्ञान और दर्शन दो मुख्य गुण, चैतन्य के मुख्य गुण हैं। उसमें ज्ञानगुण की आठ अवस्थायें—आठ दशायें हैं। उसमें से तीन और चार—ज्ञान की सम्यक् चार दशा और अज्ञान की तीन दशा, यह खण्ड और अशुद्ध है, इसलिए यह हेय है। और उसमें केवलज्ञान की पर्याय है ज्ञान की, वह शुद्ध है, अखण्ड है; इसलिए आदरणीय अर्थात् अंगीकार करनेयोग्य अथवा प्रगट करनेयोग्य है। दर्शनगुण है, उसकी चार पर्यायें—केवलदर्शन, अवधि, चक्षु, अचक्षु

(दर्शन)। उसमें चक्षु, अचक्षु, अवधि (दर्शन खण्ड है), खण्ड है और अशुद्ध है। विकल है और अशुद्ध है। केवलदर्शन, वह सकल है और अखण्ड है। समझ में आया? वह शुद्ध है। इसलिए आत्मा की केवलदर्शन पर्याय अन्तर (में) प्रगट करनेयोग्य है। उसके लिये द्रव्य स्वरूप में भरपूर शक्ति है, उसके सन्मुख देखने से दर्शन प्रगट होता है। समझ में आया?

अब पुद्गल है, उसमें अमूर्त गुण नहीं। क्या कहा? परमाणु से लेकर अनन्त स्कन्ध यह सब, उनमें अमूर्तपना नहीं। तो इसके अतिरिक्त के पाँच पदार्थ हैं, उनमें अमूर्तपना साधारण है, क्योंकि बहुतों में है। बहुतों में है न, पाँचों में, इसलिए अमूर्तपना पाँच में है, इसलिए साधारण कहते हैं। परन्तु पुद्गल में वह नहीं, इस अपेक्षा से पाँच में ही खास है, उसकी अपेक्षा से उसे असाधारण कहा। बराबर हुआ?

अब प्रदेश—उसका क्षेत्र लेना है। यह तो गुण (कहे)। अब उसका क्षेत्र। क्षेत्र कोई एक प्रदेशी है, कोई क्षेत्र बहुत प्रदेशी है। काल और परमाणु एक ही प्रदेश है, उसमें बहुत प्रदेश नहीं। इन दो की अपेक्षा से बहुत परमाणु अथवा आकाश, जीव, धर्मास्ति, पुद्गलों का साधारणपना प्रदेश का है। उसे एक ओर रखो। तो बहुत प्रदेश का बहुत द्रव्यों में है, इसलिए साधारण है। परन्तु काल में और परमाणु में एक में वह बहुत नहीं, एक में बहुत नहीं, इसकी अपेक्षा लें तो उन सबमें है, वह असाधारण कहा जाता है। समझ में आया? और मूर्तपना, वह पुद्गल का असाधारण है। पुद्गल में खास है, खास है। दूसरे में नहीं, इसलिए उसे खास—असाधारण कहते हैं। समझ में आया?

फिर अनन्त (सामान्य) गुण लिये। अनन्त गुण जो हैं अस्तित्व आदि, वे तो सबमें हैं, इसलिए उन्हें साधारण कहा जाता है। कहो, समझ में आया? दूसरे जो द्रव्य अब रहे स्वभाव—विभाव की अपेक्षा से चार को लेना हो तो, तो चार जो है... जीव और पुद्गल में तो विभाव और स्वभाव दोनों हैं। स्वभाव सिद्ध है, संसारी में विभाव की मुख्यता है। पुद्गल में परमाणु स्वभाव है, स्कन्ध में अकेला विभाव है। अब इनके अतिरिक्त चार द्रव्य लें तो अकेले स्वभाव गुण और स्वभावपर्याय है। लो! कहो, आ गया यह सब इतने में।

★ ★ ★

गाथा - ५९

५९, ५९ गाथा। बहुत भंगभेद सीखने जैसा नहीं, इसके ख्याल में लेने जैसी बात है। यह ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि इस प्रकार से सब प्रकार ज्ञान में ज्ञात हों, ऐसा कहते हैं। वे ज्ञेय ज्ञान में आते नहीं और ज्ञान ज्ञेय को छूता नहीं और ज्ञान जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। अभी भी उसका स्वभाव ऐसा है कि सबको जानना। प्रत्यक्ष भले न हो, परन्तु परोक्ष भी जानना, वह प्रमाण है या नहीं? सच्चा है या नहीं? परोक्ष भी कहीं अप्रमाण नहीं। उसके ज्ञान की पर्याय में यह मैं हूँ और यह यह है, ऐसा सब जानने की सामर्थ्य है। परन्तु इसने कभी इस प्रकार का विचार किया नहीं। समझ में आया?

ऐसे तीन प्रकार की आत्मा का है कथन जिसमें ऐसे पहले महाधिकार में द्रव्य-गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से सातवें स्थल में तीन दोहा-सूत्र कहे। आगे आदर करनेयोग्य अतीन्द्रिय सुख से तन्मयी जो निर्विकल्पभाव उसकी प्राप्ति के लिये शुद्ध गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं। भगवान आत्मा शुद्ध, बुद्ध अखण्ड निर्विकल्प वस्तु है। उसे आदरने के लिये अब उसके विस्तार से उसका कथन थोड़ा आठ दोहों में करेंगे। **इनमें पहले चार दोहों में अनादि कर्मसम्बन्ध का व्याख्यान और पिछले चार दोहों में कर्म के फल का व्याख्यान इस प्रकार आठ दोहों का रहस्य है, उसमें प्रथम ही जीव और कर्म का अनादि काल का सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं—**बताकर भी सम्बन्धरहित स्वरूप है, ऐसी दृष्टि कराने के लिये बताते हैं।

५९) जीवहँ कम्मु अणाइ जिय जणियउ कम्मु ण तेण।
कम्मँ जीउ वि जणिउ णवि दोहिँ वि आइ ण जेण॥ ५९॥

आहा! **अन्वयार्थ :-** कहते हैं, **हे आत्मा! जीवों के कर्म अनादि काल से हैं, अर्थात् जीव कर्म का अनादि काल का सम्बन्ध है,...** यह निमित्त सम्बन्ध वर्णन करते हैं अब। सबके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतन्त्र। प्रत्येक द्रव्य के गुण-पर्याय स्वतन्त्र, परमाणु के गुण-पर्याय स्वतन्त्र। ऐसा अपने में होने पर भी अब इन दो को ऐसा सम्बन्ध है निमित्त उतना व्यवहार बताते हैं। भगवान आत्मा का द्रव्य, उसके गुण और उसकी

पर्याय स्वतन्त्र। परमाणु द्रव्य, गुण और पर्याय स्वतन्त्र। वह सबका अपना स्वरूप। परन्तु अब आत्मा को, कर्म के परमाणुओं को गुण और पर्याय जो कर्मपर्याय है (और) यहाँ जीव को विकारी आदि, उन दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। समझ में आया? जीवों को कर्म (के साथ) अनादि काल से ऐसा सम्बन्ध है। कभी पहले कर्म का सम्बन्ध नहीं था और नया हुआ, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो जीव....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपजे कहाँ से धूल में? यह कहेंगे अभी, यह कहेंगे। कर्म को जीव ने उपजाया और कर्म ने जीव को उपजाया नहीं। वह तो यहाँ सिद्ध करना है निमित्त-निमित्त सम्बन्ध यहाँ। अनादि काल से सम्बन्ध... खान में जैसे मिट्टी और सोना। सोना सोनारूप, मिट्टी मिट्टीरूप सम्बन्ध खान में दोनों का सम्बन्ध है, इतना सिद्ध करना है।

जो अनादि खान... आता है न कुछ? श्रीमद् में आता है। खान अनादि-अनन्त किसी का कर्ता उसका, भासित जिन भगवन्त। एक आता है। संक्षिप्त शब्द में बहुत कहा है। जीव-कर्म दो, अनादि खान है,... अनादि खान है। कोई न कर्ता उनका, भासित जिन भगवन्त। भगवान आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से होने पर भी, परमाणु भी अपने द्रव्य, गुण और पर्याय से होने पर भी, दोनों का सम्बन्ध अनादि का निमित्त सम्बन्ध है, वह बात यहाँ सिद्ध करनी है। समझ में आया?

उस जीव ने कर्म नहीं उत्पन्न किये,... लो! जीव ने कर्म उत्पन्न नहीं किये। कर्म तो परमाणु पुद्गल की पर्याय है, कर्म तो पुद्गल की पर्याय है, यह तो बात पहले से कह गये। परमाणु के गुण की पर्याय है, उसकी विकारी पर्याय। वह कर्म के द्रव्य-गुण-पर्याय जीव ने नहीं उपजाये हैं। कहो, समझ में आया? जीव अपनी पर्याय को उपजावे। पर की पर्याय को उपजावे? आहाहा! **उस जीव ने कर्म नहीं उत्पन्न किये,...** आत्मा ने कर्म को उत्पन्न नहीं किया। आत्मा ने तो अपनी पर्याय में अज्ञान और राग-द्वेष उत्पन्न किये, कर्म उत्पन्न नहीं किया। कर्म ने आत्मा के राग-द्वेष को उत्पन्न नहीं किये। कर्म पुद्गल की पर्यायरूप है, उसकी कर्म की पर्याय उसने उत्पन्न की है, आत्मा ने नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानावरणादि कर्मों ने भी यह जीव नहीं उपजाया,... उन कर्मों ने आत्मा को नहीं उपजाया। देखो! क्या कहा? आत्मा अपने द्रव्य, गुण, पर्यायवाला अस्तित्व तत्त्व और परमाणु जो कर्म के उनके द्रव्य, गुण, पर्याय के अस्तित्व होनेवाला तत्त्व। वह है अवश्य ऐसा अनादि ऐसा सम्बन्ध, परन्तु इस जीव ने कर्म किये नहीं, उपजाये नहीं और कर्म ने इसे उपजाया नहीं—जीव को उपजाया नहीं। आहाहा! कहा न, किसी ने उपजाया (नहीं), वह तो वहाँ है उसमें। कहाँ घुसे हैं? शरीर की पर्याय शरीर में उपजी है, आत्मा ने उपजायी नहीं और आत्मा की पर्याय को शरीर ने उपजाया नहीं। पर्याय ने—जीव ने अपने को उपजाया है। आहाहा! कठिन भाई!

यहाँ तो शरीर का नहीं लेना, यहाँ तो कर्म का लेना है यहाँ तो अभी। दो-एक वस्तु जीव वह स्वयं अपने द्रव्य अखण्ड वस्तु गुण आदि, शक्ति आदि कही न, ज्ञान, दर्शन आदि की पर्याय। उसकी पर्याय और अस्तित्व गुण आदि कायम, उनकी पर्याय। और स्वभाव, विभाव ... उसके अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में जीव है और कर्म के रजकण उसके द्रव्य, गुण, पर्याय में है। वे कर्म के रजकण द्रव्य है, उनका अस्तित्व आदि गुण है और उनकी विकारी कर्मरूप हुई पर्याय है। वे परमाणु उनके द्रव्य, गुण, पर्याय में है, आत्मा अपने द्रव्य, गुण, (पर्याय में है)। मात्र ऐसा निमित्त सम्बन्ध है। इसलिए इस जीव ने कर्म को किया, उपजाया और कर्म ने जीव को उपजाया, ऐसा नहीं। आहाहा! शैली कहनी है वह किस जाति की, समझ में आया? दो हो, सम्बन्ध (हो) तो क्या? इस एक ने उसे उपजाया और इसने उसे उपजाया, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

क्योंकि जीव-कर्म इन दोनों का ही आदि नहीं है, दोनों ही अनादि के हैं। देखो! कर्म का द्रव्य, गुण और पर्यायपना, वह भी ऐसा का ऐसा अनादि है, जीव का अनादि है। इससे कहीं इसने उसे उपजाया और उसने इसे उपजाया, ऐसा है नहीं। आहाहा! कर्म का पर्यायपना भी अनादि का है। समझ में आया? और जीव का पर्यायपना भी अनादि का है। द्रव्य, गुण तो है परन्तु पर्यायपना भी अनादि का है। उसमें इस पर्याय ने उसे उपजाया और उसने इसे उपजाया ऐसा है नहीं। आहाहा! सम्बन्ध बताते हुए भी ऐसे एक-दूसरे ने उपजाया नहीं, ऐसा का ऐसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जैसा उसमें है...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध का अर्थ क्या? यही कहते हैं। सम्बन्ध की व्याख्या क्या? सम्बन्धवाली चीज को इस सम्बन्धवाली ने उपजायी नहीं और इस सम्बन्धवाली चीज़ ने उसे उपजायी नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... द्रव्य को स्वयं का होना, पर्यायपने होना। परमाणु को कर्मपने होना। उसमें जीव को कर्म का होना, जीव के कारण कर्म हुआ और कर्म के कारण जीव हुआ, ऐसा कहाँ आया? उपजाना अर्थात् उपजना, दृष्टि होना (अर्थात्) उपजना। आत्मा ने अपनी सृष्टि-पर्याय उपजाई, परमाणु ने उसकी पर्याय सृष्टि को उपजाई। उसमें दो का सम्बन्ध होने से एक दूसरे से किसी का उपजना, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्रव्य है न। यह तो पहले बात कर गये। अब दो का सम्बन्ध है, तथापि ऐसा नहीं जानना कि यहाँ सम्बन्ध है, इसलिए जीव ने कर्म उपजाया, कर्म ने जीव उपजाया। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजर गये वे। शब्दकोश तो अपने इसका अलग करना पड़ेगा। चन्दुभाई कहे। ... यह शब्दकोश दूसरे प्रकार का। थोड़ा बहुत समान तो सही, पृष्ठ बदले तो सही थोड़े से, हों! यह शब्दकोश, यहाँ तो शब्द सीख ले ऐसा है। बस, दूसरा क्या है? कहाँ शब्दकोश... ? आहाहा!

ऐसे ख्याल में आता नहीं? कि आत्मा है, वह अखण्ड वस्तु द्रव्य। उसके गुण ज्ञान, दर्शन और अस्तित्व आदि गुण और उनकी यहाँ पर्यायें कोई विभाविक और कोई स्वाभाविक। कोई पूर्ण स्वाभाविक और कोई अपूर्ण स्वभाव और विभाव और किसी को अकेली विभाव। तथापि उसमें स्वभाव तो अस्तित्व गुण आदि का निर्मल पर्याय तो होता है। समझ में आया? और परमाणु जो हैं इतने पृथक्, अब उनकी यहाँ बात करनी

नहीं, यहाँ तो कर्म की बात करनी है। विभाविक स्कन्ध की जो बात की। विभावरूप से होने का पर्यायधर्म पुद्गल में है। वह कर्म में विभावरूप होने का पर्यायधर्म कर्म का है। जीव ने उसे किया नहीं और उसके विभावपने की पर्याय परिणमी है, इसलिए जीव की कोई पर्याय उसने की है, गुण-द्रव्य तो नहीं परन्तु कोई पर्याय की है, ऐसा नहीं—ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा! समझ में आया?

जीव वस्तु; गुण उसकी शक्ति; पर्याय उसकी अपूर्ण, विभावस्वभावरूप होना। कर्म एक रजकण; उनके गुण वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अस्तित्व आदि, अस्तित्व आदि साधारण सबमें, रंग आदि असाधारण उसमें ही है। परन्तु उस गुण का परिणमन यहाँ कर्मरूप से जो अवस्था विभाविक हुई, वह द्रव्य, गुण और पर्याय तथा यह द्रव्य, गुण, पर्याय भले ऐसे सम्बन्ध हो, परन्तु उसकी पर्याय को इसने उपजाया नहीं और इसकी पर्याय को उसने उपजाया नहीं। आहाहा! दोनों उसमें—अपने-अपने में ही है। यह तो पहली बात द्रव्य, गुण, पर्याय की बात करके तो यह बात करते हैं। ओहोहो! समझ में आया? **क्योंकि जीव-कर्म इन दोनों का ही आदि नहीं है, दोनों ही अनादि के हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- यद्यपि जीव व्यवहारनय से पर्यायों के समूह की अपेक्षा नये-नये कर्म समय-समय बाँधता है,... क्या कहा? कर्म के रजकण हैं न, उसमें नयी-नयी पर्यायें कर्म में—कर्म के रजकण में होती है, नयी-नयी। यहाँ तो वह अनादि का कहा न, इसलिए जरा अब सिद्ध करते हैं। पर्याय की अपेक्षा से—कर्म की पर्यायें जो नयी-नयी होती हैं, उनके समूह की अपेक्षा से नये-नये कर्म समय-समय में बाँधता है, परमाणु की पर्याय होती है। **नये-नये उपार्जन करता है, जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज होता है, उसी तरह पहले बीजरूप कर्मों से देह धारता है,...** बीज जो कर्म था, उससे देह हुई, यह निमित्त से बात है, हों! वह भी।

देह में नये-नये कर्मों को विस्तारता है,... और नयी-नयी पर्याय कर्म की होती है। **यह तो बीज से वृक्ष हुआ। इसी प्रकार जन्म-सन्तान चली जाती है।** यह शरीर की जन्म-सन्तान चली आती है। एक शरीर, दूसरा शरीर, तीसरा शरीर—ऐसा चला आता है। **परन्तु शुद्धनिश्चयनय से विचारा जावे, तो जीव निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ही है।**

ऐसे शरीर की सन्तान चलती जाती है और आत्मा में भी उस प्रकार की विकार की उत्पत्ति आदि भाव है। सन्तान की अपेक्षा से निमित्त उसमें और इसका उसमें। परन्तु दो के सम्बन्ध का जो सम्बन्ध भाव अपने-अपने से नया-नया हुआ, वह उसका उसमें, इसका इसमें। उससे यहाँ नहीं, यहाँ से वहाँ नहीं। ऐसी सन्तान ऐसे दो, यहाँ विकार का, वहाँ कर्म और शरीर—ऐसी सन्तान चलती जाती है। तथापि वस्तु के स्वभाव की... यदि उन दो के सम्बन्ध का प्रवाह ऐसा का ऐसा चलता जाता है। उसकी पर्याय नयी-नयी उसकी, इसकी पर्याय नयी-नयी इसकी विकार आदि।

परन्तु शुद्धनिश्चयनय से विचार जावे,... यह वस्तु को देखे **तो जीव निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ही है।** भगवान तो निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह विकारी सन्तान और कर्म का सन्तान प्रवाह, दोनों को आत्मा ज्ञान-दर्शन में जाननेवाला-देखनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे ढंग से बात है। ऐसा लिया कि अपने द्रव्य, गुण, पर्याय ऐसे के ऐसे... कर्म की पर्याय... उसने यहाँ किया नहीं। नयी-नयी पर्याय कर्म में हो, शरीर नया-नया हो, यहाँ भी पर्याय नयी-नयी हो। इस प्रकार भले ऐसा प्रवाह चले। परन्तु उसका मूल स्वभाव, इन दो के सम्बन्ध रहित जो विकृत अवस्था को इसके अतिरिक्त को देखे तो भगवान आत्मा निर्मल ज्ञान, दर्शन स्वभाव ही है। आहाहा! वह तो जाननेवाला-देखनेवाला जिसका स्वभाव है।

जीव ने ये कर्म न तो उत्पन्न किये, और यह जीव भी इन कर्मों ने नहीं पैदा किया। जीव भी अनादि का है, ये पुद्‌गलस्कन्ध भी अनादि के हैं, जीव और कर्म नये नहीं हैं, जीव अनादि का कर्मों से बँधा है। (निमित्त) और कर्मों के क्षय से मुक्त होता है। अपनी पर्याय में विकारी पर्याय स्वयं की, वहाँ उसका बन्धन उसके कारण से वहाँ हुआ। यहाँ विकारी छोड़ी, उसके कारण से वह कर्मपर्याय छूट गयी, दूसरी पर्यायरूप हुई। समझ में आया? **कर्मों के क्षय से मुक्त होता है। इस व्याख्यान से जो कोई ऐसा कहते हैं...** अब यह कहना है यहाँ कि आत्मा सदा मुक्त है, ऐसा जो कोई कहनेवाला है, ऐसा नहीं। पर्याय में भावबन्धपना है और कर्म का निमित्तपना द्रव्यसम्बन्धपना है। सदा मुक्त अनादि का है, ऐसा नहीं। समझ में आया? **आत्मा सदा मुक्त है, कर्मों से रहित है, उनका निराकरण (खण्डन) किया।** उसका खण्डन किया कि ऐसा नहीं। कर्म का

निमित्त का सम्बन्ध और निमित्त सम्बन्ध में हुई विकारी पर्याय का भी सम्बन्ध जीव को अनादि है। भावबन्ध और द्रव्यबन्ध सम्बन्ध है। उसका अभाव करे, तब मुक्त होता है। इसलिए उसे अभाव करने का प्रसंग तब रहे कि यदि भावबन्ध और द्रव्यबन्ध का स्वीकार करे तो उसे भावबन्ध का अभाव करने का अवकाश रहे। परन्तु भावबन्धरहित सदा ही हूँ, इसलिए मुझे निमित्त भी बन्ध नहीं, द्रव्य (बन्ध) भी नहीं तो भाव (बन्ध) भी नहीं। तो उसे छूटने का, छोड़ने का कुछ रहता नहीं। समझ में आया? उसकी वर्तमान दशा में विकार का बन्धपना और कर्म का बन्धपना, ऐसा यदि न हो तो उसे छोड़नापना रहता नहीं। मुक्तपना कोई सिद्ध होता नहीं। सदा मुक्त तू किस प्रकार से कहता है? ऐसा कहते हैं। सदा मुक्त हो तो बन्धन बिना मुक्तपना कहाँ से आया? समझ में आया? 'मुक्त' ऐसी ध्वनि सूचित करती है कि बन्धन था, उससे छूटा। समझ में आया?

ये वृथा कहते हैं,... सदा मुक्त पर्याय में है, ऐसा कहते हैं, वह वृथा है। ऐसा है नहीं। उसका स्वभाव मुक्त है, परन्तु पर्याय में मुक्त है, ऐसा कहता हो तो वह खोटी बात है। लो! यह तो अध्यात्मवाले, आत्मा सिद्ध शुद्ध, सिद्ध शुद्ध, सिद्ध शुद्ध किया करते हैं। अरे! भाई! वस्तु से शुद्ध गुण और द्रव्य से है, परन्तु पर्याय में अशुद्धरूपी बन्धन न हो और उसे निमित्त सम्बन्ध बिना अशुद्ध हो कैसे? अशुद्ध कहीं स्वभाव के आश्रय से होता नहीं। दुःखरूप दशा वह उसकी है, परन्तु उसे सम्बन्ध है कर्म का, उसके लक्ष्य में। यह आत्मा के स्वभाव के साथ सम्बन्ध दुःख को नहीं। इसलिए ऐसा दुःखपने का बन्धन उसे भाव में नहीं होता, तो कर्म के निमित्तपने का भी बन्धन नहीं होता। दोनों का नहीं होता तो उसे छूटने का होता नहीं। पर्याय में बन्धनपना अपना है, विकार में अटका हुआ है और निमित्तरूप से कर्म है। ऐसा सिद्ध हो, ऐसी बात हो तो स्वभाव के आश्रय से उस बन्ध को छोड़कर मुक्तदशा को प्राप्त हो।

यह परमात्मप्रकाश वर्णन करते हैं। परमात्मा स्वयं तो प्रकाशरूप ही वस्तु है, परन्तु पर्यायरूप से यदि परमात्म प्रकाशरूप ही सदा ही हो तो उसे परमात्मप्रकाश की मुक्तदशा, ऐसा कहने का कोई अवसर नहीं रहता। आहाहा! वस्तु ऐसी होने पर भी पर्याय में निमित्त सम्बन्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? निमित्त सम्बन्ध है, इसलिए अपने कारण से वहाँ अटका हुआ भाव भी उसकी पर्याय में है। वस्तु देखें तो

निर्मल ज्ञान-दर्शन है। पर्याय से वर्तमान मुक्त है, ऐसा यदि कहे तो द्रव्य और गुण जैसे मुक्त हैं (वैसे) पर्याय यदि मुक्त हो तो मुक्तपना करने का कुछ रहता नहीं। 'मुक्त' ध्वनि ही ऐसा सूचित करती है कि बन्धन से मुचन, बन्धन से मुचन—छूटना। यदि बन्धन ही नहीं तो छूटना रहता नहीं। समझ में आया? यह बन्धन, वह तेरे कारण से तेरा बन्धन और कर्म का बन्धन कर्म के कारण से। परन्तु ऐसा दो सम्बन्ध है।

ऐसा तात्पर्य है। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है— यह श्लोक है। **कि जो यह जीव पहले बँधा हुआ हो, तभी 'मुक्त' ऐसा कथन सम्भवता है,...** पहले यदि बँधा हुआ हो तो मुक्त (हुआ), ऐसा सम्भव हो, परन्तु बँधा हुआ नहीं तो मुक्त सम्भव नहीं। तो बँधे हुए की व्याख्या ऐसी कि कर्म का निमित्त व्यवहारबन्ध है। निश्चय उसका विकार में अटका हुआ, वह बन्ध है। इन दो को निमित्त सम्बन्ध है। आहाहा! **और पहले बँधा ही नहीं तो फिर 'मुक्त' ऐसा कहना किस तरह ठीक हो सकता।** पहले बँधा हुआ नहीं, जेल में पड़ा नहीं कि उसे कहा कि यह जेल से छूटा। जेल में था या नहीं? कि, नहीं। छूटा। परन्तु छूटा कब कहलाये? जेल में हो तो। ओह! लम्बी अवधि में छूटा भाई! ऐसा कहते हैं या नहीं? दस-दस वर्ष, पन्द्रह वर्ष, किसी को बीस वर्ष तक जेल में।

इसी प्रकार आत्मा वस्तु और गुण मुक्तस्वरूप होने पर भी, शुद्ध कहो या मुक्तस्वरूप कहो, पर्याय में—अवस्था में वह स्वभाव अटका हुआ न हो, निमित्त सम्बन्ध न हो तो अटका हुआ तोड़ा और छूटा—मुक्त (हुआ), ऐसा कैसे कहा जाये? इसलिए पर्याय में बन्धन और निमित्त का सम्बन्ध है। समझ में आया? इतने सब पहलू—कितने पहलू जानना? पहलू बहुत अधिक नहीं, हों! वह तो ... लम्बा लगे। एक से दस होते हैं न अंक, फिर वे सब अंक सबमें जाये। वह ग्यारहवाँ अंक कभी नहीं होता। आड़े-टेढ़े २९५५ परन्तु सब एक और दस के अन्दर के सब। इसी प्रकार सब तत्त्व के, वस्तु के स्वत: स्वभाव के नियम तो उसके उसमें बहुत थोड़े हैं। परन्तु इसका विस्तार बहुत हो गया भटकने और टालने का और .... इसलिए उसे मानो कि बहुत-बहुत होगा मानो। समझ में आया?

मुक्त तो छूटे हुए का नाम है, सो जब बँधा ही नहीं, तो फिर 'छूटा' किस तरह

कहा जा सकता है... यह पर्याय को सिद्ध करते हैं। पर्याय में विकारपना और विभावपना और उसे कर्म का निमित्त सम्बन्धपना, ऐसा व्यवहार है। **जो अबन्ध है, उसको छूटा कहना ठीक नहीं।** बराबर है? जेल में गया ही नहीं, उसे कहो कि ठीक छूटकर आये, हों! उसे ऐसा कहना, वह ठीक कहलाये? **जो बिना बन्ध...** यह विभाव का अर्थ... वहाँ बिना बन्ध चाहिए। वह का वह शब्द खींचा होगा नये में भी। किसलिए सुधारे? यहाँ सब मेहनत होती है, यह शब्दों की और इन सबकी। कितनी मेहनत करते हैं हिम्मतभाई, देखो! यह शब्द ऐसा चाहिए और यह शब्द ऐसा चाहिए। **जो बिना बन्ध मुक्ति मानते हैं, उनका कथन निरर्थक है।** समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध निर्मलानन्द प्रभु वस्तु से और शक्ति से अबन्धस्वरूप होने पर भी, शुद्ध कहो या अबन्ध कहो, पर्याय में अशुद्ध और बन्ध न हो और निमित्त का बन्ध, उसे सम्बन्ध व्यवहार न हो तो छूटना, अशुद्ध से छूटा, बन्ध से छूटा, यह कहना ही अथवा इस भाव का ही निरर्थकपना होता है। आहाहा! यह परमात्मा स्वयं परमात्मस्वरूप ही है। परन्तु परमात्मा पर्याय में परमात्मापना नहीं उसका, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अवस्था में अटकी हुई पर्याय है। वह विकारी अटकी हुई न हो तो छूटना, ऐसा नहीं कह सकते। किसे (कहे छूटना)? आहाहा! भले इसने माना है कि, मैं बन्ध हूँ। परन्तु ऐसा बन्ध हूँ, ऐसा भ्रम तो है या नहीं? या नहीं? या भ्रम वह भ्रम है? ऐसा कहते हैं। वस्तु ज्ञानानन्द प्रभु अबन्ध वस्तु और अबन्ध शक्ति, परन्तु पर्याय में कुछ है या नहीं भ्रम-भ्रमणा? अशुद्धता, अटकना बन्ध निमित्त का सम्बन्ध ऐसा है या नहीं? न हो तो छूटना क्या रहा? माना था कि, बन्धरूप हूँ, ऐसी दशा थी। उस दशा में कर्म के निमित्त का सम्बन्ध था ऐसा। भ्रम छोड़ा, भगवान हूँ। समझ में आया? यह भ्रम था, तो वह छोड़ा—ऐसा कहा जाता है, परन्तु नहीं था और छोड़ा, ऐसा नहीं हो सकता।

परमात्मप्रकाश में डाला किसलिए, समझ में आया? भाई! परमात्मप्रकाश वस्तु तो परमात्मप्रकाश ही है यह वस्तु, वस्तु और गुण, हों! भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, अबन्ध मुक्तस्वरूप है, परन्तु पर्याय—अवस्था में यदि मुक्त हो तो छूटना किसका? अवस्था में विकार, पुण्य-पाप, भ्रमणा मैं रागवाला, इतना, इतना, यह ऐसा भ्रम और अज्ञान न हो तो अज्ञान से छूटकर ज्ञान होना, बन्ध से छूटकर अबन्ध होना, मुक्त होना,

यह रहता नहीं। इसलिए उसकी अवस्था में विकार के सम्बन्ध में बन्ध है, विकाररूपी सम्बन्ध का बन्ध है और कर्म के निमित्तरूपी सम्बन्ध बन्ध है।

उनका कथन निरर्थक है। जो यह अनादि का मुक्त ही हो, तो पीछे बन्ध कैसे सम्भव हो सकता है। अनादि का यदि पर्याय में मुक्त हो, द्रव्य-गुण मुक्त है, परन्तु पर्याय में मुक्त हो तो किस प्रकार छूटे? **बन्ध होवे तभी मोचन छुटकारा हो सके।** बन्ध हो तो छुटकारा—मुक्ति हो पर्याय में। **जो बन्ध न हो तो मुक्त कहना निरर्थक है।** इसलिए वस्तु को—गुण को, द्रव्य को सिद्ध करके, पर्याय में विभावपना, अल्पज्ञपना सिद्ध किया। इससे वह भावबन्धरूप से है, द्रव्यरूप निमित्त है, उसका अभाव करने के लिये भगवान पूर्णानन्द है, उसका आश्रय करने से बन्ध छूटकर मुक्ति होती है। बन्धन न हो तो उसे स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ करने का रहता नहीं, परमात्मा के सन्मुख नजर करना रहता नहीं। परमात्मा हो गया पर्याय में तो परमात्म द्रव्य है, उसमें नजर करना रहता नहीं। इसलिए बन्ध है, वह स्वभाव के आश्रय से बन्ध छूटता है और मुक्त होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक - ०५-११-१९६५
गाथा - ६० - ६१, प्रवचन - ४२

गाथा - ६०

आगे व्यवहारनय से यह जीव पुण्य-पापरूप होता है, ऐसा कहते हैं— क्या कहते हैं ? आत्मा में शुभ-अशुभभाव होता है, वह व्यवहारनय से है। वस्तु स्वरूप से शुद्ध चिदानन्द आनन्द परमानन्द की मूर्ति आत्मा है। परन्तु उसे भूलकर कर्म बाँधे, उसे निमित्त करके और वापस शुभ और अशुभभावरूप से, पुण्य और पापरूप से भाव व्यवहार से होता है, वह यहाँ सिद्ध करना है। परमात्मप्रकाश है न। है तो परमात्मस्वरूप उसका शुद्ध, उसे भूलकर उपार्जित कर्म, उसे हेतु पाकर फिर पुण्य और पापरूप से परिणमता है। समझ में आया ?

६०) एहु ववहारैं जीवडउ हेउ लहेविणु कम्मु।
बहुविह-भावैं परिणवइ तेण जि धम्मु अहम्मु॥ ६०॥

यह जीव व्यवहारनय से अर्थात् कि निमित्त कर्म के हेतु को पाकर कर्म जो आठ हैं, उन्हें निमित्त पाकर... वे कर्म कैसे हुए, यह स्पष्टीकरण अर्थ में करेंगे। **अनेक विकल्परूप परिणमता है।** आत्मा ज्ञान शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दरूप होने पर भी उसके आनन्द के अभान से उपार्जित कर्म, उस कर्म के हेतु से आत्मा शुभ और अशुभ, यहाँ धर्म और अधर्म कहा है। धर्म अर्थात् पुण्य; यहाँ धर्म अर्थात् वह आत्मधर्म नहीं। शुभभाव को यहाँ धर्म कहा है, अशुभभाव को अधर्म कहा है, दोनों—शुभ-अशुभभावरूप से परिणमता है। **इसी से पुण्य और पापरूप होता है।** पुण्य-पापरूप होता है। परमात्मारूप होना चाहिए, उसके बदले पुण्य-पापरूप होता है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया ?

भावार्थ :- यह जीव... यह आत्मा अन्दर जो वस्तु भगवान वह **शुद्ध निश्चयनयकर...** वस्तु का स्वभाव, कर्म और पुण्य-पापरहित उसका मूल स्वभाव

सच्चिदानन्द स्वरूप है, ऐसा देखे तो वह निश्चयनयकर—निश्चय अर्थात् सच्ची दृष्टि से उसका परम सत् स्वरूप आत्मा का परम सत् स्वरूप वह **वीतराग चिदानन्दस्वभाव है,...** वह तो वीतराग ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा का है। आत्मा का स्वभाव, वस्तुस्वभाव वीतराग अर्थात् कषायरहित ज्ञानानन्दस्वभाव है। कहो, समझ में आया? रागरहित अथवा दोषरहित निर्दोष वीतरागस्वभाव ज्ञानानन्द उसका—आत्मा का स्वरूप है। वह ऐसा होने पर भी, **तो भी व्यवहारनयकर वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव से...** देखो! आगे कहेंगे आठ कर्म, आठ कर्म ने गुण को आच्छादन किया। परन्तु वह अपने स्वभाव के अभान से उपार्जित गुण ने इस आत्मा की पर्याय को ढाँका, ऐसा कहा जायेगा। समझ में आया? कहते हैं कि यह भगवान आत्मा है तो वीतराग चिदानन्दस्वरूप उसका, उसका **निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव से...** उसका ज्ञान, मैं शुद्ध चिदानन्द निर्विकार आनन्द हूँ, ऐसे रागरहित निर्दोष स्वसंवेदनज्ञान के अभाव में कर्म उपार्जित किये। कहो, समझ में आया? समझ में आया या नहीं? पोपटभाई!

आत्मा तो वीतराग ज्ञानानन्द मूर्ति है, तथापि उसने कर्म क्यों उपार्जित किये? वह वीतराग आनन्दमय मूर्ति के सम्यग्ज्ञान और वीतरागी परिणति के अभाव में उसका सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ऐसा वीतरागस्वसंवेदन अनुभव, उसके **अभाव से रागादिरूप परिणमने से उपार्जन किये...** क्या कहा? समझ में आया इसमें? **शुभ-अशुभ कर्मों से कारण को पाकर पुण्यी तथा पापी होता है।** यहाँ कहना है कि परमात्मा है नहीं, परमात्मा होना चाहिए। उसके बदले पुण्यी और पापी कैसे होता है? ऐसा कहते हैं। पुण्यी और पापी, ऐसा कहा न! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है न। वस्तु आत्मा का मूल त्रिकाली सत् सत् स्वभाव त्रिकाली, वह तो वीतराग अर्थात् अकषाय और ज्ञानानन्द उसका स्वरूप, वह परमात्मस्वरूप है, उसका शक्ति का सत्त्वरूप से। उसने कर्म कैसे उपार्जित किये? कि, ऐसे वीतराग चिदानन्द ज्ञान के अन्तर अभेद वीतराग स्वसंवेदनज्ञान का अभाव। समझ में आया? यह कर्म किये, कर्म किये। ऐसे अभाव से उसने कर्म मिथ्यात्व और राग-द्वेष किये, उससे कर्म हुए, ऐसा कहना है। समझ में आया इसमें? वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान का अभाव। अपना स्वरूप शुद्ध आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति

की परिणति का वर्तमान अभाव। ऐसे अभाव से क्या हुआ ? कि रागादिरूप परिणमन। राग और द्वेष का उपार्जन, उससे यह शुभाशुभ कर्म, उसके कारण को पाकर पुण्यी और पापी हुआ। आहाहा! कितनी बात की! समझ में आया ?

वस्तु का स्वभाव कायमी परम आनन्द और शुद्ध चैतन्यधाम निर्दोष वीतरागी आनन्द, वीतरागी ज्ञानानन्द, ऐसा उसका कायम का असली स्वरूप है। उसका भान भूला। अर्थात् कि वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान उसका—आत्मा का होना चाहिए, उसका अभाव और उसका अभाव, इसलिए राग-द्वेष और अज्ञान का सद्भाव। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष का सद्भाव। ऐसा हूँ, ऐसा भूला; इसलिए मैं राग-द्वेष और पुण्य-पाप और अल्पज्ञ (स्वरूप हूँ), ऐसी मिथ्या मान्यता और राग-द्वेषरूप से परिणमा। क्या कहा ? समझ में आया ? मैं पूर्ण निर्दोष वीतराग ज्ञानानन्दस्वभाव हूँ, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह तो परमात्मा के पूर्ण अपने स्वभाव का स्वीकार (करने से होता है)। उस स्वीकार में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वीकार हुआ। इसलिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में पूर्णानन्द है, ऐसा स्वीकार होकर स्थिर होना चाहिए, ऐसा न होकर मैं वह परमानन्द वीतराग निर्दोष आनन्दस्वभाव हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया ? अर्थात् कि मैं तो राग-द्वेष और विकारमय हूँ। ऐसी भावना में परिणमता मिथ्यात्व और राग-द्वेष से परिणमता, उसने शुभाशुभ कर्म को उपार्जित किया। आहाहा! कैसी शैली की है, देखो! समझ में आया ?

आज तो एक क्रमबद्ध का विचार बहुत चला था रास्ते में। यह लोग ऐसा कहते हैं न कितने ही कि यह क्रमबद्ध है, वह नियत हो जाता है। यह कहते हैं कि क्रमबद्ध हो, मुझे राग और द्वेष आवे, क्रम से मुझे राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव क्रम में आनेवाले, वे आवे। इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा माननेवाले। क्यों ? कि जब क्रमबद्ध में राग-द्वेष का होना, उसका अकर्तापना है। छोटाभाई! ध्यान रखना। क्रम में राग-द्वेष आवे, उसका अकर्ता; अकर्ता अर्थात् ज्ञाता अर्थात् कि जिसकी वीतराग निर्दोष आनन्दमय मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसी दृष्टि हुई है, मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसी दृष्टि हुई है—ऐसे आनन्दमय की दृष्टि में फिर जो राग आवे, उसका जाननेवाला-देखनेवाला आनन्दमय में दुःख को जानता है, ऐसा है। भाई! क्या कहा ? समझ में आया ?

आनन्द स्वरूप हूँ। क्रम से होनेवाले राग-द्वेष का कर्ता नहीं अर्थात् कि ज्ञाता अर्थात् कि आत्मा आनन्दमय, मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसी अन्तर दृष्टि हुई, पश्चात् जो रागादि हुए, वे दुःखरूप हैं, आनन्द की दृष्टि के परिणमन में क्रमबद्ध में वह रागादि हुए, वे दुःखरूप हैं, ऐसा उनका जाननेवाला रह गया। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा! अरे! दोनों व्यक्तियों ने भूल की। एक व्यक्ति कहे कि क्रमबद्ध होता है, इसलिए हमारे तो क्रम में राग-द्वेष आनेवाला था। हमारे क्रम में यह राग-द्वेष होनेवाला था, हमारे क्रम में स्त्री होनेवाली थी, हमारे क्रम में यह पैसे का राग होनेवाला था। कहाँ खड़ा है तू? समझ में आया? वह मिथ्यात्व को अधिक पोसता है। आनन्दमय आत्मा की दृष्टि हुए बिना कि मेरा आनन्द और मेरी शान्ति मुझमें, (ऐसा होने से) अकर्ता हुआ, ज्ञाता हुआ अर्थात् आनन्द का ज्ञाता, अतीन्द्रिय आनन्द मुझमें है। ऐसे आनन्द के मिठास के प्रेम में जिसे राग की मिठास रहती नहीं। तो फिर यह पैसा और स्त्री मिली, उसकी मिठास रहे, यह तीन काल में होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... देखा करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर को देखा करना, यह होगा इसका अर्थ। यह दलाल है। क्रमबद्ध का अर्थ एक कहता है कि अत्यन्त नियत हो जाता है और दूसरा कहता है कि हमारे क्रम में क्रमबद्ध है। राग आनेवाला, वह होनेवाला हो, वह होगा न, भाई! और संयोग तो वह जो होनेवाला हो, वह होगा न, वह कहीं मिटे? दोनों, आत्मा आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसे आनन्द की मिठास के भान बिना, उस राग में मिठास वेदता है क्रम से आनेवाले में, उसे क्रमबद्ध का ज्ञान नहीं।

यह भी क्रमबद्ध का अर्थ तो ऐसा है कि ज्ञाता-दृष्टा हूँ। विकल्प का भी कर्ता नहीं। यहाँ पुण्य-पाप से होना, वह नहीं, ऐसा कहते हैं न यहाँ? पुण्य-पापरूप से होना, वह मैं नहीं। मैं तो आनन्दरूप हूँ, वही मैं आत्मा हूँ। आहाहा! समझ में आया इसमें? एक कहे कि नियत हो जाता है, वह भी वस्तु को समझता नहीं, मिथ्यात्व को पोषता है। और एक (कहता है कि) मेरे ऐसा होनेवाला था, इसलिए मुझे राग आया और मुझे स्त्री का संयोग, पैसे का संयोग ऐसा होनेवाला था, इसलिए हुआ, उसकी दृष्टि वहाँ है, मिठास में है।

जिसे आनन्द की मिठास और अतीन्द्रिय आनन्द का भान हुआ है कि मेरा आनन्द मुझमें, राग का विकल्प शुभ उठे, परन्तु दुःखरूप है। अशुभ दुःखरूप तो है, परन्तु शुभ दुःखरूप है और संयोग उस दुःख में निमित्त है। मेरा आनन्द मेरे पास है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान परिणमता है, उसे फिर रागादि के परिणाम, उनका ज्ञाता-दृष्टा भिन्न रहकर रहता है, उसे क्रमबद्ध का वास्तविक ज्ञान और श्रद्धा है। आहाहा! यह तो वह कहे, यह तो हमारे ऐसा होनेवाला था। परस्त्री का (संग) होनेवाला था, यह .... होने की थी। क्या कहता है तू? मर जायेगा समूलतः मिथ्यात्व को अधिक दृढ़ करेगा। समझ में आया? धर्मचन्दजी! पहले तो राग आता था तब अरेरे! यह पाप है, पाप। अब कहता है कि क्रम में आनेवाला था राग आया। दृष्टि वहाँ रही है अकेली। उसने सम्पूर्णतः मिथ्यात्व को तीव्र किया है। आहाहा! कहो, समझ में आया या या नहीं इसमें? ऐ... नेमिदासभाई! निगोद में... जैसा वह नियत का माननेवाला निगोद, यहाँ भी निगोद के सब ग्राहक हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा स्वरूप हैं न। तो परमात्मस्वरूप जिसकी दृष्टि में आया, उसे तो रागादि का ज्ञाता (हुआ), राग का प्रेम उठ गया, विकार का प्रेम गया, आनन्द का— अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। आत्मा परमात्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है। उस आड़ में क्रम में राग आने पर, निमित्त में आने पर उसका ज्ञाता-दृष्टा (होकर) उसका कर्ता-धर्ता होता नहीं। भाई! आहाहा! अरे! कहा, यह क्या करता है? भाई! दोनों व्यक्ति कहाँ के कहाँ घोटाला करते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्रमबद्ध की श्रद्धा क्या? किस प्रकार से उसकी श्रद्धा होती है? उसे आत्मा के आनन्द का भान होकर अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मा, मेरा अतीन्द्रिय आनन्द मेरा मेरे पास है। अरे! राग उठे शुभ, परन्तु मुझे दुःखरूप है, दुःखरूप है। उस दुःख को ही आनन्द के साथ मिलान करे, तब उसका अकर्ता होता है। आहाहा! अरे! समझ में आया इसमें कुछ? एक कहता है कि क्रमबद्ध तो नियतवाद हो गया। अरे! भगवान! सुन तो सही प्रभु! उस क्रम में वह राग हुआ ही करेगा, मुझे क्रम-क्रम

में आया ही करेगा, ऐसा माननेवाला तो नियतवादी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? यह नियतवाद मिथ्यादृष्टि है। आहाहा !

परन्तु जहाँ क्रम अर्थात् राग का और पर में होना हो, उसका जाननेवाला कौन है ? जाननेवाला आनन्दमय अतीन्द्रिय प्रभु वीतराग निर्दोष आनन्दस्वरूप चिदानन्द हूँ। ऐसा वीतरागी चिदानन्द का भान और आनन्द का भान और आनन्द का स्वाद आया, इसलिए अब आते हुए राग का कर्ता नहीं होता। क्यों ? कि आनन्द की मिठास के समक्ष राग को दु:ख जानता है, इसलिए वह मेरा कार्य नहीं। उसका ज्ञाता रहता है। समझ में आया ? ऐ... शान्तिभाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध की श्रद्धा का अर्थ आनन्द की श्रद्धा, ज्ञायक की श्रद्धा। बारम्बार कहते हैं कि क्रमबद्ध की दृष्टिवाला कहाँ होगा ? ज्ञायक पर दृष्टि हो। तो इसका अर्थ क्या ? ज्ञायक के ऊपर दृष्टि अर्थात् क्या ? मैं आनन्दमय हूँ। यह क्या कहा यहाँ ?

वीतराग चिदानन्दस्वभाव का नाम ज्ञायकदृष्टि। मेरा स्वभाव वीतराग चिदानन्दस्वरूप है। ऐसा जिसे अन्तर दृष्टि में भान हुआ, उसे क्रमबद्ध का, राग और पर का ज्ञान रहा। यह वीतराग मार्ग ऐसा ! ओहोहो ! समझ में आया ? इसमें एक वस्तु को जैसा है, वैसा माने नहीं और वह जैसा है, वैसा मानने जाये, वहाँ समझे नहीं और स्वच्छन्द सेवन करे। स्वच्छन्द सेवन करे, वह तो सम्पूर्णत: मिथ्यात्व को अधिक दृढ़ किया। अज्ञान में तो पहले राग हो तो कहे, अरे रे ! यह राग है... फिर कहे, क्रमबद्ध में आनेवाला था राग, (वह) आया है, हमारे क्या ? हमारे क्रमबद्ध में आनेवाला था, होनेवाला था वह होता है। बहुत अच्छी बात, भाई ! सम्पूर्णत: मिथ्यात्व था, उसमें मिथ्यात्व अधिक दृढ़ किया। क्या कहा ? राग को अपना मानता था और राग में जरा मान्यता में दु:ख होता था पहले कि अरेरे ! यह राग है, उसके बदले राग को अपना (मानता नहीं कि) अब राग मेरा नहीं। (मेरा) मानता है, मिठास उसमें है। सम्पूर्ण चिन्ता घट गयी, राग को टालने की चिन्ता गयी। वह अज्ञानभाव में टालने की थी, वह भी गयी उसे। आहाहा ! समझ में आया ?

क्रमबद्ध अर्थात् वह पर्याय क्रम-क्रम से होती है द्रव्य में। अब क्रम-क्रम से होती है, इसका अर्थ क्या? कि उसका मैं कौन हूँ मैं? कि मैं एक ज्ञान, आनन्द, जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। मैं ज्ञानानन्द-चिदानन्द वीतराग निर्दोष आत्मा हूँ। ऐसा जहाँ भान हुआ, तब फिर जो रागादि और पर की क्रिया हो, उसका ज्ञाता-दृष्टा (रहकर) कर्ता नहीं होता। इसका नाम क्रमबद्ध वस्तु है। आहाहा! गजब! वह कहे, भाई! हमारे विषय सेवन का भाव आनेवाला था और यह व्यभिचार होनेवाला था, वह हुआ, उस काल में होनेवाला था, वह हुआ। मर जायेगा। सम्पूर्णत: मिथ्यात्व को तीव्र किया। पहले मिथ्यात्व तो था। राग मेरा मानकर मिथ्यात्व था, अब राग मेरा नहीं, राग मेरा नहीं और यहाँ आत्मा आनन्दकन्द का भान नहीं होता और राग की मिठास में चला गया, बह गया, तीव्र मिथ्यात्व हुआ सम्पूर्णत:। आहाहा! मिथ्यात्व का पोषण किया, तीव्र मिथ्यात्व था, उसे अधिक पोषण किया। समझ में आया? अरे, गजब बात भाई! रतिभाई! समझ में आया इसमें? यहाँ क्या कहा? देखो!

यह जीव शुद्ध निश्चयनयकर वीतराग चिदानन्दस्वभाव है,... यह क्रमबद्ध का फल है कि मैं तो चिदानन्द वीतरागस्वरूप हूँ, मेरा आनन्द मुझमें है—ऐसा अन्तर भान हुआ। भान हुआ तो उसे अनुभूति (हुई), वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान हुआ। इसलिए रागादि और पर का हो उसका ज्ञाता-दृष्टा और अकर्ता होता है। वह पुण्य-पापरूप परिणमता नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? वीरजीभाई एक बार कहते थे, यहाँ बैठे थे, यहाँ बैठे थे। क्रमबद्ध में मार डाला। बात सच्ची कही यह। तब क्रमबद्ध कही जाती है, तब क्रमबद्ध कही जाती है, ऐसा एक बार कहते थे। उसे आत्मा के ऊपर दृष्टि हो। अर्थात् क्या? आत्मा में आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द और वीतराग कन्द आत्मा हूँ। आहाहा! अकेला ज्ञायक चिदानन्द और आनन्दकन्द हूँ—ऐसी दृष्टि और भान हुआ, उसे क्रमबद्ध का ज्ञान सच्चा हुआ कहलाता है। जिसे राग आने पर आनन्द नहीं, मिठास नहीं, निमित्त में प्रेम उड़ गया है। स्वभाव के प्रेम के कारण कोई प्रेम रहा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? बापू! यहाँ कोई पोपाबाई का राज नहीं कि तू वहाँ अन्दर पोलाण करके घुस जा। समझ में आया? बस! अपने सुनते नहीं (कि) क्रमबद्ध होता है? भूल गया तू? क्रमबद्ध नहीं मानता? बहुत अच्छी बात है। क्या है?

तेरी दृष्टि कहाँ है? मिठास में, राग में मिठास में है। बहुत अच्छी बात है। तूने क्रमबद्ध माना, जाना नहीं और माना, जाना (-ऐसा) माननेवाला मिथ्यात्व को तीव्र दृढ़ करता है। समझ में आया? मार्ग वह मार्ग परन्तु। आहाहा!

सर्वज्ञ की कथन रीति, सन्तों की पद्धति और उस मार्ग की श्रेणी की धारा अलौकिक बात है! वह बात जगत को साधारण को ख्याल में न आवे कि यह क्या वस्तु है। ऐसी उसकी पद्धति। ओहोहो! यहाँ तो क्रमबद्ध... चलते विचार बहुत उठे। क्या कहते हैं यह लोग? समझ में आया? अरे! भगवान! तू ऐसे क्रमबद्ध करके होना होगा वह होगा, ऐसा यहाँ कहने का आशय नहीं। होना होगा वह होगा, हुआ आत्मा वीतराग चिदानन्द है, उसकी जिसे अनुभव और दृष्टि हुई, उसे होनेवाला होगा वह होगा, उसका ज्ञाता हो जाता है। समझ में आया? ऐसे पुरुषार्थ के अन्तर भान बिना होनेवाला होगा, वह होगा, वह तो गया दोनों में से। सम्पूर्णत: राग को दोष मानता और राग को छोड़ूँ (ऐसा था), उसके बदले सम्पूर्णत: (मानता है कि) राग हुआ (तो) मुझे दिक्कत नहीं। तो सम्पूर्णत: तीव्र मिथ्यात्व का पोषण किया। बराबर सुरेन्द्रजी? यह क्रमबद्ध का बहुत कहते हैं न। अरे! भगवान! यह तो देखो न, वीतराग चिदानन्दस्वभाव तेरा। यह ऐसा भान—अनुभव हुआ, तब उसे राग और बन्ध की क्रिया का कर्ता टल गया। समझ में आया? वरना तो,... देखो!

वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव से... देखा? वीतरागी चिदानन्द प्रभु आत्मा का सम्यग्ज्ञान-दर्शन जो वीतरागी शान्ति, उसके अभाव से रागादि परिणमन का कर्ता हुआ। भाई! ऐसा यहाँ कहना है। क्या कहा? उसके कारण से रागादि का परिणमन अर्थात् कर्ता हुआ। स्वसंवेदनज्ञान का अभाव। भगवान आत्मा चिदानन्द वीतरागस्वरूप प्रभु... आहाहा! उसे उसकी ओर का विकल्परहित, रागरहित निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव में रागादि का कर्ता होकर परिणमता है वह जीव। समझ में आया?

रागादिरूप परिणमने से... रागादिरूप शब्द से अकेला मिथ्यात्व और राग-द्वेष के (भाव)। मिथ्यात्व आया न? कि वस्तु जो वीतराग चिदानन्दस्वरूप है, उसका जो निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान चाहिए, उसका अभाव है तो मिथ्यात्व भाव है। ऐसे पूर्णानन्द

परमात्मा का स्वीकार दृष्टि में नहीं। स्वीकार तो पुण्य-पाप विकल्प की मिठास का स्वीकार है, इसलिए तब मिथ्यात्वसहित के राग-द्वेष का परिणमन खड़ा होता है। वीतराग चिदानन्दस्वभाव के स्वसंवेदनज्ञान का अभाव है, तब मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम खड़े होते हैं। उनसे उपार्जन हुए शुभाशुभ कर्म। ओहोहो! समझ में आया? अर्थात्? कि वस्तु भगवान आत्मा निर्दोष वीतरागस्वभाव का स्वसंवेदनज्ञान, उससे तो होती परमात्मदशा, उससे तो परमात्मदशा होती है। समझ में आया? ऐसा वीतराग परमात्मा आनन्दस्वरूप प्रभु के अन्तर के आदर के अभाव में, अन्तर का आदर अर्थात् स्वसंवेदनज्ञान, वह अन्तर का आदर है। वह अन्तर स्वरूप का आदर अर्थात् स्वसंवेदन अविकल्पी ज्ञान की श्रद्धा, ज्ञान की परिणति, वह अन्तर का आदर है। उस अन्तर के आदर का अभाव, ऐसा जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन अर्थात् कि पुण्य-पाप, विकल्प और निमित्त का आदर। आहाहा! छोटाभाई! यह लोग ऐसा करे। भगवान! तू रहने दे, प्रभु! दोनों बातों में क्या भूल है ऐसी प्रभु! यह वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया?

मिथ्यात्व **रागादिरूप परिणमने से उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मों के...** ओहोहो! उसका कारण? कि, वीतराग निर्दोष चिदानन्द प्रभु के अन्तर के ज्ञान, दर्शन, चारित्र से तो कर्म उपार्जित नहीं होते। उससे तो उपार्जन होती है निर्दोष वीतरागदशा। तब उसके आदर के अभाव में—वीतराग चिदानन्दस्वरूप के आदर के अभाव में पुण्य-पाप के निमित्त का आदर का भाव अन्दर मिथ्यात्व पड़ा ही है वह। इसलिए उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन हुआ, उससे कर्म उपार्जित किये। ऐसा परमात्मा उपार्जित करे, वैसे कर्म उपार्जित किये। आहाहा! यह इसी और इसी का दोष है, हों! वापस कर्म... फिर वह कर्म लेंगे आठ कर्म और... आहाहा!

कर्मों के कारण को पाकर... अब कारण को पाकर। निमित्त को पाकर, आया, भाई! यह। **पुण्यी तथा पापी होता है।** तब उस निमित्त को पाकर अर्थात्? यहाँ परमात्मा का भाव तो उसकी दृष्टि में नहीं। परमात्मा वीतराग चिदानन्दस्वरूप तो दृष्टि में नहीं, उसका अनादर करके अज्ञानभाव से बँधे हुए कर्म, उसे—निमित्त को पाकर। क्योंकि दृष्टि वहाँ है; स्वभाव के ऊपर नहीं। इसलिए कर्म के निमित्त को पाकर, आत्मा

परमात्मारूप होना चाहिए, उसके बदले पुण्यी और पापी होता है। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्यवाला और पापवाला होना, यह कहते हैं कि, अधर्म है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? यह पुण्य-पाप के भाववाला होना, वह अधर्मवाला होना, ऐसा कहते हैं। भारी गजब बात है! भाववाला, हों! क्योंकि कर्म का निमित्त पाकर, उसके ऊपर लक्ष्य है, इसलिए पुण्य-पाप के भाववाला होता है। क्या कहते हैं?

यह पुण्यी और पापी—पुण्यी और पापी भाषा प्रयोग की है न? भगवान आत्मा... यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं लगता। आहाहा! अपना वीतराग चिदानन्दस्वभाव का आदर भूलकर अर्थात् कि निर्विकल्प आनन्द की दशा, निर्विकल्प स्वसंवेदन को भूलकर और उसमें राग और मिथ्यात्व को उत्पन्न किया, उससे कर्म बाँधे और उसकी दृष्टि वहाँ पड़ी है, इसलिए पुण्यी और पापी जीव होता है। परमात्म होना चाहिए, उसके बदले पुण्यी और पापी जीव होता है। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश में कैसे डाला यह? (पुण्य-पापरूप) होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **यद्यपि यह व्यवहारनयकर पुण्य-पापरूप है,...** क्या कहते हैं? वह अपने स्वरूप को भूला, वह भी भूल वह व्यवहार। उससे कर्म बँधा, वह व्यवहार, उसके निमित्त के लक्ष्य से फिर पुण्यी और पापी हुआ, यह व्यवहार। वस्तु स्वरूप है वह पुण्य-पाप रहित है। आहाहा! यह तो पहले कहा, नहीं? शुद्धनिश्चयनयकर। कहते हैं, **तो भी परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी...** अब देखो! यह पुण्य और पापी जीव पर्याय में होता है तो भी, **परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी जो वीतराग सम्यग्दर्शन,...** क्या कहते हैं? अपना स्वभाव चिदानन्द निर्दोष वीतराग की श्रद्धा अर्थात् उसकी—परमात्मा की अनुभूति, आत्मा का अनुभव, शुद्ध ज्ञान, उससे तन्मय वीतराग सम्यग्दर्शन, उससे वीतराग सम्यग्दर्शन। पूर्ण वीरागी चिदानन्दस्वभाव का सम्यग्दर्शन, जिस वीतरागी दर्शन में पूर्ण स्वभाव का आदर, ऐसा वीतरागी दर्शन, वह अपनी अनुभूति से वह वीतरागी समकित तन्मय है। अपने अनुभव के साथ सम्यग्ज्ञान तन्मय है, अपने अन्तर अनुभव के साथ चारित्र तन्मय है। तन्मय अर्थात् उसरूप।

और बाह्य पदार्थों में इच्छा के रोकनेरूप तप,... इच्छा का अभाव। आत्मा आनन्दमूर्ति शुद्ध चिदानन्द का अनुभव-अनुभूति, उसे अनुसरकर वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान

आदि होना, उस अनुभूति में दर्शन, ज्ञान, चारित्र और इच्छानिरोध तप वह तन्मय—उसरूप से है। ऐसी चार प्रकार की निश्चय आराधना। ओहोहो! यह चार प्रकार की आत्मा की आराधना। भगवान देव-चिदानन्द परमदेव, वीतरागी आनन्दकन्द आत्मदेव अपना, हों! उसका अन्तर में अनुभव, उसके ओर की अनुभूति, उसके साथ में दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, ये चारों अनुभूति में एकमेक हैं। ऐसी अनुभूति, वह आत्मा का आराधन है। वह आत्मा का वास्तविक आराधन है। आहाहा! लो! यह आत्मा की सेवा। आहाहा!

उनकी भावना के समय... दृष्टान्त ... '**भावना काले**' शब्द पड़ा है न? ऐसा आत्मा अखण्डानन्द की चिदानन्द आनन्दमूर्ति प्रभु, उसकी अन्तर दृष्टि, ज्ञान और रमणता और इच्छानिरोधरूपी उग्र शान्ति, ऐसी अनुभूति की भावना काल में अर्थात् उस अनुभूति के काल में **उपादेयरूप वीतराग परमानन्द जो मोक्ष का सुख उससे अभिन्न आनन्दमयी ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** लो! उस भावना के समय उपादेय कौन? कि वीतराग परमानन्द आत्मद्रव्य, निर्दोष वीतराग परमानन्द आत्मा पदार्थ। **परमानन्द जो मोक्ष का सुख उससे अभिन्न आनन्दमयी ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** कितनी अटपटी बात!

कहते हैं कि यह आत्मा परम वीतराग निर्दोष आनन्दस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में अनुभूति काल में ही वह आत्मा उपादेय सिद्ध होता है। वरना तो अज्ञानी ने पुण्य और पाप को आदरणीय माना है। उस मिथ्यात्वभाव में उन पुण्य-पाप का आराधन है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग मार्ग, ओहोहो! अलौकिक मार्ग, उसे लोगों ने लौकिक कर डाला। जिसे इन्द्र भी अद्भुत आश्चर्य दृष्टि से सुनते हैं। गणधर भी, जिन्हें चार ज्ञान, चौदह पूर्व अन्तर्मुहूर्त में... आहाहा! कहते हैं, भाई! यहाँ पाठ तो ऐसा है कि '**ववहारेँ जीवडउ हेउ लहेविणु कम्मु**' निमित्त। और उस भाव से परिणमित। पुण्य और पाप अकेला धर्म और अधर्मरूप हुआ। धर्म अर्थात् पुण्य, यहाँ धर्म अर्थात् आत्मा की बात नहीं। पुण्य-पापरूप क्यों हुआ? कि आत्मा परमात्मस्वरूप है, उसकी अन्तर अनुभूति के अभाव से मिथ्यात्व और राग-द्वेष में परिणमते हुए कर्म बाँधे। उन कर्म के निमित्त के काल में उसमें पुण्य और पाप स्वयं ने किये, वह पुण्यी और पापी

हुआ। उसके आत्मा के आराधन काल में—निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान के आराधन काल में यह आत्मा आदरणीय है, तब वह परमात्मा दृष्टि में आया। तब वह परमात्मा दृष्टि में हुआ। समझ में आया? कठिन बातें यह, भाई!

अज्ञान से अनुभव—आत्मा के अनुभव के अभाव से मिथ्यात्व और राग-द्वेष के उपार्जन से बँधे हुए कर्म, उसके काल में उसके लक्ष्य में जाकर पुण्यी-पापी हुआ, पुण्यी-पापी हुआ। वरना तो स्वयं परमात्मा है। वह पुण्यी-पापी हुआ, वह पुण्यी-पापी इस कारण से हुआ कि स्वभाव को भूलकर मिथ्यात्व राग-द्वेष को सेवन कर यह कर्म उपार्जित किये, उनके लक्ष्य में (जाने से), स्वभाव का लक्ष्य तो (हुआ नहीं), दृष्टि है नहीं, उनके लक्ष्य से पुण्यी और पापी हुआ।

अब उसे आत्मा आराधन कब हो? यह तो पुण्य-पाप का कर्म किया और (कर्म का) आराधन हुआ। जब भगवान आत्मा अपना निर्दोष आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ऐसा आत्मा परमानन्द चिदानन्द-ज्ञानानन्द वीतरागस्वभाव की अन्तर में अनुभूति, उसका अनुभव, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप का आराधन, उस दशा के काल में यह आत्मा उसके सेवन काल में वह परमात्मा हुआ, उसे यह परमात्मा सेवनयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

अन्य सब हेय हैं। यह सब पुण्य और पाप के विकल्प और एक समय की पर्याय, वह नहीं, दृष्टि वहाँ नहीं। पूर्णानन्द प्रभु में जहाँ दृष्टि लगी है, ज्ञान भी वहाँ लगा है, स्थिरता भी वहाँ जमी है, उग्र पुरुषार्थ से इच्छा का अभाव होकर भी वहाँ तपयन्ति—आत्मा की विशेष शोभा हुई है। ऐसे काल में वह आत्मा उपादेय है। क्योंकि उस समय वह आत्मा पूर्णानन्द है, ऐसा आदरणीय होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह। आहाहा! पुण्य-फुण्य की बात भी कहाँ है? पुण्य से तो कहा न? स्वरूप के अभान से उपार्जित कर्म, उनके लक्ष्य से हुआ, आत्मा परमात्मा होने पर भी पुण्यी और पापी हुआ है। आहाहा! अरे... भगवान! यहाँ तो अधिक यह क्यों लिया? अब आयेगा वापस आठ कर्म से आच्छादित, आठ कर्म से

आच्छादित। यह आच्छादित हुआ है, वह अपनी भूल से किये हैं कर्म, इसलिए आच्छादित हुआ है, ऐसा है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्यी अर्थात् हुआ कि पुण्यी अर्थात् विकारवाला हुआ, ऐसा हुआ। पुण्यी हुआ अर्थात् विकारवाला हुआ। विकारवाला वह नहीं और हुआ। अपना स्वभाव तो वीतराग चिदानन्द निर्विकारी स्वभाव और चिदानन्द है। उसे भूलकर कर्म बाँधे, वह विकारवाला हुआ, विकारवाला हुआ है। निर्विकारी, वह विकारवाला हुआ। आहाहा! कठिन बात, भाई! कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं लड़कों को ? ऐई! या सूक्ष्म पड़ता है ? भरतभाई! समझ में आया ? आहाहा! इसमें कहीं बहुत ऐसी भाषा वह (कठिन) नहीं। यह तो (सादी भाषा है)।

सत् प्रभु आत्मा वह तो वीतरागी अकषाय आनन्दकन्द ज्ञानानन्द है। उसका आराधन, वह तो उसके सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता वह उसका आराधन और उस काल में उसे आत्मा उपादेय है। उस काल में उसे उपादेय न मानकर, उसके ज्ञान और आनन्द के अभाव में मिथ्यात्व और राग-द्वेष के सद्भाव में बाँधे हुए कर्म, अरे! परमात्मा होना चाहिए, उसके बदले पुण्यी-पापी हुआ। और दुनिया ऐसा कहे कि अहो! यह पुण्यशाली है, यह पुण्यशाली है। यहाँ कहते हैं अधर्मी हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐ... जेचन्दभाई! यह सब पद्धति दूसरी है, खबर नहीं ? अलग पठन है। बात तो ऐसी है। यह तो और बाह्य पुण्य-पाप की बात नहीं, हों! यहाँ तो '**परिणवइ धम्मु अहम्मु**' ऐसी बात है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया ? बाहर की बात नहीं कि यह पुण्य-पापवाले, संयोगवाला, यह यहाँ बात नहीं।

भगवान आत्मा निर्दोष आनन्द चिदानन्दस्वरूप, उसे भूलकर बाँधे हुए कर्म, उसके ही ऊपर लक्ष्य है। स्वरूप का लक्ष्य तो है नहीं। वह कर्म का आराधन करनेवाला उसके परिणाम में स्वयं को, स्वयं के कारण से शुभ और अशुभ वह स्वयं होता है, शुभ और अशुभ वह होता है अर्थात् कि परमात्मा से विरुद्ध भावरूप होता है। ओहोहो! नेमिदासभाई! यह बैठा या नहीं ? समझ में आया न यह ? नहीं समझ में आया। यह ठीक है। पूछे तो न आवे, इसलिए पहले से ठीक कह दे। यह एक इसकी जानकारी।

क्योंकि पूछे तो... ? परन्तु तीन, चार, छह बार सीखा। यहाँ कितनी बार कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु बाहर की कहाँ बात है, यह प्रश्न कहाँ था वह ? पहले से बाहर की बात नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की बात ही नहीं, बाहर में है ही नहीं। यहाँ तो अन्दर का परिणमन क्या हुआ, उसकी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर संयोग में वह आता ही नहीं, फिर प्रश्न क्या ? क्या कहा ? संयोग में एक समय भी आता नहीं। किसी भी संयोगी चीज़ में एक समय भी आता नहीं अर्थात् उसरूप हुआ, ऐसा कहने का यहाँ प्रसंग हो नहीं सकता।

अब यह होता है किस प्रकार से इसमें ? परिणमन की बात है यहाँ तो। स्वयं संयोगरूप कब होता है ? एक समय भी होता है ? कभी हुआ है ? शरीररूप, कर्मरूप, स्त्रीरूप, पुत्ररूप एक समय भी हुआ है कभी ? अज्ञानी भी हुआ है ? इसलिए प्रश्न कहाँ है ? अपना परमात्मा वीतराग चिदानन्दस्वरूप को भूलकर बाँधे हुए मिथ्यात्व और राग-द्वेष से कर्म, उन कर्म के संग में लक्ष्य जाकर पुण्यी और पापीरूप से परिणमन करता है। जिसका—परमात्मा का परिणमन होना चाहिए, उसके बदले विकार का परिणमन करता है। आहाहा ! ऐसा यहाँ तो कहना है। ओहोहो ! वीतरागरूप से, केवलज्ञानरूप से परिणमना, वह तेरा स्वभाव है। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे तो सदा ही वेदी प्रतिष्ठा ही है। आहाहा ! अपने इस मन्दिर का दिन है न। ... आये हैं या नहीं ? २०१३ के वर्ष नहीं अपने ? यह विशाल मन्दिर हुआ। वह इन भगवान को ऊपर पधराया, वह दिन आज है, कार्तिक शुक्ल १२। नीचे थे न, ऊपर पधराया। नौ वर्ष हुए। कहो, समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, पुण्यी और पापी हुआ ? पुण्यी और पापी हुआ ? शुभरूप और अशुभरूप

हुआ ? अधर्मरूप हुआ, संसाररूप हुआ—ऐसा कहते हैं। भगवान! तेरा स्वरूप तो वीतराग चिदानन्दस्वरूप है, उसका भान करके परमात्मारूप होना चाहिए, उसके बदले तू अपरमात्मदशा, ऐसा संसाररूप हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो! यह ६०वीं गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ६१

आगे कहते हैं, वे कर्म आठ हैं,... अब वे कर्म आठ कहे न निमित्त पाकर ? वे आठ कर्म हैं। **जिनसे संसारी जीव बँधे हैं,...** आत्मा के भानरहित जीव उन आठ कर्मों से बँधे हैं अपनी भूल के कारण से। **श्री गुरु अपने शिष्य मुनि से कहते हैं, कि—** परमात्मस्वरूप बतलाना है न। तो परमात्मा में पर्याय में हीन दशा में कर्म निमित्त है, इसलिए कर्म के लक्ष्य से स्वयं ने बाँधे हुए भाव, उनसे स्वयं हीन होकर कर्म से आच्छादित हुआ है, ऐसा बतलाना है।

६१) ते पुणु जीवहँ जोइया अट्ठ वि कम्म हवंति।
जेहिँ जि झंपिय जीव णवि अप्प-सहाउ लहंति॥ ६१॥

अन्वयार्थ :- हे योगी,... हे मुनि! हे आत्मा! ऐसा कहते हैं। अरे! तेरा स्वरूप तो भगवान, वह तेरे अन्तर के जुड़ान में होना चाहिए न, वस्तु तो वह है न, भाई! आहाहा! तेरा चिदानन्द वीतरागस्वभाव, उसमें दृष्टि का जुड़ान, ज्ञान का जुड़ान, स्थिरता का जुड़ान (होना चाहिए), ऐसे हे योगी! ऐसा करके बुलाते हैं। **वे फिर कर्म जीवों के आठ ही होते हैं,...** वे आठ कर्म हैं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने इस आत्मा को—भूले हुए जीव को कैसे कर्म हैं ? कि आठ हैं। बँधे हुए आठ कर्म की जाति है। **जिन कर्मों से ही आच्छादित (ढँके हुए)... 'झंपिताः'** है न ? जो कर्मों से ढँका हुआ, यह पहले कहा। वे बँधे हुए क्योंकि भूल से बँधे हुए हैं, इसलिए अब भूल से वापस ढँकता है, उससे ढँकता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

ये जीवकर अपने सम्यक्त्वादि आठ गुणरूप स्वभाव को नहीं पाते। आठ कर्म के लक्ष्य में रहा हुआ, स्वभाव के लक्ष्य को छोड़े हुए भाव से बँधे हुए कर्म, उन कर्म के

लक्ष्य में रहा हुआ उसका भाव, वह जीव अपने स्वभाव को पाता नहीं। उसके लक्ष्य में रहा हुआ भाव, वह आच्छादित होता है, इसलिए परमात्मस्वभाव को पाता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- अब उन्हीं आठ गुणों का व्याख्यान करते हैं... है तो यह पर्याय। **'सम्मत्त' इत्यादि—इसका अर्थ ऐसा है कि शुद्ध आत्मादि पदार्थों में विपरीत श्रद्धान रहित जो परिणाम...** भगवान आत्मा... देखो! शुद्ध आत्मा आदि पदार्थ की विपरीत श्रद्धानरहित जो परिणाम, हों! देखो, परिणाम है क्षायिक समकित, क्षायिक समकित एक पर्याय है, वह गुण नहीं। शुद्ध आत्मा निर्मलानन्द प्रभु, ऐसे पदार्थ आदि। अजीव, आस्रव, बन्ध, वे मुझमें नहीं इत्यादि ऐसे विपरीत श्रद्धानरहित। **जो परिणाम उसको क्षायिकसम्यक्त्व कहते हैं,...** देखो! क्षायिक समकित पहले ऊपर कहा कि आठ गुणों की व्याख्या करते हैं। तथापि वे परिणाम हैं, वे गुण नहीं, गुण तो त्रिकाली हैं। यहाँ उसे गुण अवगुण का अभाव होकर हुए, इसलिए गुण कहा जाता है। बाकी है परिणाम और पर्याय। आत्मा की क्षायिक समकित एक परिणाम है, पर्याय है। समझ में आया? यह आठ गुण की व्याख्या करते हैं, फिर इन्हें ढाँकने की व्याख्या करेंगे।

तीन लोक-तीन काल के पदार्थों को एक ही समय में विशेषरूप सबको जानें,... इसका नाम केवलज्ञान। तीन लोक और तीन काल को पदार्थों को एक ही समय में विशेषरूप, विशेष अर्थात् भेद... भेद... भेद... भेद... जितने प्रकार हैं भिन्न-भिन्न **सबको जानें, वह केवलज्ञान है,...** आहाहा! केवलज्ञान, आत्मा का केवलज्ञान कैसा है? तीन काल-तीन लोक को एक समय में विशेष प्रकार भेद... भेद... भेद... करके जाने। अनन्त आत्मा, अनन्त गुण, एक-एक गुण की यह पर्याय, यह राग आदि जितने भेद, जितने तीन काल, तीन लोक के वे भगवन केवलज्ञान, महिमावन्त केवलज्ञान सबको जाने। आगे कहना है कि, उसे कर्म ढाँकता है। ऐसे आत्मा के स्वभाववाला तत्त्व, उसका भान नहीं किया, उससे कर्म उपार्जित किये, वह ऐसे गुण को ढाँकता है। अर्थात् स्वयं ढँकता है पर के लक्ष्य से, उसे ढाँकता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? वह केवलज्ञान है।

सब पदार्थों को केवलदृष्टि से एक ही समय में देखे,... लो! केवलदर्शन। देखो!

केवलदर्शन वापस केवलदर्शन अकेला आत्मा देखे, ऐसा नहीं। **सब पदार्थों को केवलदृष्टि से...** केवलदृष्टि। एक समय में सब देखे भेद किये बिना। समझे? केवलदृष्टि अर्थात् सामान्यरूप से, सामान्य अर्थात् भेद नहीं, हों! सामान्य का अर्थ एक अंश नहीं। और अभी चर्चा चलती थी, नहीं? वह नहीं। यहाँ तो सामान्य अर्थात् सब। सामान्य अर्थात् सब एकरूप देखे, उसका नाम सामान्य और सबको भेद-भेद करके जाने, उसका नाम विशेष। ऐसे अभी सामान्य-विशेष हैं। दोनों प्रमाण हैं। एक भाग सामान्य-विशेष है, ऐसा नहीं। बात बहुत परन्तु कितनी बात लोगों को लगे। अरे! संसार की बातें कितनी याद रहे। २१ वर्ष पहले गाली दी हो तो याद रहे कि उसने मुझे गाली दी थी। क्यों, साकरचन्दभाई! मेरा उस अवसर पर अपमान किया था तब और यहाँ चुभता है। ...! परन्तु गाली को याद रखे और गुण को याद नहीं रखे? गाली को याद रखने का प्रेम, परन्तु उसके गुण की दशा को याद रखने का प्रेम नहीं। आहाहा!

वह केवलदर्शन है। उसी केवलज्ञान में अनन्त ज्ञायक (जानने की) शक्ति वह अनन्तवीर्य है,... लो! उस केवलज्ञान में अनन्त जानने की शक्ति है न वीर्य, उसे अनन्त वीर्य कहते हैं। यह आठ गुण वर्णन करते हैं, इसके बाद आठ कर्म सामने लेंगे। **अतीन्द्रिय ज्ञान से अमूर्तिक सूक्ष्म पदार्थों को जानना, आप चार ज्ञान के धारियों से न जाना जावे वह सूक्ष्मत्व है,...** यह पाँचवाँ गुण लिया। इसकी व्याख्या आयेगी। **एक जीव के अवगाह क्षेत्र में (जगह में) अनन्त जीव समा जावें, ऐसी अवकाश देने की सामर्थ्य वह अवगाहनगुण है,...** समझ में आया? अघाति का दूसरा (गुण)। समझ में आया?

सर्वथा गुरुता और लघुता का अभाव अर्थात् न गुरु न लघु—उसे अगुरु-लघु कहते हैं,... तीसरा, अघाति का तीसरा। **वेदनीयकर्म के उदय के अभाव से उत्पन्न हुआ समस्त बाधारहित जो निराबाध गुण उसे अव्याबाध कहते हैं।** आठ गुण कहे आठ गुण। क्षायिक समकित, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व। यह आठ गुण की पर्याय है, हों! आठ पर्याय। यह पर्याय कैसे आच्छादित होती है? स्वभाव के आश्रय से तो प्रगट होती है, परन्तु पर के लक्ष्य से और प्रेम से वह आच्छादित होती है, यह बात यहाँ कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक - ०६-११-१९६५
गाथा - ६१ - ६२, प्रवचन - ४३

६१ गाथा है, ६१, पहले भाग की गाथा है। पहले भाग की ६१। देखो, क्या आया? कि, यह आत्मा है आत्मा, वह जब सिद्ध होता है, तब उसे आठ गुण प्रगट होते हैं—आठ पर्यायें प्रगट होती हैं। आत्मा में... आत्मा, वह तो शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा है। भगवान तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञानी परमात्मा ने यह आत्मा देखा, वह आत्मा तो शुद्ध आनन्द और अतीन्द्रिय वीतराग चिदानन्दस्वरूप है, यह आत्मा। इसके भान बिना—उसके अज्ञान से उसने आठ कर्म उपार्जित किये है। उन आठ कर्म के कारण अपने भान बिना, इसने आठ प्रकार के गुण की दशा इसकी आच्छादित है। सिद्ध में वह आठ प्रकार की दशा आवरणरहित हो गयी है। समझ में आया?

यह आत्मा अन्दर आत्मा जिसे कहते हैं वह तो... यह शरीर, वाणी तो यह जड़, मिट्टी है, यह कहीं आत्मा नहीं, यह तो मिट्टी, धूल, अजीव है। कर्म वह अजीवतत्त्व है अन्दर आठ कर्म जड़ मूर्त, जड़ अजीव है, वह कहीं आत्मा नहीं। और उसमें पुण्य-पाप के विकल्प विकार शुभाशुभ हो, वह भी एक आस्रवतत्त्व विकारी भाव है, कहीं आत्मा नहीं। आत्मा नव तत्त्व में तो उसे कहते हैं कि जो शरीर, कर्म जो यह मिट्टी जड़ है, उससे भिन्न और पुण्य-पाप के भाव जो आस्रवतत्त्व हैं, इन नव तत्त्व में, इस तत्त्व से भिन्न तत्त्व है। वह आत्मा ज्ञानानन्द सिद्धस्वरूप अन्दर शक्तिरूप से है। उसके भान बिना उसने उपार्जित आठ कर्म। मैं शुद्ध आनन्द हूँ, परमानन्द की मूर्ति सर्वज्ञस्वभावी आत्मा हूँ, ऐसा जहाँ भान नहीं अज्ञान में, वह अज्ञान के कारण आठों ही कर्म का उपार्जन हुआ। उस अज्ञान का नाश होने पर आठ कर्म का नाश होता है और आत्मा में परमानन्द आदि आठ गुण की पर्याय प्रगट होती है। यह आठ गुण की व्याख्या कही। अब कर्म ने उसे रोका, उसकी जरा बात करते हैं। कर्म तो जड़ हैं, हों! रोकता है तो स्वयं।

देखो ! **ये सम्यक्त्वादि आठ गुण जो सिद्धों के हैं,...** सिद्ध भगवान में आठ गुण प्रगट हो गये, आठ कर्म का अभाव हुआ इसलिए। सिद्ध भगवान 'णमो सिद्धाणं'। उन सिद्ध भगवान ने आठ कर्म का अभाव किया, इसलिए उन्हें आठ गुण की दशा निर्मल प्रगट हुई, उन्हें सिद्ध भगवान कहते हैं। 'णमो सिद्धाणं।' वह संसारावस्था में उन सिद्ध को आठ गुण जो प्रगट हुए। **वे संसारावस्था में किस-किस कर्म से ढँके हुए हैं, इसे कहते हैं—** किस कर्म से ही दशा ढँकी हुई है, यह बात यहाँ समझाते हैं।

सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्व नाम दर्शनमोहनीयकर्म आच्छादित है,... भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, वह तो वीतराग विज्ञानघन आत्मा है। वर्तमान, हों ! उसका भान नहीं किया अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया, तो उस सम्यग्दर्शन को रोकनेवाला कौन है ? मिथ्यात्व अर्थात् दर्शनमोहनीय कर्म। वह आत्मा के भान बिना मिथ्यात्वभाव किया हुआ, मिथ्यात्वभाव से दर्शनमोहनीय कर्म बँधा, उस दर्शनमोहनीय कर्म के जुड़ान में जीव को सम्यग्दर्शन की पर्याय ढँक गयी है। जरा सूक्ष्म बात है, त्र्म्बकभाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी है शक्तिरूप से। नहीं—ऐसा कहाँ जाये ? न हो तो आवे कहाँ से ? अन्दर में न हो तो आवे कहाँ से ? चौसठ पहरी, पीपर में चौंसठ पहरी सामर्थ्य अन्दर में चरपराई न हो तो बाहर में आवे कहाँ से ? कहीं पत्थर घिसने से आती हो तो कंकड़ घिस डाले नहीं ? वह अन्दर पड़ी है पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई, तब चौंसठ पहरी प्रगट होती है। उसी प्रकार आत्मा में यह सब गुण अन्तर में शक्तिरूप से पड़े हैं। खबर नहीं होती, खबर नहीं होती, अन्ध अनादि से। भान नहीं होता कि, मैं कौन हूँ। ऐसे अभान द्वारा उपार्जित, मिथ्यात्व से उपार्जित दर्शनमोहकर्म। वह दर्शनमोहनीय कर्म वर्तमान उसके ऊपर प्रेम-रुचि के कारण अपने सम्यग्दर्शन गुण की पर्याय दर्शनमोह से ढँकी हुई, आच्छादित हो गयी है। समझ में आया ?

केवलज्ञानावरण से केवलज्ञान ढँका हुआ है,... समझ में आया ? भगवान आत्मा केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होने की उसमें योग्यता है। वह केवलज्ञान जब प्रगट होता है, वह कहीं बाहर से नहीं आता। बाहर से क्या आवे ? धूल कहीं बाहर से आता

होगा ? पीपर में से चौंसठ पहरी चरपराई आवे, वह कहीं बाहर से आती है ? पत्थर में से आती है ? वह तो अन्दर में पड़ी है, उसमें से आती है। उसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान, पूर्ण केवलज्ञान पड़ा है, उसके भान द्वारा अन्तर में से आता हुआ केवलज्ञान... उसके भान बिना केवलज्ञानावरणीय जो उपार्जित (कर्म), वह केवलज्ञानावरणीय के निमित्त में केवलज्ञान संसार में ढँका हुआ दिखता है। समझ में आया ?

जीवतत्त्व क्या ? अजीवतत्त्व क्या ? नव तत्त्व में आस्रवतत्त्व क्या ? नाम भी आते न हों (तो) व्यवस्थित, उसके भाव तो कहाँ से समझे ? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, नव तत्त्व है। तब यह शरीर, वाणी, कर्म, जड़, वह तो अजीवतत्त्व है। तब पुण्य-पाप के भाव हैं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। पुण्य-पाप और आस्रव और बन्ध आते हैं न ? और आत्मा वह ज्ञायकतत्त्व चिदानन्दस्वरूप है। सिद्ध समान उसका स्वरूप अन्दर पड़ा है। केवलज्ञान अन्दर पड़ा हुआ है, उसके भान बिना केवलज्ञानावरणीय उपार्जित, उसके कारण से केवलज्ञान की वर्तमान पर्याय प्रगट दिखती नहीं। उसके कारण से ढँकी हुई है। कहाँ निवृत्त ऐसा सब समझे ? भगवानभाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे बिना धर्म होता होगा ? अभी आत्मा क्या, विकार क्या, कर्म क्या, जड़ क्या, भिन्न के भान बिना का धर्म हो जाता होगा ? परन्तु दुःख किस प्रकार से मिटे ? सब्जी लाना है किसी प्रकार से। पाँच रुपये लेकर गया, सब्जी देना। क्या ? मुझे कुछ खबर नहीं। मूढ़ है, क्या लेने आया ? क्या लेने आया ? पाँच रुपये मेरी सब्जी देना, घर में पच्चीस मेहमान आये हैं। कौनसी ? मुझे कुछ खबर नहीं, मेरे पिता ने पाँच (रुपये) दिये हैं। मूर्ख लगता है, पागल लगता है। मूर्ख कहे उसका बाप। परन्तु क्या लेकर आया तू यह ? तुझे पाँच रुपये दिये थे पाव सेर करेला और पाव सेर फलाना और सब लेकर आया हूँ। परन्तु मैंने तुझे कहा था कि उसमें से अभी यह रस का अवसर है, इसलिए करेला लाना, उसका भूल गया और भान बिना... पचास चीज़ में से करेला लाने का कहा था और....

इसी प्रकार इस आत्मा में आत्मा कौन है ? उसमें विकार क्या है ? जड़ क्या है ? उसके भान बिना विकार को टालेगा कैसे ? उसे चाहिए है क्या ? कि उसे आत्मा सुख।

तो सुख है कहाँ? सुख आत्मा में है। धूल में सुख है? शरीर में, वाणी में, पैसे में, स्त्री, पुत्र, वह तो मिट्टी धूल है, पर है। पर में सुख है? कैसे होगा? मोरारभाई! धूल में भी नहीं, मर गया मुफ्त का मूढ़ होकर। यहाँ तो कहते हैं कि शरीर में सुख नहीं, कर्म में नहीं, वह तो मिट्टी, जड़ है। पैसा मिट्टी, जड़ है, स्त्री-पुत्र पर है, उनमें तेरा सुख कहाँ से आया? यह पुण्य और पाप के भाव होते हैं न, शुभ और अशुभ, वह राग है, उसमें भी सुख नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! कहो, त्र्म्बकभाई!

नव तत्त्व है या नहीं नव? तब अजीवतत्त्व अर्थात् यह शरीर, कर्म, यह सब पैसा, धूलधाणी, मकान, सब वह अजीवतत्त्व है। उस अजीवतत्त्व में तेरा सुख है? वह तुझमें भाव हों वह हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वह पाप है। उसमें सुख है? यह कोई दया, दान, व्रत के शुभभाव परिणाम पुण्य हो, वह पुण्य है, शुभभाव है, उसमें सुख है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है। पुण्य राग है, पुण्य तो राग है। पुण्य में सुख है? राग है, वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रव में सुख है? मिथ्यात्व, पर में (सुख) माने, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ तो तीर्थंकर परमात्मा कहते हैं, बापू! तुझे अभी तत्त्व की खबर नहीं होती।

सुख तत्त्व कहाँ है? सुखरूप सुख कहते हैं न? तो सुख का भाव कहाँ है? सुख का भाव कहाँ है? और कहाँ से मानता है? तू मूढ़ है। सुख भाव तो आत्मा के अन्दर में पड़ा है। आत्मा में सुख तत्त्व पड़ा है, उसके बदले पुण्य-पाप के भाव में सुख माने, पैसा में माने, यह स्त्री-पुत्र है, मुझे सुख होता है, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है, उसे वीतराग की आज्ञा की श्रद्धा नहीं। मोहनभाई! कैसे होगा इसमें?

यहाँ तो वीतरागदेव जगत को कहते हैं कि तू सुन तो सही! कहते हैं। तूने कभी तत्त्व को जाना नहीं। तू आत्मा है या नहीं? आत्मा वस्तु है या नहीं? अरूपी भी पदार्थ है या नहीं? या अवस्तु है? वस्तु है। तो उस वस्तु में कोई गुण है या नहीं? शक्तियाँ हैं या नहीं? स्वभाव है या नहीं? तो वह आत्मा में आनन्द है, शान्ति है, सम्यग्दर्शन है, केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनन्त शक्तियों का पिण्ड आत्मा है। अब उस आत्मा में

सुख है, ऐसा तत्त्व तो मैं हूँ। ऐसा न मानकर शरीर में, पैसे में, अजीवतत्त्व में सुख है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव की है। आहाहा! जेचन्दभाई! क्या है यह? धूल में भी नहीं। यह लाखों रुपये पड़े हैं, हैरान हो गये हैं ऐं... ऐं... करके।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह बात बिल्कुल खोटी है। कौन कहता है वैराय है? पैसा तितर-बितर करता है? पैसे तो पहले भी थे। नहीं आते थे। निवृत्ति नहीं थी राग में अन्दर, वह अब फँस गया जरा। बैठो भाई यहाँ अब।

यहाँ तो भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव कहते हैं कि भाई! आत्मा में आनन्द तत्त्व पड़ा है, अन्दर आनन्द है। ऐसे आनन्द तत्त्व को भूलकर और तूने पुण्य और पाप में आनन्द माना और उसके फल के, धूल के ढ़ेर में सुख माना, उसके कारण तूने मिथ्यात्वभाव उत्पन्न किया। उस मिथ्यात्वभाव के कारण दर्शनमोहनीय कर्म बँधा। और उस दर्शनमोहनीय के कर्म के पाक काल में और तुझे मिथ्यात्वभाव हुआ। वह तेरा समकित दर्शनमोह से आच्छादित हो गया है। परन्तु तूने उपार्जित कर्म से आच्छादित है। आहाहा! समझ में आया? जैन में जन्मे, उसे भी खबर नहीं होती। क्या वीतराग कहते हैं और वीतराग का क्या तत्त्व है।

यहाँ तो यह कहा कि भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन जो शुद्धस्वभाव के (आश्रय से होता है कि) मैं आनन्द हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसा भान, अन्दर भान पुण्य-पाप के रागरहित, कर्म, शरीररहित मेरा तत्त्व है, ऐसे चैतन्य शुद्धस्वरूप भगवान का अन्तर अनुभव का भान कि मैं आनन्द हूँ, मुझमें आनन्द है, पुण्य-पाप के भाव हों शुभ-अशुभ उनमें आनन्द नहीं, कर्म में आनन्द नहीं, ऐसा भान होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन को नहीं उत्पन्न किया हुआ (और) मिथ्यात्व भाव उत्पन्न करके दर्शनमोह बाँधा और उस दर्शनमोह के उदय में यह तेरी सम्यग्दर्शन की पर्याय तूने ढाँकने का खड़ा किया तो ढँक गया है। आहाहा! रतिभाई!

पश्चात् केवलज्ञान। केवलज्ञान आत्मा का स्वभाव है अन्दर। ऐसा केवलज्ञान ही मैं हूँ, अकेला ज्ञान का सूर्य हूँ। केवलज्ञान अर्थात् चैतन्यसूर्य हूँ, चैतन्यप्रकाश का सूर्य

आत्मा हूँ। ऐसा भान किये बिना अज्ञान से उपार्जित केवलज्ञानावरणीय कर्म और केवलज्ञान की पर्याय प्रगट स्वयं ने नहीं की, इससे केवलज्ञानावरणीय बँधा। उस केवलज्ञानावरणीय के उदय के काल में केवलज्ञान की पर्याय जो है, वह उससे ढँक गयी। अपने अज्ञानभाव से उपार्जित कर्म, उस अज्ञानभाव में अपना आच्छादन स्वयं ने किया है। ओहो! समझ में आया?

केवलदर्शनावरण से केवलदर्शन ढँका है,... केवलदर्शन। भगवान आत्मा में केवलदर्शन पड़ा है। वह केवलदर्शन, वह स्व-तत्त्व है अपना। उसमें शक्ति केवलदर्शन होने की पड़ी है। ऐसे स्व-तत्त्व के केवलदर्शन से भरपूर तत्त्व को न मानकर, मेरे दर्शन और ज्ञान और आनन्द कोई पर से प्रगट होंगे, ऐसा मानकर जो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न करके जो केवलदर्शनावरणीय बाँधा, उस केवलदर्शनावरणीय के उदय के काल में वही भाव वापस खड़ा हुआ। मैं ऐसा नहीं, सुखरूप नहीं, केवलज्ञान-दर्शनरूप नहीं। ऐसी जो पर्याय उत्पन्न हुई, होनी चाहिए, उस पर्याय को इसने ढाँका। केवलदर्शनावरणीय से ढँक गयी।

वीर्यान्तरायकर्म से अनन्त वीर्य ढँका है,... भगवान आत्मा अनन्त वीर्य का धनी है, अनन्त बल उसमें पड़ा है। चैतन्यमूर्ति अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन को रचे ऐसा। अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन को रचे, ऐसा वीर्य आत्मा में है। आहाहा! ऐसे वीर्यवाला आत्मा न मानकर, अल्प वीर्यवाला और रागवाला और द्वेषवाला, विकारवाला और पर में सुखवाला, ऐसा मानकर इसने वीर्यान्तरायकर्म उत्पन्न किया और उस वीर्यान्तरायकर्म के काल में उसका वीर्य आच्छादित हो गया। आहाहा! समझ में आया? मूल तत्त्व की नौ की अभी खबर नहीं होती। नौ तत्त्व में क्या, कौन सा तत्त्व आस्रव कहलाता है, कौन सा तत्त्व जड़ कहलाता है, कर्म क्या? अजीव, यह पैसा धूल है, शरीर अजीव है, आत्मा ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु स्वयं यह ही है। उसमें सूक्ष्म या बड़ी कहो, वह यह है। कहो, समझ में आया इसमें? मलूकचन्दभाई! कितना सुख होगा? यह मलूकचन्दभाई के पुत्र के पास तीन करोड़ रुपये हैं। है न यह मलूकचन्दभाई नहीं? पूनमचन्द नहीं?

वहाँ ... पहिचानते हो या नहीं ? यह उनके पिता मलूकचन्दभाई, उसके पिता यह। दो, ढाई करोड़ एक के पास है वहाँ मुम्बई में। पूनमचन्द मलूकचन्द, मलूकचन्द छोटालाल। धूल में भी सुख नहीं वहाँ, होली है वहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य के परमाणु जल गये, तब बाहर दिखाई दिया। उसमें आत्मा को क्या आया ? नये पाप बाँधे। नया कमाने का भाव है, वह पाप किया, पाप किया तो उससे मिला नहीं। पूर्व के रजकण थे वह बाहर धूल दिखाई दी दो करोड़, तीन करोड़। उसमें है क्या धूल में।

मुमुक्षु : तो वे रुपये किसके ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये जड़ के। यहाँ अजीवतत्त्व में जाते हैं। रुपये अजीवतत्त्व है। छोटाभाई ! इन्हें चार लड़के हैं। बड़े लड़के के पास एक करोड़ रुपये। कहाँ ? स्विट्जरलैण्ड। और दो छोटे लड़कों के पास दो, ढाई करोड़। गिनने हैं न कंकड़ धूल में।

परन्तु वह अजीवतत्त्व है या जीव ? एक बात निर्णय करो। वह पैसा अजीवतत्त्व है या जीव ? उस अजीवतत्त्व में आत्मा का सुख होगा ? जीवतत्त्व उसके पास है। अजीव में अजीव है। जीव में अजीव का अभाव और अजीव में जीव का अभाव। कहाँ से घुस गया आत्मा में अजीव ? अरे... परन्तु वासना अनादि की। यह विषय तो पहले आ गया है। यह तो द्रव्य, गुण, पर्याय उसमें उसके हैं परमाणु के। वह तो परमाणु है मिट्टी, धूल। नोट हो, सोना हो, हीरा हो, माणेक हो, धूल हो। वह तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व में जीवतत्त्व आ गया ? और जीवतत्त्व के पास अजीव यहाँ आ गया ? यहाँ घुस गया ? दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। अजीव में जीव नहीं और जीव में अजीव नहीं। वरना जीवतत्त्व रहे कैसे ? आहाहा !

यहाँ तो पुण्य और पाप के भाव हों, वह जीवतत्त्व में नहीं, ऐसा कहना है। वह तो विकार है, शुभाशुभ वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व जीव में हो तो जीव और आस्रव दोनों एक हो जायें। आस्रव में जीव नहीं और जीव में वह आस्रव नहीं।

आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह पाप। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प उठें, वह पुण्य, दोनों आस्रव हैं, वे आत्मा में नहीं। यह आगे कहेंगे। कहाँ कभी सुना है इसने। भगवानजीभाई को पहिचानते हो? ... अभी यहाँ पड़े हैं। पुराने व्यक्ति हैं न।... भावनगर। भाई! वीतराग परमेश्वर क्या कहते हैं? नौ तत्त्व किसे कहते हैं? किस तत्त्व के स्वरूप में क्या है? किस तत्त्व के स्वरूप में मैं हूँ? कुछ खबर नहीं होती। अन्ध ऐसा का ऐसा पागल की भाँति (भटकता है)। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यहाँ भगवान कहते हैं कि वीर्यान्तरायकर्म तूने बाँधा। किस प्रकार से? कि मैं अनन्त वीर्य और बल का धनी ऐसा आत्मा हूँ, उसका अभान किया—भान नहीं किया। विपरीत मान्यता की कि मैं तो रागवाला हूँ और विकारवाला हूँ और शरीरवाला हूँ। ऐसे अपने अनन्त वीर्य का स्वभाव इसने रोका अपनी उल्टी मान्यता से, उसके कारण से वीर्यान्तराय कर्म बँधा। उस वीर्यान्तराय कर्म के काल में इसका वीर्य वापस घात हो गया। स्वयं उस ओर दृष्टि नहीं की। अनन्त वीर्य का धनी, अनन्त ज्ञान-दर्शन का स्वभाव हूँ, ऐसे सम्यक् भान बिना इसकी वीर्य की शक्ति वीर्यान्तराय में रुक गयी। समझ में आया? यहाँ तो आठ गुण का वर्णन है अभी, हों!

आयुःकर्म से सूक्ष्मत्वगुण ढँका है,... अब आयुकर्म। इस देह में आयुष्य रहने का कर्म है न एक। उतने काल देह में रहे। ऐसा एक आयुष्यकर्म है। यह पूर्व में इसने भाव में भाव किया और आयुष्यकर्म बँधा। उतना काल देह रहे। उसमें आगे-पीछे लाख उपाय करे तो रहे नहीं। इस आयुकर्म ने सूक्ष्मगुण ढाँका है। जरा सूक्ष्म बात है, हों! सूक्ष्म गुण है न आत्मा में, वह ढँक गया। सूक्ष्म का स्थूल हो गया यह बाहर में इतनी स्थिति में आ गया।

क्योंकि आयुकर्म के उदय से जब जीव परभव को जाता है,... आयुकर्म के उदय से जब यह देह छोड़कर परभव में जाता है, इस देह का आयुष्य तब तक इस देह में रहेगा। जहाँ दूसरा आयुष्य आया तो एकदम देह छूट गयी, जायेगा अन्यत्र। भटकता अज्ञानी अनादि से भटकता है। आत्मा का भान नहीं, इसलिए और अन्यत्र सर्वत्र भटकने जायेगा। **आयुकर्म के उदय से जब जीव परभव को जाता है,...** हिन्दी है। जाता है।

वहाँ इन्द्रियज्ञान का धारक होता है,... वहाँ इन्द्रियाँ मिले, इन पाँच का ज्ञान हो। ऐसा उसका लक्ष्य वहाँ है। स्थूल जाने, सूक्ष्म तो जानता नहीं।

अतीन्द्रिय ज्ञान का अभाव होता है,... अतीन्द्रिय ज्ञान भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रियज्ञान का उसे अभाव है, इसलिए इन्द्रियों द्वारा स्थूल जानता है, स्थूल, स्थूल इन इन्द्रियों द्वारा। अन्तर सूक्ष्म चिदानन्द भगवान अरूपी चैतन्यसूर्य है, परन्तु इन इन्द्रियों द्वारा थोड़ा स्थूल जाने। **इस कारण कुछ एक स्थूल वस्तुओं को तो जानता है, सूक्ष्म को नहीं जानता,...** इसलिए सूक्ष्मगुण आयुष्यकर्म के कारण से रुक गया है। आयुष्य के कारण से भव मिले, भव में इन्द्रियाँ मिले, वह ज्ञान इन्द्रिय से काम करे स्थूल, सूक्ष्म को जानता नहीं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्दकन्द सूक्ष्म चिदानन्द है, वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना जान नहीं सकता। इसलिए पाँच इन्द्रिय से स्थूल जानने का रह गया। सूक्ष्मत्वगुण को आयुष्यकर्म ने रोका। वह अपनी भूल करके स्वयं रोका।

शरीरनामकर्म के उदय से अवगाहनगुण आच्छादित है,... लो! यह शरीर नाम के इतने में रह गया है आत्मा। इतने में रह गया न ऐसा? नामकर्म की बात ली, वह नामकर्म वहाँ इतना लिया। **सिद्धावस्था के योग्य विशेषरूप अगुरुलघुगुण नामकर्म के उदय से...** सिद्ध अवस्था के योग्य जो नामकर्म की एक अगुरुलघु प्रकृति है, उससे **अथवा गोत्रकर्म के उदय से ढँक गया है,...** यह विशेष सिद्ध अवस्था के योग्य अगुरुलघु है, वह नामकर्म का उदय और गोत्रकर्म का, इन दो के कारण से ढँक गया है। **नीच गोत्र पाया तब तुच्छ और उच्च गोत्र पाया तब अधिक ऐसे मानने लगा।** लो! नीच गोत्र पूर्व का बाँधा हुआ नीच, हल्के कुल का आयु। (उसमें माना कि) अरे! हम तो नीच हैं। ... आत्मा ऊँच-नीच कब था?

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सूर्य है, वह तो चैतन्य का बिम्ब पूरा चैतन्यसूर्य है। जैसे यह पत्थर का सूर्य है, वह चैतन्यसूर्य शरीर के अन्दर में पड़ा हुआ भगवान चैतन्य भगवान है। उसके भान बिना उसके अज्ञान से उपार्जित कर्म में गोत्रकर्म बाँधा, उसके उदय के कारण नीच में आया तो हम नीच हो गये, उच्च में उच्च (हो गये ऐसा) माना है, वस्तु ऐसी नहीं। आहाहा! राजा हुआ वहाँ कहे कि बड़े हो गये। चाण्डाल भिखारी काला, कुबड़ा शरीर... रोटियाँ माँगे। अपने नीच हो गये। ऐसे भगवान आत्मा के

स्वभाव के भान बिना बाँधे हुए कर्म, उसके फल में ऐसा उसे नीच और उच्चपना हो गया है। कहो, समझ में आया? ज्ञानावरणीय कहा, दर्शनावरणीय कहा, समकित कहा, आयुष्य कहा। **क्योंकि उसके उदय साता-असातारूप सांसारिक सुख-दुःख का भोक्ता हुआ।** लो! यह सातावेदनीय बाँधी हो तो उसे यह धूल की अनुकूलता मिले। सुन्दर शरीर मिले, पैसा मिले, स्त्री (मिले)। उसमें राग करके सुख को भोगे, दुःख को। सुख अर्थात् दुःख।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब क्या है? धूल। वह तो मूढ़ ने माना हुआ है। वहाँ कब सुख था। सातावेदनीय बाँधी हुई है, उसके कारण यह धूल आदि पाँच, पच्चीस करोड़, धूल करोड़ मिले। समझ में आया? किसकी साता? वहाँ इसके पास, उसके पास पूछो न मलूकचन्द को पूछो तो सही भाई को। क्या कहलाता है? ब्लडप्रेशर होता है। दो, ढाई करोड़ रुपये क्या धूल करता था? धूल क्या करे परन्तु? वह तो पर जड़ है। सातावेदनीय से प्राप्त चीज़, उसमें राग करके यह मुझे मिला, ऐसा भोगता है। वह राग, उसे अज्ञानी सुख मानता है। है वह दुःख। आहाहा! गजब यह जगत से उल्टी बात है वीतराग की सब। कहो, समझ में आया? असाता के उदय से वह दुःख (मिले)। ऐ... देवानुप्रिया! यह असाता के उदय से ये पैर चलते नहीं और मानता है कि मुझे दुःख है। वह मूढ़ होकर दुःख मानता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सच्चा लगता है? परन्तु पैर, वे तो जड़ हैं। वे नहीं चले, उसमें इसे दुःख किसलिए हुआ? माना किसलिए इसने? इसने कल्पना का जाल खड़ा किया है। ऐसा कहते हैं भगवान। कल्पना का जाल खड़ा किया कि अरे! मुझे यह ठीक नहीं। परन्तु यह ठीक, अठीक तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। मिट्टी ठीक-अठीक कहाँ से लाया तू? वह तो कल्पना खड़ी की है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नजर से क्या दिखता है? कल्पना करे वह दिखता है। यह

पैर चलते नहीं। उसकी मान्यता अज्ञानी की, भान नहीं, तत्त्व की खबर नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अब इसका उपाय तो बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय इसका कि भान करो मैं आत्मा ज्ञानानन्द हूँ। यह दु:ख की कल्पना, वह मेरा स्वरूप नहीं, सुख की कल्पना स्वरूप नहीं और साता-असाता से प्राप्त धूल के ढ़ेर, वह मेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! अरे! परन्तु अभी कुछ सुनने को मिलती नहीं यह बात, वह कब समझे और कब रुचे ? उल्टा-उल्टा रास्ता और उल्टा-उल्टा मार्ग। समझ में आया ?

उसमें और कुछ करोड़, दो करोड़, लाख, दो लाख खर्च किये हों तो धर्म धुरन्धर की उपाधि दे देवे सब इकट्ठे होकर, ओहोहो! तुमने क्या किया! क्या धूल की परन्तु क्या इसने किया ? वह तो धूल पैसा पर था, उसमें से कुछ राग कदाचित् मन्द किया हो। उसमें भी मान हो वापस। हमने दिये, हम सामने (रहे)। वह मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का पोषण करता है। पाप को पोषण किया और माना कि मैंने कुछ ठीक किया, लो! सुमनभाई!

यहाँ तो वीतराग परमात्मा कहते हैं कि वेदनीय के कर्म बाँधे तूने, आत्मा के आनन्द को भूलकर, आत्मा का आनन्द आत्मा में है, उसे भूलकर, सम्यग्दर्शन को भूलकर मिथ्यात्व भाव में वेदनीय कर्म बाँधे। कोई पुण्य शुभ था तो साता (बँधी), अशुभभाव हो तो असाता (बाँधे)। उसके फल के समय ढ़ेर मिले बाहर प्रतिकूल, अनुकूल, यह अनुकूलता में माना कि मुझे सुख, वह मूढ़ है। और प्रतिकूलता के समय मैं दु:खी हूँ, यह मान्यता भी अज्ञानी की मूढ़ है। कहो, मोहनभाई! यह तो इसके बैठता नहीं झट अभी। लाखों रुपये है तुम्हारे पास। सुख नहीं, परन्तु शरीर ऐसा हुआ वहाँ दु:खी हो गये। माना, मान्यता है। धूल में भी नहीं मुफ्त का। गहल होकर पागल हो गया है मुफ्त का। वीतराग तो कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि वह पागल, गहल है। ...भाई! यह बात भी सुनी न हो, हों!

यहाँ भगवान तो कहते हैं, बापू! नौ तत्त्व में प्रत्येक तत्त्व भिन्न-भिन्न चीज़ है।

वरना नौ तत्त्व किस प्रकार होंगे? यह शरीर, पैसा, लक्ष्मी अजीवतत्त्व है। तू जीवतत्त्व चिदानन्द सूर्य है। उसमें तू कल्पना कर कि यह मुझे सुख हुआ। यह तो आस्रव की कल्पना है। मैं दुःखी हुआ, यह कल्पना आस्रव की है। समझ में आया? आहाहा! आस्रव अर्थात् विकार, उससे नये कर्म बँधते हैं। इसे भान नहीं होता। प्रसन्न-प्रसन्न हो गया, खुशी-खुशी हो गया। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार आठ गुण आठ कर्मों से ढँक गये, इसलिए यह जीव संसार में भ्रमा। वह चार गति में भटकता है। **जब कर्म का आवरण मिट जाता है, तब सिद्धपद में ये आठ गुण प्रकट होते हैं।** लो! यह आत्मा अपना अखण्ड आनन्द गुण शुद्ध चैतन्यमूर्ति का सम्यग्दर्शन, भान करके और पुण्य-पाप में दुःख है, शरीर आदि पर अजीव, वह दुःख नहीं, वह तो ज्ञेय है, मेरा स्वरूप शुद्ध आनन्द है—ऐसा अनुभव करके सम्यग्दर्शन करे तो फिर क्रम से आठों ही गुण प्रगट होते हैं। **यह संक्षेप से आठ गुणों का कथन किया।** लो! आठ गुण की व्याख्या... की।

विशेषता से... देखो! भगवान आत्मा में आठ गुण तो है। अमूर्त गुण है आत्मा में। यह बात कभी नहीं सुनी (हो), देखो दूसरा अभी। यह नयी बात है इसमें। **निर्नाम...** नाम का एक गुण है। नाम बिना का निर्नाम। यह नाम, गोत्र से जो नाम पड़ता है, ऐसा उसमें कहाँ है? वह तो ज्ञानानन्दस्वरूप चिदानन्दमूर्ति, उसमें और नाम कैसा? यह बनिया है और ब्राह्मण है और धूल है, यह कहाँ उसमें—आत्मा में था? वह तो चैतन्यसूर्य ज्ञानानन्दमूर्ति अरूपी है, देहदेवल में भिन्न। अजीवतत्त्व में भिन्न तत्त्व है। उसे निर्नाम गुण है, उसका **निर्गोत्र...** गुण है, यह गोत्र रहित उसमें गुण है। यह निर्गोत्र—गोत्ररहित ऐसा उसका गुण है। भगवानस्वरूप सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही उसका स्वभाव यहाँ है। परन्तु भान बिना इसने विकार और संसार में सुख-दुःख की कल्पना की है। आहाहा!

अब अधिक आता है। यह आदि साधारण और असाधारणरूप, **अनन्त गुण यथासम्भव शास्त्र-प्रमाण से जानने।** देखो! क्या कहा? यह आत्मा में अनन्त तो साधारण गुण हैं। सुने भी नहीं हों। साधारण अर्थात् समझ में आया? है न संस्कृत में है, संस्कृत में है। यह आत्मा है। देह, वह परमाणु-मिट्टी से (भिन्न है)। वह तो अजीवतत्त्व

भिन्न है। आठ कर्म जो रजकण हैं, वह भी रज, रज है वह तो जड़ है, अजीवतत्त्व है। समझ में आया? और पुण्य और पाप के भाव होते हैं मल—मैल वह तो आस्रवतत्त्व है, मैल है। भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं। ऐसे आठ गुण तो हैं, तदुपरान्त अनन्त। साधारण अनन्त। साधारण अर्थात्? अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, वह आत्मा में भी है, परमाणु में भी है, छहों द्रव्यों में है।

भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। तीर्थंकर परमात्मा ने केवलज्ञान में जाति से छह द्रव्य देखे हैं, संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, यह परमाणु अनन्त हैं टुकड़े करो तो अनन्त हैं, कर्म रजकण। एक काल है अणु असंख्य सूक्ष्म। चौदह ब्रह्माण में आकाश में भगवान ने देखे हुए असंख्य कालाणु अरूपी। एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। वह जीव और जड़ (पुद्गल) गति करने में निमित्तरूप से धर्मास्तिकाय चौदह ब्रह्माण्ड में भगवान ने देखा है। एक जीव जब स्थिर हो, तब स्थिर (में निमित्त) अधर्मास्ति नाम का तत्त्व है। और एक आकाश सर्वव्यापक अन्दर अमाप... अमाप... अमाप... अमाप चलता जाये आकाश। कहीं हद और माप नहीं ऐसा आकाश। भगवान केवलज्ञानी ने (ऐसे) छह द्रव्य देखे हैं। भगवान जाने। त्रिकमभाई! कुछ भान कहाँ था, सब खबर है न हमको तो। जैन कहना किसे? वाडा में बैठे तो (जैन हो गये)? समझ में आया? अरे! भारी कठिन बात।

अनन्त तो आत्मा में साधारण गुण हैं, ऐसा भगवान केवली ने—भगवान ने कहा है। साधारण अर्थात् अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व ऐसे अनन्त गुण हैं आत्मा में। ऐसे रजकण में भी अनन्त गुण हैं, यह परमाणु में, हों! एक-एक रजकण में। भगवान ने ऐसे अनन्त गुण देखे हैं और अनन्त तो असाधारण गुण हैं। छोटाभाई! देखो पाठ है संस्कृत में। '**साधारणासाधारणरूपानन्तगुणाः**' एक आत्मा में असाधारण अर्थात् ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह जड़ में नहीं, इसलिए असाधारण कहलाता है। अस्तित्व—होनापना, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, यह दूसरे में भी—जड़ में भी है और आत्मा में भी है, इसलिए इन्हें साधारण कहा जाता है। और आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, वह जड़ में नहीं, इसलिए असाधारण कहा जाता है। ऐसे असाधारण गुण आत्मा में अनन्त हैं।

मुमुक्षु : छहों द्रव्यों में?

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्यों में अनन्त है। यह एक-एक... यह तो वस्तु है या नहीं? यह तो बहुत रजकणों का पिण्ड है। यह कहाँ मूल चीज़ है? इसका टुकड़ा, अन्तिम टुकड़ा लो तो उसे भगवान परमाणु कहते हैं। परमाणु, एक रजकण, उस रजकण में अनन्त गुण भगवान कहते हैं। सुने हैं कब? बाहर में और बाहर में मुफ्त में, महत्ता में मर गया उसमें। समझ में आया? आहाहा! साधारण, असाधारण अनन्त गुण सुने थे कभी चौरासी वर्ष में? ये तो वडाल के सेठ हैं। कहो, समझ में आया? भूराभाई है न। पोरबन्दर नहीं थे भूराभाई? यह उनके काका हैं न्यालभाई। वडाल, वडाल। भूरा भूधर वे यह न्यालभाई। वडाल के है न। ८४ वर्ष की उम्र है। वहाँ उपाश्रय के प्रमुख पाट के निकट बैठनेवाले। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं, ऐसा भगवान कहते हैं। उसके सन्मुख जा। यह साधारण, असाधारण अलग प्रकार है। यहाँ साधारण अर्थात् क्या? यह आता है न? साधारण वनस्पति नहीं आती? एक शरीर में अनन्त जीव आते हैं न? यह निगोद आलू, शक्करकन्द, उसमें एक शरीर है, एक टुकड़ा लो न तो उसमें असंख्य तो शरीर हैं। यह आलू, शक्करकन्द, प्याज, लहसुन एक टुकड़ा कन्दमूल इतना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य औदारिकशरीर है। उस एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव हैं। समझ में आया? उसे साधारण कहते हैं। साधारण अर्थात् क्या? शरीर एक और जीव अनन्त, उसका नाम साधारण और शरीर एक और जीव एक, इसका नाम असाधारण (प्रत्येक)। यह नीम, पीपल, यह एक पत्ता है न, उसमें असंख्य शरीर हैं, इसलिए एक-एक शरीर में एक जीव है। इसलिए एक शरीर में एक जीव, उसे असाधारण कहते हैं। प्रत्येक कहो या असाधारण कहो। और एक शरीर में अनन्त जीव, उसे साधारण कहते हैं। प्रत्येक को असाधारण और एक (शरीर में) अनन्त (जीव हो, उसे) साधारण।

उसी प्रकार इस आत्मा में साधारण गुण अर्थात् क्या? कि आत्मा में भी एक अस्तित्व का गुण है, परमाणु में भी है, धर्मास्ति में है, छहों द्रव्यों में है, इसलिए उस अस्तित्व गुण को साधारण कहा जाता है। उसमें भी है, छहों में है इसलिए। ऐसे साधारण गुण आत्मा में अनन्त, परमाणु में अनन्त, छहों द्रव्यों में अनन्त हैं।

अब असाधारण। आत्मा में ज्ञान है, वह परमाणु में नहीं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल में नहीं, इसलिए उस ज्ञान को असाधारण गुण कहते हैं। ऐसा आनन्द। आनन्द उसमें (आत्मा में) है, वह आनन्द जड़ में नहीं, शरीर में नहीं, पैसे में नहीं, बाहर में नहीं। वह असाधारण अर्थात् आत्मा का गुण कहलाता है। इसी प्रकार दर्शन असाधारण गुण। समझ में आया? ऐसे-ऐसे असाधारण गुण एक आत्मा में अनन्त हैं। समझ में आया? इतने पैसे के अंक भी न हो इसके पास। गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... किसे कहना? कुछ समझे नहीं उसमें, क्या कहते हैं यह समझे बिना... हो गया? उन्होंने कहे हुए नौ तत्त्व भिन्न-भिन्न, उसमें आत्मतत्त्व क्या, विकार आस्रवतत्त्व क्या, यह जड़तत्त्व क्या, इस जड़ का परतत्त्व वह मुझसे होता है? ऐसे तो बोले, अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व। नहीं बोलते? भान कब है परन्तु अजीव को जीव मानना किसे कहना यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान का भान चाहिए, इसके बिना कहाँ से पहिचाने?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वापस पहचानता नहीं। परन्तु पहचाननेवाला यह। पहचान कहकर, यह पहचान बिना किस प्रकार हो इसे? ऐसे तो बोलता नहीं? ... पाँचवें सूत्र का बोलता है पहाड़ा। हाँक रखता है। खबर कुछ नहीं होती कि अमार्ग किसे कहना और मार्ग किसे कहना। ऐसा का ऐसा सब हाँक रखी हैं गाड़ियाँ सबने। यहाँ तो वीतराग कहते हैं, पहले पहचान कर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म अर्थात् क्या परन्तु? धर्म अर्थात् वीतराग ने कहा हुआ वह। 'केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं' केवलीपण्णत्तो क्या कहते हैं, उसकी खबर न हो तो धर्म कहाँ से आ गया? समझ में आया? बोले सही मांगलिक में, बोलते हैं या नहीं?

'केवलीपण्णत्तो धम्मो' आता है या नहीं? वह केवलीपण्णत्तो क्या होगा? केवली ने क्या कहा होगा? सेठिया व्यक्ति सामने बैठावे कुर्सी पर, ओहोहो! जाओ मरो मान में सब। सुमनभाई! बात तो ऐसी है न भाई! यहाँ तो सच्ची बात है, ऐसा है।

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! देखो! यह गुण नयी ही बात है। इसमें है, अन्यत्र ऐसी बात कहीं नहीं। यह इन्होंने ही स्पष्टीकरण किया है, योगीन्द्रदेव ने।... एक आत्मा में अनन्त तो साधारण गुण हैं कि जो दूसरे में हैं और उसमें भी हैं। तथा असाधारण जो इसमें ही है और दूसरे जड़ में नहीं, ऐसे एक आत्मा देह में भगवान विराजमान चैतन्यतत्त्व नौ में, उसमें अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं अभी। समझ में आया?

तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वादि जिन शुद्ध गुणस्वरूप जो शुद्धात्मा है, वही उपादेय है। क्या कहा अब? कहते हैं कि, अब आदरणीय क्या इसमें, सब बात की उसमें? हमको करना क्या? कि आत्मा का सम्यग्दर्शन आदि गुण, निर्मल पर्याय ऐसा जो उसमें सम्मिलित ऐसा निज शुद्ध गुणस्वरूप, निज शुद्ध गुण अनादि-अनन्त ऐसे गुणस्वरूप भगवान आत्मा, वही उपादेय अर्थात् श्रद्धा करनेयोग्य, सम्यग्दर्शन में वह आत्मा आदरनेयोग्य है। आहाहा! है शब्द, पड़ा है या नहीं? आहाहा!

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द प्रभु अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुण का समुद्र—सागर आत्मा है। चैतन्य रत्नाकर, भगवान ने उसे चैतन्य रत्नाकर कहा है। चैतन्य के रत्न से भरपूर समुद्र। आहाहा! यह पुण्य और पाप के विकल्प, दया, दान के विकल्प उठें, उनसे रहित, कर्म से रहित, शरीर से रहित; अनन्त गुण से सहित। ऐसे अनन्त गुणसम्पन्न भगवान की दृष्टि की और वह आदरणीय-योग्य है, दूसरा कोई आदर योग्य है नहीं। कहो, समझ में आया?

यह धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यप्रभु पूर्णानन्द से भरपूर, वही अन्दर श्रद्धा और आदरनेयोग्य है। पुण्य-पाप और शरीर-वाणी आदि वे आदरणीय नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? बराबर है? यह प्रकाश से हो तो मुझे सुख पड़े, कहते हैं कि यह मिथ्यात्व है। ऐसा कहते हैं। परन्तु यह कमावे कुछ ठीक तो ठीक पड़े न जरा सा। नहीं कहा कि अभी है अन्दर पड़ा है। कहते हैं कि मेरे अतिरिक्त परद्रव्य... अब लो! चलो। यह प्रकाश का आत्मा, वह पर है, उसका शरीर

वह पर। उस पर में मुझे ठीक हो तो मुझे सुख हो और अठीक हो तो मुझे दु:ख हो,उसे भगवान मिथ्यादृष्टिपना मिथ्यात्व कहते हैं। क्योंकि पर से सुख नहीं होता, पर से कुछ दु:ख नहीं होता। तथापि पर से कहे मुझे सुख होता है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ वीतराग की आज्ञा नहीं माननेवाले की है। हिलता नहीं, ऐसा कहकर तुमको दु:ख होता है, वह नहीं हिलता इसलिए दु:ख होता है, इसलिए दु:ख में वह कारण है, वह दु:खदायक है, ऐसा मानना वह मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। पर दु:खदायक नहीं। वह तो ज्ञेय है, ज्ञान में जाननेयोग्य वस्तु है। यह ज्ञान उसे जाने कि यह जड़ है बस इतना। तदुपरान्त करे कि मुझे दु:खदायक है, (यह) मिथ्याभाव है। समझ में आया ? ६१ गाथा हुई। ६२ (गाथा।)

★ ★ ★

गाथा - ६२

आगे विषय-कषयों में लीन जीवों के जो कर्मपरमाणुओं के समूह बँधते हैं, वे कर्म कहे जाते हैं, ऐसा कहते हैं—भगवान कहते हैं कि जो आत्मा अपना स्वभाव छोड़कर, दृष्टि, ज्ञान छोड़कर और पाँच इन्द्रिय के विषयों में शुभाशुभभाव करता है और कषाय करता है, उससे नये कर्म बँधते हैं। उस रजकण की धूल को कर्म कहा जाता है। समझ में आया ?

६२) विसय-कसायहिँ रंगियहँ ते अणुया लग्गंति।
जीव-पएसहँ मोहियहँ ते जिण कम्म भणंति॥ ६२॥

आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसका अन्तर श्रद्धा-ज्ञान का अन्तर विषय को छोड़कर अकेले पाँच इन्द्रिय के विषय पर का लक्ष्य करके कषाय—पुण्य-पाप के भाव को कषाय सेवन कर, **रागी मोही जीवों के...** ऐसे परपदार्थ और विकार में रागी और पर में प्रेमवाले मोही जीवों को **जीव के प्रदेशों में...** यह आत्मा असंख्य प्रदेशी वस्तु है। **जो परमाणु लगते हैं, बँधते हैं,...** जो नये रजकण चिपकते हैं, धूल, धूल, बारीक धूल **उन परमाणुओं के स्कन्धों (समूहों) को...** उन परमाणुओं के स्कन्ध के समूहों को **जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं।** जिनेन्द्रदेव उन्हें कर्म कहते हैं। कर्म की व्याख्या की। समझ में आया ?

लोगस्स में नहीं आता एक शब्द ? एक शब्द आता है, 'विहुयरयमला'। यह तो गये वहाँ। किसे खबर है विहुयरयमला क्या और पहीयजरमरणा क्या ? विहुय अर्थात् टाले हैं रज अर्थात् बारीक धूल अजीवतत्त्व। रज है, वह अजीवतत्त्व कर्म है। और मल है, वह पुण्य-पाप का मैल विकारी भाव है। वह विकारी भाव मैल है पुण्य-पाप और रजकण अजीव, वह जड़ अजीव है। उसे टाला ऐसे भगवान को सिद्ध भगवान कहा जाता है। समझ में आया ? ऐसे तो कितनी बार हाँकी होंगी गाड़ियाँ। यह रजकण कैसे हैं, उसकी व्याख्या चलती है यहाँ। वे रजकण कैसे बाँधे ? कि जीव अपने शुद्धस्वरूप को भूलकर मल, वह मल है न ? विषय-कषाय के मल-मिथ्याभाव किये, विषय कषाय अर्थात् पर के ऊपर देखना और स्व को देखना छोड़ दिया। अपना स्वरूप शुद्ध चिदानन्द है, उसे देखना छोड़ दिया। ऐसा देखा। पर को देखकर जो राग हुआ, पर को देखकर जो द्वेष हुआ, ऐसे विषय-कषाय के मिथ्यात्वभाव से जो नये कर्म के रजकण चिपटते हैं, उन्हें जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं। ... ऐसा है, देखो '**जिण कम्म भणंति**'। जिनेश्वर उन्हें कर्म कहते हैं।

इसमें तीन बातें आयी भाई ! एक तो भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति है, वह अपना विषय अर्थात् श्रद्धा, ज्ञान उसे करना छोड़कर, अपने को जानना, देखना, श्रद्धना छोड़कर, पर को चीज़ को जानने, देखने में रुककर राग-द्वेष भाव किये, उस मिथ्याभाव से विषय बदला, ऐसा देखकर ऐसे बदला। वह पर के विषय में मिथ्याभव से राग-द्वेष जो किये, वह मैल हुआ और वह मैल, वह अरूपी जीव की विकारी दशा हुई। उस आस्रव से नये रजकण बँधते हैं, वह जड़कर्म उसे भगवान कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

भावार्थ :- अब कहते हैं, **शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न जो विषय-कषाय उनसे रंगे हुए...** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा वह पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव से भी भिन्न ऐसे आत्मा का जो अनुभव, ऐसा आत्मा शुद्ध चिदानन्द की श्रद्धा, ज्ञान का अनुभव, उससे भिन्न विषय-कषाय। क्या व्याख्या की ? आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य वस्तु का अनुभव, उसके सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, ऐसा जो धर्ममार्ग—मोक्षमार्ग, उसका अनुभव, उससे विपरीत विषय और कषाय। रतिभाई ! शुद्ध चैतन्यप्रभु

चिदानन्दमूर्ति, ज्ञान का कन्द, ज्ञानसूर्य प्रभु का अनुभव, पुण्य-पाप के रागरहित दशावाला भाव, उसे यहाँ अनुभूति कहते हैं।

भगवान आत्मा का अनुभव अर्थात् कि धर्म अर्थात् कि मोक्ष का मार्ग। शुद्ध चैतन्य की अनुभव दृष्टि। उससे भिन्न, देखो! यहाँ पर्याय से भिन्न कहा है, भाई! शुद्ध आत्मा वह द्रव्य कहा, शुद्ध चैतन्य द्रव्य, वह वस्तु। शुद्ध चैतन्य पदार्थ अनादि-अनन्त, अनन्त आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप ध्रुव अपना। उसका अनुभव, वह पर्याय हुई। उसके स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता, वह वीतरागी पर्याय। वीतरागी केवली पण्णत्तो धम्मो यह। उस आत्मा के अवलम्बन से जो वीतरागी—राग रहित अनुभव दशा होना, उसका नाम आत्मा के अनुभव की निर्मल संवर-निर्जरा पर्याय कहलाती है। यह उससे विपरीत विषय-कषाय। पर को विषय करके ठीक माना, वह मिथ्यात्वभाव हुआ। और विषय करके प्रेम माना कि विषय में सुख है, भोग में (सुख है) यह माना, वह मिथ्यात्वभाव है। वह आत्मा की अनुभूति से विपरीत भाव हुआ।

नौ तत्त्व में जीवतत्त्व यह शुद्ध आत्मा, ज्ञान की मूर्ति, अनन्त गुण का पिण्ड, यह शुद्धात्मा वह वस्तु आत्मा। अब उसकी अनुभूति, वह संवर-निर्जरा। उसका अनुभव करना निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अन्दर में आत्मा के अवलम्बन से वीतरागी दशा प्रगट करना, वह संवर-निर्जरा। अर्थात् जीवतत्त्व हुआ, यह संवर-निर्जरा। इस संवर-निर्जरा से उल्टा शुभ और अशुभभाव, पर के लक्ष्य से किया हुआ शुभ और अशुभभाव। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव सहित का शुभाशुभभाव, उसमें रंगा हुआ जीव, उसे नये कर्म बँधते हैं, उन रजकणों को जड़कर्म कहा जाता है। वह अजीवतत्त्व। आहाहा! कहो, ...भाई!

इसमें सब नौ तत्त्व आ गये। यह तो ऐसी शैली वीतराग की है। शुद्ध वस्तु जो चिदानन्द सूर्य प्रभु, वह जीव शुद्धात्मा है वह। उसका अनुभव अन्दर में पुण्य-पाप के विकल्प बिना अन्तर के आनन्द का अनुभव, आनन्द का वेदन, शान्ति का वेदन, रागरहित पर्याय अनुभव की होना, उसका नाम संवर और निर्जरा। ऐसी अनुभूति से विपरीत, उसे प्रगट न करके उससे विपरीत पुण्य और पाप और परलक्ष्य करके... ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह मिथ्यात्व और शुभाशुभ में रंगा हुआ भाव, वह आस्रवतत्त्व । यह उससे बँधा हुआ जड़ तत्त्व, वह अजीवतत्त्व। इसमें सुनने में भी एकाग्रता (चाहिए), वरना समझ में

आये ऐसा नहीं यह। वह एक वार्ता, कथा हो तो दिये रखे कि राजा हो गया और रानी हो गयी, जाओ। समझ में आया इसमें?

एक शब्द में रखा देखो! शुद्धात्मा एक द्रव्य, अनुभूति उसका—मोक्ष का मार्ग निर्मल सम्यग्दर्शन आदि, उससे भिन्न विषय कषाय अर्थात् मिथ्यात्व राग-द्वेष जो कषाय, उससे रंगा हुआ जीव ऐसा **आत्मज्ञान के अभाव से...** उसे भगवान आत्मा का ज्ञान नहीं होता कि मैं आत्मा आनन्द और शुद्ध हूँ। उसके अभाव से अर्थात् मिथ्यात्वभाव से **उपार्जन किये हुए मोहकर्म के उदयकर परिणत हुए, ऐसे रागी, द्वेषी, मोही, संसारी जीवों के कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गलस्कन्ध हैं,...** कर्मयोग्य रजकण स्कन्ध पिण्ड जड़। **वे ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्मरूप होकर परिणमते हैं।** उसे भगवान ने कर्म कहा है। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है न, भाई! अर्थात् परमात्मा अर्थात् उसका मूल स्वरूप ही द्रव्यस्वरूप परमात्मा है। ऐसा परम स्वरूप अनन्त गुण का धनी, उसकी दृष्टि सम्यक् अनुभव दृष्टि, बिना अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान ऐसे संवर बिना आत्मा के भान बिना, संवर बिना जो पर के लक्ष्य से उपार्जित पुण्य और पाप के मिथ्यात्वसहित का भाव। क्योंकि यह श्रद्धा में नहीं लिया तो राग-द्वेष आदि यह मैं हूँ, ऐसा माना हुआ पुण्य-पाप भाववाला मिथ्यात्व भाव, उससे रंगा हुआ जीव, उसे नये कर्म बँधे, वह अजीवतत्त्व बँधा। कहो, भीखाभाई! अरे! उसे अपनी बात क्या है, यह कभी सुनी नहीं। यह पाँच-पचास वर्ष का जीवन मनुष्य का अनन्त काल में से निकला मुश्किल से। निगोद में से, आलू में से, शक्करकन्द में से मुश्किल-मुश्किल से (निकला), उसमें यह सत्य बात क्या सुनने को मिली नहीं। आहाहा! वापस वह की वह चौरासी की घानी। यह पाँच, पचास वर्ष जिन्दगी कितनी? अनन्त-अनन्त काल। आहाहा! कहाँ निगोद, कहाँ शक्करकन्द, कहाँ आलू... अनन्त में भटका। भटकते-भटकते मुश्किल से मनुष्यदेह (मिला)। उसमें वीतराग का कहा हुआ तत्त्व सत्य जहाँ सुनने को मिले नहीं। त्रिकमभाई! उसे समझे कब? उसका निस्तार कब आवे? भाई! बापू! यह वहाँ कोई सहायता दे, ऐसा नहीं। आहाहा! क्या हो? कौन किसका बेली, कौन किसका...? भगवान सर्वज्ञ प्रभु परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भाई! तू तो अनन्त गुण का धनी आनन्द शुद्ध चैतन्य है न, भाई! हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रद्धा, ज्ञान इसका करना यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भी तुमको ख्याल आता है या नहीं? यह ख्याल आता है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु... उसका यह शब्दार्थ है,....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : घर की यह वस्तु ही नहीं, बात में ही सब अन्तर है। वह सब बनावटी बात है। परन्तु खबर है न सब उसमें। कुछ बात की खबर नहीं होती, भाई! वीतराग ने कहे हुए तत्त्व की कुछ (खबर नहीं होती)। वह तो गप्प गोला (छोड़े) और सामने सुननेवाले जी महाराज (करे)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने ही अर्थ करते हैं घर के। खबर नहीं कहाँ से करे वे। यहाँ तो कहते हैं... सुनो!

यह अन्तिम योगफल अब। एक थोड़ा शब्द है न। चैतन्य शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, यह उसका अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान उसे श्रद्धा करना, मानना और अनुभव करना चाहिए। इसका नाम धर्म, बाकी कोई क्रियाकाण्ड, दया-दान के विकल्प, वे धर्म-बर्म नहीं। ऐसे धर्म के भान बिना पर को विषय करके मिथ्याभाव से, यह मैं ठीक करता हूँ पर का विषय; विषय अर्थात् लक्ष्य ठीक करूँ, ऐसे मिथ्यात्वभाव सहित जो पुण्य-पाप के भाव, उनसे जीव रंगा हुआ नये रजकण कर्म को बाँधता है, उससे चार गति में भटकता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १३, रविवार, दिनांक - ०७-११-१९६५
गाथा - ६२ - ६३, प्रवचन - ४४

परमात्मप्रकाश ६२वीं गाथा, पहले भाग की। भावार्थ लेते हैं देखो, फिर से। यहाँ आत्मा को कर्म के रजकणों का बन्धन कैसे है, यह बात सिद्ध करनी है। देखो! यह सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्व किस प्रकार से है, यह एक शैली में सब बातें सिद्ध करते जाते हैं। समझ में आया? जैसा जड़ का स्वरूप, विकार का स्वरूप, धर्म का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप किस प्रकार से है, वह एक-एक बोल में सब सिद्ध करते जाते हैं। क्या कहते हैं? देखो!

भावार्थ :- शुद्ध आत्मा की... पहला शब्द है। शुद्ध आत्मा अर्थात् द्रव्य लिया वस्तु। शुद्ध आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उसकी अनुभूति, उसका जो अनुभव अर्थात् पर्याय ली। समझ में आया? शुद्ध आत्मा द्रव्यरूप से वस्तु, उसका अनुभव—उस शुद्ध आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की अनुभूति, उसे यहाँ संवर-निर्जरातत्त्व की पर्याय डाली। समझ में आया? **अनुभूति से भिन्न...** ऐसी पर्याय से भिन्न जाति। **विषय-कषाय उनसे रंगे हुए...** आत्मा में... देखो! यह तीन बोल सिद्ध किये। एक तो वस्तु शुद्ध आत्मा, उसका अनुभव श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति, जैसा स्वरूप है, वैसा अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान अर्थात् कि संवर और निर्जरा। उससे विरुद्ध जो विषयकषाय के भाव अर्थात् आस्रव और भावबन्ध सिद्ध किया। समझ में आया? ऐसी चीज़ अन्यत्र नहीं होती। पर्याय और द्रव्य और विपरीत और अविपरीत, यह सब वास्तविक तत्त्व क्या है, ऐसे तत्त्व की साबिती करने से कर्म का बन्धन कैसे था, ऐसा सिद्ध करते जाते हैं। समझ में आया?

विषय-कषाय उनसे रंगे हुए... अर्थात् कि भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द चैतन्यसूर्य, आत्मा भगवान सूर्य स्वभाव है आत्मा का। उसका अनुभव चाहिए, उस अनुभव के अभाव में विषय और कषाय अर्थात् परसन्मुख के लक्ष्य से, पर का विषय लक्ष्य बनाकर

और मिथ्यात्व भाव उत्पन्न करके और उसके साथ राग-द्वेष के भाव हुए, वे आस्रव और बन्धभाव, बन्धभाव हुआ। उस आस्रव और बन्धभाव से रंगा हुआ शुद्ध आत्मा पर्याय में। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **आत्मज्ञान के अभाव से उपार्जन किये...** फिर से बात ली। आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योति है, चैतन्यसूर्य आत्मा प्रकाश की मूर्ति है। ऐसा जो भगवान शुद्ध आत्मा अपना, उसके ज्ञान का अभाव, उसके ज्ञान का अभाव। शुद्ध चैतन्यस्वरूप का जो ज्ञान चाहिए अन्तर्मुख, उसका अभाव, उससे उपार्जन किये—उससे उत्पन्न किये मोहकर्म। उससे उपार्जन हुआ जड़कर्म अर्थात् मोहकर्म। यह जड़—अजीव सिद्ध किया। मोहकर्म अजीव सिद्ध किया और भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति का आत्मज्ञान का अभाव। पहले अनुभूति से विपरीत कहा था। ऐसे आत्मज्ञान जो आत्म वस्तु शुद्ध चिदानन्द उसके ज्ञान के अभाव में उपार्जन अर्थात् उत्पन्न किये मोहकर्म, उससे उदयकर, उस कर्म के उदयकर परिणत हुए। और कर्म के निमित्त में परिणमनेवाला जीव आत्मज्ञान के अभाव में मोह और राग-द्वेषरूप हुआ।

ऐसे रागी, द्वेषी, मोही, संसारी जीवों के... इतनी बात की। शशीभाई! देखो! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होती। ऐसे तत्त्व की स्थिति का विपरीतपना या अविपरीतपना या बन्धन और उसके—कर्म के रजकण, उसके फल में जुड़ान और उसमें होता राग-द्वेष, मोह भाव। ऐसे जीवों को, **कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गलस्कन्ध हैं,...** ऐसे जीव को परमाणु में 'कर्म होने के योग्य' शब्द प्रयोग किया है। देखा? कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गलस्कन्ध हैं, वे जगत के पुद्गलस्कन्ध अजीव सिद्ध किये, भिन्न। **वे ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्मरूप होकर परिणमते हैं।** देखो! भाषा देखो! समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का उसका रूप है वस्तु। चैतन्यज्योति पदार्थ की अनुभूति से विपरीत विषय-कषाय के परिणाम से रंगा हुआ भाव। समझ में आया? उससे आत्मज्ञान के अभाव में उत्पन्न किया हुआ मोहकर्म जड़। भाव निमित्त और जड़। उसके निमित्त में और स्वयं जुड़ा और मोह राग-द्वेष के परिणाम में परिणमा। समझ में आया? ऐसे जीव को कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलस्कन्ध वापस ऐसा लिया। वह पुद्गलस्कन्ध वे ऐसे भिन्न परिणमे। पुद्गलस्कन्ध लिये। यहाँ

राग-द्वेष और मोहरूप हुआ जीव, तब उसके कर्मयोग्य स्कन्ध थे परमाणु के पिण्ड, वे आठ प्रकार के कर्मरूप होकर, आठ कर्म की अवस्थारूप होकर जड़कर्म हुए हैं, आत्मा ने उन्हें किया नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया इसमें?

वस्तु शुद्ध आत्मा सिद्ध किया। एक ओर कर्म होने के योग्य पुद्‌गल अजीव सिद्ध किये। यहाँ आत्मा के भानरहित विषय-कषाय से रंगा हुआ जीव... समझ में आया? उसके अपने ज्ञान के अभाव में उपार्जन किया हुआ मोह। वापस वहाँ अकेला मोह ही लिया है, भाई! क्योंकि मोह में जुड़ा उससे आठ कर्म बँधते हैं न, ऐसा लिया। वापस अन्तर कैसे पड़ा? कि आत्मज्ञान के अभाव में उपरान्त मोहकर्म लिया। इसलिए लिया। समझ में आया?

मोहकर्म के उदयकर परिणत हुए,... कौन? ऐसा रागी, द्वेषी, मोही, संसारी जीव। राग और द्वेष और पर में सुख—ऐसी मिथ्या मान्यता। अपना आनन्द अपने में है। सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द मूर्ति आत्मा है। उसके बदले मोहकर्म में परिणत हुआ पर में सुख है, मुझे पर में आनन्द है, ऐसा मिथ्यात्वभाव और इष्ट-अनिष्ट में राग और द्वेष, उसरूप संसारी जीवों को कर्मवर्गणा योग्य जड़ जो है, वह ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म प्रकार से, परिणमे कर्म परिणमे हैं। कितनी बात सिद्ध करनी है। बल्लभदासभाई! नयी बात। रविवार आवे, तब नयी-नयी बात आती है। कहो, समझ में आया? इतनी बात कल आयी थी, यहाँ तक कल (आया था)। ... फिर तब नया कुछ आवे न। समझ में आया इसमें? यह तो वे थे न, ... कुछ भान नहीं होता। समझ नहीं होती, उल्टी रुढ़ि सब।

कहते हैं, इस प्रकार से कर्म के रजकण जड़ बँधे हुए, परिणमित हैं, ऐसी दो बातें की। एक, एक ओर आत्मा राग-द्वेष-मोहरूप परिणमा है और अज्ञान से उपार्जित मोह, उसमें जुड़ने से राग-द्वेष, मोहरूप हुआ है। यह हुई है अवस्था उसमें अपनी। समझ में आया? अब यहाँ कर्म के स्कन्ध होने के, कर्म होने के योग्य परमाणु हैं। उन परमाणुओं का पिण्ड कर्मरूप होता है, ऐसा दो का परिणमन ऐसे सिद्ध किया। परिणमना अर्थात् होना, अवस्था का होना। देखो, ऐसी अवस्था का होना, वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात पूरी होती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जैसे तेल से शरीर चिकना होता है,... तेल से शरीर चिकना होता है। **और धूलि लगकर मैलरूप होके परिणमती है,...** देखो भाषा। **जैसे तेल से शरीर चिकना होता है, और धूलि लगकर मैलरूप होकर परिणमती है,...** ऐसा वापस। वह धूल मैलरूप से होकर परिणमती है, वहाँ। यों ही धूल हो यहाँ शरीर को तेल चिपटा, वह धूल वापस मैल होकर परिणमती है तब उसे चिपटती है। समझ में आया? **वैसे ही...** तत्प्रमाण भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु अखण्डानन्द अनादि-अनन्त चैतन्यज्योति वस्तु पदार्थ है आत्मा। अकृत्रिम, अकृत—नाश न हो ऐसा और अनन्त-अनन्त अन्दर ज्ञान, चैतन्य का नूर ऐसे प्रकाश से भरपूर आत्मस्वभाव है।

वैसे ही रागी, द्वेषी, मोही, जीवों के... ऐसे जीव को जो राग, द्वेष और पर में आनन्द है, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि **जीवों के विषय-कषाय-दशा में...** उनके विषय-कषाय अर्थात् पर के प्रति लक्ष्य के राग और द्वेष के लक्ष्य के भाव में। **पुद्गलवर्गणा कर्मरूप होकर परिणमती हैं।** जैसे उस शरीर को तेल चिपकने से धूल मैल होकर चिपकती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति के अभान में राग-द्वेष और मोह की चिकनाहट ऐसे विकारी भाव को करने से वे पुद्गल जो पड़े हैं, वे कर्मरूप अवस्था धारण करके चिपकते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! ध्यान रखते हैं बराबर। यह ध्यान रखे तो भूल जाये, शरीर में क्या है वह भूल जाये। कहो, समझ में आया इसमें?

जो कर्मों का उपार्जन करते हैं,... क्या कहते हैं अब? जो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द, शुद्ध चिदानन्दमूर्ति जो विकाररूप परिणमकर कर्म को उपार्जित करती है, वही आत्मा। अब ऐसा लेना है वापस। शुद्ध ज्ञानघन आत्मा, आनन्द का कन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसका आनन्द उसमें है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ आत्मा है। ऐसा आत्मा जो अपने को भूलकर विकाररूप परिणमता और कर्मरूप परिणमते पुद्गल, वही आत्मा, वही परमात्मा, वही आत्मा। **वही जब वीतराग निर्विकल्पसमाधि के समय...** देखो, भाषा! काल में है न? समाधि के काल में... अन्दर है। यह तो अभी दो-तीन बोल निकाले हैं, भाई! एक तो १२वीं गाथा में आता है न? **'तदात्वे'।** वह यह सब शैली उसकी ली है। १४३ में आता

है, उस काल में, उस काल में १४३ में उस काल में अनुभव काल में, ऐसा पाठ आता है या नहीं? और १४४ में उस काल में वह परमात्मा और श्रद्धा, दृश्यमान ज्ञान में आता है। १४४ में। ...१२, १३, १४३, १४४। यह सब शैली आचार्यों की, उस काल, वस्तु ऐसी है। समझ में आया? अर्थात् क्या? कि आत्मा अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप अखण्डानन्द आत्मद्रव्य वस्तु है। उसे भूलकर उस काल में विकार के परिणाम में रंगा हुआ उस काल में पुद्गल के कर्म स्कन्ध हैं, उस-उस काल में कर्मरूप परिणमते हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार यह आत्मा, वही आत्मा उल्टा पड़ा था जो अज्ञान में, राग-द्वेष और मोह में, पर में आनन्द है, पर मुझे ठीक है, प्रतिकूल वह ठीक नहीं—ऐसी राग-द्वेष और मिथ्यात्व की वृत्ति उत्पन्न करनेवाला, परिणमनेवाला है और उसके कारण से स्कन्ध कर्मरूप परिणमते, उन्हें उपार्जन किया, ऐसा निमित्त से कहा जाता है। **जो कर्मों का उपार्जन करते हैं, वही जब वीतराग निर्विकल्पसमाधि के समय...** अपने स्वरूप में अन्तर दृष्टि देने के काल में। समझ में आया? पुण्य-पाप का भाव, विकार से रहित शुद्ध चिदानन्दमूर्ति परम स्वरूप आनन्द हूँ। ऐसी अन्तर में दृष्टि के निर्विकल्प समाधि, शान्ति के काल में वीतराग—रागरहित आत्मा ऐसी रागरहित दृष्टि-ज्ञान करके निर्विकल्प समाधि के काल में, **कर्मों का क्षय करते हैं,...** पहले अज्ञानभाव से उपार्जित कर्म अज्ञान और विकार से रंगा हुआ वह कर्म स्वयं परिणमता है। वही आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव का अनुभव करने से, निर्विकल्प शान्ति की दृष्टि स्थिरता आदि करने से जो बँधते थे, वे छूट जाते हैं। यहाँ से विकार छूट जाता है तो वहाँ कर्म भी छूट जाते हैं, एक काल में। समझ में आया? कहो, प्रवीणभाई! समझ में आया यह? राम... राम... राम... राम... करे, उसमें यह कुछ बैठे अन्दर?

वीतराग निर्विकल्प शान्ति। अर्थात् क्या कहा? कि जैसा भगवान आत्मा है, उससे विरुद्ध भाव पुण्य और पाप के विषय-कषाय के मिथ्याभाव उत्पन्न किये, वह तो आकुलता है और आकुलता से परिणमा तो पुद्गल कर्मरूप परिणमे। वही आत्मा आकुलता को छोड़कर अपने शुद्धस्वभाव की ओर दृष्टि करके निराकुलता की शान्तिरूप से परिणमे, उसी काल में कर्म बँधे हुए, वे क्षय हो जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए परमाणु पुण्य के थे, वे बदल गये, यहाँ विकाररूप परिणमा था, हुआ था, वह

निर्विकारी वस्तु के अन्तर दृष्टि के अन्तर आश्रय से निर्विकार निराकुलरूप से परिणमा, तब कर्म का परिणमन भी टलकर पुद्गलरूप हो गया। कहो, समझ में आया इसमें? ओहोहो!

तब आराधने योग्य हैं,... यह भगवान आत्मा ज्ञानानन्द की मूर्ति चैतन्यसूर्य के ऊपर दृष्टि देकर एकाग्र हो, तब वह आत्मा सेवन योग्य और आराधनेयोग्य होता है। समझ में आया? ६२वीं हुई। थोड़ा लिया न, और थोड़ा फिर से दूसरा आया। यह तो फिरते... फिरते...

★ ★ ★

गाथा - ६३

इस प्रकार कर्मस्वरूप के कथन की मुख्यता से चार दोहे कहे। आगे पाँच इन्द्रिय, मन, समस्त विभाव और चार गति के दुःख, ये सब शुद्ध निश्चयनयकर कर्म से उपजे हैं,... देखो! ध्यान रखना। भगवान सच्चिदानन्द—सत् सत्-शाश्वत् ज्ञान, चिद्-ज्ञान और आनन्द का कन्द आत्मा तो है वस्तु। समझ में आया? वह कैसा है? वस्तु से देखें, शुद्ध निश्चय दृष्टि से देखें वस्तु ज्ञानमूर्ति अनाकुल आनन्द का कन्द तत्त्व द्रव्य, द्रव्य-वस्तु तो, वे पाँच इन्द्रियाँ जो है, वे उसने उपार्जन नहीं की, कर्म से हुई है, वस्तु के स्वभाव में वह नहीं। मन, वह कर्म से हुआ है; विभाव कर्म से, चार गति के दुःख, वह सब। आत्मा अखण्ड आनन्द का कन्द शुद्ध चिदानन्दमूर्ति की दृष्टि से और उसके ज्ञान से तो कर्म होते नहीं और कर्म बिना यह इन्द्रियाँ आदि मिलती नहीं। ध्यान रखना, वापस कितना सिद्ध करते जाते हैं!

यह भगवान आत्मा वस्तुरूप से तो निर्मलानन्द शान्तरस की, जैसे बर्फ की शिला होती है, शिला क्या कहते हैं? पाट, यह बर्फ की शीलत पाट। उसी प्रकार आत्मा अकेला अविकारी—कषायरहित शीतल ठण्डा आत्मा शरीर प्रमाण शीतल पाट है अन्दर में। हिम्मतभाई! अन्दर शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... अर्थात् अकषायस्वभाव शीतल अर्थात्, अर्थात् कि वीतरागस्वभाव। शीतल—ठण्डा

अकषायस्वभाव से भरपूर भगवान, ऐसे भगवान आत्मा से मन और इन्द्रिय होते नहीं। ऐसे स्वभाव से कैसे हों? समझ में आया?

ऐसा भगवान वस्तुरूप से तो चिदानन्द शीतल चन्दन मूर्ति। इसी प्रकार यह आत्मा देह से भिन्न, यह (शरीर) तो मिट्टी-जड़ है, उसके प्रमाण में शीतल, शीतल ठण्डा अविकारी 'वीतराग चिदानन्द' शब्द प्रयोग किया है शास्त्र में। वीतराग अर्थात् शान्त चिदानन्द ऐसा प्रयोग किया है। अर्थात् चारित्र और शान्त इकट्ठा लिया न भाई! पहले आ गया है न? आ गया था पहले। वीतराग चिदानन्द, पहले आ गया था वीतराग चिदानन्द। वह यहाँ आया यह ६० में। **यह जीव शुद्ध निश्चयनयकर वीतराग चिदानन्द स्वभाव है,...** ६० के भावार्थ की पहली लाईन। ६०। इन शब्दों में शब्द है, उसका वाच्य बताते हैं, ऐसे वाच्य। जैसे शक्कर है, वह शक्कर शब्द शक्कर की डली को बताता है। शक्कर शब्द है, वह शक्कर की डली को (बताता है) कि यह शक्कर। उसी प्रकार यह वीतराग चिदानन्द शब्द है। वह वाच्य क्या है? कि आत्मा। कैसा है? कि अकषाय शीतल वीतराग ज्ञानानन्द वस्तु का पिण्ड आत्मा है। समझ में आया? खबर नहीं होती। यहाँ तो राग और स्त्री, पुत्र और पुण्य-पाप, धूल और धाणी। यह हमने राग किया और द्वेष किया। यह इन्द्रियाँ मिट्टी जड़ है यह तो। यह तो धूल है, अजीव है। यह आत्मा है?

यहाँ कहते हैं, ऐसा जो भगवान आत्मा सत् शुद्ध निश्चयनय से देखें तो उसमें पाँच इन्द्रियाँ और मन तथा विभावभाव, सब स्वभाव से उत्पन्न हुए नहीं। विभाव किया हुआ, उससे (उत्पन्न) कर्म और कर्म से वह विभाव हुआ है, स्वभाव में से हुआ नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। गजब बात, भाई! समझ में आया? ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य में से तो क्या हो? निर्मल शान्ति और आनन्द की दशा प्रगट होती है। समझ में आया? यह आत्मा उसे कहते हैं (कि) देह के रजकणों की मिट्टी से भिन्न पूरे शरीर में व्यापक। चिद्घन-ज्ञानघन, आनन्दघन वस्तु वह है। ऐसा शुद्ध निश्चय सत् से उसे देखें तो उससे विकार होता है और इन्द्रियाँ, मन होता है, ऐसा है नहीं। इससे द्रव्यस्वभाव से इन्द्रियाँ, मन नहीं होता, ऐसा बताकर कर्म के कारण से इन्द्रियाँ और मन और विभाव हुए, ऐसा बताना है। आहाहा! यह कथन की पद्धति तो देखो परमात्मप्रकाश की! यह समयसार की सब शैली ऐसी ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कौन, इन्द्रियाँ थी कब उसे? इन इन्द्रियों का वह तो जाननेवाला है। यह आँख है, नाक है, कौन जानता है? वे जानते हैं? उसे भान है उस कोड़ा को? जाननेवाले को खबर है कि यह नाक कहलाता है, आँख कहलाती है, मुख कहलाता है, होंठ कहलाता है। यह तो जाननेवाला अन्दर चैतन्य भिन्न है।

सबको एकरूप जाननेवाला। एक अर्थात्? कि यह नाक है ऐसा जाना, आँख है ऐसा जाना, होंठ है ऐसा जाना, यह हाथ है ऐसा जाना। यह जानने का, जानने का तो एकरूप रहा। यह भिन्न-भिन्न अवयव हुए। समझ में आया इसमें? ख्याल है या नहीं? ज्ञान है या नहीं? यहाँ ज्ञान है या नहीं? पेट में कुछ दर्द हो तो वहाँ भी ज्ञान होता है या नहीं? वह ज्ञान है या नहीं? वह ज्ञान अर्थात् पूरा आत्मा। सर्वत्र जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... व्यापक चैतन्य, वह आत्मा है। अरे! कभी देखने का विचार भी किया नहीं कि मैं कौन हूँ। सिरपच्ची करके मर गया अनन्त काल से। पोपटभाई!

कहते हैं, ऐसे देखो तो जहाँ देखो वहाँ वह ज्ञानमय चैतन्य है। वह ज्ञानमय अर्थात् शुद्ध है। अर्थात् कि उसका सत्यस्वरूप वह शुद्ध ज्ञानमय है। ऐसा शुद्ध ज्ञानमय कहो या शुद्ध आनन्द कहो या शुद्धस्वरूप कहो। ऐसा भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव से कर्म कैसे उपार्जित करे? शुद्धस्वभाव से विभाव कैसे करे? शुद्धस्वभाव से इन्द्रियाँ कैसे मिले? ऐसे शुद्धस्वभाव से मन कैसे मिले? ऐसे शुद्धस्वभाव से संकल्प-विकल्प की जाल कैसे उत्पन्न हो? इसलिए कहते हैं कि वे सब आत्मद्रव्य से उत्पन्न नहीं हुए, परन्तु कर्म जड़ जो हैं, उनके संग में उस कर्म से यह सब पाँच इन्द्रिय, मन आदि हुए। यह बात करते हैं, देखो अब। **जीव के नहीं हैं, यह अभिप्राय मन में रखकर दोहा-सूत्र कहते हैं**—६३।

६३) पंच वि इंदिय अण्णु मणु अण्णु वि सयल-विभाव।
जीवहँ कम्मइँ जणिय जिय अण्णु वि चउगइ-ताव॥ ६३ ॥

पञ्चापि इन्द्रियाणि अन्यत् मनः अन्यदपि सकलविभावः।
जीवानां कर्मणा जनिताः जीव अन्यदपि चतुर्गतितापाः॥ ६३ ॥

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने दिव्यध्वनि द्वारा जो कहा, वह सन्त यह वर्तमान भाषा से कहते हैं। अरे! भगवान आत्मा... देखो! कहे क्या कहते हैं? देखो!

अन्वयार्थ :- पाँचों ही इन्द्रियाँ... देखो! सिद्ध करते जाते हैं, भाई! यह पाँच इन्द्रियाँ हैं, ऐसा सिद्ध करते जाते हैं। है, और पाँच है, पाँच है वह जड़। समझ में आया? कान, आँख, नाक, जीभ और स्पर्श। पाँच हुई न? स्पर्श, स्पर्श। पूरा सब स्पर्श है और यह चार है। जीभ—रस, स्पर्श, गन्ध, रूप, शब्द सुनने का यह पाँच इन्द्रियाँ यह सब। यह है, ऐसा सिद्ध करते हैं वापस। शरीर के अवयव पाँच इन्द्रियरूप हुए हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। उनसे भगवान भिन्न है, भगवान से इन्द्रियाँ भिन्न हैं। पाँचों ही इन्द्रियाँ भिन्न हैं। चैतन्यमूर्ति प्रभु से यह जड़ इन्द्रियाँ तो भिन्न हैं।

मन और रागादि सब विभाव परिणाम अन्य हैं,... शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति प्रभु से इन्द्रियाँ, मन और चार गति के दु:ख तथा रागादि भाव, चार बोल लिये, अन्य है। **हे जीव! ये सब जीवों के कर्मकर उपजे हैं, जीव से भिन्न हैं, ऐसा जान।** कर्मकर उपार्जित का अर्थ?—तूने भूल की, वह भूल इसका (आत्मा का) स्वरूप नहीं, ऐसा बतलाना है, भाई! आहाहा! भूल जो हुई, वह कहीं उसका स्वरूप है? भूल ही तेरा स्वरूप नहीं, इसलिए भूल ही एक कर्म हुआ, विकार हुआ। और भूल के निमित्त से हुआ कर्म, उस कर्म से यह सब हुआ। तेरे भूलरहित स्वभाव में वह है नहीं। आहाहा! भूल ही स्वयं ने की, वही कर्म हुआ यहाँ तो कहते हैं। वस्तु में नहीं और खड़ा किया, ऐसा कहते हैं। इसलिए उसे ही कर्म कहा। वह भावकर्म, जड़कर्म सब वह। कहो, आहाहा!

मुमुक्षु : .... छह काय से....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय से बतलाया नहीं, आत्मा के ज्ञान से बतलाया है। वह छह काय की दया में आवे न। हिम्मतभाई! ... वह तो सब व्यवहार की बातें।

भगवान आत्मा सब शरीर में विराजमान शुद्ध चैतन्य की आनन्द की मूर्ति है, उसे आत्मा कहते हैं। अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प उठे, वह आत्मा है? वह तो आस्रवतत्त्व है। वह आस्रवतत्त्व हुआ। यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन, वह तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व वह भिन्न है, पुण्य-पाप के भाव होना, वह भिन्न है और उससे भगवान भिन्न है।

आहाहा! इस प्रकार से अस्तित्व सिद्ध करते जाते हैं और एक-दूसरे से अस्ति भिन्न है, ऐसा सिद्ध करते हैं। सन्तों की, सर्वज्ञ की धारा में आयी हुई बात है। आहाहा! सब अस्तित्व को सिद्ध करने की पद्धति और वह अस्तित्व वापस उसके (-आत्मा के) स्वरूप में नहीं रागादि और यह (शरीर)। समझ में आया?

भगवान आत्मा... यह जीव ने सब किया नहीं, कर्म से उपजा है। क्योंकि वह जीव के स्वभाव से भिन्न भाव है। इन्द्रियाँ, मन, राग, द्वेष, विकार और चार गति के दुःख। भगवान आनन्दमूर्ति से वे भिन्न हैं। इसलिए वे आनन्द के स्वभाव से हुए नहीं हैं। उसकी भूल से हुए हैं। भूल तो विकार हुआ, वह तो कर्म हुआ और दूसरी चीज़ हो गयी। समझ में आया? ऐ... पोपटभाई! आहाहा! स्वतन्त्र भूल है यह, यह अवस्था है, यह स्वभाव में नहीं। मिथ्यात्व भाव स्वभाव में नहीं। यह तो वीतराग के खेल हैं, भाई! आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्व (का) हू-ब-हू चितार सन्त देते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख, किसका सुख परन्तु? चार गति में सुख था कब? धूल में। यह चिल्लाहट मचाते हैं, देखो न। लाखों रुपये हैं तो भी चिल्लाहट मचाते हैं अभी। दुःखी हैं, दुःखी हैं। ऐ.. जेचन्दभाई! यह शरीर अभी यह बड़े राजा के कुँवर जैसा रूपवान है। तो भी कहे कि दुःखी हैं। धूल दुःखी है? कौन कहे दुःखी उसे? ऐसे बैठे हैं। यह कहते हैं कि खड़ी की। तुझमें नहीं और खड़ा किया है, ऐसा कहते हैं। तुझमें तो आनन्द है, तू तो ज्ञानानन्द आत्मा है। वह भूल खड़ी की, वह तेरा स्वरूप नहीं। वह स्वरूप से भी खड़ी हुई नहीं। आहाहा! कर्म अर्थात् क्या? कि, तूने भूल की, वह भूल कर्म कहलाती है। वह कर्म इस वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानानन्द प्रभु चैतन्य शीतल, शीतल चन्दन की गाँठ ऐसा भगवान आत्मा, उसमें उसके कारण से क्या विकार? उसके कारण से इन्द्रिय मन? उसके कारण से यह? अरे.. चल, भगवान! तू तो उनसे भिन्न है। ऐसे भाव हुए न, वे भाव भी तुझे स्वरूप में से हुए नहीं। पर्याय में खड़ा किया हुआ भ्रम खड़ा किया है, वह उसमें आनन्द है, वह उसमें सुख है, वह उसमें मैं हूँ, उस राग में मैं हूँ... ऐसा भ्रम तूने खड़ा किया है। उस

भ्रम के फलरूप से कर्म और कर्मफलरूप से यह सब होता है, तेरे स्वभाव से है नहीं, ऐसा कहते हैं। शशीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे भान कहाँ है? परन्तु अभी आनन्द है कहाँ, यह खबर नहीं। भान कहाँ है? उसे जाने कि, यह स्त्री में ऐसा है, शरीर में ऐसा है, पैसे में, धूल में, इज्जत में कुछ है... लो! समझ में आया? छोटे-छोटे लड़कों को ऐसा है, लो! सवेरे एक लड़का कहता था। पुण्य के कारण से मैं जैन लड़का हुआ परन्तु मेरा शरीर गोरा क्यों नहीं हुआ? लो, ऐसा कहता था। लोगों को तो ऐसे यह अच्छा लगता है न। परन्तु आत्मा गोरा रूपवान चिदानन्दमूर्ति अखण्ड आनन्द अनाकुल आनन्दकन्द है, वह क्यों नहीं हुआ? ऐसे कहाँ उसे संस्कार है? जेचन्दभाई! कौन तुमको इसमें दुःखी कहे? ऐसे... ऐसे करके बैठे हैं वहाँ।... भ्रमणा खड़ी की है, कहते हैं। किसने? स्वयं ने। यह भ्रमणा तू नहीं, ऐसा कहते हैं। भ्रमणा खड़ी की, (परन्तु वह) तू नहीं, तू हो तो भ्रमणा जाये नहीं कभी। भ्रमणा खड़ी की, मुफ्त का भाव खड़ा किया है। मोह कहलाता है न, भाई! उसका नाम? मोह अर्थात् निष्फल, निष्फल, निकम्मा, जिसमें आत्मा में फल न आवे, ऐसी भ्रान्ति खड़ी की मुफ्त का विकल्प करके खड़ी की है। निष्फल, मोह निष्फल, वस्तु सफल है। अखण्डानन्द चिदानन्द प्रभु की दृष्टि करने से उसे आनन्द आवे, ऐसा आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान दुःखस्वरूप नहीं। आत्मा दुःखस्वरूप? दुःख तो विकृत है। दुःख कहते ही विकृत है। आनन्द कहते अतीन्द्रिय स्वरूप स्वस्वरूप है। यह संसार की कल्पना यहाँ की है कि यह पैसा, स्त्री और पुत्र, वह सुख, वह तो एक दुःख की कल्पना है। वह सुख है ही नहीं। मूढ़ ने कल्पना में मैं सुखी, ऐसा माना है। सुख तो अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द पिण्ड भगवान पड़ा है। समझ में आया? उसके भान बिना किये गये भाव वे स्वभाव से नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। वे सब कर्म से हुए भाव हैं, लो! ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! दो द्रव्य लिये यहाँ तो। एक ओर जीवद्रव्य शुद्ध, एक ओर कर्मद्रव्य, वह सब कर्म। सब पर है, तुझसे है नहीं। आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु : मीठा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठा चढ़ गया है जहर का, मिथ्यात्व की मदिरा पी है। शरीर ठीक तो ठीक। 'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें' मूढ़ है। ... शरीर तो मिट्टी, धूल है यह तो। उसमें तो ईयळ पड़ेंगी, एक बार राख होगी श्मशान में, वह कहाँ आत्मा था। चिदानन्द अरूपी ज्ञानघन तो अनादि-अनन्त सत् शाश्वत् वस्तु है अन्दर। समझ में आया? आहा! ऐसा भगवान... कहते हैं... समझ में आया? उससे यह सब भिन्न है। कौन? चार बातें लीं—इन्द्रिय, मन, विभाव, चार गति के दु:ख। चार को भिन्न तीन तीन बाद में वर्णन करेंगे। आचार्य की शैली वीतराग के तत्त्वों को सिद्ध करते-करते सब सिद्ध करते जाते हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप अन्यत्र नहीं हो सकता। समझ में आया? अब कहते हैं, देखो! अब इन्द्रिय की बात करते हुए पहले यह शुरु किया।

भावार्थ :- इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा से... पहले से शुरु किया, आत्मा कैसा है? कि वह इन्द्रियरहित है, इस जड़ से रहित है, वह तो भिन्न चीज़ है। शुद्ध चैतन्य द्रव्य वस्तु। भगवान निर्मलानन्द 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। जैसे सिद्ध भगवान हो गये 'णमो सिद्धाणं' वैसा ही यह आत्मा स्वरूप से तो ऐसा ही है। आहाहा! अरे! परन्तु इसकी खबर नहीं होती और जगत का खबरदार। इसकी इसे खबर नहीं होती और जगत का खबरदार। खबरदार ऐसे दौड़ा करे चार गति के भटकने में। दुनिया के चतुर दुनिया में गहरे भटकने के लिये। चैतन्य की चतुराई वस्तु भगवान आत्मा कौन हूँ? कि इन्द्रिय से रहित भगवान आत्मा है अभी, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ... दिखाई है न। देखो न यह। आँखें किसकी लाना देखनेवाले की? देखना है, इस आँख से या उसकी आँख से? उसकी आँख से या उसकी ज्ञान आँख से? यह तो जड़, मिट्टी, धूल है। यह कोडा तो राख का बना हुआ है। दाल, भात, सब्जी यहाँ एक के बाद एक रखे, तब बना ऐसा सब। वह कहाँ आत्मा था? आत्मा अरूपी—रूपरहित चीज़ अन्दर इन्द्रियरहित चीज़ सच्चिदानन्द अरूपी तत्त्व है वह तो। समझ में आया?

इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा से... वह इससे विपरीत वापस। तीन पट्टी बात करते हैं न। शुद्धात्मा कैसा है? कि, इन्द्रियरहित। और ऐसा जो शुद्धात्मा उससे उल्टी **स्पर्शन**

आदि पाँच इन्द्रियाँ,... लो! यह समुच्चय बात की। सामान्य इन्द्रियाँ। इन्द्रियरहित शुद्धात्मा उससे विपरीत पाँच इन्द्रियाँ। वापस इन्द्रियों के प्रकार पाड़कर पाँच इन्द्रियाँ अस्ति सिद्ध की। पहले सामान्य कहा था। इन्द्रियरहित सामान्य द्रव्य, इन्द्रिय सामान्य से रहित द्रव्य शुद्धात्म वस्तु। उससे विपरीत पाँच इन्द्रिय के फांका यह पाँच इन्द्रिय। पाँच ... समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रसन्न हो। दूसरा कौन प्रसन्न हो ऐसा है? आहाहा! पैसे पाँच, पचास लाख के ढेर हो तो प्रसन्न हो जाये। होली है वहाँ अब। वहाँ कहाँ धूल में था मुफ्त का। मूर्ख परन्तु लगा है न। चिमनभाई! मूर्खाई करने लगा बाहर। पैसा और स्त्री और पुत्र पाँच, सात, दस व्यक्ति हों, दस लड़के उठाने में काम आवे न चार, एक सामने आगे... छह व्यक्ति हों। दूसरा चार व्यक्ति रोने के लिये साथ रहने को प्रयत्न करे। घर के दस लड़के हों एक साथ। ... भाई! चार व्यक्ति उठावे, एक सामने ओ... करके निकले। क्या कहलाता है? वह दोनी लेकर। और एक पीछे... लेकर। दूसरे और ओ... करते हुए (निकले)। घर के दस, बारह लड़के हों तो सब एकसाथ चले। आहाहा! किसी को बुलाना मिटे। परन्तु होली के लिये न। अरे! आहाहा!

भगवान! तू तो इन्द्रियरहित है न प्रभु। तेरे स्वरूप में यह इन्द्रियों के फांका यह कहाँ है। वह तो जड़ है, जड़ है। तू तो अरूपी चैतन्य है। उन इन्द्रियों से रहित सामान्य कहा। ऐसा भगवान शुद्धात्मा, उससे विपरीत यह फांका पाँच। ऐसा लिया वापस। एक बात।

शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प से रहित आत्मा से... अब मन को सिद्ध करना है। कैसा है भगवान आत्मा? शुभ और अशुभ संकल्प-विकल्प से रहित। दया, दान, पुण्य का भाव, वह शुभ है, विकल्प है, राग है। और हिंसा, झूठ, चोरी, वह द्वेष है, राग है, पाप है। वे दोनों शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प, वह विकार है; उससे रहित भगवान शुद्ध भिन्न है। समझ में आया? यह तो आत्मा की भागवत कथा चलती है यह। आहाहा! कहते हैं, प्रभु! तू कैसा है? कि, शुभ-अशुभ संकल्प से रहित। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, उससे तो तू रहित है। वह तो विकार है। हिंसा, झूठ,

चोरी, क्रोध, मान, विषयवासना की वृत्ति उठती है, उससे भिन्न चीज़ है। क्योंकि वह जो है वह तो आस्रव है, उससे आत्मा भिन्न है। आहाहा! यह उससे विपरीत।

अनेक संकल्प-विकल्प समूहरूप मन। यह मन की व्याख्या की। क्या कहा? पहले सामान्य व्याख्या की कि शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प रहित ऐसा भगवान। उससे विपरीत क्या? अनेक संकल्प-विकल्प। वापस उस मन के सम्बन्ध में तो अनेक संकल्प-विकल्प ही होते हैं। समझ में आया इसमें? भगवान अन्दर संग में जाये अन्दर में तो संकल्प-विकल्प है ही नहीं। अन्दर में दृष्टि करे तो उसमें संकल्प-विकल्प है ही नहीं। अन्दर में कहाँ था वस्तु में? वस्तु में हो तो कभी टले नहीं, तो सिद्ध कभी हो नहीं। आहाहा! उसकी अभी पहचान तो करे पहले। पहचान भी नहीं होती (कि) किस ओर जाना और किस ओर से हटना। आहाहा! समझ में आया?

अनेक संकल्प-विकल्प देखा? वह सामान्य बात की थी। शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प, भाई! पहले सामान्य (बात) की थी। अब (कहते हैं), मन के साथ तो अनेक संकल्प-विकल्प का समूह विशाल ढ़ेर। विशेष बात की। इन्द्रिय से रहित, उससे विपरीत पाँच इन्द्रियाँ। यहाँ कहा, शुभ संकल्प-विकल्प से रहित आत्मा, उससे विपरीत अनेक संकल्प-विकल्प का समूह वह मन। आहाहा! समझ में आया? यह वापस मन सिद्ध करते जाते हैं। है यह। मुफ्त में कहीं कोई 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' ऐसा नहीं। दोनों हैं, दोनों हैं। समझ में आया? आहाहा! न हो तो रहित होना किससे? हो उससे रहित होगा, न हो उससे रहित होना क्या? और वह भी कहते जाते हैं कि शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प से भगवान आत्मा निराला और भिन्न है। उससे (भिन्न) अनेक विकल्प और संकल्प-विकल्प का समूह, उसे मन कहते हैं। वह मन उस आत्मा से उत्पन्न हुआ नहीं है। वह तो विकार से उत्पन्न अर्थात् कर्म से उत्पन्न हुआ है, आत्मा में वह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह मन है संकल्प-विकल्प में, आत्मा में नहीं। आहाहा!

अनेक संकल्प-विकल्पसमूहरूप जो मन... यह दो बातें कीं। इन्द्रियों और मन से भिन्न बतलाना है न? वह सब कर्म से हुआ है, आत्मा के शुद्धस्वभाव से हुआ नहीं, ऐसा सिद्ध करना है, ऐसा सिद्ध करना है। लॉजिक से सिद्ध करते हैं, हों! ऐसी की ऐसी

खींच-तान की बात नहीं यहाँ। चन्दुभाई! न्याय से तो बात करते हैं या नहीं?

अब तीसरी बात। **शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति से भिन्न...** अब राग-द्वेष का विभाव सिद्ध करना है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्धात्मतत्त्व। समझ में आया? पहले इन्द्रिय से रहित शुद्धात्मा था, उससे विपरीत इन्द्रियाँ, फिर शुभाशुभ विकल्प से रहित आत्मा था अकेला आत्मा। उससे विपरीत संकल्प-विकल्प-मन, ऐसा लिया है। समझे न भाषा? अब **शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति से भिन्न...** शुद्ध भगवान आत्मा, उसका तत्त्व का जो अनुभव, निर्मलानन्द की दशा का अनुभव, वह पर्याय है, उससे **भिन्न जो राग, द्वेष, मोहादिरूप सब विभाव...** समझ में आया? **वे मोहादिरूप सब विभाव, ये सब आत्मा से जुदे हैं,...** वे आत्मा से भिन्न हैं। अरे! कथनपद्धति... भगवान शुद्धात्मतत्त्व निर्मल ज्ञानघन का जो अनुभव, उस ओर का अनुभव-दर्शन, ज्ञान और चारित्र की शान्ति का अनुभव, उससे विपरीत है। कौन? कि राग-द्वेष और मोह। वे सब विभाव सब आत्मा से भिन्न हैं। वस्तु में वे नहीं। समझ में आया? अब जरा चार गति के दुःख का वर्णन करते हैं। देखो, यह सेठिया और राजा सब दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पहले नहीं लगता था, अब लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, लगता है, अभी नहीं लगता। अभी अन्दर यह उसके कारण से लगता है। शरीर चलता नहीं, इसलिए दुःख लगता है। ऐसा नहीं। यह शरीर अच्छा हो, पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ पूँजी हो, दस पुत्र राजकुँवर जैसे हों। एक-एक पुत्र लाख-लाख, करोड़-करोड़ की आमदनी करनेवाला हो, उसके ऊपर लक्ष्य जाता है कि यह ठीक, वह महादुःख का भाव है, ऐसा कहते हैं। यह तो शरीर फीका पड़ा, इसलिए अब दुःख लगता है। ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी हाँका नहीं था, हाँके कौन? अभिमान किया था पन्द्रह वर्ष। ऐसा कहो न अभिमान किया था पन्द्रह वर्ष। मोटर जड़ है, जड़ को कौन हाँके? वह उसके कारण से चलती है। आत्मा हाँके? आत्मा अरूपी है, उसे स्पर्शता है? ले जाता था मिथ्यात्व। समझ में आया? पैर चलकर ले जाता नहीं और मोटर ले गया

होगा ? करो न, अन्दर आत्मा है या नहीं ? यहाँ खड़े-खड़े ... पकड़ रखना। वह जड़ है। उस जड़ की अवस्था का होना आत्मा के आधीन है ही नहीं। समझ में आया ? वह अजीवतत्त्व है, भगवान जीवतत्त्व है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कुछ सुधार-बुधार कर सकता नहीं। भान नहीं इसे। समझ में आया ? यह तो सर्वज्ञ वीतराग का अजर प्याला है। आहाहा! यह बाद में समझण करे, ख्याल करे कि, यह ऐसा है। फिर ख्याल की रुचि की ओर जाये। अभी जहाँ सच्ची समझण ही न हो तो रुचि हो कहाँ से ? रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि हो, उसमें उसका वीर्य मुड़े। समझ में आया ?

तथा वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृत से... देखो! आहाहा! कैसा है आत्मा ? वह वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृत, उसकी पर्याय, हों! **परान्मुख जो समस्त चतुर्गति के महान दुःखदायी दुःख...** भगवान आत्मा का स्वरूप तो वीतराग परमानन्द है, परन्तु उसके अनुभव में भी वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृत दशा होनी चाहिए। उस दशा से परान्मुख जो समस्त चतुर्गति के महा दुःखदायी दुःख। देखो! भाषा प्रयोग की। ऐसा बड़ा राजा (हो), होली सुलगे कहीं कल्पना की कि मैं राजा, हम राजा। तू राजा ? तू तो चैतन्य है। यह कल्पना की जाल ने इसे दुःखी किया है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुहाता है इसे। रुचा हो, वह सुहावे। रुचा हो, उसमें उसे वीर्य झुकाव जाये। जिसकी आवश्यकता जाने, वहाँ उसका वीर्य स्थिर हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया ? कहाँ तत्त्वों को ढंढोला है कब ? क्या तत्त्व है ? क्या विपरीत है ? क्या है ? समझ में आया ?

कहते हैं, ओहो! भगवान वीतराग—रागरहित परमानन्द, वह भी सुखरूप अमृत, ऐसा भगवान आत्मा है। उसकी पर्याय में वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृतदशा होनी चाहिए। जैसा है, वैसा पिघलना चाहिए। यह बड़ा गुड़ का क्या कहलाता है ? रवा पड़ा हो न, धूप लगे तो वह गुड़ पिघलता होगा या नहीं ? उसमें से जहर पिघलता होगा ? वह नहीं कोल्हापुर का गुड़ आता है ? बहुत ऊँचा आता है, आधे नम्बर का बहुत ऊँचा आता है। देखा है न ? आधे नम्बर का बहुत ऊँचा, महँगा भी होता है। बहुत ऊँचा। वहाँ गये थे न। सब लावे न। दिया आधा मण दिया। ऊँचा कोल्हापुरी। उसमें से जहाँ फटे

वहाँ गुड़ का स्वाद ही आवे अकेला रस और मीठा। उसी प्रकार चैतन्यपिण्ड तो अतीन्द्रिय आनन्द का महा रवा है। अब इसे कैसे बैठे? अतीन्द्रिय आनन्द का शरीर से भिन्न अकेला रवा है।

उसमें से तो वीतराग परमानन्द सुख का अमृत झरता है। झरे, दृष्टि करे तो। यह उससे विपरीत ये समस्त चतुर्गतिमय... समस्त अर्थात् सर्वार्थसिद्धि के देव, सातवें नरक का नारकी, कीड़ी, कंथवा और कुंजर-हाथी और राजा, सब उनकी दशा में दुःखरूप, आनन्द से उल्टी दुःख दशा में पड़े हैं। यह वह तुम कहते हो, ऐसा नहीं। वे मोहनभाई भी दुःखी हैं, यह मलूकचन्दभाई भी दुःखी है। इनके पुत्र के पास दो करोड़ रुपये हैं, वह दुःखी है, तीन करोड़ लो! धूल में अंक गिनना है न। यह तो दूसरे को जरा मोह उतारने की बात है, हों! यह इतने सब...! धूल अब अंक, उसमें क्या है? हमको दो करोड़, हमको एक करोड़, हमको तीन करोड़। हमको? तुझे? सोजिश हो गयी है। उस सोजिश में दुःखी है। सोजिश पेट में उतरे वहाँ चिल्लाहट मचाये, ऐसी यह सोजिश है यह। चार गति के अनुकूल-प्रतिकूलता के संयोग में कल्पना करता जीव दुःखी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बाईस मंजिल में लो, बाईस मंजिल... बाईस मंजिल बनाते हैं किसी के लिये, पैसा कमाने के लिये करते हैं। वह कहाँ रहता था? बाईस मंजिल बनाता है न इनका पुत्र पूनमचन्द वहाँ। बाईस मंजिल का बड़ा महल बनाता है। पैसे कमाने की ममता। पैसे मिलते हैं या ममता? वह तो धूल वहाँ रही, यहाँ कहाँ घुस गये पैसे? वे मुझे मिले, ऐसी ममता का दुःखी प्राणी है। आहाहा! यह गज के आंक ही अलग, यह गज के माप ही अलग लगते हैं यह। हिम्मतभाई!

भाई! चार गति के... वापस शब्द क्या प्रयोग किया है? महा दुःखदायी दुःख। समझ में आया? '**चतुर्गतिसंतापाः दुःखदाहा**' ऐसा है न? '**दुःखदाहा**' लो! भाषा ऐसी है। '**संतापाः**' सन्ताप है न। समस्त चतुर्गति सन्ताप है, चार गति में सन्ताप है, भगवान आत्मा में शान्ति है। चार गति में कहीं सन्ताप बिना की गति नहीं, ऐसा कहते हैं। पराधीन दुःख है। '**दुःखदाहा सर्वेऽप्येते**'। कहो, समझ में आया? महान दुःखदायी

दु:ख। ओहोहो! '**संतापा:**' का किया न। **वे सब जीवपदार्थ से भिन्न हैं।** भगवान शुद्ध वस्तु से विकार (आदि) सब चीज़ भिन्न है। समझ में आया?

ये सभी अशुद्धनिश्चयनयकर आत्म-ज्ञान के अभाव से... अशुद्धनिश्चयनयकर। देखा? भगवान आत्मा अपने शुद्ध का भान भूलकर अशुद्ध निश्चय में मिथ्यात्व, अज्ञानभाव किया। अशुद्ध निश्चय, हों! आत्मज्ञान के अभाव से **उपार्जन किये हुए कर्मों से जीव के उत्पन्न हुए हैं। 'उपार्जन किये हुए कर्मों से जीव के...'** अशुद्ध तो अपना भाव किया, उससे कर्म उपार्जन हुआ, उससे '**जीव के उत्पन्न हुए हैं।**' कर्म से यह उत्पन्न हुए हैं। अशुद्धनिश्चय स्वभाव के भान बिना विकार के परिणाम वे अशुद्ध निश्चय है। उससे कर्म हुआ और कर्म से यह सब उपजा है। आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द है, उसका भान कर, इसके बिना तुझे दु:ख कभी मिटे, ऐसा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक - ०८-११-१९६५
गाथा - ६३-६४, प्रवचन - ४५

पहला भाग ६३ गाथा। यहाँ से लेते हैं। **ये सभी अशुद्धनिश्चयनयकर आत्म-ज्ञान के अभाव से...** ये सभी अर्थात् क्या? कि, आत्मा में जो इन्द्रिय, मन और राग-द्वेष विभाव भाव और चार गति के दुःख... वस्तु जो है आत्मा द्रव्य वस्तु सदृश रहनेवाली कायम चैतन्य पदार्थ वस्तु, वस्तु, उस वस्तु के ऊपर पर्याय में यह जो पाँच इन्द्रियाँ, मन, राग, द्वेष और मोह के विभावभाव और चार गति के दुःख की दशा का भाव, **वे सब जीवपदार्थ से भिन्न हैं।** वह वस्तु जो है चैतन्यद्रव्य ज्ञायक पिण्ड प्रभु, उससे सभी चारों भिन्न हैं। समझ में आया? वस्तु, वस्तु-द्रव्य परम स्वभावभाव ऐसा चैतन्य पदार्थ, पदार्थ / वस्तु विज्ञानघन तत्त्व पदार्थ, उससे इन्द्रियाँ, मन, राग, द्वेष, मोह का विभाव और चार गति के दुःख का भाव वस्तु से भिन्न है।

ये सभी अशुद्धनिश्चयनयकर आत्म-ज्ञान के अभाव से... यह विभाव क्यों हुए? कि, आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध विज्ञानघन परमात्म निज स्वरूप के ज्ञान का अभाव, उसके सन्मुख के ज्ञान का अभाव (उससे हुए)। वस्तु आनन्द, ज्ञान, दर्शन और वीर्य का पिण्ड, वह द्रव्यस्वरूप है, उसके अन्तर वस्तु के ज्ञान का, पदार्थ के ज्ञान का परमात्मा निज स्वरूप, ऐसा आत्मा, उसके ज्ञान का अभाव, उससे **उपार्जन किये हुए कर्मों से जीव के उत्पन्न हुए हैं।** उसके अभाव से उत्पन्न किये हुए, **कर्मों से जीव के उत्पन्न हुए।** ऐसे उससे विपरीत जो कर्म आत्मा के विज्ञानघनस्वभाव के अभाव द्वारा उपार्जन किये हुए कर्म, उससे वह वस्तु उत्पन्न हुई है। समझ में आया? **ये कर्मों से जीव के उत्पन्न हुए हैं।** ऐसे कर्मों से यह चार बोल उत्पन्न हुए हैं। समझ में आया?

वस्तु का स्वभाव नित्यानन्द ऐसा तत्त्व आत्मा, उसके स्व-ज्ञान के अभाव में, पर के लक्ष्य में उत्पन्न किये हुए ये चार गति के दुःख, राग, द्वेष के, मोह के विभाव, इन्द्रियाँ और मन, वह कर्म ने उत्पन्न किये हैं, आत्मा ने उत्पन्न किये नहीं। अशुद्धनिश्चय से

उसने अज्ञानभाव किया है, वह उसका भाव। समझ में आया? शुद्ध चिदानन्दस्वभाव शुद्ध निश्चय, उसके ज्ञान का अभाव। वस्तु परमात्मस्वरूप अखण्ड अनादि-अनन्त, वस्तु के ज्ञान का अभाव, वह जीव ने पर्याय में स्वयं किया। उससे उत्पन्न हुए कर्म, उससे उत्पन्न होते चार भाव।

पहले सामान्य बात की है कि वस्तु चिद्घन आनन्दकन्द अतीन्द्रिय रस का स्वरूप सत्त्व, तत्त्व के बोध का अभाव, उसके ज्ञान का अभाव, उसकी रुचि, दृष्टि का अभाव। यह किया किसने? स्वयं ने पर्याय में। वह अज्ञानभाव, किया अज्ञानभाव। उस अज्ञानभाव से उत्पन्न हुए कर्म, उस कर्म से उत्पन्न हुए यह चार बोल। समझ में आया? **इसलिए ये सब अपने नहीं हैं,...** समझ में आया? इस कारण से वे अपने नहीं। कारण भी दिया कि वस्तु जो चिद्घन द्रव्यस्वभाव वस्तु परम स्वरूप, परम स्वरूप कहो, परमात्मा द्रव्य कहो। परमात्मप्रकाश है न। अपना निज परमात्म ध्रुव नित्य... नित्य... नित्य... द्रव्यस्वभाव के ज्ञान का अभाव अर्थात् कि अज्ञान। अज्ञान से उत्पन्न हुए कर्म, उन कर्म से उत्पन्न हुए यह चार बोल। इन्द्रियाँ, मन, विभाव और दुःख चार गति के। समझ में आया?

इसलिए ये सब अपने नहीं हैं,... यह चार बोल जीव स्वरूप के नहीं। भगवान आत्मा विज्ञानघन, चिद्घन आत्मा की इन्द्रियाँ नहीं, उसका मन नहीं, उसके विभाव भाव पुण्य-पाप नहीं, उसके चार गति के दुःख वह चैतन्यस्वरूप का भाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ये कर्मजनित हैं।** कर्मजनित हैं, द्रव्यजनित नहीं। द्रव्य अर्थात् वस्तु से उत्पन्न हुए वे नहीं। वस्तु के अज्ञान से उत्पन्न हुए कर्म, उनसे उत्पन्न हुए; इसलिए वे आत्मा के नहीं, इसलिए कर्मजनित कहे गये हैं। इस अपेक्षा से, हों! परन्तु कोई वापस ऐसा कहे, वह तो सब कर्म के कारण हुआ है। यह नहीं। इसलिए पहले कहा है कि, अपना शुद्ध घन आनन्दकन्द अनादि-अनन्त, सन्त-महन्त ने जिसे आराधा है, ऐसा आत्मा, उसके ज्ञान के अभाव में, उसका अभाव स्वयं ने किया। स्वरूप के भान के बोध का अभाव स्वयं ने किया, वह स्वयं अभाव किया, वह अशुद्धनय से, वस्तु में वह नहीं। समझ में आया? वस्तु के स्वभाव में नहीं। पर्याय में अज्ञान उत्पन्न किया, ऐसा कहना है यहाँ तो। आहाहा!

ऐसी वस्तु के बोध स्वभाव के भान बिना इसने अज्ञान पर्याय में उत्पन्न किया। वस्तु—द्रव्य-गुण में वह नहीं। ऐसे अज्ञान से उत्पन्न हुआ कर्म और उससे उत्पन्न हुए चार बोल। इन्द्रियाँ, मन, विभाव परिणाम और चार गति के दुःख। इसलिए वे आत्मद्रव्य जनित नहीं, वे कर्मजनित हैं। इस अपेक्षा से कहे गये हैं। कहो, भीखाभाई! आहाहा! चैतन्य बादशाह अनन्त गुण का पिण्ड, तूने उसके सन्मुख कभी देखा नहीं। अनन्त-अनन्त जिसमें आनन्द है। अन्त नहीं ऐसा आनन्द, अन्त नहीं ऐसा ज्ञान, शक्ति-स्वभाव है न उसका। यह चार कहेंगे, हों! बाद में गाथा में क्रमसर (कहेंगे)।

ऐसा भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, उसकी—चार की क्रम गाथा कहेंगे। एक गाथा बीच में रखेंगे परन्तु ... चार को मिला देंगे। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु-पदार्थ जिसका स्वभाव अनन्त ज्ञान, अन्तरहित दर्शन, हदरहित सुख, मर्यादारहित वीर्य—ऐसा भगवान आत्मा स्वयं अपने अन्तर के बोध के अभाव से किये कर्म, कर्म से यह सब उत्पन्न हुआ। आत्मा से—वस्तु से उत्पन्न हुआ नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ पर परमात्म-द्रव्य से विपरीत... भगवान परमात्मा अपना परमस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, वस्तुस्वरूप से विपरीत। देखो, यह परमात्मद्रव्य लिया। **जो पाँचों इन्द्रियों को आदि लेकर सब विकल्प-जाल हैं,...** पाँच इन्द्रियाँ यह या खण्ड-खण्ड इन्द्रियाँ सब। **वे तो त्यागनेयोग्य हैं,...** पाँचों इन्द्रियाँ, मन, विभाव और चार गति के दुःख, वे त्यागनेयोग्य हैं। यह आत्म भगवान परमानन्द की मूर्ति, इसकी दृष्टि करके यह चार प्रकार के भाव छोड़नेयोग्य है। समझ में आया? **उससे विपरीत पाँचों इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा को आदि लेकर सब विकल्प-जालों से रहित...** अब, आत्मा लिया। भगवान आत्मा वस्तु पदार्थ आनन्द अनन्त गुण का पिण्ड, उससे विपरीत चार बोल वे त्यागनेयोग्य हैं। चार बोल कहे न? और उनसे विपरीत ऐसा परमात्मद्रव्य। इन चार भाव से विपरीत ऐसा **अपना शुद्धात्मतत्त्व, वही परमसमाधि के समय...** अर्थात्? वह वस्तुस्वरूप है, उसकी अन्तर दृष्टि, ज्ञान और लीनता के समय काल में आत्मा उपादेय होता है। समझ में आया? बातें बापू! अपूर्व है, महँगी है परन्तु सस्ती है। अनअभ्यास से महँगी, स्वरूप अभ्यास से सस्ती। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा शुद्धात्मतत्त्व जो चार से रहित—इन्द्रिय, मन, विभाव और दु:ख। यह आत्मा उपादेय कब हो? यह कब आदरणीय हो? कि, यह पाँच इन्द्रिय, मन, विभाव और दु:ख का आश्रय, लक्ष्य, उपादेयपना छोड़कर शुद्ध चैतन्य वस्तु के सन्मुख में दृष्टि, ज्ञान और लीनता के काल में यह आत्मा उपादेय होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... सदा काल नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा काल नहीं, सदा काल तो द्रव्य है। उपादेय उसकी परिणति हो, तब उसे उपादेय आता है। सदा काल आदरणीय है, परन्तु ऐसे काल में आदरणीय है, ऐसा। आदरणीय अर्थात् यों ही माना, ऐसा नहीं। समझ में आया? वह सदा काल इस प्रकार से उपादेय है। सदा काल अर्थात् त्रिकाल वस्तु तो है, परन्तु वह उपादेय कब हो? कि यह विभावभाव आदि का लक्ष्य छोड़कर पूर्णानन्द भगवान आत्मा अपना स्वभाव, उसके सन्मुख के काल की दशा काल में उपादेय होता है। आहाहा! उसके सन्मुख देखे बिना उपादेय कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं मूल। समझ में आया?

वही परम समय साक्षात् उपादेय है। पहले श्रद्धा में भले ले, परन्तु वह उपादेय कब उसे परिणति हुई? उस परिणति का व्यय हुआ दृष्टि में से और यहाँ परिणति स्वभाव के ऊपर जमी। शुद्ध शान्त श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, तब यह आत्मा उसे आदरणीय हुआ, अर्थात् उसका आश्रय किया, उस काल में वह आदरणीय हुआ। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? जमुभाई! यह विभाव, चार गति के दु:ख, विभाव का आदर छोड़ा, तब पूर्णानन्द के सन्मुख हुआ, तब आदर हुआ, तब उपादेय उस काल में कहा जाता है। समझ में आया? यह ६३ हुई। अब ६४ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ६४

आगे संसार के सब सुख-दुःख शुद्ध निश्चयनय से शुभ-अशुभ कर्मोंकर उत्पन्न होते हैं, और कर्मों को ही उपजाते हैं,... यह कर्मों से उत्पन्न हो और कर्म को उपजाता है। आत्मा से विकार उत्पन्न हो और आत्मा उसे उपजाता है, ऐसा नहीं। वस्तुस्वरूप शुद्ध वस्तु वह क्या करे? आहाहा! ६४।

६४) दुक्खु वि सुक्खु वि बहु-विहउ जीवहँ कम्मु जणेइ।
अप्पा देक्खइ मुणइ पर णिच्छउ एउँ भणेइ॥ ६४॥

यहाँ ज्ञान-दर्शन से उठाया है। सुख और वीर्य बाद में डालेंगे। वह सुख डालेंगे प्रक्षेप में, वीर्य डालेंगे ६६ में। बीच में एक भटका, ऐसा बताने के बाद। समझ में आया? ...सामने आवे उसे छूट हो जाये। आत्मा के सामने आवे सामने, उसे छूट हो जाये, छुटकारा हो जाये।

अन्वयार्थ :- जीवों के... इस आत्मा वस्तु को भगवान आत्मा, **अनेक तरह के दुःख और सुख दोनों ही...** यह सुख-दुःख की कल्पना का भाव वह **कर्म ही उपजाता है।** यह अनुकूल पैसा आदि में मुझे सुख, ऐसी कल्पना वह द्रव्यस्वभाव में नहीं, वस्तु में से उत्पन्न होती नहीं। वह तो उसकी पर्याय का अज्ञान, उससे उत्पन्न हुआ कर्म, उस कर्म से उत्पन्न होती है। आहाहा! क्या कहते हैं? समझ में आया? **दुःख और सुख दोनों ही कर्म ही उपजाता है। और आत्मा उपयोगमयी होने से...** देखो! भगवान आत्मा तो उपयोगमयी है। **देखता है, और केवल जानता है,...** बस! जानने-देखने का उसका तो स्वभाव है। जानने-देखने का स्वभाव है। उस जानने-देखने के स्वभाव से अन्तर में दृष्टि करके स्थिर हो, तब जानने-देखने का काम वह करे। समझ में आया? प्रत्येक गाथा में अलग-अलग बात है, हों! आहाहा! **इस प्रकार निश्चयनय कहता है, अर्थात् निश्चयनय से भगवान ने ऐसा कहा है।** सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव ने वाणी द्वारा धर्मसभा समवसरण में इन्द्रों की उपस्थिति, गणधरों की उपस्थिति में वाणी द्वारा ऐसा आया कि यह भगवान आत्मा, वस्तुस्वरूप ऐसा आत्मा, वह सुख-दुःख को उत्पन्न नहीं करता। उस सुख-दुःख को उत्पन्न करनेवाला स्वद्रव्य नहीं, स्वद्रव्य

नहीं वह द्रव्यकर्म सुख-दुःख को उत्पन्न करता है। क्यों? कि स्वद्रव्य के अभान में; स्वद्रव्य का अभान अर्थात् स्वद्रव्य रहा नहीं वह। अभान में बाँधे हुए कर्म, वे कर्म सुख-दुःख को उत्पन्न करते हैं। आत्मद्रव्य से उत्पन्न किये हुए कर्म होते नहीं, आत्मा से कर्म उत्पन्न होते नहीं। आहाहा! गजब शैली, भाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और वीर्य का पिण्ड तथा ज्ञान, दर्शन का अकेला रस, ऐसा जो अनन्त चतुष्टय से भरपूर आत्मा वह स्वयं, इस कल्पना के संसार के, कल्पना के सुख-दुःख, वह आत्मद्रव्य उत्पन्न नहीं करता। ऐई! आहाहा! उस कर्म से उत्पन्न हुए द्रव्यकर्म, यह द्रव्य वस्तु, उससे नहीं हुए। उस द्रव्य का अभान ऐसा पर्याय अंश वह तो विकार कर्मजन्य कर्म हो गया, वह तो सब, वह वस्तु नहीं रही। समझ में आया? अनन्त ज्ञान, आनन्द का कन्द ऐसा भगवान आत्मा वस्तु स्वयं, उससे विकार हुआ—ऐसा नहीं। अंश में जो विकार, अज्ञान, ज्ञान के अभाव में जो अज्ञान (हुआ), वह वस्तु में नहीं, द्रव्य-गुण में नहीं, पदार्थ में नहीं। वह पर्याय में उत्पन्न किया हुआ जो अज्ञान—वस्तु के अभान से हुआ कर्म, उससे हुई सुख-दुःख की कल्पना। आहाहा! समझ में आया? यह आगे कहेंगे अशुद्धनिश्चय की बात। समझ में आया? **होने से निश्चयनय से भगवान ने ऐसा कहा है।** आहाहा! परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु अरिहन्तदेव जिन्हें त्रिकाल ज्ञान-आनन्द प्रगट हुआ, ऐसे परमात्मा समवसरण के मध्य में ऐसी वाणी भगवान की आती थी। समझ में आया?

भावार्थ :- आकुलतारहित पारमार्थिक वीतराग सुख के पराङ्मुख (उलटा) जो संसार के सुख-दुःख... व्याख्या की। इस पर्याय में यह मुझे ठीक पड़ते हैं पैसा, लक्ष्मी, कीर्ति, शरीर आदि—ऐसी कल्पना, वह आकुलता है। भगवान आत्मस्वभाव इस आकुलतारहित है। समझ में आया? वस्तु में कहीं आकुलता होगी? वस्तु स्वतःसिद्ध जो वह तो अनाकुल आनन्द का पिण्ड है। वह आकुलतारहित पारमार्थिक वीतराग सुख, भगवान आत्मा तो आकुलतारहित वीतराग अर्थात् निर्दोषी परमार्थ सुख का पिण्ड आत्मा है। उसकी पर्याय में भी अनाकुल वीतराग सुख की पर्याय होनी चाहिए। उससे पराङ्मुख। क्या कहा? भगवान आत्मा वस्तु से अनाकुल परम आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसकी परिणति में, उसकी पर्याय में ऐसी जो पर्याय अनाकुल वीतराग परम सुख पर्याय

हो। जैसी वस्तु है, वैसी ही उसकी पर्याय वीतराग परम आनन्द अनाकुल पर्याय हो। उस पर्याय से विपरीत यह संसार के सुख-दुःख की कल्पना। यह पर्याय कही। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह द्रव्य लक्ष्य में आवे वह। यह आकुलता है, वह कृत्रिम क्षणिक होती है तो आकुलता कोई त्रिकाली चीज़ है, उसकी उल्टी वर्तमान अवस्था है। उसकी सुलटी अवस्था हो, तब तो अनाकुल आनन्द की दशा चाहिए। वस्तु है, वह कहीं आकुलता (रूप), वस्तु-तत्त्व सत्त्व तत्त्व ऐसा होगा? दुःखरूप विकाररूप तत्त्व होगा?

चैतन्य पिण्ड भगवान आत्मा अनाकुल पारमार्थिक सुख का कन्द वह आत्मा है। वह वस्तु हुई, अब उस वस्तु के सन्मुख की वीतराग अनाकुल पर्याय यदि हो, तब तो उसकी दृष्टि में आत्मा ही होता है। उसे दृष्टि में न लेकर उस परिणति से उल्टी सुख-दुःख की कल्पना, हों! कल्पना, सुख-दुःख है नहीं पर में। यह माना छियानवें हजार स्त्रियाँ, यह पुत्र, शरीर मक्खन के पिण्ड जैसा। धूल में भी नहीं, सुन न! वह तो मिट्टी है। उसने कल्पना खड़ी की है कि यह मुझे सुखी। कल्पना (की)। उस अनाकुल आत्मा की परिणति होनी चाहिए, अनाकुल आनन्द की मूर्ति उसकी है। उसकी अनाकुल परिणति से उल्टे यह सुख-दुःख की कल्पना के परिणाम हैं। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! क्या होगा? कितना सुख होगा? नहीं? आहाहा! कहो, जेचन्दभाई! आहाहा!

वस्तु स्वयंसिद्ध वस्तु, स्वतःसिद्ध पदार्थ, अकृत-अकृत्रिम सत् तत्त्व, वस्तु, वह वस्तु तो आनन्द और शान्त परमार्थ सुख का ही पिण्ड है। वीतराग कहो या निर्दोष सुख का ही पिण्ड है। समझ में आया? वीतराग शब्द आवे (तो) मानो लोगों को ऐसा होता है कि, यह जैन का आ गया। परन्तु इस वीतराग का अर्थ रागरहित निर्दोष आत्मा के सुख का पिण्ड वह है। समझ में आया? वीतराग वह जैन का हो गया। वह वस्तु ऐसी है, वीत अर्थात् रागरहित, वीत अर्थात् रहित, रागरहित, विकल्परहित, दोषरहित ऐसी चीज़ है आत्मा। ऐसा निर्दोष वीतरागस्वभाव भगवान, दूसरी भाषा से कहें तो निर्दोष

निर्दोष सत् स्वभाव का कन्द आत्मा, उसकी परिणति चाहिए निर्दोष वीतरागी शान्ति की परिणति अर्थात् पर्याय। ऐसा न करके उससे उल्टी जो सुख-दुःख की कल्पना देव—स्वर्ग, इन्द्रिय, स्त्री, भोग, विषय, पैसा, दाल, भात, सब्जी उसमें जो कल्पना उत्पन्न करता है, वह द्रव्यस्वभाव से उत्पन्न हुई नहीं। वस्तु के स्वभाव से अज्ञान से उत्पन्न किये हुए भाव से उस अज्ञान से उत्पन्न हुए कर्म, अशुद्ध निश्चय से अज्ञानभाव से उत्पन्न किये हुए कर्म, उससे उत्पन्न हुए सुख-दुःख हैं। वस्तुस्वभाव से सुख-दुःख है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह घुस गयी, इसने खड़ी की है, ऐसा कहते हैं। इसने खड़ी की है। यह नहीं था और उठाईगीर ने उठाव किया।

भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु है। निर्दोष सत् स्वरूप वह आत्मा है। उसकी पर्याय में उठाईगीर ने अंश में खड़ा किया है। उस ओर न देखकर अनादि से ऐसा देखकर अज्ञानभाव, मिथ्यात्वभाव अंश में खड़ा किया। उससे हुए कर्म और उससे हुई सुख-दुःख की कल्पना। आहाहा! समझ में आया? भान नहीं था, भान।

एक था बनिया न। वह स्वयं कहीं से उतरा हुआ। उसमें उसका लड़का भी साथ में उतरा हुआ कहीं, वह क्या कहलाये स्टेशन में होते हैं न मकान? वेटिंगरूम। एक रूम में उतरा हुआ उसका बाप और एक रूम में वह (लड़का) उतरा हुआ। उसे—उसके बाप को खबर नहीं कि यह कौन। समझ में आया? उसमें वह लड़का पैसा लेकर आया, हों! दो, चार लाख लेकर आया हुआ और यह बाप तो यों ही आया हुआ, कुछ मेल नहीं, खबर नहीं। उसमें वहाँ रात्रि में उसे गोला (दर्द) उठा, कुछ रोग उठा लड़के को और पूरी रात धमाल, भाई! वह बाप कहे, यह कौन है यह वह? चैन पड़ने देता नहीं, सोने भी देता नहीं। यहाँ साथ में हम पड़े हैं न। उसे खबर नहीं कि यह मेरा पुत्र है, उसके सामने मैं जाता हूँ और ... समझ में आया? वह नींद आने दे नहीं, शोर, चिल्लाहट (मचाये)। उसमें से वहाँ जगे, ... कौन है? कहाँ का है यह? फलाना। नाम क्या इसका? लक्ष्मीचन्द और इसके बाप का नाम क्या? लक्ष्मीचन्द कानजी। वह तो मैं, मेरा पुत्र यह? ... लेने गया साथ में अब। परन्तु चिल्लाहट मचाता था न? चैन से चैन

आता नहीं, नींद आने देता नहीं। अरे! पुत्र तू है? अरे! परन्तु मुझे खबर भी नहीं की? परन्तु बापू! तुमको पत्र लिखा था, देरी से पहुँचा होगा। मोहनभाई! यह पहिचान की कमी से यह दिक्कत उठी। कि, यह मेरा पुत्र, ऐसा नहीं जाना, इसलिए उसके कोलाहल में नींद न आने दी तो उसे क्लेश हुआ। समझ में आया? वह अज्ञान के कारण से है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अखण्डानन्द चिदानन्द की मूर्ति वह समीप में स्वयं ही है वह। अभान में उसने कोलाहल खड़ा किया। रतिभाई! फिर वह भाग लेने गया। अब भी तुम सो जाओ, सो जाओ बापू! परन्तु नहीं, नहीं, नहीं, नहीं। अरे! बापू! तुझे ठीक नहीं और मैं सोऊँ? अभी चिल्लाहट मचाते थे न। कहो, समझ में आया इसमें? इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सत् चिदानन्दमूर्ति प्रभु है, उसके भान बिना यहाँ नहीं देखना, यहाँ नहीं देखना, देखने गया वहाँ सर्वत्र। अज्ञान उत्पन्न करके राग-द्वेष किये, उससे कर्म बँधे, यह उससे (उत्पन्न हुई) सुख-दुःख की (कल्पना)। यहाँ तो स्वभाव से सुख-दुःख नहीं, अज्ञान से उपार्जित कर्म से सुख-दुःख है, यह सिद्ध करना है। यह संसार की कल्पना के सुख-दुःख की बात है, हों! संयोग की बात अभी यहाँ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। परन्तु यह सुख-दुःख है या नहीं? आकुलता होती है या नहीं तुझे? ऐसे तो जरा जो खदबदाहट, खदबदाहट होती है। ऐसा स्वरूप होगा? स्वरूप ऐसा होगा? वस्तुस्थिति ऐसी होगी? वास्तविक पदार्थ ऐसा होगा? ऐसा तो लक्ष्य कर। समझ में आया? जैसा सत्—वास्तविक पदार्थ है, वैसा खलबलाहट कल्पनावाला होगा? इतना तो उसे विचार न करे? आहाहा! अज्ञान में रंग गया है यह, भान नहीं होता उसका तो अज्ञान में रंगकर। आहाहा! आहाहा! अन्ध कुछ देखता नहीं साथ में मैं कौन हूँ यह। साथ ही वह पड़ा था लड़का। देखता नहीं। अब उसका भरोसा आता नहीं, कभी अभ्यास किया नहीं। आहाहा! अनन्त काल से वह रंग चढ़ा। समझ में आया?

कहते हैं कि, ऐसे **सुख-दुःख यद्यपि अशुद्ध निश्चयनयकर जीव सम्बन्धी है,...** देखो! क्या कहा? यह अज्ञानभाव और सुख-दुःख की कल्पना है तो अशुद्ध

निश्चय से उसकी पर्याय, परन्तु वस्तु का स्वभाव नहीं, इसलिए उसे पर कहा है। आहाहा! **यद्यपि अशुद्ध निश्चयनय...** अशुद्ध निश्चय अर्थात्? कि शुद्ध निश्चय अर्थात् वस्तुस्वरूप, आनन्द-ज्ञान की मूर्ति शुद्ध निश्चय। शुद्ध निश्चय अर्थात् सत् वस्तु, शुद्ध निश्चय अर्थात् सत् वस्तु और अशुद्ध निश्चय अर्थात् उसकी पर्याय में उत्पन्न किया हुआ अज्ञानभाव, वह अशुद्ध, क्योंकि मलिन है, निश्चय क्योंकि उसकी पर्याय में स्वतः उत्पन्न करता है इसलिए। समझ में आया? आहाहा! यद्यपि **अशुद्ध निश्चयनयकर जीव सम्बन्धी है,...** वह जीव की पर्याय वह विकारी, परन्तु द्रव्य का मूल स्वरूप नहीं, इसलिए उसकी नहीं, ऐसा कहकर उसकी पर्याय में अवस्था का एक अंश कृत्रिम अज्ञान खड़ा किया। अज्ञान राग, द्वेष, भ्रान्ति वह अंश है अशुद्ध निश्चय का, उसका, उसमें मलिन और उसकी पर्याय। वस्तु का स्वरूप जो शुद्ध निश्चय सत् है, शुद्ध निश्चय ऐसा सत् है, उसका यह नहीं। न्यालभाई! समझ में आया इसमें? आहाहा!

भगवान तेरे पास रे, देखता नहीं तू जरा भी। पोपटभाई! आहाहा! 'प्रभु तेरे पास रे हरी नहीं दूर प्रभु तेरे पास...' तू स्वयं प्रभु है। पास में अर्थात्, 'यह हरी नहीं दूर परन्तु आड़े आया रे तुझे वह अहंकार' यह राग मैं, द्वेष मैं और यह मैं, इस अहंकार के कारण तुझे चैतन्य भगवान सूझता नहीं। समझ में आया? यहाँ तो विशिष्टता वस्तु के तत्त्व की रीति से वर्णन की है। ओहोहो! वह तो बिना भान के सब बातें हैं। यह तो परमात्मा स्वयं द्रव्यस्वरूप से भगवान आनन्द, ज्ञान, दर्शन और वीर्य का पिण्ड प्रभु, उससे उत्पन्न हुआ अज्ञान, यह हो नहीं सकता। पर्याय के अंश में अभाव—ज्ञान के अभाव के कारण से उत्पन्न किया हुआ अंश अज्ञानभाव, बेभान भाव, मूर्खता का भाव, भ्रम भाव कि जो द्रव्य, गुण के स्वरूप में नहीं, ऐसा अज्ञान से खड़ा किया हुआ भाव, (उससे) हुए कर्म, उनसे हुआ सुख-दुःख की कल्पना का भाव। वस्तु के स्वभाव से है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यद्यपि अशुद्ध निश्चयनयकर जीव सम्बन्धी है,... अर्थात् क्या कहा? यह सुख-दुःख की कल्पना, वह आत्मा के आनन्द के अज्ञानभाव से उत्पन्न की हुई पर्याय में है। अंश... अंश... अंश... खण्ड भाग, उसकी पर्याय में—अंश में है। वह अशुद्ध है और निश्चय अर्थात् उसकी पर्याय है, ऐसा सम्बन्ध तो उसका उसे जीव में है। परन्तु

उस द्रव्यस्वरूप में नहीं, गुण में ऐसी शक्ति नहीं कि अशुद्धता उत्पन्न करे। आहाहा! परन्तु अंश में, अंश में भगवान स्वयं को भूलकर अंश में अज्ञान खड़ा किया। उस अज्ञान से किये कर्म और उससे वहाँ सुख-दुःख। वास्तव में तो उत्पन्न किये हुए तेरे ही हैं, कहते हैं। अज्ञानभाव से हुई सुख-दुःख की कल्पना, वह पर्याय की तेरी है। परन्तु वह वस्तुस्वरूप नहीं। आहाहा!

अरे! ऐसे भगवान की बात भी इसे सुनने में न मिले। वह कैसा है और कैसे भूल करता है, इसकी खबर नहीं होती। उसे यह धर्म किस प्रकार हो? प्रयास करे सब मरकर ऐसे से ऐसे। वह सामायिक और वे प्रौषध और वह भक्ति, वह पूजा और उन पर्वत पर घूमा करे। समझ में आया? बापू! धर्म तो धर्मी के पास होता है। शत्रुंजय और सम्मेदशिखर और कहीं का कहीं खोजने निकला। वह तो एक शुभभाव होता है, तब वह होता है, इतनी बात है। उसमें धर्म है और उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसकी बात किसकी चलती है? वही है यह। गप्पा उठाया है जरा, ऐसा हो तो यह मुझे ऐसा हुआ, उसको अच्छा है तो मुझे अच्छा है। यह वापस कहाँ से उठाया? वे सोना के ढ़ेर पर बैठे हैं, लो! मार गोला एक। सच्ची बात है या नहीं? जेचन्दभाई! कहाँ था न भाई ने? परन्तु सोने के ढ़ेर पर है कौन? कहते हैं कि उसने कल्पना के सुख-दुःख की कल्पना की, उसमें खड़ा है, वह तो दुःख दशा है। यह अरबों रुपये की कीमत में, अरबों रुपये में साथ में बैठा हो और ऐसा कहे कि यह मुझे मिले। यह कल्पना जो है, वह दुःखरूप में बैठा है। पैसे-फैसे में है नहीं और आत्मद्रव्य में नहीं। आत्मद्रव्य में बैठा नहीं, पैसे में बैठा नहीं, कल्पना की है कि मुझे है। उस कल्पना के दुःख में बैठा है। आहाहा! हिम्मतभाई!

ऐसा वीतराग परमात्मा अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ फरमाते हैं। परन्तु उसकी इसे खबर नहीं होती। आहाहा! अपने को जब ऐसा जाने कि ओहो! यह तो आत्मा परमानन्द मैं तो मुझमें हूँ। तो दूसरे को? लाख, करोड़, अरबों रुपये देखकर सुखी माने, वह मान्यता उसे होती नहीं। उसे देखे कि उस ओर की जितनी कल्पना में पड़ा, वह दुःख में पड़ा है वह तो। दुःख में पड़ा वह आत्मा के द्रव्य स्वभाव में नहीं, ऐसा उसने मुफ्त

का खड़ा किया। सच्चा होगा यह? हूंफ आवे। कहो, पोपटभाई! यह क्या है? हूंफ आवे पैसे की। ऐई पोपटभाई! यह उसके बहनोई बड़े पैसेवाले बैठे हैं। इनके साला के पास देखो! चालीस करोड़ रुपये हैं अभी, देखो यह पोपटभाई बैठे। और पचास हजार की आमदनी प्रतिदिन की, नगद पचास हजार। सुखी होगा वह? किसने कहा तुझे? उसकी जो ममता कि यह मुझे है, उस ममता का दुःख, दुःख में बैठा है वह। कौन कहता है सुख में बैठा? किसने कहा कि उसे सुविधा है? लींबड़ीवाले अपने यहाँ है न मुमुक्षु पोपटभाई, उसका साला है शान्तिलाल खुशाल, नहीं? गोवा में। यह उनके बहनोई हैं, इनका साला है। यह बैठा है। चालीस करोड़, हों! बनिया दशाश्रीमाली को चालीस करोड़ अभी तक सुने नहीं थे पहले। ... और आमदनी पचास हजार से ऊपर की एक दिन की, हों! एक दिन की पचास हजार रुपये की। अभिमान चढ़ जाये या नहीं पागलपन का? दूसरे ऐसा लेते हैं कि सुखी है। यहाँ कहते हैं कि मूढ़ है। किस नजर से देखा तूने? मूढ़ नजर से देखा है। सोने के (ढ़ेर में) बैठा है। बैठा सोने के। कौन सोने के ढ़ेर में बैठा है? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे सुखी देखनेवाला मूढ़ है। उसकी बात चलती है न। यह सुखी है। मूढ़ है? पैसे कहाँ उसके पास आ गये थे? उसके पास तो 'यह मुझे आये, ऐसी ममता आयी है, ममता तो दुःख है। दुःख में बैठा और तू सुखी कहता है। कहाँ तेरे गज गये अज्ञान के? ऐसे गज से मापा तूने? आहाहा! कहो, यह बराबर होगा? ऐई किरीट! सच्चा होगा? यह तेरे भाई को दो-दो करोड़ रुपये हों... ऐसा-ऐसा करते हैं। नहीं करता? ऐई! हमारे भाई के पास दो करोड़ हैं, दो करोड़ हैं, पूनमभाई के पास। धूल में भी नहीं। उसके पास है दुःख। आहाहा! भाई! तेरी नजरों में अन्तर पड़ गया माप में, माप करने की नजर बदल गयी, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख कहाँ है उसके पास? सुख तो आत्मा में है, उसके सामने तो नजर नहीं। इसलिए विपरीत उत्पन्न करके सुख-दुःख की कल्पना उत्पन्न की, वह तो दुःख है। वह द्रव्य ने उत्पन्न नहीं किया, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। वह द्रव्य के

अज्ञानभाव से उत्पन्न किये कर्म, उसने उत्पन्न किया है। वे चीज़ें भी नहीं, भाई! आहाहा! देखो, विशिष्टता तो देखो। यह पचास, पाँच करोड़, दस करोड़ है, उसके कारण से नहीं, मात्र अपने अज्ञानभाव से उत्पन्न हुआ कर्म। भानभाव में तो उत्पन्न होता नहीं। और अज्ञानभाव वह उसके द्रव्य-गुण में नहीं। उसके अंश में एक समय की कृत्रिम भ्रम से उत्पन्न की, खण्ड करके उत्पन्न किया हुआ ज्ञान, उससे बँधा हुआ कर्म, उससे सुख-दु:ख की कल्पना। संयोग से नहीं, स्वभाव से नहीं। उसे इतने पैसे मिले, इसलिए उसे सुख-दु:ख हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... करना चाहिए या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे क्या? धूल करे? कौन बात करता था? वह तो जरा एक बात करने का हेतु हो। जरा दूसरे पैसेवाले थोड़े-बहुत हों न, उसे जरा मान चढ़ता हो कि हमें इतने, इसलिए थोड़ी बात करते हो। इतना हो। धूल तो बहुत बार आवे और जावे, सुन न अब! वह तो मानो दो लाख पैदा करता हो, पाँच लाख करे तो हम आहाहा! मानो ऐसे चतुर के पुत्र हो गये। अब सुन न! भान बिना के लोग अरबोंपति होते हैं। इसके लिये कहने का हो। और वे पैसे उसने प्राप्त किये ऐसी बात यहाँ तो नहीं करते। और पैसे में कल्पना की, वह पैसे ने करायी है, ऐसा नहीं। उसके उत्पन्न किये हुए अज्ञानभाव से उस कर्म से उत्पन्न (हुए हैं) इसलिए वास्तव में अज्ञानभाव ने कल्पना उत्पन्न की है। आहाहा! उस कर्म का अर्थ यह है, भाई! अज्ञानभाव ने सुख-दु:ख की कल्पना उत्पन्न की है। पैसे ने नहीं। यह कर्म शब्द से अज्ञानभावरूपी कर्म। आहाहा! यह तेरी चीज़ वह... समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है यहाँ तो। परमात्मप्रकाश में दु:ख की कल्पना उत्पन्न होती है? यह अभाव करना, वह द्रव्य-गुण में नहीं। इतना सिद्ध करना है। अशुद्ध निश्चय शब्द कहकर उसकी वर्तमान पर्याय अशुद्ध करी, और उसका विषय छोड़कर यह विषय बनाया अशुद्धता, उससे बना कर्म और उससे हुई सुख-दु:ख की कल्पना। बस! मूढ़ भाव से सुख-दु:ख की कल्पना अज्ञानी ने की है। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐ... भीखाभाई! कहो, हीराभाई सुखी है। किस कल्पना से? आहाहा!

यह परमात्मा स्वयं भगवान है न भाई! स्वयं ही अखण्ड द्रव्य है। वस्तु है न

वस्तु। वस्तु सत् सत्—शाश्वत् अकृत्रिम सत्त्व अनन्त शाश्वत्, जिसे शाश्वत् अनन्त कहा शास्त्र में, शाश्वत् अनन्त। शाश्वत् अर्थात् कभी उसका अन्त आवे नहीं। शाश्वत् अनन्त। ग्यारह अनन्त वर्णन किये हैं न भगवान ने। वह तो अनन्त ज्ञान में सब वर्णन किया है, क्या न हो भगवान के ज्ञान में ? शाश्वत् अनन्त। वस्तु शाश्वत्—अन्त न आवे, ऐसी अनन्त ऐसी की ऐसी। आहाहा! ऐसी चीज़, वह तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य का पिण्ड प्रभु है। उससे कैसे अज्ञान हो ? वस्तु में कहाँ अज्ञान था ? परन्तु उस पर्याय के अंश में अज्ञान उत्पन्न किया, यदि ऐसा न हो तो यह दुःख कैसे हो ? ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ?

अशुद्ध निश्चय लिया है न। तूने विकार की वृत्तियाँ अशुद्धरूप से निश्चय से तेरे अंश में अज्ञानभाव से उत्पन्न किया है। वह अस्ति है, वह अस्ति है। कोई भ्रम कहकर 'नहीं' ऐसा कहे तो खोटी बात है। वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। समझ में आया ? उससे हुआ कर्म। वह सब एक ही हुआ। उससे हुई सुख-दुःख की कल्पना। प्रतिकूल शरीर में रोग और कल्पना की, वह दुःख। कल्पना की, वह अज्ञान से उत्पन्न की है। धूल के ढ़ेर के समय सुखी, वह कल्पना अज्ञान से खड़ी की है। समझ में आया ?

चक्रवर्ती को अप्सरा जैसी छियानवे हजार स्त्रियाँ सम्यग्दृष्टि को, वहाँ कल्पना है ही नहीं। आहाहा! यह सुखरूप है, ऐसी कल्पना सम्यग्दृष्टि को है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ? एक कल्पना अस्थिरता की हो, वह गाँठ तोड़कर हो गयी है। अर्थात् अस्थिरता अद्धर से है। जहर जैसा दिखता है ज्ञानी को। यह भोग की वृत्ति अमृत के आनन्द के समक्ष जहर जैसी दिखती है। आहाहा! दुनिया ऐसा कहे कि चक्रवर्ती को—समकिती को मजा बहुत, हों! उसे भोग करे और बन्ध न हो। अरे! सुन तो सही। कौन करे ? उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आत्मा में सम्यक्त्व में आया है। अतीन्द्रिय आनन्द का भान है, अतीन्द्रिय के आनन्द (के समक्ष) भोग की वासना को जहर जानता है। यह जहर... जहर... जहर। आहाहा! कहो, समझ में आया ? इसलिए उसे सुख की कल्पना सम्यग्दृष्टि को नहीं। समझ में आया ?

सत्य वस्तु आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप आत्मा जिसकी दृष्टि में आया, वह तो आनन्द का स्वाद आया, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया। अतीन्द्रिय पूर्ण ज्ञान

की प्रतीति में केवलज्ञान आ गया। पूर्ण दर्शन का पिण्ड प्रतीति में (आया), अनन्त वीर्य की कातली प्रतीति में आ गयी। आहाहा! समझ में आया? सम्यक् सत् है न, सत् प्रतीति। ऐसा सत्य स्वरूप जो है, वह श्रद्धा-ज्ञान में आया, (ऐसा) उसे अन्तर में उतरे, सुख की कल्पना है ही नहीं उसकी गन्ध में। आहाहा! समझ में आया?

वह भिखारी हो गरीब और दो रोटी खाता हो। एक रोटी कम करे। देखो, हमने भी कम किया, ऊनोदरी खाते हैं। और यह ज्ञानी कहते हैं न, दूधपाक और पूड़ी खाते हैं। सुन न मूर्ख! तेरे गज खोटे हैं। देखा? अष्टमी के दिन हम दो रूखी रोटी खाते हैं, यह करते हैं। समझे इतना त्याग तो चाहिए या नहीं? हमारे अष्टमी हो तो दो रूखी रोटी खाते हैं, लो। छाछ और भात। यह तो दूधपाक और पूड़ी खाता है। सुन न! कौन खाता है? तू भी कहाँ खाता है? अज्ञानी मानता है कि मैंने यह कम किया और मैंने कम किया। राग कम किया नहीं परन्तु मिथ्यात्व पुष्ट किया। आहाहा! यह मैंने छोड़ा, ऐसा मिथ्यात्व का पोषण विशेष-विशेष किया। यह वह माप कौन करे? समझ में आया?

इस भगवान आत्मा की पर्याय में—खण्ड में अज्ञान से उत्पन्न हुए भाव, वे जीव ने उत्पन्न नहीं किये। अर्थात् कर्म ने अज्ञानभावरूपी कर्म और उससे बँधे हुए कर्म, उसने उत्पन्न किये हुए हैं। **कर्म-संयोगकर उत्पन्न हुए हैं...** स्वभाव से नहीं, ऐसा कहते हैं। संयोगी भाव उत्पन्न किया, उससे संयोगी कर्म (बँधे, उससे उत्पन्न हुए हैं)। **और आत्मा तो वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थिर हुआ वस्तु को वस्तु के स्वरूप देखता है, जानता है,...** उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा उसे कहते हैं कि जो अपने ज्ञान-दर्शन की निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान में आत्मा को जाने-देखे, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! रचना भी...! समझ में आया? उस पर्याय के सामने पर्याय ली। वीतराग निर्विकल्प शान्ति की दृष्टि-ज्ञान की शान्ति, उससे हुए....

वस्तु को वस्तु के स्वरूप देखता है, जानता है,... भगवान आत्मा को जानता-देखता है। ज्ञानी अपनी पर्याय में आत्मा को जानता-देखता है, उसे सुख-दुःख की कल्पना नहीं। आहाहा! **रागादिकरूप नहीं होता,...** वह ज्ञानी रागरूप नहीं होता। वह तो स्वभाव के सन्मुख की दृष्टि, शान्ति और समाधि अर्थात् शान्ति, उसरूप धर्मी होता है। धर्मी रागरूप होता नहीं। ओहो! **उपयोगरूप है,...** धर्मी तो उपयोगरूप है। जानन-

देखन उपयोगरूप है। **ज्ञाता-दृष्टा है, परम आनन्दरूप है।** तीनों इकट्ठे लिये। जाननेवाला-देखनेवाला धर्मी। वस्तु ज्ञाता-दृष्टा आनन्दमय, ऐसी दृष्टि में भी ज्ञाता-दृष्टा और आनन्दमय है। कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आनन्दमय है। आहाहा! जानने-देखने की पर्यायसहित आनन्दमय पर्याय है।

यहाँ पारमार्थिक सुख से उल्टा... ऐसा जो पारमार्थिक भगवान आत्मा का सुख आनन्द, उससे उल्टा, **जो इन्द्रियजनित संसार का सुख-दुःख...** समझ में आया? आहाहा! ऐसा पारमार्थिक आत्मा का ज्ञाता-दृष्टा और आनन्दपना पर्याय का, ऐसे सुख से उल्टा इन्द्रियजनित संसार सुख-दुःख—यह इन्द्रिय के लक्ष्य से उत्पन्न कल्पना, वह **आदि विकल्प समूह है, वह त्यागनेयोग्य है,...** वे सब विकल्प छोड़नेयोग्य हैं। **ऐसा भगवान ने कहा है,...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं। भाई! यह सुख-दुःख की कल्पना छोड़नेयोग्य है। भगवान आत्मा परम आनन्दस्वरूप, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति में रहनेयोग्य है। उसके द्वारा आत्मा उपादेय है और राग-द्वेष हेय है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १, बुधवार, दिनांक - १०-११-१९६५
गाथा - ६५, ६५.१, प्रवचन - ४६

गाथा - ६५

६५) बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहँ कम्मु जणेइ।
अप्पा किंहपि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउँ भणेइ॥ ६५॥

भगवान तीर्थंकरदेव परमात्मा सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं, '**भणेइ**' है न अन्दर ? कि निश्चयनयकर... जरा सूक्ष्म बात है। यह वस्तु जो है आत्मा, वह ध्रुव चैतन्य आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति अनन्त गुण का ध्रुवस्वभाव आत्मा है। आत्मा वस्तु जो है आत्मपदार्थ, वह तो ध्रुव आदि-अन्तरहित, अकृत्रिम, अनन्त-अनन्त शान्त, सामान्य गुणस्वरूप तत्त्व है। सूक्ष्म बात है। कभी इसने आत्मा क्या है, उसकी दृष्टि की नहीं। अनन्त काल में की नहीं। वह निश्चय से भगवान वस्तु आत्मा पदार्थ, **बन्ध और मोक्ष कर्मजनित ही है, कर्म के योग से बन्ध और कर्म के वियोग से मोक्ष है, ऐसा कहते हैं**—क्या कहते हैं ? यह स्पष्टीकरण आयेगा। एकदम सूक्ष्म बात है।

अन्वयार्थ :- हे जीव! बन्ध को और मोक्ष को सबको जीवों के कर्म ही करता है,... शब्दार्थ। **आत्मा कुछ भी नहीं करता, निश्चयनय ऐसा कहता है, अर्थात् निश्चयनय से भगवान ने ऐसा कहा है।** जरा सूक्ष्म बात है, हों! अभी स्पष्टीकरण करेंगे। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अर्थात् एक समय में—सूक्ष्म काल में जिन्होंने तीन काल—तीन लोक ज्ञान में प्रत्यक्ष देखे, देखे-जाने। ऐसे अरिहन्त भगवान जिन्हें एक समय—सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, उसके अन्दर में आत्मा की केवलज्ञान, केवलदर्शनदशा द्वारा तीन काल—तीन लोक भगवान के ज्ञान में ज्ञात हुए। उन भगवान की वाणी में ऐसा आया कि, भाई! निश्चय अर्थात् सत्य तत्त्व से देखें, सत्य तत्त्व यह वस्तु जो वस्तु, वस्तु पदार्थ भगवान आत्मा सत्-शाश्वत् पदार्थ ध्रुव, उसमें बेहद ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसा सत्त्व का आत्मतत्त्व है, वह तत्त्व स्वयं

कर्म को उपार्जित करे या कर्म को छोड़े, वह वस्तु में नहीं। ध्यान रखना, जरा सूक्ष्म बात है, भाई!

भगवान ऐसा कहते हैं। वस्तु स्वयं वस्तु, वस्तु शाश्वत् अनन्त अनादि-अनन्त वस्तु ध्रुव चैतन्यमूर्ति, जिसका अनन्त गुण सामान्य ध्रुवरूप स्वरूप, ऐसा निश्चय आत्मा, ऐसा सत्य भगवान, वह कर्म को उपार्जित करे या कर्म को टाले, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। सुनो, सुनो, सूक्ष्म बात है, भाई! इसने कभी सुना नहीं। भगवान क्या कहते हैं, यह इसने कभी वास्तविक तत्त्व को सुना नहीं।

वस्तु जो है, द्रव्य जिसे कहते हैं, उसकी पर्याय अर्थात् हालत अर्थात् दशा, वह अलग वस्तु है। ध्यान रखना, भाई! यह चीज़ इसने अनन्त काल से (जानी नहीं)। परमात्मा तीर्थंकरदेव कहते हैं कि **भगवान ने ऐसा कहा...** भाई! यह वस्तु जो है, वह स्वयं वस्तु है पदार्थ अनन्त आनन्द अनन्त... यह बात भी इसे कभी बैठी हो तब न, कि यह आत्मा किसे कहना। आत्मा अर्थात् यह नौ तत्त्व में आत्मा अर्थात् ध्रुव ज्ञायक आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप जैसा है पर्याय में भगवान को, वैसा इस वस्तु का स्वरूप है आत्मा। वह वस्तु स्वयं कर्म को बाँधे और कर्म को छोड़े, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। उस वस्तु के स्वरूप के अज्ञान में... जो पर्याय में—एक अंश में, वस्तु अखण्ड आनन्द ज्ञायकमूर्ति सत् चिद् अनादि-अनन्त अकृत सत् चिद् ऐसे अनन्त आत्मायें, वह आत्मा वस्तु स्वयं एक समय की दशा में आती नहीं।

यह पर्याय जो है, उस पर्याय में, अवस्था में, हालत में वस्तु के अन्तर के सन्मुख की दृष्टि बिना पर सन्मुख की दृष्टि से एक अंश के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ मिथ्यात्व भाव और राग-द्वेष भाव, वह वास्तव में कर्म कहलाता है। उससे बँधे हुए रजकण जड़ आठ कर्म ज्ञानावरणीय आदि। यह भावकर्म है, वह जड़कर्म है। वस्तु परमात्मा निज स्वरूप यहाँ परमात्मप्रकाश है न, वस्तु स्वयं परमस्वरूप परमात्मा ही वस्तु है। आहाहा! यह वह कैसे सुना जाये?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी की बात है यह। किसकी? तीनों काल भगवान है।

भाई! तू परमात्मा पूर्ण न हो तो पर्याय में परमात्मा आयेगा कहाँ से? पीपर के दाने में चौसठ पहरी चरपराहट वर्तमान में पूरी चौसठ अर्थात् रुपया, सोलह आना भरी न हो तो घिसने से बाहर चौसठ पहरी आयेगी कहाँ से? कहीं बाहर से आयेगी, आती है? समझ में आया? पीपर के दाने-दाने में छोटी पीपर चौसठ पहरी चरपराई और हरा रंग अन्दर पूरा न भरा हो तो घिसने से उसमें न हो तो आवे कहाँ से? जब चौसठ पहरी पर्याय प्रगट होकर हरा, हरे रंग की ऐसी प्रगट होती है, वह सब शक्तियाँ अन्दर में पड़ी हैं। समझ में आया?

उसी प्रकार भगवान आत्मा जो अरिहन्त और सिद्ध की पर्याय, वह पर्याय है अरिहन्त और सिद्ध; द्रव्य-गुण नहीं। सूक्ष्म बात है। उस पर्यायरूप से, अवस्थारूप से, केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द, पर्याय में परमात्मा होता है, वह पर्याय कहाँ से होती है? कहीं बाहर से आती है? इसे खबर नहीं। यह स्वयं ही परमात्मा अनन्त गुण की खान का निधान वस्तु द्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो आत्मा, उसकी अन्तर दृष्टि नहीं करके इसने अनादि से ऐसे बाह्य अंश की दृष्टि (की है), वर्तमान अंश में पूरा पदार्थ क्या है, उसे दृष्टि में न लेकर वर्तमान अंश में ऐसे इन्द्रिय राग, द्वेष, विकल्प को लक्ष्य में लिया पर्याय में, हों! इसने पर्याय में—अवस्था के अंश में—वर्तमान हालत की एक समय की दशा में इसने पर्याय में विकार उत्पन्न किया। उससे बँधे कर्म। उन कर्म के कारण आत्मा चार गति में भटके, बन्धन पावे और कर्म के अभाव में मुक्ति हो। इसलिए कर्म से ही मानो बन्धन हुआ और कर्म से मुक्ति अर्थात् यहाँ पर्याय में अटकी हुई दशा, वह उसकी नहीं गिनकर उससे कर्म और उन कर्म से बन्धन और उसके अभाव से मुक्ति, (ऐसा कहा)।

वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही त्रिकाल है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह आत्मतत्त्व अर्थात् भगवान सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ, तीर्थंकर परमात्मा ने कहा हुआ आत्मा, वह आत्मा इसने एक सेकेण्ड भी अनन्त काल में दृष्टि में लिया नहीं। बाकी सब उल्टा करके मर गया। आहाहा! समझ में आया? भगवान ऐसा कहते हैं, तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ प्रभु समवसरण में भगवान विराजते थे यहाँ, तब समवसरण में इन्द्रों की उपस्थिति, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव जिस काल में उनकी उपस्थिति में भगवान ऐसा कहते थे। महाविदेहक्षेत्र

में भगवान वर्तमान विराजते हैं, सीमन्धर परमात्मा वर्तमान विराजते हैं मनुष्यदेह में, वे भगवान ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! हे आत्मा! आहाहा! प्रभु! तुझे यह चार गति का बन्धन और उस बन्धन का अभाव, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। वह वर्तमान पर्यायनय से बन्धन और पर्यायनय से मुक्ति—ऐसा दो बतलाना है, भाई! आहाहा! यह वह कहीं बात! इसने कभी लक्ष्य में ली नहीं। समझ में आया? भगवान ऐसा कहते हैं, **भगवान ने ऐसा कहा है।** अब क्या कहते है? भावार्थ है, देखो!

भावार्थ :- अनादि काल की सम्बन्धवाली... अनादि काल से सम्बन्ध जिसमें है, आत्मा के साथ। वे कर्म रजकण हैं न, कर्म रजकण सूक्ष्म धूल—मिट्टी। कर्म हैं जड़ मिट्टी, धूल। आत्मा चैतन्यमूर्ति अरूपी आनन्दकन्द घन है। उसे निमित्त में आठ कर्म जड़ है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय है या नहीं? वे अजीव जड़ तत्त्व मिट्टी है। जैसी यह मिट्टी है स्थूल, वह सूक्ष्म मिट्टी, बारीक आठ कर्म की धूल है। समझ में आया?

लोगस्स में आता है। रज रयमळा नहीं आता? विहुयरयमलळा। अर्थ तो किसे आता हो! विहा रोई मळ्या ऐसा एक बार हुआ था। अर्थ नहीं आता था न, विहा रोई मळ्या। विसाश्रीमाली और दशाश्रीमाली को विवाद होगा। विहा रोई मळ्या। परन्तु यह लोगस्स में विहा रोई मळ्या कहाँ से आया? कि यह रहा। परन्तु उसमें ऐसा नहीं, वह तो विहुयरयमळा है। भगवानजीभाई! अर्थ की खबर नहीं होती, वस्तु की क्या स्थिति है (उसकी खबर) नहीं होती, ऐसे का ऐसा पहाड़ा बोलता गया अनन्त काल से। वह तो विहुय—विशेष, हुई अर्थात् धुई अर्थात् टाले हैं। विहुई—विशेष, हू अर्थात् धु होता है, विशेष टाले हैं। रयमळा। रय अर्थात् आठ कर्म की रज, धूल वह रज कहलाती है। आठ कर्म की धूल को रज कहा जाता है और मल वह पुण्य और पाप के विकल्प के भाव को मल कहा जाता है। भगवानजीभाई! यह यहाँ कहते हैं, देखो! दो की बात।

अनादि काल की सम्बन्धवाली अयथार्थस्वरूप अनुपचरितासद्‌भूतव्यवहारनय से... झूठे नय से, भाई! आहाहा! अयथार्थ। इसका अर्थ ही किया है असद्‌भूत का। ध्यान रखना! यह तो अन्तर की बातें इसने कभी सुनी नहीं, अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में जा आया। समझ में आया? परन्तु वास्तविक तत्त्व चैतन्य भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ किसे कहते हैं, उस आत्मा का इसने एक सम्यग्ज्ञान एक समयमात्र भी

किया नहीं। इसके बिना सब किया क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, राग बहुत शुभभाव हुए (तो) स्वर्ग में गया। परन्तु जन्म-मरण का अन्त उससे आया नहीं। धूल का देव हुआ और धूल का राजा हुआ। यह करोड़, पाँच करोड़, पच्चीस करोड़ का धूल का सेठिया हुआ। भगवान आत्मा क्या, उसकी इसने कभी श्रद्धा और ज्ञान अनन्त काल में इसने किया नहीं। कहते हैं, ऐसा जो भगवान आत्मा... यह भगवान, हों! स्वयं स्वरूप से परमात्मा। उसे सम्बन्ध है अनादि का। अयथार्थ स्वरूप से अनुपचरित अर्थात् सम्बन्धवाला असद्भूत व्यवहारनय से—झूठे नय से साथ में आठ कर्म का—जड़ का सम्बन्ध है। वह रजकण का, सूक्ष्म रजकण धूल का। वह झूठे नय से ऐसे व्यवहार से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। इतनी एक बात... हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही चलती नहीं। अभी तो धमाधम हो... हा और हरीफाई। धन्धे में जैसे हो..हा और हरीफाई, उसे धर्म के बहाने बाहर के क्रियाकाण्ड के हो... हा और हरीफाई। वस्तु क्या है? भगवान जिसे आत्मा कहते हैं, उस आत्मा का स्वरूप क्या है? उसे सम्बन्ध क्या है और किस सम्बन्ध से वह भटकता है? जमुभाई! गुजराती आवे तो भी भाव तो जो होगा, वह आयेगा या नहीं?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! हे आत्मा! तू तो परमात्म वस्तु के अन्तर स्वरूप में तो अनन्त बेहद ज्ञान-आनन्द का कन्द तू आत्मा है। उसे अनादि से जड़कर्म का झूठे नय से, सम्बन्ध वास्तविक नहीं; इसलिए झूठे नय से, सम्बन्ध नजदीक में है इसलिए, व्यवहार अर्थात् निमित्त है, इसलिए उसे सम्बन्ध जड़ का है, ऐसा अन-उपचारिक असद्भूत-झूठे नय से वह जड़ का सम्बन्ध है, ऐसा कहा जाता है, एक बात। वह द्रव्यकर्म बन्ध, द्रव्यकर्म बन्ध जड़ का, रजकण का। अब भावबन्ध, जो वह मल कहा था वह। रजकण हैं, वे जड़ हैं, धूल है, अजीव है, मिट्टी है। यह जैसे मिट्टी है, वैसे जड़कर्म धूल है। उनका सम्बन्ध जीव को असद्भूत से व्यवहारनय से—झूठे नय से ऐसा सम्बन्ध है। क्योंकि यह चैतन्य और वे जड़, दो का सम्बन्ध झूठे नय से है। आहाहा! अब यह स्त्री, पुत्र का सम्बन्ध धूल में भी नहीं। समझ में आया?

दूसरी बात। **अशुद्धनिश्चयनय से...** अब जो भगवान वस्तु... वस्तु... वस्तु...

परमात्म अपना निजस्वरूप। द्रव्यस्वरूप, वस्तुस्वरूप, पदार्थस्वरूप, अखण्ड ज्ञायकभाव तत्त्व, उसे जो पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत, काम, भोग के आदि पुण्य-पाप के भाव जो हैं, वे अशुद्ध निश्चयनय से। अर्थात् कि उसके वर्तमान अंश में है। वे रजकण उसके अंश में नहीं थे। रजकण भिन्न हैं, दूर है। वे रजकण क्षेत्र से भले हों, परन्तु दूर है। वे इसकी जाति में, एक अंश में भी नहीं। वस्तु, वस्तु जो त्रिकाल है, उसमें तो वे कर्म नहीं परन्तु एक समय की अवस्था में वे कर्म नहीं, कर्म तो ऐसे भिन्न हैं, इसलिए उसे असद्भूतनय कहा। आहाहा!

परन्तु उसकी वर्तमान दशा में, दशा में; वस्तु में नहीं। वस्तु जो है अखण्ड आनन्द ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द परमेश्वर स्वयं ऐसा भगवान आत्मा यह, उसे वर्तमान पर्याय अर्थात् अंश दशा में, अंश दशा में; वे रजकण तो अंश दशा में भी नहीं थे, भिन्न हैं रजकण, मिट्टी; इसलिए उसे असद्भूत—झूठे नय से सम्बन्ध कहा। यह नहीं। इतना तो सम्बन्ध है उसकी पर्याय में, वर्तमान दशा में अशुद्ध निश्चयनय अर्थात् उसकी दशा में यह निश्चय है परन्तु अशुद्ध है। पुण्य, पाप, काम, क्रोध, दया, दान, विकल्प जो उठते हैं, वह राग है, विकार है, वह विकार उसके एक अंश में, एक अंश में है इसलिए—उसे उसका अंश है इसलिए—निश्चय कहा, परन्तु अशुद्ध है, इसलिए अशुद्धनिश्चय से उसका सम्बन्ध है, (ऐसा) कहा। गजब यह तो, कितना समझना इसमें लोगों को। यह व्यापार में हैरान होता नहीं ? दो लाख पैदा करना हो तो मर जाये पूरे दिन मजदूरी कर-करके। मजदूरी अर्थात् राग-द्वेष, हों! दूसरा कुछ नहीं होता वहाँ हराम करता हो तो। बैठे-बैठे राग और द्वेष... राग और द्वेष, संकल्प-विकल्प, बाकी हराम कुछ करे तो। जड़ की दुकान की व्यापार की अवस्था उसके—जड़ के कारण से हुई, आत्मा उसे कर नहीं सकता। अरे.. अरे! आहाहा! समझ में आया? वह तो परपदार्थ है, उसे क्या करे यह ? संकल्प-विकल्प, संकल्प-विकल्प के झूले में। अशुद्ध निश्चय से...

देखो! यह गाथा बहुत अलौकिक है। यह तो परमात्मप्रकाश है। आहाहा! **रागादि भावकर्म के बन्ध को...** देखो! जो पुण्य और पाप विकल्प जो उठे वृत्तियाँ शुभ और अशुभराग, वासना उठे वृत्तियाँ, शुभ-अशुभभाव विकल्प, वह भावकर्म

कहलाता है, मल है इसलिए। परन्तु उसका—पर्याय का भाव कार्य है, द्रव्य का नहीं। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : द्रव्य कार्य बिना का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य पर्याय बिना का है। द्रव्य में पर्याय कैसी? द्रव्य वस्तु है, उसमें पर्याय कैसी? यह तो पर्याय की बात चलती है, द्रव्य तो द्रव्य है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? क्या कहा?

भगवान आत्मा वस्तु है। वस्तु है या नहीं अनादि-अनन्त? या नयी है? किसी ने की है? है, वह सत् है; सत् है, वह अनादि है। सत् है, वह अनन्त काल रहनेवाला है। ऐसा जो अनन्त काल का अन्त:सत्त्व वस्तु बेहद ज्ञान, दर्शन, आनन्द का सत्त्व से भरपूर तत्त्व—ऐसा द्रव्य; द्रव्य अर्थात् वस्तु। उस वस्तु में वर्तमान दशा में—वर्तमान एक समय की हालत में कर्म का सम्बन्ध कहना, वह भिन्न है, इसलिए असद्भूत—झूठे नय से सम्बन्ध कहना, परन्तु उसकी पर्याय के एक अंश में, पूरा ऐसा द्रव्य भरपूर, तथापि उसकी एक समय की वर्तमान हालत अर्थात् पर्याय अर्थात् दशा में पुण्य और पाप, भ्रमणा, राग-द्वेष, यह पुण्य में मजा है, पुण्य के फल में मजा है, पुण्य विकल्प है, वह मुझे ठीक है, यह पुण्य के फल में मुझे मिठास—मजा आता है, ऐसा जो मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्व भाव। समझ में आया? ऐसा मिथ्यात्व भाव, वह उसकी पर्याय के एक अंश में है। अंश में है, इसलिए उसे निश्चय कहा और मलिन है, इसलिए उसे अशुद्ध कहा। समझने के लिये इसे एकाग्र होना पड़े। उसमें तो... एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रि इन्द्रिया... जाओ! कुछ है समझने का? यह इरिया, ववरोविया अन्दर होता है, उसकी यह बात चलती है। भगवानजीभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण घन, आनन्दकन्द द्रव्य वस्तु, उसे राग के विकल्प के प्रेम में उसका अनादर किया, वह तेरे जीवत्व का घात होता है। वह जीवन का घात होकर उत्पन्न हुआ विकल्प, इतना तत्त्व वह मैं नहीं, यह नहीं, यह नहीं। क्योंकि इसने अनन्त काल में उस ओर का लक्ष्य और ध्येय कभी किया नहीं। इसलिए परम आनन्दमूर्ति भगवान वस्तु, जिसकी खान में अनन्त परमात्मा स्थित हैं। किसमें? शक्ति में। अनन्त सिद्ध होते हैं, सिद्ध होते हैं न? तो सिद्ध की पर्याय है न,

सिद्ध कहीं द्रव्य-गुण नहीं। सिद्ध की दशा है, हालत है, पर्याय है। एक सिद्ध की पर्याय हुई, वह सिद्ध की पर्याय एक समय रहे, दूसरे समय न रहे। दूसरे समय में नयी हो। यह सब इसने सुना कहाँ है कभी? ऐसी जब से सिद्ध हो, वह अनन्त काल से नयी-नयी पर्यायें हुआ करती है परमात्मा की। ऐसे अनन्त परमात्मा आत्मा के द्रव्य में स्थित हैं अन्दर में। भगवान जाने आत्मा वह कैसा होगा!

ऐसा जो आत्मद्रव्य वस्तु, उसकी वर्तमान पर्याय के अंश में वस्तु का आदर छोड़कर जो एक समय के अंश में आदर किया, वह मिथ्यात्वभाव खड़ा किया, उसके कारण से राग-द्वेष हुए, वह अशुद्धनिश्चय से हुए हैं। शुद्धनिश्चय के स्वभाव में वे नहीं। शुद्धनिश्चय अर्थात् शुद्ध सत्, शुद्ध सत्। यह अशुद्ध सत् एक समय का। आहाहा! यह अब कैसी भाषा? ऐसी वह कहीं वीतरागमार्ग में होगा ऐसा? अरे! भाई! तूने वीतरागमार्ग जैन परमेश्वर त्रिलोक के नाथ तीर्थंकर ने क्या कहा है, वह सुना नहीं। समझ में आया? अजैन को जैनपना मानकर माने कि भगवान ने ऐसा कहा है। खबर नहीं, क्या करे? अनन्त काल ऐसा का ऐसा गया। यह कहेंगे बाद में, हों! यह इसके बाद श्लोक ही यह कहेंगे, बाद में श्लोक कहेंगे। यह वीतराग की वाणी में, आत्मा का सुख आत्मा में अनन्त काल में क्या है, ऐसा वीतराग ने कहा, उसे जाने बिना चौरासी के अवतार में कोई अवतार खाली रखा नहीं, इतने अवतार किये। यह बाद में कहेंगे, यह बात करने के बाद (कहेंगे)। समझ में आया? यहाँ तो बहुत ध्यान रखे बिना समझ में आये ऐसा नहीं। वार्ता हो तब तो ऐसा आड़ा-टेढ़ा चला जाये तो बीच में सांध ले।

भगवान! तेरी बात भगवान करते हैं। सुन तो सही, कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं, नहीं कहा? सर्वज्ञ प्रभु समवसरण धर्मसभा में भगवान कहते थे, दिव्यध्वनि द्वारा भगवान की वाणी में यह आया था। प्रभु! तू पूर्ण स्वरूप से वस्तु है भगवान! उसका तूने आदर नहीं किया और एक समय की पर्याय के लक्ष्य में खड़ा रहा और मिथ्या भ्रम और राग-द्वेष उत्पन्न किये। वह तेरे एक समय की, समय अर्थात् सूक्ष्म काल, उस सूक्ष्म काल में तेरी पर्याय के अस्तित्व में वह खड़ा हुआ विकार है। उस विकार का तुझे सम्बन्ध अशुद्ध निश्चय से है। समझ में आया? एक-एक सब भाषा अलग प्रकार की यह। धरमचन्दजी! अरे... ऐसा वह कैसा धर्म भाई? आहाहा!

भगवान! तू कौन है? बापू! और तेरी भूल कितने काल की और कितनी? यह इसने कभी विचार किया नहीं। ओहोहो! यह कहते हैं, भगवान! तू तो वास्तव में तो अशुद्ध निश्चय से हुआ विकार और कर्म के सम्बन्धरहित है, भाई! छोटाभाई! आहाहा! ऐसी चीज़ तेरी अन्दर पूर्ण है। परन्तु विकार-विकल्प उत्पन्न करके और वह विकल्प, वह मेरा स्वरूप है, ऐसा मानकर मिथ्यादृष्टि की पर्याय में, उस पर्याय का सम्बन्ध तुझे अशुद्ध निश्चय से है। निश्चय अर्थात् अंश सत् का सत्पना है इतना, वह अशुद्ध है। त्रिकाल भगवान शुद्ध के साथ यह सम्बन्ध तो अशुद्ध निश्चय से है। कहो, समझ में आया इसमें?

और कर्म के रजकण जड़ हैं, उनका सम्बन्ध तो, वह जड़ तो एक समय की अवस्था में भी यहाँ नहीं। वह तो ऐसे सम्बन्ध है, इसलिए ऐसे असद्भूतनय से उनका सम्बन्ध कहा और यह एक समय का भगवान पूर्णानन्द प्रभु वस्तु की एक समय की हालत की भूल का सम्बन्ध अशुद्ध, अशुद्ध है और निश्चय अर्थात् वास्तव में उसका अंश है पर्यायदृष्टि से, हों! पर्यायदृष्टि से। आहा! पर्याय क्या और द्रव्य क्या और यह क्या होगा यह सब? अशुद्ध निश्चय से और असद्भूत व्यवहार से। जगत के एम.ए. और बी.ए., एम.डी. के पूंछड़े लगाये हों तो वहाँ सीखे सब। मेट्रिक के लिये सीखे। मर जाये, जिसमें सब अज्ञान भरा है। ऐसा होगा या नहीं? और वह वापस पैसा मिलना, वह कुछ पढ़ा, एल.एल.बी. की डिग्री, इसलिए पैसा मिले, ऐसा भी नहीं है। यह वापस पूर्व के रजकण पुण्य के पड़े हों तो मिले। मर जाये, बड़ा बैरिस्टर हो तो मिले नहीं। आहाहा! ऐ... धरमचन्दजी!

मुमुक्षु : ज्यादातर मिल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्यादातर मिल जाये... मिले, धूल में भी मिले नहीं। वह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु—रजकण वहाँ पड़े हैं, पूर्व में कोई शुभभाव किया हुआ हो जरा, उसके रजकण बारीक—धूल बँधी हुई हो, उस धूल का पाक काल आया हो, तब गोटी बैठ जाय तो यह पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ मिले। मूढ़ कहे कि मेरे पुरुषार्थ से मिले। वह तो दुगुना पाप बाँधता है। आहाहा! समझ में आया? एक तो राग करता है और उससे मिले, ऐसा माने वह मिथ्यात्व के साथ बाँधता है। धरमचन्दजी!

यह वीतराग के रास्ते अलग हैं, दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं। आहाहा! कैसे होगा? मलूकचन्दभाई! ऐसा होगा? इनके पुत्र को दो करोड़ हुए हैं। परन्तु उसने दो करोड़ पैदा किये या नहीं पूनमचन्द ने? क्या कहा यह? धूल में भी नहीं। दो करोड़ तो धूल में है, उसके पास कहाँ आये हैं? उसने ममता की है कि यह मुझे (मिले)। वह ममता। वह ममता इसकी पर्याय में है, आत्मा की अवस्था में है, इसलिए उसे शुद्ध त्रिकाल के साथ अशुद्ध निश्चय से सम्बन्ध कहा जाता है। और रजकण जो धूल है, भिन्न है, वह झूठे नय से उनका सम्बन्ध कहा जाता है। क्योंकि उसमें कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! स्त्री, पुत्र तो कहीं रह गये, हों! दुकान-बुकान कहीं रह गयी। उसका सम्बन्ध कैसा होगा? ऐई! वह असद्भूत उपचार। वह वापस आरोप।

दुकान, स्त्री, पुत्र, धूल, पैसा, गहने, मकान हजीरा—विशाल मकान, लाख, दो लाख, पाँच लाख का सम्बन्ध जीव को कैसा? कि असद्भूत—झूठे नय से, व्यवहार अर्थात् निमित्तरूप से उपचार से है, क्योंकि दूर है इसलिए। और कर्म रजकण तो यहाँ नजदीक एकक्षेत्रावगाह है, इसलिए उसे अनुपचार नजदीक की अपेक्षा से अनुपचार कहा, परन्तु है असद्भूत। उसकी पर्याय में अन्दर घुसे नहीं, भिन्न रहे इसलिए। यह स्त्री, कुटुम्ब, मकान तो भिन्न रहे हैं। उसकी एक समय की दशा में भी यह नहीं आये। अथवा एक क्षेत्र अवगाह से भिन्न नहीं। उसके एक क्षेत्र में भिन्न वे कर्म हैं, और यह तो भिन्न क्षेत्र में भिन्न है स्त्री, पुत्र, इसलिए असद्भूत व्यवहारनय से उपचार है, उसके साथ कुछ वास्तविक सम्बन्ध है नहीं। गजब बात, भाई! कैसे होगा इसमें? गुलाबचन्दभाई! ऐई! मोहनभाई! समझ में आया या नहीं? जेचन्दभाई! यह अभी गिर गये थे, भाई! भाई! शरीर वह जड़ है, उसे क्या आत्मा रख सकता है? खड़ा रखे और रोक सके? तीन काल, तीन लोक में नहीं। जड़, मिट्टी, धूल है वह। उसकी अवस्था कैसे होना, (वह) आत्मा के विकल्प और राग के आधीन नहीं। तीन काल में नहीं, ऐसा भगवान कहते हैं। अजीवतत्त्व की अवस्था जीव कर सके तो अजीव स्वतन्त्र रहता नहीं। आहाहा! गिरे थे अभी, फिर उठाकर लाये अन्दर में। वह तो धूल है।

भगवान! तेरे तत्त्व में वह धूल नहीं, तेरे तत्त्व में तो कर्म की धूल भी नहीं। वह भिन्न रह गया तत्त्व है। तेरे तत्त्व की एक समय की अवस्था में यह मैल—पुण्य-पाप के

भाव अशुद्धरूप से असत्पने अंश है। उस अंश से बँधे हुए कर्म। वे कर्म ने बन्ध किया और वह कर्म छूटे तो मुक्ति हो। पर्याय में बन्ध-मुक्त है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! पर्याय क्या, द्रव्य क्या और यह क्या होगा यह? अरे! वीतराग के मूल ऐकड़ा, उसे भी सुना न हो और इसे करना धर्म! जमुभाई! वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्व सन्तों ने सरल कर दिये हैं, उसमें कुछ गड़बड़ है नहीं। तीन काल, तीन लोक जिन्हें—परमात्मा को भासित हुए, उनकी वाणी में जो तत्त्व की स्पष्टता आयी, उसमें कोई गड़बड़ तीन काल में कहीं नहीं। उसकी इसे खबर नहीं होती, इसलिए गड़बड़ माने तो क्या हो? समझ में आया?

कहते हैं, **भावकर्म के बन्ध को तथा दोनों नयों से द्रव्यकर्म भावकर्म की मुक्ति को यद्यपि जीव करता है,...** देखो भाषा। यह वापस जड़कर्म से मुक्ति, वह भी असद्भूत व्यवहारनय से (कहा)। क्योंकि असद्भूत सम्बन्ध था और पुण्य-पाप के भाव का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चय से था, उस नय से छूटा। बहुत सूक्ष्म बात है, हों! यह वीतराग का कहा हुआ तत्त्व बहुत गूढ़ है। सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ भाव दुनिया में कहीं तीन काल में उसके साथ बात मिल सके, ऐसी नहीं। किसी के साथ मिलान नहीं, किसी पंथ के साथ, किसी मार्ग के साथ मिलान नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं, भगवान आत्मा वस्तु, वस्तु, ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अनादि-अनन्त ऐसे तत्त्व की अन्दर पर्याय में यह दो प्रकार कहे। एक समय की अवस्था में, हालत में, मलिन भाव, वह अशुद्ध निश्चय से सम्बन्ध कहा और रजकण का सम्बन्ध असद्भूत अनुपचार क्षेत्रावगाह में है, इसलिए (कहा)। एक, दो नय से वापस बन्ध और मुक्ति कही। उस असद्भूत का अभाव होना, वह असद्भूत से मुक्ति की कहलाती है असद्भूत से और अशुद्ध परिणाम थे, वे भले आत्मा का आश्रय करके किये, परन्तु उस अशुद्ध से, अशुद्ध कहो या व्यवहार कहो यहाँ तो, शुद्ध निश्चय परमात्मा में बन्ध का होना और बन्ध का अभाव (होना), वह वस्तु में—द्रव्य में है नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

एक समय की पर्याय में—अवस्था—हालत में बन्ध और उसका अभाव एक समय की अवस्था। अभाव की अपेक्षा, परन्तु वह अशुद्ध निश्चय से लागू पड़ता है। यह व्यवहार कहो, परन्तु अशुद्ध कहो या व्यवहारनय कहो, सब एक है। उसका ही भेद

का अंश है, इसलिए व्यवहार से उसे बन्ध में और व्यवहार से उसे मुक्ति। निश्चय स्वरूप से भगवान द्रव्यस्वरूप में बन्ध और मुक्तपना वस्तु में नहीं। परन्तु यह क्या? ऐ... रतिभाई! भाई!

वस्तु जो है त्रिकाली तत्त्व, उसका बन्ध हो तो वस्तु का अभाव हो जाये। उसकी मुक्ति हो तो क्या? वह नहीं थी चीज़, इसलिए मुक्ति हुई? वस्तु... वस्तु... वस्तु... अनादि-अनन्त चैतन्य द्रव्य-पदार्थ है। वह वस्तु एक समय की पर्याय में बन्ध और एक समय की पर्याय में बन्ध का अभाव (होता है)। वह पर्याय-अवस्था से बन्ध और मुक्ति है, वस्तु के बन्ध-मुक्त है नहीं। यहाँ तो उत्पाद कहकर व्यवहार में डाला, संसार और मुक्ति दोनों। आहाहा!

भाई! तेरा पदार्थ तो महा पदार्थ है, भगवान। आहाहा! भगवान के जितना ही तेरा पदार्थ है। भगवान का आत्मा और यह आत्मा कहीं वस्तु से अन्तर नहीं। उसकी अवस्था में, हालत में अन्तर पड़ा। परन्तु वह हालत अर्थात् पर्याय, पर्याय में अन्तर पड़ा अर्थात् व्यवहार से अन्तर पड़ा। परमार्थ के वस्तु में अन्तर है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य है। यह आत्मा चैतन्यसूर्य का पिण्ड ही, चैतन्य का पिण्ड ही प्रभु आत्मा है। अकेला चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु भगवान है। उसकी इसे खबर नहीं, इसलिए एक समय की दशा में इसने खड़ा किया हुआ विकल्प, विकार, मिथ्यात्व भाव, वह भावकर्म हुआ। वह निमित्त पाकर नये रजकण बँधे, वह जड़कर्म हुआ। यह अशुद्ध, वह व्यवहार असद्भूत। दोनों का अभाव होना, वह भी असद्भूत से कर्म का अभाव होना, अशुद्ध निश्चय से विकार का अभाव होना। शुद्ध निश्चय के वस्तु के स्वरूप में वस्तु है, वह है। वास्तव में तो भगवान आत्मा वस्तु स्वरूप से है, उसका आश्रय करके पर्याय हुई, वह भी भेदरूप हुई न? भाई! यह व्यवहार हो गया। मोक्षमार्ग व्यवहार हो गया। अभी निश्चय और व्यवहार की बात नहीं, अभी द्रव्य और पर्याय की बात है।

भगवान आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... अनादि-अनन्त ध्रुव अनन्त गुण का पिण्ड, उसका आश्रय किया सम्यग्दर्शन-ज्ञान ने, वह जो पर्याय प्रगट हुई, पर्याय प्रगट होती है, वह पर्याय व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है, वह व्यवहारनय का

विषय है, द्रव्य है, वह निश्चय त्रिकाल शुद्ध निश्चय का विषय है। तो पर्याय व्यवहार का विषय और अन्दर पूर्ण जहाँ एकाग्र हो गया तो केवलज्ञान प्रगट हुआ, सिद्ध हुए। वह सिद्ध भी व्यवहारनय का विषय है। व्यवहार अर्थात्? त्रिकाली द्रव्य का एक अंश है वह। सिद्धदशा भी एक अंश है, त्रिकाली स्वरूप नहीं। आहाहा! अंशी, अंश को क्या कहते हैं? भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! संसार भी एक पर्याय है, अंश विकृत दशा और मोक्ष, वह पूर्ण निर्विकारी दशा—हालत है। वस्तु तो अनादि-अनन्त ध्रुव है। उसके ऊपर हुई यह दो प्रकार की हालत है। समझ में आया?

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका अन्तर आश्रय किया, दृष्टि की, कि अहो! यह तो शुद्ध चिदानन्दमूर्ति है। यह कहेंगे अभी नीचे। देखो! **दोनों नयों से द्रव्यकर्म भावकर्म की मुक्ति को यद्यपि जीव करता है,...** जीव करता है अर्थात् इस नय से करता है, हों! **तो भी शुद्धपारिणामिक परमभाव के ग्रहण करनेवाले...** शुद्ध पारिणामिक वस्तु जो पारिणामिक सहज स्वभाव है, जो कभी पलटती नहीं, उत्पाद-व्यय में आती नहीं। यह उत्पाद-व्यय और क्या होगा? यह समय-समय में भगवान उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् कहते हैं, छहों द्रव्यों को। छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। छह द्रव्य। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु मिट्टी अनन्त, एक असंख्य कालाणु है अरूपी, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। भगवान के ज्ञान में छह द्रव्य आये हैं। इन छहों द्रव्यों में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है। नयी अवस्था उपजे, पुरानी अवस्था जाये और स्वयं ध्रुवरूप से टिका रहे। ऐसा भगवान ने जगत का स्वरूप देखा है। आहाहा! उसमें जो आत्मा में नयी पर्याय उत्पन्न होती है, पुरानी पर्याय जाती है, वह पर्याय-अवस्था जाती है, होती है। वस्तु ध्रुव है, वह तो ऐसी की ऐसी है। समझ में आया? ऐसा वीतरागमार्ग जैनधर्म होगा? बापू! जैनधर्म क्या है, भाई! तुझे सुनने में मिला नहीं, बापू! भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। परमेश्वर के घर का परमेश्वर को प्राप्त करने का (मार्ग है)। स्वयं परमेश्वर, हों! दूसरा कोई है नहीं। वह भगवान उसके (स्वयं के) परमेश्वर, इसके कहाँ परमेश्वर हैं? समझ में आया?

परम ईश्वर शक्तिवाला तत्त्व अपना स्वतः है, ऐसा जो आत्मा को, कहते हैं देखो! तो शुद्धपारिणामिक भाव है वह तो। शुद्धपारिणामिक अर्थात् परम स्वतः स्वरूप

एकरूप रहनेवाला। परमभाव... परमभाव... परमभाव। यह पर्याय मोक्ष का और संसार का वह तो अपरमभाव है, एक समय की अवस्थावाला भाव है। वस्तु जो है त्रिकाली **शुद्धपारिणामिक परमभाव के ग्रहण करनेवाले शुद्धनिश्चयनय से नहीं करता है,...** भगवान शुद्धपारिणामिक वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वह वस्तु स्वयं बन्ध को करती नहीं और बन्ध का अभाव करती नहीं। वह तो उसकी अवस्था में (होता है)। अवस्था अर्थात् एक समय की दशा, एक समय की दशा में बन्ध, मलिनता और एक समय की दशा में मलिनता का अभाव और केवलज्ञान। वह भी एक समय की दशा ही है केवलज्ञान। केवलज्ञान कोई त्रिकाली चीज़ नहीं। उसे त्रिकाली का जानना भले आवे, परन्तु केवलज्ञान एक समय की दशा है। सिद्ध भी एक समय की दशा है, दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी, ऐसी अवस्था उसकी पलटा करती है।

इसमें एक-एक बोल घर में क्या कहना है? क्या सुना था? वार्ता हो तो कही जाये कि... यह हरितकाय का त्याग किया, फलाना त्याग किया। ऐसा कहे। यहाँ कहते हैं, सुन तो सही! परन्तु त्याग किसे कहना? कोई चीज़ घुस गयी है? उसके साथ सम्बन्ध क्या है? तूने क्या किया? करनेवाला कौन है? अवस्था में क्या हुआ, इसकी खबर बिना त्याग कहाँ से किया तूने? पोपटभाई! अपना वस्तु के स्वभाव का त्याग करता है दृष्टि में। आहाहा! गाथा भी ऐसी है न, हिला दे ऐसी है जरा। कहते हैं, एक समय की हालत—दशा जो है, वह दशा संसार की हो या उसके अभाव की हो, वह वस्तुस्वरूप परमपारिणामिक वस्तु सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... अनादि-अनन्त ऐसा आत्मा इस नय से वह विकार को करता भी नहीं और विकार को टालता भी नहीं।

बन्ध और मोक्ष से रहित है,... भगवान वस्तु स्वरूप है। ध्रुव, ध्रुव अखण्डानन्द द्रव्य तो वर्तमान पर्याय का बन्ध और बन्ध का अभाव, वह वस्तु में नहीं। **ऐसा भगवान ने कहा है।** है? ऐसा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में भगवान फरमाते थे। समझ में आया? आहाहा! परमात्मा विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर प्रभु (विराजते हैं)। ऐसे बीस तीर्थंकर वर्तमान विराजते हैं। लाखों केवली वर्तमान विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। यह कल्पना नहीं, हों! कहीं सब चित्रित किया जा सकता है एकदम एक बात में?

सब सिद्ध हो गया है। बीस तीर्थंकर विराजते हैं वर्तमान मनुष्य क्षेत्र के ऊपर, हों! केवलज्ञानी तीर्थंकर अरिहन्त 'णमो अरिहंताणं' इस पद में। महावीर भगवान आदि तो 'णमो सिद्धाणं' हो गये, अब अरिहन्त पद में नहीं, वे तो सिद्ध हो गये, अशरीरी हो गये। णमो सिद्धाणं में वे तो गये। अरिहन्त पद में तो विराजते हैं भगवान अभी। बीस तीर्थंकर और लाखों केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। भरतक्षेत्र में नहीं। समझ में आया? वे भगवान वहाँ ऐसा फरमाते हैं। तीन काल के भगवान ऐसा फरमाते हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ऐसी बातें कहाँ से आयीं? आहाहा! बाप-दादा समझते नहीं थे। ऐई! नागनेश में था यह? नहीं? आहाहा!

कहते हैं, **बन्ध और मोक्ष से रहित है,...** भगवान वस्तु परम स्वभावभाव त्रिकाल एक वस्तु पर्याय के बन्ध-मोक्षरहित है। **ऐसा भगवान ने कहा है। यहाँ जो शुद्धनिश्चयनयकर बन्ध और मोक्ष का कर्ता नहीं,...** देखो! वस्तु जो द्रव्य, वस्तु परम स्वरूप त्रिकाल आनन्दकन्द ज्ञायकद्रव्य, **वही शुद्धात्मा आराधनेयोग्य है।** देखो अब। फिर आराधना, वह पर्याय हुई। वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप वस्तु ध्रुव जिसमें बन्ध और मोक्ष पर्यायें नहीं, ऐसा आत्मा अन्दर सेवनयोग्य है। अर्थात् कि उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करनेयोग्य है। वह अनुभव और दृष्टि है पर्याय। परन्तु वह अन्तर में उसका अनुभव, वह वस्तु अखण्डानन्द द्रव्य चैतन्यमूर्ति उसके ऊपर अन्तर में नजर लगाकर उसकी एकाग्रता सेवनयोग्य है। उसकी एकाग्रता का नाम धर्म और मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

यह आराधन है व्यवहारनय, परन्तु वह व्यवहारनय ऐसे अन्तर में लक्ष्य करता है, तब वह पर्याय प्रगट होती है, इसलिए व्यवहार है। पूर्ण हो, वह व्यवहार है, पर्याय है सही न। क्या कहा? देखो! वही शुद्धात्मा भगवान वस्तु शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... जिसमें एक समय की मलिनता और मलिनता का अभाव—ऐसे बन्धरहित—मोक्षरहित वस्तु जो त्रिकाल ध्रुव है, उसके ऊपर दृष्टि करके उसे सेवनयोग्य है। इसका नाम धर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग, बाकी सब बातें। समझ में आया? ऐ... जेचन्दभाई! ऐसा! धर्मचन्दभाई! तुम्हारे पिता खिले हैं अब। पहले तो घुस गये थे गहरे। आहाहा!

भाई! तू सुन तो सही तेरी ऋद्धि को। तू कितना, कहाँ, कैसे है, यह तूने सुना

नहीं। और सुने बिना समझण हो और समझण बिना धर्म हो ? समझ में आया ? माल लेने जाये तो भी किसी चीज़ का निर्णय करके जाये कि भाई ! इन पचास सब्जियों में से यह लौकी लेना है। पाँच रुपये देकर ऐसा कहे कि यह सब्जी देना। तो क्या कहे ? मूर्ख लगता है। मेरे पिता ने भेजा है पाँच रुपये लेकर सब्जी (लेने)। परन्तु कौनसी ? मुझे खबर नहीं। खबर नहीं तो क्या देना ? ... सब देना ? इसी प्रकार कहते हैं कि उसमें आत्मा कौन है, वह तुझे चाहिए है ? चाहिए है वह कौन है ? जाने बिना चाहिए कहाँ से आया ? आत्मा तुझे चाहिए है, ग्रहण करना है, उसे सेवन करना है, तुझे उसका धर्म करना है, तो वह आत्मा कैसा है ? कि यह हमको खबर नहीं। बहुत अच्छी बात। पोपटभाई ! करना आत्मा को धर्म, लेने जाना सब्जी, पृथक् पाड़ना नहीं कि यह सब्जी और यह नहीं। इसी प्रकार लेने जाना धर्म, वह कहाँ से आता है और धर्म कहाँ से नहीं आता, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया ? आहाहा ! इसलिए यहाँ कहते हैं, शुद्धात्मा में से धर्म आता है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध वस्तु अखण्डानन्द प्रभु आत्मा की अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और उसका अनुभव कर तो उसमें से धर्म आवे, ऐसा है। धर्म अन्यत्र से नहीं आता। आहाहा ! कितनी बातों में अन्तर। भगवानजीभाई ! पुराने व्यक्ति। सुन-सुनकर कितने वर्ष गये इनके।

मुमुक्षु : ५०-६० वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : ५०-६० वर्ष, लो !

कहते हैं, यह शुद्धात्मा प्रभु जिसे एक समय की पर्याय—अवस्था राग की, मलिन की और उसके अभाव की कही। ऐसी जो वस्तु ध्रुव, परमात्मा ध्रुव चैतन्य तारा उसे सेवनयोग्य, उसमें पहचानकर उसमें दृष्टि और ज्ञान करके स्थिर होने योग्य है। बस ! इसके अतिरिक्त कोई मोक्ष का मार्ग वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के पंथ में नहीं। समझ में आया ? अन्यत्र तो है नहीं। वीतराग के अतिरिक्त तीन काल—तीन लोक में कहीं धर्म नहीं। लोग कल्पते हैं और मानते हैं। उनके वाड़ावालों को खबर नहीं तो दूसरों में तो कहाँ से हो ? समझ में आया ? यह ६५ हुई, लो, ६५ (गाथा) हो गयी। यह एक घण्टा होने को आया, लो !

★ ★ ★

गाथा - ६५-१

अब कहते हैं, इस जगत में भगवान ने कहा हुआ ऐसा आत्मा... इसमें सुख लेंगे भाई! मूल तो। अन्तिम उपादेय सुख। '**प्रतिपादकत्वा**' अन्तिम शब्द है न संस्कृत में। भगवान ने ऐसा आत्मा में सुख देखा है। आत्मा में आनन्द है, उस ध्रुव आत्मा में आनन्द है। उस आनन्द को कहनेवाला वीतराग का वचन है, ऐसा वचन वीतराग के अतिरिक्त किसी को हो नहीं सकता। यह अन्तिम कहा न, सुख प्रतिपादक। प्रतिपादक में दो बात है। भेदाभेदरत्नत्रय को प्रतिपादक कहेंगे, जिनवचन में... पहला अर्थ ऐसा करेंगे, अन्तिम अर्थ यह करेंगे। दो बातें। समझ में आया? उसमें भी जरा न्याय है। पहले प्रमाणज्ञान बतलायेंगे, भेदाभेदरत्नत्रय। क्या कहते हैं? ऐसी वीतराग की वाणी में भगवान आत्मा वस्तु त्रिकाल, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, अतीन्द्रिय आनन्द। ऐसे आनन्द को बतानेवाला यह द्रव्य में आनन्द है। ऐसा बतलानेवाला वीतराग का वचन, ऐसे भाव को नहीं पाकर चौरासी के अवतार में कोई अवतार बाकी रखा नहीं। भटकने में भटका, वह मर गया भटक-भटककर। समझ में आया?

६५) सो णत्थि त्ति पएसो चउरासी-जोणि-लक्ख-मज्झम्मि।
जिण वयणं ण लहंतो जत्थ ण डुलुडुल्लिओ जीवो ॥६५-१॥

अन्वयार्थ :- अहो! **इस जगत में ऐसा कोई भी प्रदेश (स्थान) नहीं है,...** चौदह ब्रह्माण्ड राजूलोक में ऐसा एक अंश खाली नहीं **कि जिस जगह चौरासी लाख योनियों में होकर... 'जिनवचनं न लभमानः'**। जिनवचन अर्थात् यह। आत्मा पूर्णानन्द का कन्द, उसका अवलम्बन लेकर आनन्द प्रगट करना ऐसा जिनवचन है। आहाहा! भेदाभेदरत्नत्रय कहेंगे, वह तो प्रमाण का ज्ञान कराने के लिये (कहेंगे)। अभेदरत्नत्रय बतलानेवाला। भगवान आत्मा पूर्णानन्द, उसकी निर्विकल्प श्रद्धा, अन्तर निर्विकल्प ज्ञान और निर्विकल्प चारित्र और विकल्पवाला भेद, यह प्रमाणज्ञान कराते हैं। ऐसा जिनवचन कि जो वाणी में, भगवान की वाणी में यह आया कि ऐसा तेरा आत्मा प्रभु पूर्णानन्द के सन्मुख तूने कभी देखा नहीं। उसके सन्मुख अन्तर में देखकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, ऐसा जिनवचन कहते हैं। उस जिनवचन को पाये बिना... यह वचन, हों! वाणी

नहीं अकेली, वाणी तो अनन्त बार सुनी। ऐसे भाव को पाये बिना चौरासी लाख के अवतार में कहीं कमी नहीं रखी। कमी रखी नहीं परिभ्रमण की, परिभ्रमण की कमी नहीं रखी, पूरा किया है। एक वीतराग की वाणी का यह भाव कि वस्तु पूर्णानन्द प्रभु का अवलम्बन लेकर वीतरागता प्रगट कर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान, यह वीतराग की वाणी है, इस वाणी के भाव को पाये बिना भटका है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक - ११-११-१९६५
गाथा - ६५-१, ६६ प्रवचन - ४७

परमात्मप्रकाश, पहले भाग की ६६ गाथा।

भावार्थ :- इस जगत में कोई ऐसा स्थान नहीं रहा,... चौदह राजू लोक के अन्दर ऐसा कोई स्थान नहीं रहा कि **जहाँ पर यह जीव निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय को कहनेवाले जिन वचन को नहीं पाता हुआ...** भगवान का वचन कैसा है? कि निश्चयरत्नत्रय (अर्थात्) आत्मा शुद्ध अखण्ड द्रव्यस्वभाव, उसकी—स्वभाव की प्रतीति, उस स्वभाव का अन्तर ज्ञान और उसमें रमणता, वह अभेदरत्नत्रय है। और उसके साथ विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, श्रद्धा का, पंच महाव्रत का, वीतराग की आज्ञा से निकले हुए शास्त्र, उनके ज्ञान का विकल्प, प्रमाणज्ञान कराया है पहले। वीतराग का वचन उसे कहते हैं कि .... जो आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वभाव परमात्मा है, उसके अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र अभेदरत्नत्रय उसे कहते हैं अथवा निश्चयरत्नत्रय उसे कहते हैं। यह कहनेवाला वीतराग का ही वचन होता है, दूसरे के वचन नहीं हो सकते। और व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् ऐसे ही षट् द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, शास्त्र का वास्तविक निश्चय के भानसहित का शास्त्र का ज्ञान और निश्चय के चारित्रसहित व्यवहार से व्रतादि के विकल्प, ऐसा व्यवहाररत्नत्रय जिनवचन कहते हैं। कहो, समझ में आया?

ऐसे भाव को **नहीं पाता हुआ...** वचन अर्थात् कि ऐसा भाव नहीं पाता हुआ। वचन तो जड़ है, वचन में तो यह कहना है। ऐसे भाव को नहीं प्राप्त करता हुआ। **अनादि काल से चौरासी लाख योनियों में...** अनादि काल से चौरासी लाख उपजने के स्थान। उन चौरासी लाख उपजने के स्थान, उनमें **न घूमा हो...** चौरासी लाख में न भ्रमा हो, ऐसा कोई स्थान रहा नहीं। कहो, समझ में आया? सिद्ध भगवान रहते हैं, वहाँ भी अनन्त बार जन्म आया है। **अर्थात् जिन वचन की प्रतीति न करने से...** भगवान

वीतरागभावस्वरूप आत्मा की वीतरागभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, अन्त में सुख ही कहेंगे। जिनवचन का प्रतिपादक। आत्मा परम आनन्दस्वरूप, परम आनन्दस्वरूप, उसके आनन्द की प्राप्ति सुख, वह वास्तव में तो अभेद रत्नत्रय है। समझ में आया ?

आत्मा अतीन्द्रिय वीतराग आनन्दमूर्ति वस्तु स्वयं वस्तु है। उसके आनन्द की प्राप्ति। ऐसे जिनवचन आत्मसुख का प्रतिपादन करनेवाला। समझ में आया ? इसमें बहुत सिद्धान्त आ जाते हैं। दु:ख की पर्याय थी, सुखरूप द्रव्य है, सुख की पर्याय की प्राप्ति पर्याय में होती है, तब दु:ख की पर्याय का नाश होता है। दु:ख की पर्याय है तो सामने निमित्त भी कर्म सम्बन्ध है। ऐसा सब बहुत (आ जाये, ऐसा) यह एक वाक्य ऐसा संक्षिप्त कहा।

कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि सर्वज्ञ परमात्मा ने और हमारे गुरु ने हमको शुद्धात्मा का उपदेश दिया। इसका अर्थ कि आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह आनन्दरूप है, उसका हमको उपदेश दिया। यह उसकी प्रतीति और ज्ञान करने से आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, उस स्वसंवेदन आनन्द के अनुभव से मैं समयसार को कहूँगा। ऐसा वहाँ शुरु किया है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि वीतराग के वचन ऐसे हैं कि आत्मा की जिस दशा में दु:खदशा है, उसका नाश करनेवाले उनके वचनों में भाव हैं। आत्मा का आनन्द, जो सच्चिदानन्द आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, अकेला अतीन्द्रिय सुख का ही कन्द, रस, वस्तु है आत्मा। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति पर्याय में करावे, ऐसे जिनवचन हैं। बहुत संक्षिप्त कहा। समझ में आया ? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी। भेदाभेदरत्नत्रय, वह निश्चयरत्नत्रय, वह आनन्द की पर्याय कहलाती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, वह आनन्द की पर्याय सुखरूप। सम्यग्दर्शन सुखरूप, ज्ञान सुखरूप और चारित्र सुखरूप। उसके साथ व्यवहाररत्नत्रय का पहले ज्ञान कराया कि ऐसे ही वीतराग के वचन, उसे व्यवहार श्रद्धा में होते हैं, पंच महाव्रत आदि हो और शास्त्र का ज्ञान (होता है)। परन्तु अन्त में योगफल वापस अन्त में ऐसा कहा कि वीतराग की वाणी परम आनन्द को प्राप्त करानेवाली वाणी है। प्राप्त (कराने में) तो वह निमित्त है, परन्तु उसने परम आनन्द बताया है। समझ में आया ?

ज्ञान, दर्शन पहले आ गया था भाई! उसमें आया आनन्द, फिर आयेगा वीर्य। ६७ (गाथा में)। यह चतुष्टय कर दिये। पहले ज्ञान, दर्शन आये थे, जाने-देखे वह। पहले। केवल जानता है, देखता है। समझ में आया? अब यहाँ सुख डाला, फिर डालेंगे वीर्य। चतुष्टय डाल दिये अन्दर। भगवान आत्मा यह आत्मा, यह आत्मा ऐसा है कि वीतराग निर्दोष आनन्दकन्द स्वरूप वह आत्मा का है। ऐसा वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने प्रत्यक्ष तीर्थंकर ने देखा और अनुभव किया और प्रगट किया। उस वीतराग की वाणी में यह ध्वनि आयी, भगवान के समवसरण में इन्द्रों के समक्ष भगवान की ध्वनि ऐसी आयी, जिनवचन ऐसा आया, जिनवचन ऐसा कहते हैं कि भाई! तू परमानन्द की मूर्ति ऐसा आनन्दकन्द, उसकी दृष्टि, ज्ञान में रमणता कर, तुझे आनन्द होगा। यह भगवान ने धर्म वीतराग की वाणी से बताया है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? ऐसे वचन के भाव को अनन्त काल से इसने प्राप्त नहीं किया। अर्थात् वीतराग के वचन ऐसे इसने उनके भाव को प्राप्त किये बिना चौरासी लाख में कोई योनि, कोई अवतार जन्मकर, मरकर बाकी नहीं रखा। इतने अवतार भगवान की वाणी के भाव को समझे बिना, माने बिना, अनुभव किये बिना इसने चौरासी के अवतार अनन्त बार किये हैं। ओहोहो! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है। अर्थात् कि वीतराग की वाणी परमात्मस्वरूप यह आत्मा, उसे प्रगट पर्याय में प्रगट हो, ऐसा भाव भगवान ने वर्णन किया है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा वस्तु से तो परमात्मस्वरूप ही है, मुक्ति ही है, मुक्तस्वरूप ही है शक्ति से तो। शक्ति उसका सत्त्व, उसका स्वभाव, उसका भाव, उसका पूरा चैतन्यरूप, वह तो पूर्ण आनन्द और वीतरागस्वभाववाला ही वह तत्त्व है। वीतराग अर्थात् वापस कोई जैन का वीतराग, ऐसा शब्द नहीं (डाला)। वह तो वीतराग अर्थात् रागरहित चैतन्य का स्वरूप है। कुछ और वीतराग (कहने से ऐसा समझते हैं कि) यह तो जैन का हो गया। यह जैन-फैन की यहाँ बात नहीं है। यह तो जैन अर्थात् कि वस्तु का स्वरूप। छोटाभाई! आहाहा!

जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। जैन परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग, वह आत्म-मार्ग है, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। यह वीतराग अर्थात् रागरहित, कषायरहित आत्मा का जो स्वभाव परम अतीन्द्रिय आनन्द, उसे वीतरागभावस्वरूप आत्मा कहा जाता है। उसे

बतलानेवाली जिनवाणी। उन्होंने पूर्ण देखा, जाना और वाणी में आया। यह वीतराग तेरा स्वभाव निर्दोष, उसे अनुभव कर, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति को वेदन कर, ऐसा भगवान की वाणी में आया था। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह वीतराग की वाणी और वीतराग की आज्ञा।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि सुनने गया तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुनने गया, तब समझा नहीं, सुनने गया था। यह वीतरागभाव बताते हैं। वीतरागस्वरूप आत्मा है और वीतराग प्रगट करने का भाव यह बताते हैं। ऐसा वह वीतराग (को) सुनना, वीतराग की वाणी समवसरण में सुनने गया अनन्त बार, परन्तु यह समझा नहीं था। आहाहा! समझ में आया?

महाविदेहक्षेत्र में अभी भगवान विराजते हैं। सीमन्धर तीर्थंकरदेव वीतराग अरिहन्तपदरूप से अभी मनुष्यरूप से विराजते हैं। वहाँ भी समवसरण में वहाँ के बहुत जीव जाते हैं। और ऐसे अनन्त तीर्थंकर यहाँ हुए, उनकी धर्मसभा समवसरण अर्थात् सौ इन्द्र जिनकी उपस्थिति, उसमें गया परन्तु यह भाव कहते हैं, उसे समझा नहीं। आहाहा! कुछ निमित्त से लाभ होगा, कुछ राग से लाभ होगा या इससे लाभ होगा—ऐसी मान्यता रखकर इसने सुना। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुना वह राग और निमित्त। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी में... क्योंकि वे हुए वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर और आत्मा का स्वरूप सर्वज्ञ वीतरागस्वरूप ही है। प्रत्येक वस्तु का स्वरूप। यह बताया वीतराग ने कि, उसे तू जान, उसका अनुभव कर और उसकी श्रद्धा में स्थिर हो। ऐसी वीतराग की वाणी आती थी, वह वीतराग की वाणी इस प्रकार से यह समझा नहीं। अनन्त काल में जैन साधु अनन्त बार हुआ, पंच महाव्रत धरी, बाह्य क्रियाकाण्डी (साधु हुआ), परन्तु यह भाव भगवान कहते हैं, उसे समझा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अभी समझने का उपादान तैयार हुआ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार ही है, कब तैयार (नहीं)? सदा ही तैयार है। ऐई...

न्यालभाई! सब अवसर आ गया है। सब अवसर है, अवसर कहाँ नहीं? तेरी नजर के आलस्य से, भगवान अन्दर में स्थित है पूरा, (उसे तूने देखा नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि जिनवचन... देखो! पाठ में है या नहीं? देखो! '**जिण वयणं ण लहंतो**' जिनवचन की व्याख्या यह है। वाणी तो वाणी है, परन्तु वाणी में कहा हुआ वीतरागभाव ऐसा कहना है। वीतरागभाव के दो प्रकार—एक वस्तु वीतरागभाववाली निर्दोष है और उसका अवलम्बन लेकर जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगटे, वह भी वीतरागभाव है। आहाहा! समझ में आया? कहीं विपरीतता घुसायी। वह ज्ञान कराया पहले प्रमाण का, परन्तु फिर कहा कि मूल तो यह है—सुख और आनन्द का प्रगट होना। क्योंकि आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का कस है। सत्त्व ही अतीन्द्रिय आनन्द का सत्त्वस्वरूप, वह आत्मा। उसमें से उसे एकाग्र होकर, उसमें सन्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति का वेदन अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन सुख (प्रगट करना), ऐसा जिन का वचन था। उस जिनवचन को अनन्त काल में यह समझा नहीं। समझ में आया?

इसलिए अनादि काल में चौरासी (लाख) योनि में एक अवतार बाकी नहीं रखा कि जहाँ नहीं अवतरित हहुआ हो, अनन्त अवतार किये। **सब जगह और सब योनियों में भ्रमण किया, जन्म-मरण किये।** सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ भी अनन्त बार जन्मकर आया। एकेन्द्रिय जीव है न वहाँ। सिद्ध भगवान जहाँ विराजते हैं, वहाँ एकेन्द्रिय जीव है, पाँच (प्रकार के) सूक्ष्म जीव। वहाँ भी अनन्त बार गया है, कोई स्थान बाकी रखा नहीं। आहाहा! समझ में आया? काल अनन्त, क्षेत्र असंख्य योजन, एक-एक स्थान में अनन्त बार जन्मा और मरा, जन्मा और मरा, भगवान की वाणी समझे बिना। वीतराग की वाणी ऐसा कहना चाहती है कि वीतरागस्वरूप त्रिकाल चिदानन्द तेरा तत्त्व है, उसके सन्मुख होकर सम्यक् वीतराग परिणति प्रगट कर। यह वीतराग की वाणी चार अनुयोग का सार है।

वीतराग तात्पर्य कहा न, भाई! पंचास्तिकाय (गाथा १७२) में। यह तो सब शैली एक की एक बात है। पंचास्तिकाय में कहा कि, भाई! शास्त्र का सार क्या? वीतरागभाव। उसका अर्थ क्या? यह हुआ और वीतरागपना जो वस्तु है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और

रमणता—वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र (प्रगट कर), यह भगवान की आज्ञा है, यह तात्पर्य है। साथ में राग हो भले पुण्य का, जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं—ऐसा इसमें आया। ऐ... रतिभाई! आहाहा! तत्प्रमाण ज्ञान कराया पहले, कहा न! तथापि वस्तु यह रखी आदरने में एक।

मुमुक्षु : समकित का फल यह आयेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समकित ही स्वयं यह है, फल क्या? सम्यग्दर्शन ही वीतराग पर्याय है। सम्यग्दर्शन वह सुखरूप, आनन्दरूप है; सम्यग्ज्ञान वह वीतरागी पर्याय है, सम्यग्ज्ञान वह आनन्दरूप है; सम्यक्चारित्र वीतरागी पर्याय है, सम्यक्चारित्र वह आनन्दरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह वचन देखो! एक वीतराग की वचन की व्याख्या की। भले चारों अनुयोग वर्णन किये भगवान ने, परन्तु वह वाणी कहने का आशय यह है पूरे सर्व का। ऐसा वीतरागभाव, वह सम्यग्दर्शन; वीतरागभाव, वह सम्यग्ज्ञान; वीतरागभाव, वह सम्यक्चारित्र, वह इसने प्रगट किया नहीं; इसलिए चौरासी के अवतार में भटका।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जिन-वचन के न पाने से... वीतराग के भाव को इस प्रकार से नहीं प्राप्त कर, **यह जीव जगत में भ्रमा,...** चौरासी के अवतार में भटका-नरक में, निगोद में, रंक में, भिखारी में, कुत्ते में, कौवे में, कंथवा में, कुंजर में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक नहीं अनन्त, अनन्त प्रत्येक समय भव किये। आहाहा! अनन्त काल है। कहाँ आदि है? एक वीतराग की वाणी—वीतरागभाव को प्राप्त किये बिना। वीतरागभाव प्राप्त हो तो मुक्ति हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा क्या, उसे शल्य लगी उसे। राग से लाभ होता है, कुछ इससे लाभ, ऐसा माना है अनादि से। स्वभाव की महिमा, एक समय (भी) भगवान पूर्णानन्द की महिमा उसकी दृष्टि में आयी ही नहीं। राग, पुण्य, विकल्प और निमित्त की महिमा अन्दर से छूटी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आवे, परन्तु बैठना किसे ? बैठे, न बैठे, उसके आधीन है या किसी के आधीन आवे, इसलिए बैठ जाये इसे ? तब तो पर से बैठा (जँचा), ऐसा हुआ। समझ में आया ?

इसलिए जिन-वचन ही आराधनेयोग्य है। ऐसा अर्थ किया उस सुख की व्याख्या का, हों ! पाठ में तो यह है, **'जीवस्तदेवोपादेयात्मसुखप्रतिपादकत्वादुपादेय'** भगवान की वाणी आत्मा के आनन्द को प्रगट बतलानेवाली है, इसलिए उस वाणी का सेवन करना अर्थात् कि आत्मा का सेवन करना। आहाहा ! गजब बात, भाई ! बहुत संक्षिप्त में मार्ग की व्याख्या और मार्ग से विरुद्ध की और मार्ग के ध्येय की (व्याख्या की है)। समझ में आया ? मार्ग का ध्येय आत्मा परमात्मा। मार्ग वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। समझ में आया ? उसका फल मुक्ति। इसके बिना चार गति का भव। ओहोहो ! समझ में आया ? यह सुख की व्याख्या की।

★ ★ ★

गाथा - ६६

अब, यह आत्मद्रव्य की व्याख्या। वस्तु कैसी भगवान ? ऐसी वस्तु को इसने अन्तर दृष्टि में, ज्ञान में ली ही नहीं। बाकी सब दया, दान, विकल्प, व्रत, भक्ति, पूजा अनन्त बार कर चुका। पुण्य बाँधा, जन्म-मरण का अन्त आया नहीं। समझ में आया ? अब यहाँ क्या कहते हैं इस गाथा के बाद ? कि इसने वीतरागभाव प्रगट नहीं किया। तो वीतरागभाव पर्याय है, तो वस्तु कैसी है ? वस्तु कैसी है ? वह तो पर्याय है। मोक्ष-सुख का आनन्द प्रगट होना पर्याय है, तात्पर्य वीतराग पर्याय है। वस्तु कैसी है ? अनादि की चीज़ कैसी है आत्मा ? कि जिसके लक्ष्य से, आश्रय से वीतरागभाव प्रगट हो और जो वीतरागभाव ही मुक्ति का कारण हो और उसके विरुद्ध जो विकार मिथ्यात्वभाव, वह संसार का कारण है। समझ में आया ?

६६) अप्पा पंगुह अणुहरइ अप्पु ण जाइ ण एइ।
भुवणत्तयहँ वि मज्झि जियविहि आणइ विहि णेइ॥ ६६ ॥

कठिन बात जरा। ध्यान रखना जरा।

अन्वयार्थ :- हे जीव! यह आत्मा पंगु के समान है, आप न कहीं जाता है, न आता है, कर्म ही इसको ले जाते हैं, और (कर्म) ले आते हैं, ऐसा कहते हैं—किस प्रकार ध्यान रखना, हों! बात को। **हे जीव! यह आत्मा...** आत्मा उसे कहते हैं कि ध्रुव चिदानन्द अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव, वह आत्मा यहाँ अभी लेना है। अभी निश्चयनय का पूरा आत्मा, वह आत्मा लेना है। समझ में आया? वस्तु जो एक समय में अकेली ध्रुव अखण्डानन्द चिदानन्द की कातली, वह आत्मा पंगु के समान है—पंगु है। अर्थात् कि आत्मा में कर्म बाँधने की शक्ति नहीं और कर्म में फिरने की और परिभ्रमण की शक्ति उसमें नहीं। वस्तु में कहाँ है। वस्तु जो है, वह तो अखण्डानन्द प्रभु पूर्णानन्द का कन्द वीतरागस्वरूप से अकेला है।

यह आत्मा पंगु के समान है, आप न कहीं जाता है, न आता है। तीनों लोक में इस जीव को कर्म ही ले जाता है, कर्म ही ले आता है। किस प्रकार, इसका स्पष्टीकरण करते हैं। हों! देखो! यहाँ वीर्य डाला, भाई! अब यहाँ वीर्य डाला, अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख लिया था, अब यहाँ वीर्य डाला।

भावार्थ :- यह आत्मा शुद्ध निश्चयनय से अनन्तवीर्य (बल) का धारण करनेवाला होने से... इतनी बात ली। क्या कहते हैं? कि भगवान आत्मा जो है वस्तु... वस्तु... वस्तु... वह तो अनन्त बल का धनी है। वस्तु, हों! पर्याय की बात नहीं अभी। पहले में अनन्त ज्ञान वस्तु कही थी, अनन्त ज्ञान, दर्शन, दूसरे में अनन्त सुख वस्तु कही थी, यहाँ अनन्त बल वस्तु है आत्मा। आत्मा, एक समय की पर्याय की अभी बात नहीं।

वस्तु जो है वह अनन्त बल का धारण करनेवाली चीज़, **होने से शुभ-अशुभ कर्मरूप बन्धन से रहित है,...** उसके वस्तु में शुभ-अशुभ कर्म का बन्धन नहीं। वस्तु में बन्धन कैसा? वस्तु है, उसमें बन्धन कैसा? आहाहा! पर्याय में बन्धन है। पर्याय-अवस्था, अवस्था, उसका वास्तविक त्रिकाली स्वरूप नहीं। एक समय की अवस्था में विकार की उत्पत्ति करके मिथ्यात्व का होना एक समय के अंश में है, उससे ही बन्धन (होता है)। और उसी अंशरहित होकर एक अंश की मुक्ति की पर्याय होना, वह भी मुक्ति की अंश की पर्याय भी द्रव्यरूप नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! इसने

कभी... वस्तु है द्रव्य, वह तो मुक्त और बन्धन की पर्यायरहित वस्तु है। यह आगे स्पष्टीकरण अधिक आयेगा ६८ (गाथा) में। समझ में आया?

यहाँ तो **शुभ-अशुभ कर्मरूप बन्धन से रहित है,...** कौन? भगवान आत्मा शुद्ध वस्तु। **तो भी व्यवहारनय से इस अनादि संसार में...** परन्तु पर्यायनय में—अनादि संसार में, अवस्था में **निज शुद्धात्मा की भावना से विमुख...** देखो! जो बन्धनरहित पूरा आत्मा है, शुद्ध आत्मा, द्रव्य आत्मा, परमात्मा अपना स्वभाव—ऐसे निज शुद्धात्मा को यहाँ पूरा द्रव्य जो कहा वह, जो बन्धनरहित है। वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... निज शुद्धात्मा, निज शुद्धात्मा वह वस्तु। उसकी भावना, वह वीतरागी पर्याय। वह वस्तु शुद्ध निज वस्तु भगवान परमानन्द एकरूप वस्तु, एकरूप वस्तु, हों! समझ में आया? यह आगे आयेगा। कितनी चलती है यह? ६६ चलती है। यह ६७ में आयेगा। एक स्वभाव, परमात्म एक स्वभाव। '**परमात्माभिधानं तदैकस्वभावं**' है न? ६७ में है, अन्तिम तीन लाईन संस्कृत में। इन्होंने अर्थ नहीं किया इसमें। यह ६७ में आयेगा। क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा एक समय की पर्यायरहित जो वस्तु, अवस्था एक समय की दशा, उससे रहित चीज़ निज शुद्धात्मा, उसकी भावना वह पर्याय हुई। पर्याय, वह विकाररहित वीतरागी दशा हुई। जो पूर्व में कहा था कि परम आनन्द के सुख का जिनवचन है वह। यह आत्मा शुद्ध निजानन्द प्रभु, उसकी पर्याय अर्थात् भावना, उसके सन्मुख की वीतरागी पर्याय श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, उससे विमुख। समझ में आया? यह पहली बात की। एक तो द्रव्य लिया निज शुद्धात्मा वस्तु। उसकी भावना अर्थात् शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान और रमणता अर्थात् संवर और निर्जरा तत्त्व, शुद्ध वीतरागी पर्याय। उस तत्त्व से विरुद्ध पुण्य और पाप, आस्रव, बन्ध का तत्त्व। **मन, वचन, काया इन तीनों से उपार्जे...** अर्थात् शुभाशुभभाव। वस्तु त्रिकाल शुद्ध, उसकी परिणति जो निर्मल, उसके बिना ऐसी निर्मल परिणति से विमुख पुण्य और पाप अर्थात् पर्याय के प्रकार, वर्णन किये कि वस्तु शुद्ध द्रव्य, उसकी परिणति वीतरागी, ऐसी पर्याय नहीं और उससे विमुख पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से उपार्जित कर्म। शुभाशुभभाव से हुआ जड़कर्म। अर्थात् अजीव कर्म सिद्ध किया, पुण्य-पाप सिद्ध किये, भगवान आत्मा शुद्ध आत्मा, वह सिद्ध किया, उसकी सन्मुख की वीतरागी पर्याय नहीं, ऐसा सिद्ध किया। समझ में आया?

तब उससे रहित क्या है ? कि **भावना से विमुख जो मन, वचन, काया इन तीनों से...** अर्थात् मन, वचन और काया के लक्ष्य से हुए शुभाशुभभाव। उन शुभाशुभभाव से उपार्जित कर्म। समझ में आया? बहुत समझना... वीतराग को समझना, वह कहीं साधारण बात नहीं। लो! भगवान के सम्प्रदाय में आये और कर ली पूजा और कर ली भक्ति और हो गयी सामायिक। ऐई! ऐसा मार्ग नहीं, भाई! तूने वीतरागमार्ग सुना नहीं। परमेश्वर तीन लोक के नाथ सौ इन्द्रों के पूजनीक ऐसे वीतराग की वाणी, वीतराग ने कहे हुए नौ तत्त्व क्या है, उसने कभी यथार्थरूप से जाना नहीं।

यहाँ कहते हैं, अहो! देखा ? वह योग-बोग का सम्बन्ध हुआ न! ऐसे भगवान की परिणति ऐसी न मिले, तब विमुख ऐसी परिणति हुई पुण्य और पाप, शुभाशुभभाव। उससे हुए कर्म, उनसे **उत्पन्न हुए पुण्य-पापरूप बन्धनोंकर...** देखो वापस। वह के वह कर्म से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप भाव, उनसे **बन्धनोंकर अच्छी तरह...** उनसे बन्धनरूप से **अच्छी तरह बँधा हुआ...** यह पुण्य-पाप से बँधा हुआ कर्म में, **पंगु के समान आप ही न कहीं जाता है, न कहीं आता है।** आहाहा! वस्तु जो है, वह कहीं जाती-आती नहीं। उसकी पर्याय में अज्ञानभाव से बाँधे हुए कर्म, उसके हुए पुण्य-पाप, उसके कारण अज्ञानभाव, वह कहीं आत्मद्रव्य वस्तु नहीं हुई। वस्तु के स्वभाव से, वस्तु भगवान आत्मा का अखण्ड आनन्द शुद्धात्मस्वभाव, उसकी भावना से विपरीत भावना एक समय में विकार पुण्य-पाप की एकत्वबुद्धि, उस भावना से उपार्जित कर्म, उसमें होते पुण्य-पाप, उससे होती चार गतियाँ। समझ में आया ?

जैसे चक्की का पाट हो, पाट हिले पाट। मक्खी तो जहाँ बैठी है, वहाँ बैठी है। उसी प्रकार वस्तु चिद्घन वीतराग निर्दोष तत्त्व चैतन्य आत्मा जो परमात्म मुक्तस्वरूप वस्तु, वस्तु, वह तो है वैसी है और जहाँ है, वहाँ है और जैसी है, वैसी है। समझ में आया ? वहाँ हलचल कुछ हुई नहीं। उसकी दशा—अवस्था में खड़ा किया हुआ पुण्य-पाप का विकल्प, शुभ-अशुभराग, उससे बँधे कर्म, उससे हुए पुण्य और पाप, उससे हो गयी चार गति। पुण्य और पाप के चौरासी के अवतार, ऐसा कहना है। समझ में आया ?

यह तो वस्तुस्वरूप से ज्ञाता-दृष्टा का पिण्ड ऐसा का ऐसा पड़ा है, ऐसा कहते हैं। ज्ञाता-दृष्टा का पिण्ड, आनन्द का पिण्ड और बल का पिण्ड वस्तु, द्रव्य-द्रव्य। एक

समय की पर्याय में खड़ा किया हुआ अज्ञान, उससे बँधे कर्म और उसमें हुए पुण्य और पाप कर्म में, उनसे हुए अवतार। वह द्रव्य तो है, वैसा है। गजब बात, भाई! ऐ... न्यालभाई! देखो, यह कर्म भटकाते हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पहले तो इनकार करते हैं, पहले इनकार करते थे कि कर्म के कारण से नहीं। अरे, भाई! कर्म अर्थात् तूने किया हुआ भाव विकारी भाव, उससे हुआ कर्म, वह सब एक जाति हो गयी। वस्तु में कहाँ है? वस्तु में भावकर्म भी नहीं, द्रव्यकर्म भी नहीं, विकल्प मात्र (नहीं)। वस्तु तो निर्विकल्प आनन्दकन्द की मूर्ति है। अकेला आनन्दकन्द ज्ञायक दर्शन और वीर्य की मूर्ति है। अनन्त चतुष्टय ले लिये। समझ में आया? आहाहा!

यह वस्तु जो अनन्त दर्शन, ज्ञान, आनन्द और वीर्य (स्वरूप), वह वस्तु है, वह तो ऐसी की ऐसी है। उस वस्तु की अन्तर भावना बिना बाहर भावना करके पुण्य-पाप वह तो अवस्था में एक क्षणिक दशा में हुई है, वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा! यह ईश्वरकर्ता डाला हो तो यह सब चिन्ता मिट जाये। ईश्वर ने किया। धूल भी ईश्वर नहीं, सुन न! ईश्वर कौन है जगत में? ईश्वर तू स्वयं है। ईश्वर कर्ता-बर्ता कोई है नहीं तीन काल—तीन लोक में। आहाहा! स्वयं ईश्वर पूर्ण परमात्मा स्वयं ईश्वर कन्द है। ईश्वर अर्थात् अनेक शक्ति का ईश्वरपना, वह तत्त्व है। वह भगवान कहीं भटके, कहीं उपजे नहीं। यह आत्मा—द्रव्य कहीं उपजता होगा? द्रव्य कहीं से नाश पाकर अन्यत्र जाता होगा? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सीखते थे, वे सब गप्प थे। आहाहा!

भाई! तूने तेरे निज ईश्वर को नहीं जाना, इसलिए तूने दूसरी भावना की। ऐसी खबर नहीं हो, तब भावना तो कुछ खड़ी तो करे। वह अज्ञान में राग की अधिकता मानकर विकार को करके कर्म को उपार्जित किया। वह विकार की पर्याय भी वस्तु की नहीं। पर्याय में अंश वह वस्तु द्रव्य की नहीं, ऐसा कहा। निश्चयनय का जो आत्मा, वह नहीं। समझ में आया? यह तो व्यवहारनय का आत्मा हुआ इतना पर्याय आदि। आहाहा! व्यवहारनय की पर्याय विकार और व्यवहारनय की पर्याय का अभाव हुआ, वह सब

अभूतार्थनय का हुआ। भूतार्थ त्रिकाल है, वह वस्तु तो जैसी है, वैसी है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, व्यवहारनय से संसार में उत्पन्न किया, वह **बन्धनोंकर अच्छी तरह बँधा...** हों, वापस कहते हैं। वह पर्याय में विकारपना बराबर था और उससे बँधा भी बराबर था। निमित्त से व्यवहाररूप से (कहा)। **पंगु के समान आप ही न कहीं जाता है, न कहीं आता है।** चौकीदार ले जाये, चल यहाँ। क्या बात करते हैं? ऐसा कहकर वस्तुस्वरूप एकरूप है, ऐसा बतलाना है, हों! समझ में आया? आहाहा! एकरूप चिद्घन आत्मा परमात्मा वस्तु ही स्वयं है। उसे पहिचाने बिना, माने बिना यह चीज़ एक अंश में तूने पूरा तत्त्व माना। उस जीवतत्त्व को नहीं माना, इसलिए पुण्य-पाप के अंश को तत्त्व माना। पुण्य-पाप के अंश को तत्त्व माना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। उसे मानकर कर्म हुए और कर्म में पुण्य-पाप के रजकण बँधे। उनके कारण पुण्य-पाप की गतियाँ मिलती हैं। वस्तु तो वस्तु है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार की भूल, उसका फल व्यवहार में भटकना। आहाहा! समझ में आया?

जैसे बन्दीवान आपसे न कहीं जाता है और न कहीं आता है,... कैदी, कैदी। वह साथ में जेलर हो, वह जहाँ ले जाये वहाँ ले जाये, जाये-आये। **चौकीदारोंकर ले जाया जाता है, और आता है, आप तो पंगु के समान है।** आहाहा! यहाँ तो वस्तु, वह वस्तुरूप से त्रिकाल ऐसी की ऐसी है, ऐसा सिद्ध करना है, हों! व्यवहार की, पर्याय की भूल, वह व्यवहार में भूल में भ्रमण कर रहा है। आहाहा! वह आत्मा के अतिरिक्त कहीं मिले, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

बापू! यह तो परम सत्य पंथ है। यह कहीं कोई कल्पित और तोड़-मरोड़कर किया हुआ नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर ने जो तीन काल—तीन लोक भगवान ने देखे, देखे वैसे हैं, हैं वैसे देखे, देखे वैसे कहे। आहाहा! भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं! जैसे है वैसे है, वैसा भगवान ने देखा और जैसा है वैसा भगवान ने देखा और भगवान की वाणी में आया। यह मार्ग वीतराग है। समझ में आया? यह वीतराग परमात्मा कहते हैं, तेरा परमात्मा शुद्ध तो ऐसा का ऐसा वस्तुरूप से पड़ा है। वस्तु कब अशुद्ध हो? वस्तु कब परिभ्रमण पावे? वस्तु में कब पूर्व की अवस्था का

अभाव हो अर्थात् अपना अभाव हो? समझ में आया?

यह वस्तु की महिमा बतलाने के लिये यह बात की है, हों! कर्म ने भटकाया अर्थात् भूल तो तेरी और तुझसे भटका है। पर्याय की भूल और पर्याय से भटका। द्रव्य की भूल नहीं और द्रव्य भटकता नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! एक समय की अवस्था का आश्रय लिया, इसलिए भटका। त्रिकाल का आश्रय नहीं लिया, इसलिए वीतराग पर्याय प्रगट नहीं हुई, ऐसा कहना है। समझ में आया? स्वयं वीतराग स्वभावी तत्त्व ही है अनादि का। ऐसा तत्त्व, उसे आत्मद्रव्य कहते हैं, वस्तु कहते हैं। उस वस्तु की भावना बिना, अर्थात् वह भावना भी एक पर्याय है, उस भावना बिना विरुद्ध भावना पर्याय का आश्रय किया। उसमें तो राग की उत्पत्ति हो और लाभ माना, तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति हुई। उससे पुण्य देखो! शुभाशुभ के साथ भाव, ऐसे अन्दर मिथ्यात्वसहित के पुण्य-पाप के भाव अघाति में पड़े हैं। वैसे तो पाप पड़ा घाति में। उसके कारण भगवान आत्मा तो जैसा है, जो स्वभाव है, वह है। यह पर्याय में यह भूल और पर्याय में उसका भटकना हुआ है। है तो उसके ही कारण से, हों! परन्तु वह विकारभाव ही कर्म है, इसलिए परद्रव्य है; स्वद्रव्य नहीं। आहाहा! क्या कहना है? यह विकल्प उठे पुण्य का दया, दान आदि का, वह भी स्वद्रव्य नहीं; वह वस्तु ही परद्रव्य है। किस अपेक्षा से? कि जो विकृत भाव हुआ है, वह स्वभावभाव नहीं। उससे विरुद्ध भाव, इसलिए विकृत भाव ही पर्याय, वह परवस्तु है। उससे कर्म और उनसे भटका, वह सब पर होकर भटका पर्याय में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वही आत्मा परमात्मा की प्राप्ति के रोकनेवाले चतुर्गतिरूप संसार के कारणस्वरूप कर्मोंकर तीन जगत में गमन-आगमन करता है,... लो! भगवान आत्मा अपने स्वभाव की ध्रुवता के आश्रय बिना एक समय की पर्याय वर्तमान वर्तती, उसके आश्रय में पड़ा, अज्ञानभाव उत्पन्न करके और अज्ञानभाव, वह कहीं आत्मवस्तु नहीं। ऐसा। समझ में आया? आहाहा! वह अज्ञानभाव, वह आत्मा नहीं। वह व्यवहार से आत्मा अर्थात् कि निश्चय अनात्मा। निश्चय आत्मा, वह वास्तविक आत्मा। आहाहा! समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में उदय को जीवतत्त्व कहा, वह व्यवहार आत्मा कहा। प्रमाण का ज्ञान कराया। यहाँ उस निश्चयनय का आत्मा व्यवहार की पर्याय में आता नहीं, (ऐसा कहते

हैं)। आहाहा! गजब शैली वीतराग की और वह भी चारों ओर की एक पद्धतिवाली। एक ही बात को सिद्ध करनेवाली, यथार्थ तत्त्व और विपरीत तत्त्व क्या, उसे सिद्ध करनेवाली। समझ में आया?

जगत में तीन काल—तीन लोक में ... **एक गति से दूसरी गति में जाता है।** कौन? अपना परमात्मस्वभाव (का) आश्रय किये बिना... यह एक समय की पर्याय का आश्रय, वह तो विकार था, उस विकार का आश्रय करके पड़ा तो मिथ्यात्व हुआ। उससे कर्म बँधे, उसमें भटका। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। आहाहा! वह कर्मशक्ति है, जीव की शक्ति नहीं। जीव की शक्ति तो परमात्मद्रव्य है। कहो, परमात्मशक्ति ही उसकी है। विकार होने की शक्ति आत्मद्रव्य में है ही नहीं। हौले से (आहिस्ता से) कहा। है न? कर्म की शक्ति... द्रव्य की शक्ति तो त्रिकाल एकरूप है। वह पर्याय में राग, वह कर्मशक्ति, विकारशक्ति, वह कर्मशक्ति है। तेरा स्वभाव कब था वह? भावकर्म कहो या द्रव्यकर्म कहो, सब एक ही चीज़ है यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए तत्त्व... कहा नहीं श्रीमद् ने? हे प्रभु! तुम्हारे कहे हुए तत्त्व मैंने जाना नहीं। आता है न, भाई? उसमें नहीं? हे भगवान! आपने कहे हुए दया, संयम मैंने पहिचाना नहीं, हों! पालन नहीं किये, ऐसा नहीं कहा। पहिचाना नहीं, ऐसा कहा है। उसमें शब्द ऐसा लिया है। भाषा ऐसी ली है। हे भगवान! मैं भूला, मैं भटका, मैंने तुम्हारे कहे हुए तत्त्वों को पहिचाना नहीं। आपने कही हुई दया, संयम को मैंने पहिचाना नहीं, हों! पालने की बाद में बात, अभी पहिचाना नहीं (कि) क्या कहना है? समझ में आया?

यहाँ भगवान परमात्मा परमेश्वर ऐसा कहते हैं, तू स्वयं ही परमेश्वर, हों! साक्षात्। साक्षात् प्रगट पुरुषोत्तम आत्मा। ऐई! प्रगट पुरुषोत्तम कहते हैं न तुम्हारे? खबर है न? हमारे तो गढडा में है न, हम तो जानते हैं न बहुत। वह प्रगट पुरुषोत्तम यह आत्मा प्रगट पुरुषोत्तम, वस्तुरूप से प्रगट पुरुषोत्तम। पर्याय में प्रगट करना, वह परमात्मा प्रगट व्यक्त पुरुषोत्तम है। समझ में आया? उसे कोई कुल से पहिचानना, माँ-बाप से पहिचानना, वह आत्मा है ही नहीं ऐसा। उसे शरीर से पहिचानना कि ऐसा शरीर था और ऐसा था। वह वस्तु ऐसी है ही नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया?

यहाँ सारांश यह है कि वीतराग परम आनन्दरूप तथा सब तरह उपादेयरूप

परमात्मा से (अपने स्वरूप से) भिन्न... देखो ! कैसा है भगवान आत्मा वस्तु ? वीतराग शब्द से राग अर्थात् दोषरहित। परम आनन्दरूप। राग क्यों अन्त में रखा है ? क्योंकि द्वेष जाता है और राग बाद में जाता है। इसलिए जिसका राग गया, उतना स्वभाव उसका अत्यन्त निर्दोष ही होता है, ऐसा। यह आत्मा ही ऐसा पहले से है सदा ही। समझ में आया ? वीतराग परम आनन्दरूप, वापस देखो ! वीतरागी परम सुख, वीतरागी परम सुखरूप भगवान आत्मा है। **तथा सब तरह उपादेयरूप...** ऐसा भगवान आत्मा वस्तु अकषाय आनन्दरूप सब प्रकार से उपादेय। अर्थात् कि वहाँ ही नजर डालकर आदरणीय है। वहाँ ही नजर डालकर वह आदर करनेयोग्य है। नजर डालने का अर्थ वह आदरणीय हुआ।

तथा सब तरह उपादेयरूप परमात्मा से भिन्न जो शुभ-अशुभ कर्म हैं,... लो ! उससे भिन्न यह पुण्य और पाप के भाव। **वे त्यागनेयोग्य हैं।** उपादेय और त्याग दोनों बताये। भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव चैतन्य आनन्दकन्द परमात्म वीतराग, वह अन्तर दृष्टि करनेयोग्य है। अर्थात् वहाँ दृष्टि स्थापित करनेयोग्य अर्थात् आदरणीय करनेयोग्य है और यह शुभ-अशुभभाव, वह सब छोड़नेयोग्य है। शुभाशुभभाव दोनों छोड़नेयोग्य और शुभाशुभ कर्म छोड़नेयोग्य, सब हो गया। वह शुभ और अशुभ विकल्प उठे, वह छोड़नेयोग्य है। आहाहा ! गजब बात ! समझ में आया ?

यह तू बड़ा है, छोटा नहीं। तूने छोटा करके माना, वह तेरी भ्रमणा की भूल है, ऐसा कहते हैं। हम परमात्मा हुए, वीतराग कहते हैं, वह सब पर्याय आयी कहाँ से ? वह दशा आयी कहाँ से ? बाहर से आती है ? लटकती है कहीं ? भगवान अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द को प्राप्त हुए, आया कहाँ से वह सब ? अन्दर में—वस्तु में पड़ा है, उसमें से आया है। वह कुँए में पड़ा हुआ हो, वह हौज में आता है। तेरी चीज़ में वह सब चीज़ें पड़ी हैं। हमें जो प्राप्त हुई, वे सब तेरी चीज़ में पड़ी हैं। आहाहा ! उसमें से प्राप्त होनेयोग्य है, बाकी अन्यत्र से कहीं प्राप्त होनेयोग्य नहीं। भगवान कहे, हमारे सामने देखने से तुझे तेरी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होगी, ऐसा कहते हैं, लो ! यह भगवान वीतराग कहे। हमारे सामने देखने से तेरी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होगी। आहाहा ! क्योंकि जिसमें है, उसमें सन्मुख देखने से होगी। तुझमें सब है। आहाहा ! अरे ! यह बात

इसे बैठना कठिन। अरे! इसे बीड़ी बिना चले नहीं। हम ऐसे? इतना वस्तु में है, पर्याय में घालमेल तूने की है। समझ में आया? ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी करने के लिये दु:खी होना, दु:ख को ही आदर किया और दु:खी होने को। सुखस्वरूप को आदर किया नहीं सुखी होने के लिये। समझ में आया? इस गाथा का सार यह कहा। समझ में आया? वे कहे, हो गया। कर्म उसे भटकावे, अपना कुछ दोष नहीं, ऐसा नहीं। तेरा दोष वही कर्म है। वह कर्म की शक्ति है, स्वभाव की शक्ति नहीं। पुण्य और पाप के विकल्प, वह कर्मशक्ति अर्थात् तत्त्वशक्ति—द्रव्यशक्ति नहीं। समझ में आया? ऐसी शक्ति का तूने आदर किया, वह उसके कारण भटका चार गति में। कर्म ने भटकाया, वह तो जैसा है वैसा कहा है यहाँ तो। आहाहा! रतिभाई! उसमें कहीं हेडमास्टर में आता होगा ऐसा कहीं वहाँ? यह तो दोनों व्यक्ति बैठे यहाँ। कौन जाने क्या समझाते होंगे? यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हेडमास्टर हैं। ओहोहो! उनके विद्यालय में यह बात है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंगु भटकने के लिये, भटकने के लिये। कर्म को करने के लिये पंगु और कर्म में भटकने के लिये पंगु। यहाँ तो अनन्त वीर्य लेकर लिया था ऊपर। समझ में आया? अनन्त वीर्य है, उस राग में वीर्य जाये, वह अनन्त वीर्य का स्वरूप ही नहीं। अनन्त वीर्य तो स्वरूप की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। ऐसा आता है। भगवान आत्मा का वीर्य अनन्त है। वह वीर्य तो स्वरूप की रचना करे, उसे आत्मवीर्य कहते हैं। राग की रचना करे आत्मा, वह अनात्मवीर्य है; आत्मवीर्य नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! वाह रे वाह! क्या परन्तु सत्य की प्रणालिका! ओहोहो! तीन काल—तीन लोक में कहीं बदले नहीं, एकधारा बात है। ऐसी वीतराग सन्तों की कथनी! समझ में आया? यह भाव ही ऐसे हैं।

कहते हैं कि, भगवान आत्मा अनन्त वीर्य का पिण्ड प्रभु है। उस गुण का सामर्थ्य क्या है? कि स्वरूप की—शुद्धता की रचना करे, वह उसकी शक्ति है। उसे आत्मा का वीर्य कहते हैं। जो पुण्य-पाप को रचे, वह आत्मवीर्य नहीं। आहाहा! रचना

तो देखो! पंगु है। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य-पाप के रचने में गति जाये, वह कर्म की शक्ति, भगवान आत्मा का वीर्य नहीं। आहाहा! उसकी भी बलिहारी है न! एक अंश में तत्त्व को विकाररूप से जोड़ना, वह वीर्य स्वरूप का नहीं, ऐसा कहते हैं। द्रव्य स्वरूप का वह वीर्य नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही है। भाव-अर्थ अर्थात् उसमें कहा हुआ उसका विस्तार करे, संकोच तो गाथा होती है। अपने नहीं कहा पण्डितजी ने? ५३वीं गाथा का अर्थ नहीं किया था इन्होंने? कि भाई! यह संक्षेप में तो यह और विस्तार करे तो यह अर्थ है। मुफ्त में किसके... हो? नियमसार की ५३वीं (गाथा)। कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं, भगवान! कहते हैं भगवान भगवान को, भगवान! तू तो पूर्ण बल का पिण्ड है, हों! वह तेरा वीर्य शुभाशुभ कर्म में कार्य करे, वह तेरा वीर्य ही नहीं। आहाहा! देखो न, चार बोल कहकर बात की। यह तो राग में रचना, राग का रचना, वह स्वभाव सामर्थ्य का वीर्य कहलाये? हो गया, जाओ! वह कर्म का वीर्य हुआ। खड़ा किया तूने, हों! अज्ञानभाव से इसके भान बिना। इसके—वीर्य के—इस वीर्य के भान बिना, ऐसा। अज्ञानभाव से उत्पन्न किया अर्थात् कर्म हुआ। उसके कारण से भटका। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए वह त्यागनेयोग्य है।

इस प्रकार कर्म की शक्ति के स्वरूप के कहने की मुख्यता से आठवें स्थल में आठ दोहे कहे। लो, ठीक! भगवान आत्मा की शक्ति तो आत्मा में है, उसकी रचना अन्तर्मुख में वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और वीर्य को रचे, वह आत्मा का वीर्य कहलाता है। अज्ञानरूप से वीर्य करके काम करे, वह तेरा स्वरूप नहीं, वीर्य नहीं। वह कर्म-वीर्य कहकर, दोष इसका, उसे कर्म वीर्य कहकर कर्म ने तुझे भटकाया और कर्म तुझे आगे ले गये और यहाँ लाये। तू तो जैसा है, वैसा पड़ा है। यह वस्तु के स्वरूप का माहात्म्य बतलाने के लिये उसकी भूल से भटका, उसे कर्म में डालकर तेरी शक्ति उससे भिन्न है, ऐसा बतलाना है। ऐसा आत्मा अनन्त बल का धनी भगवान, उसे अन्तर में आश्रय करनेयोग्य उपादेय है, यह सब छोड़नेयोग्य है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक - १२-११-१९६५
गाथा - ६७, ६८ प्रवचन - ४८

गाथा - ६७

परमात्मप्रकाश पहले भाग की ६७वीं गाथा। **इससे आगे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना की मुख्यता से जुदे-जुदे स्वतन्त्र नौ सूत्र कहते हैं—**

६७) अप्पा अप्पु जि परु जि परु अप्पा परु जि ण होइ।
परु जि कयाइ वि अप्पु णवि णियमें पभणहिं जोई॥ ६७॥

अन्वयार्थ :- जो **निजवस्तु आत्मा...** वस्तु जो आत्मा शुद्ध चैतन्य पदार्थ वह **आत्मा ही है...** वह तो आत्मा ही है, आत्मा तो आत्मा ही है। **देहादि पदार्थ पर ही हैं,...** पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर, वह सब देहादि पर है। वस्तु आत्मा शुद्ध ज्ञान चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव, वह आत्मा। आत्मा तो आत्मा ही है और पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर, वह सब देहादि में जाता है। **वे देहादि पदार्थ पर ही हैं,...** कहो, समझ में आया? **आत्मा तो परद्रव्य नहीं होता,...** वापस अस्ति-नास्ति करते हैं। पहले अस्ति की कि आत्मा, वह आत्मा ही है, वस्तु चिद्घन ज्ञायकमूर्ति वह आत्मा आत्मा ही है। पुण्य-पाप के विकार कर्म शरीर वह देह, वह देह ही है, वह सब देह है, पर। अब आत्मा परद्रव्य नहीं, नकार करके वापस कहते हैं। वह अस्ति से बात की थी। आत्मा वह राग, द्वेष, शरीर, कर्म नहीं। समझ में आया? **आत्मा तो परद्रव्य नहीं 'भवति'—होता,...** आत्मा विकाररूप, कर्मरूप, शरीररूप कभी तीन काल में होता नहीं। समझ में आया?

और परद्रव्य भी कभी आत्मा नहीं होता, ऐसा निश्चयकर योगीश्वर कहते हैं। सर्वज्ञ भगवान योगीश्वर परमात्मा ऐसा कहते हैं कि जो पुण्य और पाप के भाव, कर्म और शरीर, वह कभी आत्मा होते नहीं। समझ में आया? यह अन्दर पुण्य-पाप का विकल्प उठे न, दया, दान, व्रत, लाभ, भक्ति, पूजा ऐसा भाव, वह राग-विकार वह कर्म, शरीर आदि में जाता है, तो आत्मा होता नहीं। और आत्मा ज्ञायक चिदानन्द

आनन्दकन्द ध्रुव आत्मा, वह पुण्य-पाप के राग, कर्म और शरीररूप कभी होता नहीं। दोनों वस्तुएँ अनादि की भिन्न हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- शुद्धात्मा तो केवलज्ञानादि स्वभाव है,... देखो! यह आत्मा तो केवलज्ञान, दर्शन... केवल अर्थात् उस पर्याय की बात नहीं। केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली स्वच्छता, विभुता, प्रभुता, ईश्वरता, वीर्यता इत्यादि। ऐसे यह शुद्धात्मा तो उसे आत्मा कहते हैं कि, जिसमें एक ज्ञान, दर्शन, आनन्द पूर्ण, पूर्ण स्वभाव भरपूर, उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **जड़रूप नहीं है,...** भगवान आत्मा... यह पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, जाप आदि का राग, वह तो जड़ है, विकार है। उसरूप आत्मा कभी हुआ नहीं। कहो, समझ में आया?

उपाधिरूप नहीं है,... यह जड़ अर्थात् उपाधि है। अन्दर भगवान आत्मा तो ज्ञान ज्योति अखण्ड आनन्द ध्रुव चैतन्य अनन्त केवलज्ञान आदि गुण स्वभावस्वरूप आत्मा है। उसे आत्मा कहते हैं, उसे परमात्मा ने आत्मा कहा। और वह आत्मा पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर ऐसा जो जड़, उसरूप कभी हुआ ही नहीं। क्योंकि वह उपाधिरूप है ही नहीं, वह तो निरुपाधि तत्त्व है। आहाहा! ओहो! समझ में आया? नौ तत्त्व है न? उसमें भगवान आत्मा तो ज्ञायकस्वभाव, स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वभावरूप ही रहा है अनादि से। उसे आत्मा कहते हैं। और अन्दर पुण्य-पाप के भाव, वह आस्रव है, वह बन्धभाव है, वह आस्रव और बन्धभाव और कर्म तथा शरीर अजीव। वह आत्मा आस्रव, बन्धभाव और अजीवरूप कभी हुआ ही नहीं। और पुण्य-पाप के आस्रव, कर्म और शरीर, वे आत्मारूप कभी हुए ही नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? एक तत्त्व दूसरे तत्त्वरूप कैसे हो? तो तत्त्व रहे नहीं। छोटाभाई! आहाहा!

अनन्त ज्ञान-दर्शनस्वभावी भगवान, वह उपाधि पुण्य-पाप के दया, दान, व्रत, भक्ति, जाप के भाव, वह तो विकार है। उस विकाररूप कभी आत्मा हुआ नहीं और वे विकार आत्मारूप हुए नहीं। दूसरी भाषा से कहें तो आत्मा आस्रवरूप हुआ नहीं, आस्रव आत्मारूप हुए नहीं। आत्मा कर्म, अजीव, शरीररूप हुआ नहीं, शरीर और कर्म अजीवतत्त्व, वह जीवतत्त्वरूप हुए नहीं। इसकी खबर नहीं होती और इसे धर्म करना है। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! भेद भावना की गाथाएँ नौ हैं।

शुद्धात्मास्वरूप ही है। भगवान तो शुद्धात्मस्वरूप है। अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली स्वच्छता, अकेली प्रभुता, अकेला शान्तरस ऐसा आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं और वह आत्मा उसे कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा आत्मा अन्दर जाने और श्रद्धा किये बिना इसे तीन काल—तीन लोक में धर्म होता नहीं। आहाहा! चिमनभाई! वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा श्रद्धा करे और जाने तो सम्यक् कहलाये या जैसा है, उससे विपरीत जाने तो सम्यक् सत्य कहलाये? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान तो अनन्त काल... आहाहा! इसने तो किया है अज्ञान और अभिमान। मार डाला। साधु नाम धराकर भी यह पुण्य-पाप के भाव, पुण्य के, दया, व्रत के भाव, वे आत्मा के हैं—ऐसा इसने माना है। वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि इस प्रकार अनादि से भटका है। आहाहा! समझ में आया?

दया, दान, व्रत, भक्ति, जाप, पूजा, भक्ति, यात्रा, वह सब भाव शुभभाव है, वह आत्मा नहीं। वह आत्मा नहीं, वह उपाधि विकल्प राग जड़ है। वह जड़ में जाता है, आत्मा में नहीं। आहाहा! और वह जड़ कभी आत्मारूप हुए नहीं। भगवान केवल अकेले ज्ञान का पिण्ड, शान्तरस का सागर, अनन्त वीर्य की मूर्ति स्वयं प्रभु आत्मा है। वह कोई राग, पुण्यरूप कैसे हो? और पुण्य का भाव, वह आत्मारूप कैसे हो? आहा! समझ में आया? **पर जो काम-क्रोधादि परवस्तु...** काम अर्थात् इच्छा, क्रोधादि परवस्तु। **भावकर्म...** इच्छामात्र से वृत्ति जो उठे, वह सब परवस्तु है। आहाहा! इच्छा और क्रोध अर्थात् राग-द्वेष ले लिये, भाई! काम में इच्छा और क्रोध में द्वेष। अर्थात् राग और द्वेष की जितनी वृत्तियाँ उठती हैं... समझ में आया? अरे! दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा की जितनी वृत्तियाँ उठती हैं, वह सब विकार है, वह उपाधि भाव जड़ है, वह चैतन्य आत्मा नहीं। आहाहा! वह भावकर्म है। आठ कर्म हैं, वे जड़ द्रव्यकर्म हैं और शरीर, वाणी नोकर्म हैं।

वे पर ही हैं,... वे पर ही हैं, **अपने नहीं हैं,...** अपने नहीं। आहाहा! जिसे आत्मा कहते हैं, सर्वज्ञ भगवान केवली ने आत्मा ऐसा देखा कि आत्मा वह तो अकेला ज्ञान,

अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली स्वच्छता, प्रभुता आदि का पिण्ड अकेला शुद्धात्मा, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा इच्छा, द्वेष, कर्म और नोकर्म उसरूप हुआ नहीं। और वह इच्छा, द्वेष, कर्म, नोकर्म, वे आत्मारूप कभी तीन काल में हुए नहीं। कहो, भीखाभाई! आहाहा! **ये अपने नहीं हैं,...** यह पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के, जाप के भाव, वे आत्मा के नहीं हैं।

जो यह आत्मा संसार-अवस्था में... वह आत्मा अब संसार अवस्था में... वस्तु तो ऐसी है, परन्तु अब पर्याय की बात लेते हैं। उसकी अवस्था में **यद्यपि अशुद्ध-निश्चयनयकर काम क्रोधादिरूप हो गया है,...** पर्याय में, अवस्था में, हालत में, दशा में राग, द्वेष, पुण्य, पाप के भावरूप पर्याय हुई है, वस्तु हुई नहीं। समझ में आया? शुद्ध आत्मा, वह तो वस्तु, वस्तु आत्मा। वही वर्तमान पर्याय में एक समय की दशा में अशुद्धनिश्चय से... क्योंकि मलिन पुण्य-पाप के भाव मलिन हैं और वे निश्चय तन्मय हैं पर्याय में एकाकार हैं। समझ में आया? **ऐसा काम क्रोधादिरूप हो गया है,...** हो गया अर्थात्? एक समय की पर्याय संसार में हुई है, ऐसा कहना है। वस्तु पूरी हुई है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह इसने माना है कि यह पुण्य और पाप आदि मैं हुआ हूँ, वह अवस्था संसार मेरा, ऐसा इसने माना है। इसलिए इस अपेक्षा से हुआ है अवस्था में, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वरूप तो उसे कहते हैं कि, अकेला ज्ञान, दर्शन, आनन्द की मूर्ति आत्मा। पुण्य और पापवाले भाव, उनरूप मैं हुआ हूँ, ऐसा अवस्था में इसने माना है। उस अवस्था में इसका दोष है, मान्यता इसने की है, इसलिए अशुद्ध निश्चय से आत्मा उसरूप हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? अशुद्ध निश्चय से मलिन का तन्मयपने से, ऐसा कहना है। निश्चय अर्थात् तन्मय, उसका अंश वह सत्, वहाँ तन्मय हो गया है। **काम क्रोधादिरूप हो गया है,...** अर्थात् शुभ और अशुभभाव उसरूप से माना है, पर्याय में माना है, इसलिए वहाँ उसरूप अशुद्ध निश्चयनय से संसार अवस्था मानी है, अर्थात् उसरूप हुआ है। वस्तु, वस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

तो भी परमभाव के ग्राहक शुद्धनिश्चयनयकर... देखो! भले अवस्था में शुभ-

अशुभ विकल्प दया, दान, भक्ति, जाप, काम, क्रोध, यात्र, ऐसा भाव उठता है, वह विकार है; वह आत्मा नहीं। मैं उसरूप हुआ, ऐसा अवस्था में इसने माना है। वस्तु उसरूप हुई नहीं। परन्तु मैं अवस्थारूप से ऐसा हुआ, आस्रवरूप से हुआ, भावबन्धरूप से हुआ—ऐसा अवस्था में माना है, अशुद्धनिश्चय से। मलिन का तन्मयपने की अपेक्षा से उसे अशुद्धनिश्चय कहा। आहाहा! परन्तु परमभाव ग्राहक भगवान आत्मा की दृष्टि से देखें तो वस्तु आत्मा परम स्वभावभाव त्रिकाल ज्ञायक आनन्द शुद्धभाव को ग्रहण करनेवाले नय से देखें तो **शुद्धनिश्चयनयकर अपने ज्ञानादि निजभाव को छोड़कर...** भगवान आत्मा अपने शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्द को छोड़कर, वह वस्तु उसे छोड़कर काम-क्रोधादिरूप नहीं होता। आहाहा! परमभाव, परम स्वभाव, वस्तुभाव, स्वभाव त्रिकाल ध्रुवभाव ऐसा ज्ञायक, आनन्द आदि भाव, उसे ग्रहण करने की दृष्टि से, ज्ञान से देखें तो ऐसा जो भाव, वह कभी विकार की अवस्थारूप वह तो हुआ नहीं। गजब बात!

पहले कहा कि हुआ, हो गयी है पर्याय, एक समय की पर्याय, उसे ऐसे विकल्प है, वहाँ उसका अस्तित्व इसने ऐसा माना है। ऐसा जो है पूरा ज्ञायकतत्त्व है, ऐसा महान सत्त्व, वह अस्तित्व मैं हूँ, ऐसा इसने माना नहीं। इसलिए मानने में उसने यह लिया है। अनादि से महान पदार्थ अनन्त ज्ञान-आनन्द का कन्द आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय स्वच्छता, विभुता, परमेश्वर प्रभुता का पिण्ड वह वस्तु आत्मा। ऐसी दृष्टि से देखें तो पुण्य-पाप के भावरूप वह वस्तु तो कभी हुई नहीं। कहो, यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? ऐ... जेचन्दभाई! ... शरीर इसमें आया है? शरीररूप आत्मा हुआ नहीं और...

मुमुक्षु : भले न हुआ हो, परन्तु शरीर बिगड़े तब तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हुआ नहीं फिर और बिगड़े-फिगड़े कहाँ आया? शरीररूप आत्मा हुआ नहीं तीनों काल और शरीर आत्मारूप हुआ नहीं तीनों काल। यह पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ के भाव, वे आत्मारूप हुए नहीं तीनों काल और आत्मा ज्ञानानन्द की मूर्ति वस्तु जो है, वह पुण्य-पाप के भावरूप हुई नहीं तीनों काल। आहाहा! अज्ञानी ने मिथ्याश्रद्धा में यह पुण्य और पापरूप मैं हूँ—ऐसा मिथ्यादृष्टिपने में माना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ कहा जाता है। भरी है कितनी? इसने की है, भरे कहाँ? एक समय की है। ऐई! आहाहा! समझ में आया?

यह वस्तु, वस्तु जो है आत्मा जिसे कहते हैं शुद्धात्मा, वस्तु आत्मा जिसे कहते हैं, उस आत्मा की अन्तर दृष्टि से देखो तो वह आत्मा कभी पुण्य और पाप की पर्यायरूप वह वस्तु हुई ही नहीं। क्यों? **अपने ज्ञानादि निजभाव को छोड़कर काम क्रोधादिरूप नहीं होता, अर्थात् निजभावरूप ही है।** कौन? विकार, पुण्य, पाप, वे आत्मारूप नहीं। इसलिए अपना स्वभाव ज्ञान, दर्शन, त्रिकाल आनन्द एकरूप स्वभाव, उसे छोड़कर काम-क्रोध अर्थात् पुण्य-पाप इच्छा राग-द्वेषरूप आत्मवस्तु होती नहीं। **निजभावरूप ही है।** वह तो अपने भाव ज्ञान, आनन्द आत्मतत्त्वरूपी आत्मा है। ओहोहो! अरे! कभी सुने नहीं, सुने नहीं, समझे नहीं और हमारे धर्म हो जाये। धूल में भी नहीं धर्म मर जाये तो भी। समझ में आया? वीतराग परमेश्वर किसे आत्मा कहते हैं? किसे विकार कहते हैं? किसे शरीर कहते हैं? किसे कर्म कहते हैं?—इसकी कुछ खबर नहीं होती और हम धर्म करते हैं। धूल में भी धर्म नहीं, मिथ्यात्व करता है। भगवानजीभाई! आहा! पिचहत्तर वर्ष में भी दूसरा निकला यह तो। कहो, समझ में आया?

भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भाई! तू जो आत्मा जिसे हम कहते हैं और जिस प्रकार से आत्मा सत् है, वह आत्मा शुद्ध ज्ञानघन है, वह आत्मा कभी पुण्य और पाप के रागरूप वह आत्मा हुआ ही नहीं। अपने निजभाव को छोड़ा नहीं, निजभाव ज्ञानानन्द का उसने छोड़ा नहीं। उसे छोड़े तो यहाँ रागरूप हो, वह छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... इतनी मेहनत की....

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहनत कहाँ थी इसमें? यह तो मात्र समझण को बदलने की बात है। इसमें क्रियाकाण्ड कहाँ आया, शरीर कहाँ आया, मेहनत कहाँ आयी? यह वस्तु, यह वस्तु एक समय में यह पूरा एक स्वभावभाव यह वस्तु वह ऐसी की ऐसी है। यह भाव, पुण्य-पाप के विकल्परूप यह भाव कभी हुआ नहीं। इसने निज स्वभावभाव

को कभी छोड़ा नहीं। अब इसमें क्या मेहनत है? यह तो ज्ञान की क्रिया है, ज्ञान की क्रिया हुई। उसमें दूसरी मेहनत कौन सी आयी? आहाहा! मेहनत... यह कहे हथोड़ा उठाना... कहाँ गये भरतभाई? नहीं आये? वह तो ऐसा विचार आया कि हथौड़ा इतना-इतना वाळा, परन्तु हथोड़ा उठावे तो पढ़ता है किसलिए? हमारे छोटाभाई कहते थे। सच्ची बात है। इकलौता पुत्र। वह कुछ करता है, क्या करता है? हथौड़ा उठाना पड़े? चालीस-पचास लाख का आसामी, अब उसका पुत्र तो दस लाख तो आवे या नहीं बारह लाख एक व्यक्ति को? अब उसे हथौड़ा उठाने का क्या काम? ऐसी बात होती थी। बात सच्ची। उसी प्रकार यह मुफ्त का हथौड़ा उठाता है अनादि का। अनन्त -अनन्त ज्ञान का लक्ष्मी का स्वामी, वह पुण्य-पाप के विकल्प के हथौड़े उठाकर 'वे मेरे'—ऐसा मानकर बैठा है। लक्ष्मी उसके पास, परन्तु उसका भान है नहीं।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप के विकल्प, वह हथौड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हथौड़ा। घन मारता है आत्मा को, घन मारता है कि मैं पुण्यवाला, मैं पुण्यवाला, मैंने दया, दान और भक्ति तथा व्रत के भाव किये, वह मैं। वह आत्मा के ज्ञानगुण के स्वभाव को दृष्टि में से छोड़कर, आत्मा के ऊपर घन मारता है। मुफ्त की मेहनत करता है। ऐई! ऐसा होने पर भी कभी द्रव्यस्वरूप उस विकाररूप (हुआ) ही नहीं। मर जाये और मरे और माने तो वह वस्तु तो वस्तु ही है, ऐसा कहते हैं। न्यालभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ चाहे जैसा हो। यहाँ तो एक दृष्टान्त है। उसमें कुछ हो, ऐसा नहीं। चाहे जैसे पुण्य-पाप के हथौड़ा उठा विकार के, जड़ के, अचेतन के, वे अचेतन हैं; चैतन्य का मूलस्वरूप नहीं।

मुमुक्षु : ऐसा सुनता है तो भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात सच्ची। चलता ही नहीं, सब उल्टा ही चलता है और मानता है कि हम कुछ सुल्टे रास्ते जाते हैं। अब वह कब हो सुल्टा रास्ता उसका? आहाहा! समझ में आया?

अहो! भगवान महिमावन्त पदार्थ, वह अमहिमावन्त विकाररूप कभी होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप भगवान केवली ने देखा कि तू तो शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द, उसे हम आत्मा कहते हैं। नौ तत्त्व में उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा पुण्य-पाप के आस्रवभाव, पुण्य-पाप के आस्रवभाव या बन्धभाव और अजीवभाव नौ तत्त्व में है या नहीं? पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तो वह भगवान आत्मा निज भाव सम्पन्न अनन्त लक्ष्मी का धनी, पूर्ण... पूर्ण परमभाव, परमभाव पूर्ण स्वभाव, वह स्वयं अपने ऐसे भाव को छोड़कर उन पुण्य-पाप के आस्रव-बन्धभाव और अजीवभावरूप कभी तीन काल में हुआ नहीं। आहाहा! माना है इसने। माने तो वह तो उल्टी मान्यता एक समय की अवस्था है। ऐसा कहते हैं। वह मान्यता एक समय की दशा है। यह पुण्यरूप से मैंने पुण्य किये और मैंने दया पालन की और मैंने भक्ति की और पूजा (की), वह सब विकल्प, हों! जाप किया। वह सब राग, 'वह राग मेरा'—ऐसा मूढ़ ने मिथ्यात्वरूप से माना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हटा हुआ ही है। माना है कि मैं यह हूँ। हट क्या जाये? ऐसा ही है, मात्र मान्यता की है। मैं यह राग। यह मैंने दया पालन की, मैंने भक्ति की, मैंने पूजा की, ऐसा विकल्प है। यह विकल्प है मैंने किया, मैंने किया, यह मूढ़ मिथ्यादृष्टि में आत्मा में से हटकर मानता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हटना है कहाँ? माना है कि यह पुण्य-पाप के विकल्प, वह मैं, मेरे। यह नहीं, बस इतनी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा है क्या तब? जो ज्ञान राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव आत्मतत्त्व के एकरूप है, ऐसा माना है... यह भेदभाव की व्याख्या है, यह नौ भेद की व्याख्या है। भाई ने कहा न, अभेदरत्नत्रय कहाँ आता है? परन्तु वह दूसरी अपेक्षा से आयेगा। वह तो पर से भिन्न करके अभेदरत्नत्रयरूप से परिणमे तो मुक्ति होगी। ऐसी

अपेक्षा से बात है। बाकी भेद की व्याख्या है यह, भेदाभेदरत्नत्रय की यह व्याख्या नहीं। समझ में आया? यह तो जो नया छापे तो अक्षर-अक्षर लिख डालते हैं। किसे पढ़ना है कुछ? यहाँ तो भाई कितनी मेहनत करते हैं हमारे हिम्मतभाई। एक-एक अक्षर को समान रहने देते नहीं। बदल-बदलकर व्यवस्थित रखते हैं। एक ऐसा हो तो कहे नहीं। ऐसा नहीं होता, ऐसा होता है। सच्ची बात भाई! कहो, यह समझ में आया? यहाँ तो हिम्मतभाई ने बहुत कर डाला, बहुत सुधार कर डाला। यहाँ कहते हैं परन्तु यह सब कहाँ करे? वे निवृत्त कहाँ से? उन्हें अपना करना या क्या करना? विद्यालय का करना? कितना करना? उसमें करना? ... और गुजराती पढ़ूँगा, मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ूँगा, यह कलशटीका। कितना करना? स्वयं को समय लेना या नहीं? ऐई.! आहाहा!

कहते हैं, तेरी दृष्टि के फेर से संसार और दृष्टि के फेर से मुक्ति। आहाहा! तेरी दृष्टि में यह पुण्य और पाप के भाव, शरीर, कर्म मेरे, बस! यह दृष्टि, वही संसार है और यह पुण्य और पाप, शरीर, कर्म, वे मुझमें नहीं, मैं तो ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ। मेरा निजभाव छोड़कर परभाव और कर्मरूप मैं कभी हुआ नहीं। ऐसी अनुभव की दृष्टि करना, उसका नाम मुक्ति है, वह मुक्ति ही है। आहाहा! स्वरूप मुक्त ही है। समझ में आया?

महान अस्तित्व के भाव को विपरीत रागादि परिणामरूप से, अस्तिरूप से स्वीकार करना, बस यह ही इसे भ्रम, यही मिथ्यात्व और यह संसार। भगवान ज्ञायकभाव पूर्णानन्द प्रभु, वह निजभाव छोड़कर कभी राग के विकल्परूप हुआ नहीं, बस ऐसा अन्तर स्वीकार होना, वह मुक्ति का पंथ कहो या मुक्ति कहो। समझ में आया? कहते हैं, अहो! **निजभावरूप ही है,...** पररूप हुआ नहीं। आहाहा! मर जाये दुनिया में से मान लेने के लिये। कोई अच्छा कहे, अच्छा माने। मर जाता है उसके लिये। परन्तु अच्छा तू है, उसे तो देख अन्दर। आहाहा! किससे तुझे अच्छा कहलवाना है? अच्छा होना नहीं और अच्छा कहलवाना है। मार डाला है न! समझ में आया? आहाहा! अच्छा होना नहीं अर्थात् अच्छा अर्थात् ज्ञानानन्द भगवान परमानन्द की मूर्ति हूँ—ऐसी अन्तर अनुभव की दृष्टि करना, वह अच्छा किया कहलाता है। अच्छा होना नहीं और अच्छा कहलवाना है। पुण्य-पाप के भाव (उसमें) मिठास वेदन करना, शुभभाव में मिठास, पाप में

मिठास, भोग में मिठास, वासना में मिठास। इसका अर्थ कि वह आत्मा उसरूप है। अर्थात् वत मेरी चीज़ है, इसलिए उसकी मिठास है। इसलिए आत्मा विषय की वासना और रागरूप हो गया, ऐसा अज्ञानी ने मिथ्यादृष्टिरूप से माना है। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहा? जिसे पुण्य और पाप भाव में मिठास वर्तती है मिठास, रस वर्तता है। वह आत्मा वस्तु तो उसरूप हुई नहीं, परन्तु उसे मिठास वर्तती है; इसलिए मिथ्यादृष्टिरूप से अशुद्ध निश्चयनय से उसरूप अवस्था हुई है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वभाव को छोड़कर कभी, कहते हैं, विकल्परूप परिणमा ही नहीं न! निजभाव को छोड़ा ही नहीं न। आहाहा! समझ में आया इसमें? परन्तु कहाँ फँसा है न। यह कहाँ फँसा, इसकी इसे खबर नहीं पड़ती। फँसने को माने आत्मा का स्वरूप और आत्मा का साधकपना। जो कोई अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के कषाय के मन्द परिणाम, उनसे आत्मा को धर्म का लाभ होता है, यह माननेवाले मिथ्यादृष्टि राग को ही आत्मा मानते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई! तथापि वह रागमय हुआ नहीं। आहाहा! इसने इसे ठगा है अनन्त काल से। दूसरा कौन ठगे? किसे ठग सके? अपने को ठगा है। जगजीवनभाई अभी ठीक हैं। कहाँ गये धर्मचन्दभाई? तुम्हारे पिता को अब ठीक है। ... कहो, समझ में आया इसमें?

भाई! यह लक्ष्य में वस्तु आ जाये न, पहला यह है, यह नहीं। वहाँ से उसका दौर शुरु होता है। समझ में आया? बाकी लाख करोड़ बात करके मर जाये नहीं। महाव्रत पालन करे और दयायें करें और भक्ति करे, यात्रा करे और ॐ का जाप करके सूख जाये अनन्त बार। वह सब विकल्प की वृत्तियों को स्वयं आत्मा को लाभ होता है, ऐसा माननेवाला आत्मा उसरूप से हुआ, ऐसा इसने माना है। आहाहा! रतिभाई! लॉजिक से-न्याय से तो बात है या नहीं? आहाहा!

कहते हैं, इसमें पुनरुक्ति लगती नहीं। यहाँ आया न कि **क्रोधादिरूप नहीं होता, निजभावरूप ही है।** इन दो की व्याख्या चलती है। समझ में आया? भगवान आत्मा परम आनन्द परमात्मा स्वयं परमात्मा, वस्तु स्वयं परमात्मा। परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप, परम स्वभावभाव वह परमात्मा। स्वयं परमात्मा वर्तमान वस्तु स्वयं परमात्मा ही

है। परमात्मप्रकाश है न! वह परमात्मा विकार की पर्यायरूप कभी तीन काल में हुआ नहीं। कहो, कोठारी। कोठारी के ऊपर ध्यान गया। कोठारी! समझ में आया या नहीं यह? कौन कोठारी? कहाँ गये खुशालभाई, नहीं? खुशालभाई! यह समझ में आता है? ऐसा। पुराने व्यक्ति आये अब।

भगवान आत्मा जिसका रूप अनन्त गुण के भाव से भरपूर जिसका रूप और स्वरूप है, वह आत्मा कभी इच्छा राग और द्वेष के भावरूप तीन काल—तीन लोक में हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं। यह आत्मा ने अपने निज स्वभावभाव को कभी छोड़ा नहीं। **ये रागादि विभावपरिणाम उपाधिाक हैं,...** उसकी वर्तमान दशा में जो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव पुण्य (हो), वह उपाधि है और हिंसा, झूठ, चोरी के भाव, वह भी उपाधि है। देह, रागादिरूप भाव **उपाधिक हैं, पर के सम्बन्ध से हैं,...** वे स्व के सम्बन्ध के नहीं। वे कर्म के, जड़ के सम्बन्ध से उत्पन्न की हुई उपाधि है। आहाहा! **निजभाव नहीं हैं...** वह भगवान आत्मा का स्वभावभाव नहीं। समझ में आया? **इसलिए आत्मा कभी इन रागादिरूप नहीं होता, ऐसा योगीश्वर कहते हैं।** ऐसा सर्वज्ञ भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव केवली प्रभु ऐसा फरमाते हैं कि यह आत्मा विकल्परूप कभी हुआ नहीं। क्योंकि जो पर के सम्बन्ध का भाव, वह स्व सम्बन्ध के स्वभावरूप कभी होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ उपादेयरूप... अब हेय और उपादेय का योगफल करते हैं। यहाँ अंगीकार करनेयोग्य, **मोक्ष-सुख (अतीन्द्रिय सुख) से तन्मय...** अर्थात् अतीन्द्रिय सुख से तन्मय। मोक्ष-सुख की व्याख्या अतीन्द्रिय सुख। उससे एकमेक भगवान आत्मा अन्दर है। आत्मा उस अतीन्द्रिय सुख से एकरूप है। अभी, हों! अतीन्द्रिय आनन्द के भाव से तन्मय द्रव्य है। **और काम-क्रोधादिक से भिन्न...** यह पुण्य-पाप के विकल्प के भाव से वह भिन्न और अपने अतीन्द्रियस्वभाव से अभिन्न है। यह आत्मा, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से अभिन्न अर्थात् भाववाला, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द भावस्वरूप। 'वाला' इसकी अपेक्षा (स्वरूप)। आत्मा अतीन्द्रिय भावस्वरूप और वह आत्मा इच्छा-रागादि से भिन्न। समझ में आया? **जो शुद्धात्मा है, वही उपादेय है,...** वही आत्मा दृष्टि में, अनुभव में लेनेयोग्य है। इसे करने का तो यह है। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा**

अभिप्राय है। लो! ऐसा इस श्लोक का तात्पर्य, अभिप्राय है। समझ में आया इसमें? इसमें तो सीधी-सादी भाषा में आता है, इसमें कहीं कोई ऐसी कोई (कठिन भाषा नहीं)। अब बहुत ऊँची गाथा आती है, ऊँची।

★ ★ ★

गाथा - ६८

आगे शुद्धनिश्चयनयकर... भगवान आत्मा के परम स्वभाव दृष्टि की अपेक्षा से देखने पर वह **आत्मा जन्म, मरण, बन्ध और मोक्ष को नहीं करता है,...** जो आत्मवस्तु है, वह जन्म-मरण और बन्ध-मोक्ष को करता नहीं। परमात्मप्रकाश, वह परमात्मप्रकाश है न! शुद्धनिश्चयकर वस्तु... वस्तु... वस्तु... परमभाव, परमभाव, आत्मभाव, स्वभावभाव अनादि-अनन्त एकरूप भाव, ऐसी दृष्टि से देखें तो वह आत्मा जन्म को करता नहीं, मरण को करता नहीं, बन्ध को करता नहीं और मोक्ष को करता नहीं। **जैसा है, वैसा ही है—ऐसा निरूपण करते हैं**—ऐसा निरूपण करते हैं। समझ में आया? '**प्रतिपादयति**' है न।

६८) ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थेँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥ ६८॥

जिनवर वीतराग परमेश्वर ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**जिणवरु उएँ भणेइ**' देखो! इसमें जिनवर डालना पड़ा आचार्य को भी। साक्षी में वीतराग को डालना पड़ा। तीन लोक के नाथ परमात्मा अरिहन्तदेव ऐसा भणे है—ऐसा कहते हैं कि हे आत्मा! **हे योगीश्वर! निश्चयनयकर विचारा जावे,...** वस्तु का एकरूप त्रिकाली आत्मभाव उसकी दृष्टि से देखें, **तो यह जीव न तो उत्पन्न होता है,...** जन्म। वह आत्मा जन्मता है? आत्मा जन्मे? **न मरता है...** समझ में आया? मरे कौन? **और न बन्ध-मोक्ष को करता है,...** भगवान भावबन्ध को करता नहीं और भावबन्ध को छोड़ता भी नहीं। समझ में आया? कर्म को बाँधता और छोड़ता नहीं, यह बात तो एक ओर रह गयी। भावबन्ध की अवस्था जो है, उसे आत्मा करता नहीं, वह भावबन्ध की अवस्था को छोड़कर मोक्षपर्याय

आत्मा करता नहीं। भारी गजब बात! सुनना, सुनना, हों! समझने जैसी बात है। आहाहा! आहाहा! ऐसा जिनवर कहते हैं। ऐसा परमेश्वर तीन लोक के नाथ वीतरागदेव वे धर्मसभा में ऐसा फरमाते थे। आहाहा! अरे! भगवान! भगवान वह कहीं बन्ध को करे? बन्ध को करे तो मोक्ष को करे।

अर्थात् शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्ष से रहित है,... वस्तु जो है आत्मपदार्थ, वह पर्याय का बन्ध और पर्याय की मुक्ति से रहित ही वस्तु है। एक समय का बन्ध और एक समय की मुक्ति। मुक्ति एक समय की है। इन दो पर्याय से रहित ध्रुव द्रव्य-वस्तु है। समझ में आया? आहाहा! चिल्लाहट मचाये, हों! उनको तो ऐसा लगे कि मोक्ष को करता नहीं आत्मा? हाय, हाय। सुन न अब! मोक्ष तो एक समय की पर्याय है। सिद्धपना, वह कहीं आत्मा का द्रव्य, गुणपना नहीं। केवलज्ञान, केवलदर्शन, मोक्ष अवस्था तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। व्यवहारनय का विषय है, वह वस्तुस्वरूप नहीं। आहा! ले, यह गजब बात, भाई! कल आया नहीं था, भाई? क्या कहा था? सद्भूत और दो। शुद्ध सद्भूतव्यवहार, अशुद्ध सद्भूत। अर्थात् कि शुद्ध सद्भूत को अनुपचारी सद्भूतव्यवहार और अशुद्ध सद्भूत को उपचारी सद्भूतव्यवहार (कहते हैं)। ऐसा द्रव्यसंग्रह में आया था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाद में। यहाँ तो अपने इसके साथ सम्बन्ध करना है जरा।

जो मोक्ष है न, वह तो शुद्ध सद्भूतव्यवहार का विषय है, अर्थात् कि अनुपचारी सद्भूत का विषय है। विषय अर्थात्? मोक्ष की पर्याय—सिद्धपद की पर्याय है, वह त्रिकाली द्रव्य का एक अंश है, अंश है। सिद्धपर्याय एक अंश है, मोक्ष एक अंश है। वह अंश शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? वह (मोक्ष)-वस्तु त्रिकाल शुद्धभाव का विषय नहीं। त्रिकाल शुद्धभाव का—(द्रव्यार्थिक) का विषय तो वस्तु अखण्ड एकरूप है, वह है। सूक्ष्म है। राजमलजी! समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान, वह भी तेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। वह सिद्धपद की पर्याय,

भगवान! तेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं। आहाहा! प्राप्त द्रव्य को प्राप्त करने से वह पर्याय प्राप्त हो जाती है। द्रव्य का आदर करना, वह भी पर्याय है वर्तमान। उसमें से पर्याय प्रगट होती है। प्रगट हुई है, वह सद्भूत पर्याय का विषय, व्यवहारनय का विषय है। उसकी पर्याय इसलिए भी है व्यवहार अंश है, इसलिए व्यवहार है। अंश है न इसलिए व्यवहार है, पर्याय उसका (अर्थात्) सद्भूत है, परन्तु त्रिकाल वस्तु वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह पूरा आत्मा नहीं। मोक्ष की पर्याय वह पूरा आत्मा नहीं। भाई! तू ऐसा है कि जिसका एकरूप अनादि-अनन्त आत्मद्रव्य जिसे कहते हैं वह तो... संवर, निर्जरा और उसका फलरूप पर्याय है वह तो। वह द्रव्य कहाँ रहा? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भाव का अकेला पूर्णरूप पिण्ड द्रव्य। उसके नय की दृष्टि से—द्रव्यार्थिकनय से देखें तो वह द्रव्य-वस्तु बन्ध को और मोक्ष को कैसे करे? ऐई छोटाभाई! चिल्लाहट मचाये। अभी तो यहाँ राग करना है और शरीर की क्रिया मुझसे करनी है न, अभी तो... ऐई! आहाहा! अभी राग करना है और मानना है कि आत्मा को लाभ होता है। समझ में आया? जो इसके स्वरूप में नहीं, उसे करके इसके स्वरूप की लाभ की प्राप्ति होती है, (ऐसा) इसे मानना है। यहाँ तो कहते हैं, एक समय की पूर्ण पर्याय को वह द्रव्य क्या करे? द्रव्य तो ध्रुवरूप त्रिकाल एकरूप वस्तु है। वह अंश प्रगट हो, वह तो सद्भूतव्यवहार का विषय है। अर्थात् कि व्यवहारनय का विषय, वस्तु त्रिकाल का विषय—(द्रव्यार्थिक) द्रव्य का विषय नहीं। वह तो व्यवहार हो गया। ओहोहो! अभी तो अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय की विपरीतता घुसाई। भेदरत्नत्रय, वह मुक्ति का कारण है, उससे अभेदरत्नत्रय होता है। अरे! भगवान! भूला है, हों! बड़ी दीवार को। भाई! महान पदार्थ प्रभु के ऊपर दृष्टि देना और एकाकार होना, वह भी व्यवहारनय का विषय है। वह निश्चयमोक्षमार्ग जिसे कहा, वह व्यवहारनय का विषय यहाँ है। यहाँ पर्याय है न। समझ में आया? फिर से, फिर से। वृद्ध अटके हैं।

वस्तु है न, वस्तु, एक समय में पूरा ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड वस्तु है। उसमें से जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह—वह वस्तु ऐसी अन्दर अनुभव होना, प्रतीति होना, रमणता, वह मोक्षमार्ग है, वह तो एक समय की अवस्था है, अवस्था

है। वह अवस्था त्रिकाल निश्चय के विषय की अपेक्षा से अवस्था व्यवहार का विषय हो गया, वह तो व्यवहार हो गया। त्रिकाल की अपेक्षा से एक अंश व्यवहार हो गया। जहाँ सिद्धपद भी व्यवहार हुआ, फिर यह कहाँ रह गया? आहाहा! समझ में आया?

वस्तु है न शाश्वत् चीज़, अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड वस्तु भगवान परमात्मा द्रव्य है। उस वस्तु की अपेक्षा से, मोक्षमार्ग जो होता है अन्दर में, वह भी अंश प्रगट हुआ। पूरी वस्तु कहीं आती है बाहर? एक अंश दशा निश्चय सम्यग्दर्शन, मोक्ष का मार्ग, यह भेद पड़ा; इसलिए पूरी वस्तु की अपेक्षा से, अभेद की अपेक्षा से भेद अर्थात् व्यवहारनय का विषय हुआ। जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य वह द्रव्य है। समझ में आया? यह सिद्धपद पर्याय हो और जिसकी हुई, वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य त्रिकाल ज्ञायकभाव, वह आदरनेयोग्य है। ... मस्तिष्क काम करे नहीं। मस्तिष्क काम न करे, वह उसे—जड़ को कहते नहीं, चेतन का काम करे, उसे कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।** देखो! शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्ष से रहित भगवान आत्मा। बन्ध की एक समय की विकृत अवस्था, मोक्ष की एक समय की अविकृत अवस्था, दोनों से रहित द्रव्य तो त्रिकाल एकरूप है। समझ में आया? ऐ... प्राणभाई! .... **ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।** ऐसा जिनेन्द्रदेव भगवान तीन लोक के नाथ, सौ इन्द्र के पूज्य ऐसे परमेश्वर ने ऐसा शास्त्र में फरमाया है। पर्याय प्रगट हुई। शुद्धनिश्चय त्रिकाल है। वह—(मोक्ष) नहीं, यह तो निश्चय हुआ, शुद्धनिश्चय त्रिकाल नहीं। मोक्षमार्ग है, वह निश्चयपर्याय है, शुद्धनिश्चय का विषय त्रिकाल है। सिद्धपर्याय भी निश्चय का विषय नहीं हुआ। त्रिकाल वस्तु की अपेक्षा से अंश है न, अंश है, अंश है भले शुद्ध है, पूर्ण है परन्तु अंश है। अंश है, इसलिए व्यवहार हो गया। पर्याय उत्पाद-व्यय पर्याय वह व्यवहार का विषय। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य क्या हो? द्रव्य तो द्रव्य ही है। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य है, वह शुद्ध निश्चय का विषय है; उत्पाद-व्यय वह व्यवहार का विषय है। दो होकर प्रमाण का विषय होता है। ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! जिसके घर में अनन्त आनन्द की लक्ष्मी अन्दर में पड़ी है, अनन्त आनन्द की लक्ष्मी उसके घर में पड़ी, पूरी पड़ी, पूर्ण-परिपूर्ण। अनन्त ज्ञान के परिपूर्ण भण्डार भरे हैं, जिसके घर में अनन्त वीर्य के भण्डार भरे हैं, अनन्त-अनन्त शान्ति—चारित्ररस के भण्डार जिसमें भरे, जिसमें स्वच्छता और प्रभुता और प्रत्यक्ष होने की योग्यता के गुण के भण्डार भरे हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, वह वस्तु स्वयं कैसे पर्यायरूप हो? अंशरूप वस्तु कैसे हो? ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई! आहाहा! एक अंश में वस्तु कैसे आ जाये? समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति के अभाव के होने पर... देखो! अब न्याय रखते हैं जरा। आत्मा उसे कहते हैं कि जो ध्रुव शुद्ध जो अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा उठाया। **यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति के अभाव के होने पर...** वह शुद्धस्वरूप जो है, उसके अनुभव का अभाव। वस्तु जो है शुद्ध भगवान ध्रुव एकरूप ध्रुव का अनुभव, वह पर्याय। उसकी अनुभूति की पर्याय, उसके अभाव के कारण। वस्तु... वस्तु... वस्तु... भगवान आत्मा एकरूप, एकरूप अनन्त गुण का एकरूप वस्तु, उसका अनुभव, उसे अनुसरकर पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल, ऐसी अनुभूति की पर्याय, यह अनुभूति, वह पर्याय है। समझ में आया? वह भी व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वरना हो ऐसी नहीं। वृद्ध अब बराबर... वस्तु ऐसी है, ऐसी उसे समझे बिना छोर आवे, ऐसा नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा, वह वस्तु। उसका अनुभव, शुद्धात्मा का अनुभव, वह वर्तमान निर्मल पर्याय। अर्थात् कि निश्चयमोक्षमार्ग की अनुभूति की पर्याय। अर्थात् कि संवर-निर्जरा की निर्विकारी पर्याय। उसका अभाव होने से, उसका जिसे अनादि से अभाव है। अज्ञानी को शुद्धात्मानुभूति की पर्याय का अभाव है। वस्तु की दृष्टि का अभाव है, ऐसा कहना है, भाई! वस्तु जो ऐसी है, उसकी दृष्टि का, उसके ज्ञान का, उसकी स्थिरता का उसे वर्तमान पर्याय में अभाव है, ऐसा कहना है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक

समय में पूर्णानन्द प्रभु की अनुभूति अर्थात् उसका लक्ष्य, उसकी रुचि और उसकी स्थिरता, उसकी—यह पर्याय की बात चलती है, ऐसी पर्याय **अभाव के होने पर शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके...** यह तो शुभ और अशुभ के भाव से परिणम रहा है पर्याय में, पर्याय में, हों! उस अनुभूति की पर्याय के अभाव में यह परिणमन है। समझ में आया? **शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके जीवन, मरण, शुभ, अशुभ, कर्मबन्ध को करता है,...** लो! यह शुभ-अशुभभाव को करता जन्म को, मरण को, शुभ, अशुभ कर्म को बाँधता है। वह पर्याय में वस्तु जो है, उसका लक्ष्य, श्रद्धा और स्थिरता, उसका लक्ष्य, श्रद्धा और स्थिरता के अभाव में परलक्ष्यी पुण्य के, पाप के भाव पुण्य, दया, दान आदि, उनसे वह कर्म बाँधता है और जीवन-मरण को, जन्म-मरण को करता है। अब विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक - १३-११-१९६५
गाथा - ६८ प्रवचन - ४९

परमात्मप्रकाश, ६८ गाथा का भावार्थ। पहले अध्याय की यह ६८ गाथा है। **यद्यपि यह आत्मा...** आत्मा अर्थात् यह आत्मा... क्या कहते हैं? आत्मा करता नहीं, ऐसा तो गाथा में है। आत्मा बन्ध को, मोक्ष को करता नहीं, यह तो गाथा में है, तथापि यहाँ पर्याय का आत्मा करता है, यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं जरा। टीकाकार। अर्थात् क्या? वस्तु जो द्रव्य-वस्तु है, वस्तु जो शुद्ध परमपारिणामिकभाव दृष्टि से देखें वह वस्तु, तो वस्तु नहीं बन्ध की कर्ता, नहीं मोक्षमार्ग की कर्ता, नहीं मोक्ष की कर्ता। समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है। भोगीभाई! वस्तु है, वस्तु एक समय का द्रव्य, द्रव्य वह द्रव्य अर्थात् ध्रुव वस्तु, वह नहीं संसार के भाव को करता, नहीं मोक्षमार्ग को करता, नहीं मोक्ष को करता। द्रव्य, द्रव्य-वस्तु। ऐसा पाठ में लेना है। तब आचार्य ने जरा उसमें से न्याय निकाला।

यद्यपि यह आत्मा... वह पर्यायवाला आत्मा लेना, भाई! वह पर्याय जो है न, द्रव्य की पर्याय-अवस्था, ऐसा जो आत्मा... कल से जरा अलग आया। **शुद्धात्मानुभूति के अभाव के होने पर...** वह आत्मद्रव्य जो है वस्तु, उसे **शुद्धात्मानुभूति के अभाव के होने पर...** आत्मा ज्ञायक अखण्ड आनन्द ध्रुवतत्त्व वस्तु, वह आत्मा जन्म-मरण, बन्ध-मोक्ष को करता नहीं।

परन्तु वह आत्मा **शुद्धात्मानुभूति के अभाव के होने पर...** उसकी वर्तमान पर्याय में-अवस्था में शुद्ध वस्तु जो शुद्ध वस्तु है, द्रव्य-पदार्थ है, उसकी **अनुभूति के अभाव के होने पर...** वह पर्याय है वह तो। ऐसे द्रव्य की अनुभूति की जो पर्याय है, उसके **अभाव के होने पर शुभ-अशुभ उपयोगों से...** उसकी पर्याय में; द्रव्य शुद्ध द्रव्य तो ध्रुव एकरूप है। उसकी अनुभूति की जो पर्याय है, शुद्ध द्रव्य की अनुभूतिरूप पर्याय—मैं शुद्ध ज्ञान, आनन्द—ऐसी पर्याय, उस पर्याय के अभाव में शुभाशुभ पर्याय को करता है।

पर्याय, शुभाशुभ पर्यायरूप परिणमन करता हुआ, पर्याय में **परिणमन करके जीवन, मरण, शुभ, अशुभ, कर्मबन्ध को करता है,...** समझ में आया? वस्तु, वस्तु तो वस्तु ध्रुव है, पर्यायरहित। आज जरा सूक्ष्म है, भोगीभाई!

वस्तु जो है वह तो निश्चय का विषय, निश्चय तत्त्व। उसकी जो पर्याय है, वह व्यवहार का विषय व्यवहार तत्त्व। समझ में आया? आत्मा का व्यवहार तत्त्व और आत्मा का निश्चय तत्त्व। निश्चय तत्त्व जो है, वह तो एकरूप ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वह निश्चय तत्त्व। उसका व्यवहार तत्त्व जो है, वह पर्याय-अवस्था। व्यवहार आत्मा कहो, व्यवहार आत्मा का तत्त्व कहो। वह पर्याय में जब तक वस्तु के लक्ष्य की, रुचि की, स्थिरता की, अनुभूति की, मोक्षमार्ग की पर्याय का पर्याय में अभाव है, तब तक पर्याय शुभाशुभभाव को करती है। वह आत्मा करे, इसका अर्थ कि वह द्रव्य नहीं, परन्तु उसकी पर्याय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान पर्याय (एक) समय की।

ध्रुव चैतन्य भगवान ज्ञायकस्वरूप जो वस्तु, वह तो पर्यायरहित, उत्पाद-व्ययरहित है। उत्पाद-व्यय जो है, वह व्यवहारनय का तत्त्व आत्मा है। निश्चय का त्रिकाल है ध्रुव। उसमें वह निश्चय तत्त्व जो वस्तु, उसके अनुभव की व्यवहार पर्याय जो है, अनुभूति शुद्ध ज्ञायकमूर्ति, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और लीनतारूप वह अनुभव अर्थात् मोक्ष का मार्ग, ऐसी जो व्यवहार पर्याय शुद्ध, उसके अभाव में उस पर्याय में शुभ और अशुभभाव करे और शुभ तथा अशुभभाव के कारण से जन्म-मरण को करे। जीवन, मरण और शुभ-अशुभ कर्मबन्ध को करता है। समझ में आया?

और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर... वस्तु तो वस्तु है। उसमें शुद्धात्मानुभूति का उत्पाद होने से वह पर्याय, वह व्यवहार पर्याय। द्रव्य की अपेक्षा से व्यवहार पर्याय। वस्तु ज्ञायक चैतन्य पदार्थ के अनुभव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—स्वस्वरूप की श्रद्धा, स्वस्वरूप का ज्ञान, स्वस्वरूप में स्थिरता—ऐसी शुद्धात्मानुभूति पर्याय प्रगट होने से जो आत्मा की व्यवहार पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय (प्रगट हो), उसे यहाँ व्यवहारतत्त्व कहा जाता है।

ऐसा **प्रगट होने पर शुद्धोपयोग से परिणत...** उसमें शुभ उपयोग से परिणत कहा था, इसमें शुद्धोपयोग से परिणत है पर्याय, व्यवहार आत्मा। आत्मा में दो प्रकार। समझ में आया? वह **शुद्धोपयोग से परिणत होकर...** शुद्धस्वभाव में लक्ष्य करके, श्रद्धा करके, उस शुद्धोपयोगरूपी पर्याय परिणमे, इस प्रकार **होकर मोक्ष को करता है,...** उस शुद्धोपयोगरूपी पर्याय परिणम कर वह भी व्यवहार पर्याय, पर्याय है इसलिए। मोक्ष को करता है परन्तु वह व्यवहार। मोक्षपर्याय व्यवहार है। समझ में आया? क्योंकि द्रव्य जो है निश्चय ध्रुव, उसमें तो बन्ध नहीं, मोक्ष नहीं, मोक्ष का मार्ग उस वस्तु में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयनय का सत्—निश्चय अर्थात् एकरूप रहनेवाला सत्, उसके नय से देखें तो वह वस्तु तो वस्तु त्रिकाल एकरूप है। उसमें नहीं बन्ध, नहीं मोक्ष का मार्ग, नहीं बन्धमार्ग, नहीं मोक्ष। ...भाई! वह ध्रुवतत्त्व है, उसमें एक समय का पर्यायतत्त्व—उत्पाद और व्यय। और त्रिकाली ध्रुव तत्त्व एकरूप सदृश त्रिकाल। एकरूप त्रिकाल सत्त्व है, उसमें बन्ध और मोक्ष नहीं। मोक्ष का मार्ग और बन्ध मार्ग उसमें नहीं। आहाहा! मात्र उसके एक समय के उत्पाद-व्यय में एक समय की पर्यायरूपी व्यवहार के पर्याय में शुद्धात्मानुभूति की पर्याय के अभाव में शुभाशुभ से परिणमे, जीवन-मरण करे, कर्म को बाँधे। वह द्रव्य अपने शुद्धात्मानुभूति की पर्याय के काल में वह पर्याय व्यवहार, उत्पाद हुआ न, प्रगट कहा न? उत्पाद, उस समय शुद्धोपयोगरूपी परिणमन करके, कि जो उत्पाद पर्याय वर्तमान, मोक्ष को करता है। मोक्ष की पर्याय को कार्यरूप करे। वह मोक्ष भी पर्याय, वह भी व्यवहार पर्याय, निश्चय में वह पर्याय नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार पर्याय में—अवस्था में होने पर भी, **तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक,...** शुद्ध पारिणामिकभाव ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... एक समय की अवस्थारहित, परिणति, परिणति-पर्यायरहित तत्त्व। वह उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित तत्त्व ध्रुव। ऐसे शुद्ध पारिणामिक त्रिकाल परमभाव को ग्रहण करनेवाले नय से देखें तो वह आत्मा नहीं बन्ध का कर्ता, वह आत्मा नहीं मोक्ष का कर्ता। दो प्रकार हुए। निश्चय आत्मा, वह बन्ध-मोक्ष का कर्ता नहीं। पर्यायरूपी व्यवहार आत्मा शुभाशुभ बन्ध को करे, अनुभूति से मोक्ष को करे, पर्याय में। समझ में आया? कहो, यह समझ में आता है या नहीं अब?

वस्तु कही न, वस्तु है या नहीं ? सदृशरूप रहनेवाली चीज़ है या नहीं ? सदृशरूप अर्थात् वह... वह... वह... वह... वह... वह... वह... वह... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... अनन्त गुणरूपी सदृश चैतन्य एकरूप ऐसी वस्तु है या नहीं ? वह वस्तु सदृशरूप से रहनेवाली, वह निश्चयनय का विषय, वह निश्चयतत्त्व है। उसमें अवस्था का उपजना और अवस्था का जाना, वह व्यवहारनय का विषय पर्यायतत्त्व है व्यवहारनय का विषय। यहाँ अब पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। पर के साथ यहाँ सम्बन्ध नहीं कि यह पर का व्यवहार और ढींकणा, फींकणा यहाँ यह कुछ काम नहीं अब। आहाहा! निश्चय ध्रुव, व्यवहार पर्याय। बोलो बोलो। निश्चय में पर्याय नहीं। निश्चय में मोक्ष, बन्ध और पर्याय है ही नहीं, अकेला ध्रुव है। और विसदृश दूसरा भाग अब। वह सदृश भाग शुद्ध पारिणामिकभाव त्रिकाल एकरूप। आहाहा! अनन्त गुण का एकरूप, अनन्त गुणरूप एकरूप, वह तो एकरूप है। उसमें नहीं बन्ध, नहीं मोक्ष, नहीं मोक्ष का मार्ग या कुछ नहीं। भोगीभाई! सूक्ष्म बात है। यह तो वीतरागमार्ग ऐसा है। समझने में सूक्ष्म है ही नहीं, समझना चाहे, उसे समझने में आ जाये—ऐसी बात है। ... तो भी न समझ में आये ऐसी बात नहीं। सादी (भाषा) से तो बात चलती है।

ऐसी वस्तु है या नहीं ? यह शरीर नहीं, कर्म नहीं। वस्तु है या नहीं ? आत्मा पदार्थ है या नहीं ? अकृत्रिम, अकृत तत्त्व है या नहीं ? शाश्वत् वस्तु तत्त्व है या नहीं ? एक तत्त्व के दो प्रकार—एक शाश्वत् भाग रहनेवाला सदृश, एक पर्याय अवस्था का होना, वह विसदृश। अब विसदृश पर्याय की अपेक्षा से शुभाशुभ से परिणमे, जीवन-मरण करे, बन्ध करे। वह विसदृश पर्याय की अपेक्षा से शुद्धात्मानुभूति पर्याय प्रगट करे, मोक्ष करे। सदृश दृष्टि की अपेक्षा से बन्ध-मोक्ष उसमें है नहीं। समझ में आया ?

तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक... परमभाव। यह सब पर्यायें अपरमभाव है। मोक्ष, मोक्ष का मार्ग, वह सब अपरमभाव है, क्षायिकभाव भी अपरमभाव है। क्या कहा ? आहाहा! सिद्ध की पर्याय एक समय की है, इसलिए अपरमभाव है, परमभाव नहीं। परमभाव त्रिकाली ध्रुव सदृशभाव, वह परमभाव है। समझ में आया ? उस ध्रुव पर दृष्टि दे पर्याय की, उसमें झुका तो मुक्ति हो, ऐसा कहने का आशय है। पूरा स्तम्भ

पड़ा है ध्रुव का। उस बिना समकित नहीं होता, ज्ञान नहीं होता, चारित्र नहीं होता, मुक्ति नहीं होती। न्यालभाई! आहाहा!

काम लेना है पर्याय से, कार्य से, परन्तु उसका कारण जो महा भगवान पड़ा है, उसके ऊपर लक्ष्य और श्रद्धा-ज्ञान बिना तेरा मोक्ष का मार्ग उत्पन्न नहीं होता। वह विसदृश परिणमन उत्पन्न हो पर्याय। विसदृश अर्थात् उपजना-विनशना, ऐसा। उपजना और विनशना, वह विसदृश। विसदृश अर्थात् विकार, ऐसा नहीं। एकरूप रहनेवाले के ऊपर दृष्टि देने से अनेकरूप उत्पाद और व्यय हो, ऐसी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह तो खेल क्या है? यह तो अन्दर जाने, तब उसे खबर पड़े कि यह वह क्या कहते हैं वीतराग? समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्व... आहाहा! श्रीमद् ने कहा न, हे प्रभु! आपने कहे हुए तत्त्व मैंने पहिचाने नहीं, जाने नहीं। आपने कहा हुआ शील और दया, उसे मैंने जाना नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं यह? समझ में आया? भाई! यह भगवान यह आत्मा अनन्त गुण का सदृश ध्रुव परमपारिणामिकभाव, इस दृष्टि से देखें तो उसमें, उसमें बन्ध और मोक्ष ऐसा है नहीं। समझ में आया? परन्तु पर्याय की स्थिति से देखें तो पर्याय में बन्ध और मोक्ष सब है। वह मोक्ष भी अपरमभाव है, मोक्ष का मार्ग तो अपरमभाव है ही, परन्तु मोक्ष केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, केवल वीर्य, वह पर्याय भी अपरमभाव है। एक समय की अवस्था अपरमभाव, त्रिकालभाव वह परमभाव है। समझ में आया?

तो भी... कहा है न? '**तथापि**' है न? **शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक...** है न? संस्कृत। तथापि भगवान आत्मा अपने को भूले भाव से शुभाशुभरूप परिणमे और जीवन-मरण, जन्म-मरण करे। जन्म-मरण अर्थात् शरीर की बात नहीं, हों! यह जन्मना और उपजना पर्याय का। और कर्म को बाँधे निमित्त से। ऐसे वही भगवान आत्मा पर्याय में उसकी अनुभूति की पर्याय से मोक्ष को करे। अर्थात् शुद्ध उपयोगरूप परिणमकर मोक्ष को करे। वस्तु की दृष्टि से देखें परमभाव स्वभावभाव, एकरूप स्वभावभाव, ध्रुवभाव से देखें तो वह भाव नहीं बन्ध को करता, नहीं मोक्ष को करता। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में ही है, द्रव्य में क्या हो? समझ में आया? वह द्रव्य परिणमन बिना का, उत्पाद बिना का, उसके ऊपर दृष्टि दे, ऐसा यहाँ कहना है। दृष्टि भले उत्पादवाली है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तक तो आया था कल। यह तो थोड़ा विशेष (लिया)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे प्रकार से आवे। यह तो कहीं मेल है किस समय कैसे आवे यह? कहो, समझ में आया? यह तो पहला अधिकार लिया न, यह वापस भोगीभाई नये हैं न। अब यहाँ प्रश्न पूछा जाता है। अर्थात् और किसका प्रश्न पूछा? इसलिए फिर से लिया जरा।

ऐसा कथन सुनकर... अब आया। ऐसा कथन सुनकर **शिष्य ने प्रश्न किया...** शिष्य ने प्रश्न किया, ऐसा सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया। अर्थात्... चाहिए न, क्या आया था कल? ऐसा सुनकर शिष्य को प्रश्न उठा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न सब।

हे प्रभो,... शिष्य पूछता है। देखो, यह! समझ में आया? आहाहा! '**अत्राह शिष्यः...**' भगवान! **शुद्धद्रव्यार्थिकस्वरूप...** अर्थात्? वस्तु जो त्रिकाल, त्रिकाल सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... शाश्वत् अनन्त द्रव्य वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु जो है आत्मा, हों! एक-एक आत्मा की यहाँ बात है। वह वस्तु जो शाश्वत् अनन्त, शाश्वत् अनन्त ऐसी की ऐसी वस्तु है, इस नय से देखें तो **शुद्धनिश्चयनयकर मोक्ष का भी कर्ता नहीं है,...** आपने तो कहा कि वह मोक्ष का कर्ता नहीं। **तो ऐसा समझना चाहिए कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है,...** शिष्य का प्रश्न हुआ। आहाहा! प्रभु! आपने ऐसा कहा कि शुद्ध निश्चयस्वरूप वस्तु, वह बन्ध-मोक्ष का कर्ता नहीं। तब तो शुद्धनय से तो मोक्ष ही नहीं। **जब मोक्ष नहीं, तब मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है।** शिष्य ने प्रश्न किया। मोक्ष ही सिद्ध नहीं होता शुद्धनिश्चय से तो फिर मोक्ष का उपाय करना, वह भी

सिद्ध नहीं होता, वृथा जाता है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **उसका उत्तर कहते हैं**—समझ में आया इसमें?

गुरु ने ऐसा कहा कि वस्तु जो वस्तु, वस्तु सत् सिद्ध, सत् सिद्ध वस्तु त्रिकाल वह स्वयं बन्ध-मोक्ष को करती नहीं, उसमें बन्ध-मोक्ष नहीं। पर्याय में पर्याय बन्ध को (करे) और पर्याय मोक्ष को (करे) और पर्याय में मोक्षमार्ग है। तो शुद्ध निश्चयनय से वस्तु में बन्ध-मोक्ष नहीं तो शुद्धनिश्चय से मोक्ष ही नहीं। शिष्य ने प्रश्न किया। तो शुद्धनय से मोक्ष नहीं तो मोक्ष का प्रयत्न भी शुद्धनय से नहीं।

उसका उत्तर कहते हैं—मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है,... मोक्ष की पर्याय जो होती है आत्मा में, वह बन्धपूर्वक होती है। बन्ध का उत्पाद होता है, उसका व्यय होकर मोक्ष का उत्पाद होता है। बन्ध का उत्पाद जो है, उस बन्धपूर्वक मोक्ष अर्थात् उसका नाश होकर मोक्ष उत्पन्न होता है।

और बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं,... वस्तुस्वरूप से देखें तो बन्ध हो सकता नहीं, वस्तुस्वरूप से शुद्धनिश्चय से बन्ध हो तो बन्ध कभी छूटे नहीं। शुद्धनिश्चयनय शुद्ध सत्य वस्तु, शुद्ध सत्य त्रिकाल एकरूप रहनेवाले नय से देखें तो, **शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं,...** गुरु शिष्य को कहते हैं। **इस कारण बन्ध के अभावरूप मोक्ष है,...** बन्ध के अभावरूप मोक्ष है, **वह भी शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है।** बन्ध है, (वह) शुद्धनिश्चयनय से हो सकता नहीं। शुद्ध निश्चय से हो तो बन्ध का कभी अभाव हो नहीं। समझ में आया?

बन्ध के अभावरूप मोक्ष है, वह भी शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है। बन्ध का अभाव, वह भी शुद्धनिश्चय में हो नहीं सकता। **जो शुद्धनिश्चयनय से बन्ध होता, तो हमेशा बँधा ही रहता,...** कायम वस्तु की दृष्टि से बन्ध हो तो बन्ध कायम रहे। भाई! आहाहा! कायम वस्तु की दृष्टि से यदि बन्ध हो, यह शुद्धनिश्चय, वह कायम दृष्टि, कायम रहनेवाली वस्तु की दृष्टि से बन्ध हो तो बन्ध कायम रहे। यह कैसी बात? आहाहा! समझ में आया? ध्रुव रहनेवाली वस्तु को ध्रुव की दृष्टि से देखें तो यदि बन्ध हो तो बन्ध भी ध्रुव रहे, ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। नित्य वस्तु में नित्य दृष्टि से यदि बन्ध हो तो बन्ध ध्रुव रहे, बन्ध कभी टले नहीं।

शुद्धनिश्चयनय से बन्ध होता, तो हमेशा बँधा ही रहता,... अर्थात् कि ध्रुव कायम रहनेवाली चीज़ की नय से और वस्तु से देखें, यदि बन्ध इस प्रकार से हो तो कायम बन्धरूप वस्तु हो गयी। समझ में आया? ऐसा हो नहीं सकता। **कभी बन्ध का अभाव न होता।** वस्तुरूप से, नित्यरूप से, ध्रुवरूप से बन्ध हो तो ध्रुवरूप से बन्ध कभी टले नहीं। समझ में आया? शब्द शास्त्र के हैं परन्तु यह सब सरल हैं, उसमें कुछ ऐसा नहीं, ऐसी कोई अटपटी भाषा नहीं। **इसके बारे में दृष्टान्त कहते हैं**—इसके बारे में यह समझाने के लिये दृष्टान्त दिया है।

कोई एक पुरुष सांकल से बँध रहा है,... किसी पुरुष को साँकल से बाँधा हुआ है साँकल से। **और कोई एक पुरुष बन्ध रहित है,...** खुल्ला है। **उनमें से जो पहले बँधा था, उसको तो 'मुक्त' (छूटा) ऐसा कहना, ठीक मालूम पड़ता है...** बहुत दिन से जेल में से निकले, हों ऐसा कहे। वह जेल में जाये न, फिर कहते हैं न? तुम जेल में थे, उसे कहे। सेठिया को जाकर कहे बहुत दिन से जेल में से निकले, हों! सेठिया को कहे घर में बैठा हो उसे। जेल में गया ही नहीं, जेल में से निकलने का वर्ष नूतन का अभिनन्दन देते हैं। किसे कहते हैं? हम तो जेल में गये नहीं। जेल में गया हो और निकले, उसे कहे कि तुम जेल में से निकले। समझे? **और दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको जो 'आप छूट गये' ऐसा कहा जाये, तो वह क्रोध करे,...** ओहो! बहुत काल से जेल में से निकले। परन्तु जेल में गया है कब? मूर्ख कौन है? **कि मैं कब बँधा था, सो यह मुझे 'छूटा' कहता है,...** मैं कब जेल में गया था? वह निकला ऐसा कहता है? **बँधा होवे, वह छूटे, इसलिए बँधे को तो मोक्ष कहना ठीक है,...** बँधे हुए को मोक्ष कहना ठीक है, **और बँधा ही न हो, उसे छूटे कैसे कह सकते हैं?** तो यह बात बराबर है।

उसी प्रकार यह जीव शुद्धनिश्चयनयकर बँधा हुआ नहीं है,... वस्तु जो है वह तत्त्व है, ध्रुव है, सदृश है, अकेले सदृश गुण का सत्त्व भगवान द्रव्य, वह कभी बँधा हुआ नहीं। द्रव्य बँधता है? द्रव्य बँधे, इसका अर्थ होता है कि द्रव्य का अभाव हो। समझ में आया? अथवा निश्चय से बँधे तो बन्ध कभी छूटे नहीं। इसलिए बन्ध ऐसा का ऐसा रहे। समझ में आया? यह दृष्टान्त दिया। **उसी प्रकार यह जीव शुद्धनिश्चयनयकर**

बँधा हुआ नहीं है, इस कारण मुक्त कहना ठीक नहीं है। द्रव्य को बँधा हुआ कहना ठीक नहीं, द्रव्य को मुक्त कहना ठीक नहीं। द्रव्य का मोक्ष हुआ, द्रव्य का मोक्ष हुआ, ऐसा। परन्तु द्रव्य कब बँधा था, वह मोक्ष हुआ द्रव्य का? आहाहा! समझ में आया? वस्तु जहाँ बँधी हुई नहीं और ऐसा कहना कि मुक्ति हुई द्रव्य की। आत्मद्रव्य की मुक्ति हुई। द्रव्य कब बँधा हुआ था, वह मुक्ति हुई? भोगीभाई! आहाहा! बन्ध-मुक्त तो उत्पाद-व्यय पर्याय बिना का द्रव्य, वह भगवान परमात्मा शुद्धनिश्चय का विषय, वह भूतार्थ है। नित्यार्थ यथार्थ है। उसमें दृष्टि करने से उसे अनुभव—मुक्ति का मार्ग उत्पन्न होता है। कहो, समझ में आया इसमें? गुरु, शास्त्र, मेरुपर्वत और सम्मेदशिखर बाहर रह गये, विकल्प भी बाहर रह गया, 'पर्याय के ऊपर दृष्टि देने से' वह भी बाहर रह गयी। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ बात यह सिद्ध करनी है कि दृष्टि को निमित्त के ऊपर देने से सम्यग्दर्शन हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं। दृष्टि को विकल्प दया, दान, भक्ति, पूजा का भाव आवे, उसके ऊपर देने से सम्यग्दर्शन हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं। दृष्टि में, क्षयोपशम ज्ञान और वीर्य आदि पर्याय प्रगट हुई है, उसमें देने से सम्यग्दर्शन हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं। ऐ... न्यालभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जैसा है, वैसा ही है। लोगों ने माना हो दूसरे प्रकार से तो उस अपेक्षा से उन्हें कठिन लगे। ठीक न न्यालभाई? लोगों ने दूसरे प्रकार से कल्पित किया हो उल्टे प्रकार से, उन्हें ये कठिन लगे। वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, वहाँ फिर कठिन और सरल क्या? ओहोहो! समझ में आया?

बन्ध भी व्यवहारनयकर है,... इस आत्मा में विकार का अटकना, वह पर्याय में व्यवहार से है। भावबन्ध, हों! जड़बन्ध तो कहीं रह गया। राग, विकार में पर्याय अटकी हुई है, वह व्यवहारनय से है। **मुक्ति भी व्यवहारनयकर है,...** मोक्ष भी व्यवहारनय से है। **शुद्धनिश्चयनयकर न बन्ध है, न मोक्ष है,...** शुद्धनिश्चयनय का स्वभाव, स्वभाव, निश्चय सत् शुद्ध, सत् उसमें उसकी अपेक्षा से तो बन्ध और मोक्ष है नहीं। **और अशुद्धनयकर बन्ध है, इसलिए बन्ध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहिए।** क्या कहते हैं? अशुद्धनय से बन्ध, वह व्यवहारनय हुआ। समझ में आया? और बन्ध के

नाश का यत्न, वह भी अशुद्धनय हुआ। अशुद्धनय कहो या व्यवहारनय कहो, उपचारी सद्भूतव्यवहार कहो या मोक्ष कहो, वह भी सद्भूत अनुपचार का विषय है। मोक्ष व्यवहार से है, मार्ग व्यवहार से है, मोक्ष व्यवहार से है। देखो! व्यवहार से मोक्ष आया या नहीं इसमें? वह मोक्ष की पर्याय जो है, वह स्वयं व्यवहार है और उसका कारण जो मोक्ष का मार्ग निश्चय जो स्वभाव के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह पर्याय, वह व्यवहार है, वह पर्याय, वह व्यवहार है। वह व्यवहार उस पूर्ण व्यवहार का कारण है, ऐसा यहाँ कहना है। व्यवहार से मोक्षमार्ग जो यह दया, दान और विकल्प हो, वह यहाँ बात है नहीं। वह तो बन्धमार्ग में गया वह तो। आहाहा! समझ में आया? यह तो उसमें कहा न, शुभाशुभ बन्ध में गया वह तो। कषाय की मन्दता के परिणाम भक्ति, पूजा, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति की श्रद्धा आदि राग, वह राग तो बन्ध की पर्याय है। वह तो बन्ध की पर्याय व्यवहारनयरूप से बन्ध की पर्याय है, निश्चय में है नहीं। अब उसका अभाव, ऐसा मोक्ष का मार्ग, वह भी एक मोक्ष का मार्ग व्यवहार पर्याय है। क्योंकि उत्पाद नयी पर्याय है, ध्रुव नहीं। स्वभाव को अवलम्बकर शुद्धोपयोग का परिणमन हुआ, वह भी व्यवहार हुआ, वह व्यवहार और मोक्ष भी व्यवहार हुआ। क्योंकि (मोक्ष) पर्याय पूरी है, यह अधूरी है। दोनों व्यवहार हुआ। समझ में आया?

एक यह डालते हैं, एक जगह इसका डाला है, भाई! देखो, व्यवहार से मोक्ष, व्यवहार मार्ग से मोक्ष है। अरे... गजब करते हैं न! यह है न, उसमें आया या नहीं? व्यवहार आया या नहीं? वह आया था पत्रिका में एक बार। आहाहा! व्यवहार है न, कहा है, यह वहाँ कहा था। वह वडवा गये थे न, वहाँ पृष्ठ पड़ा था। बरामदे पर एक था, बरामदे पर। देखो! यह आश्रय करती है वह पर्याय है, आश्रय करे वह व्यवहार है। 'निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ के आश्रय से। परन्तु आश्रय वह व्यवहार है पर्याय। अरे! परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? परन्तु अभेदनय से पर्याय स्वयं ही व्यवहार है। जो आश्रय लेनेवाली पर्याय; आश्रयवान वस्तु है, वह निश्चय है। ... वह पर्याय क्यों? अंश है इसलिए। व्यवहार का अर्थ वहाँ विकल्प, ऐसा नहीं। अंश है, इसलिए व्यवहार है। वस्तु त्रिकाल वस्तु का आश्रय लेनेवाली पर्याय, वह व्यवहार। क्योंकि अंश है इसलिए। और उसके फलरूप से

त्रिकाल, वह भी अंश है, इसलिए व्यवहार है, ऐसा कहना है यहाँ तो। आहाहा! गजब करते हैं न! जीव भी उल्टा पड़ा क्या नहीं करता! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार की व्याख्या क्या? यहाँ तो ध्रुव में उत्पाद-व्यय का होना, वह व्यवहार। एक सिद्धान्त बस। फिर शुभाशुभरूप से परिणमे तो वह बन्ध भी व्यवहार और शुद्धोपयोगरूप से परिणमे तो भी वह मोक्षरूपी पर्याय मार्ग भी व्यवहार और मोक्ष की पर्याय परिणमे तो भी वह पर्याय, इसलिए व्यवहार। अरे! भगवान! अध्यात्म का व्यवहार भी न जाने। आता है न भाई? आगमपद्धति को व्यवहार कहते हैं ज्ञानी। क्योंकि दया, दान, व्रत, भक्ति करता दिखता है। अध्यात्म का तो व्यवहार भी समझे नहीं। अध्यात्म का व्यवहार अर्थात् यह शुद्धपर्याय, वह व्यवहार। द्रव्य तो निष्क्रिय शुद्ध है। आता है न भाई उसमें? मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार—ऐसा आता है। बनारसीदास। पहले के बनारसीदास आदि तो...

द्रव्य जो है, वह तो निष्क्रिय है। मोक्ष के मार्ग की पर्याय सक्रिय और मोक्षमार्ग सक्रिय पर्याय, वह तो व्यवहार है। मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार। साधना अर्थात् वह राग नहीं। त्रिकाल ध्रुव को अवलम्बकर निर्मल शुद्ध पर्याय साधना वह स्वयं व्यवहार है। छोटाभाई! आ गया है अपने। यह अभी जैनसन्देश पुस्तक आयी? अध्यात्म सन्देश प्रकाशित हुई है पुस्तक।... समझ में आया? वस्तु जो है ध्रुव, वह तो निष्क्रिय है। मोक्ष की पर्याय सक्रिय कहलाती है। परिणमन हुआ न परिणमन। मोक्ष का मार्ग सम्यक् निश्चय दर्शन, ज्ञान भी सक्रिय हुई (क्योंकि) पर्याय है। समझ में आया? आहाहा!

ध्रुव है, उसमें सक्रियपना क्या? परिणमन कहाँ है? ऐसा द्रव्यस्वभाव तो निष्क्रिय है। उसमें विकल्प उठे, वह बन्ध के परिणामरूप सक्रिय है। मोक्ष का मार्ग हो, वह निर्मलपर्यायरूपी-परिणमनरूपी सक्रिय अवस्था है। आहाहा! और पूर्ण पर्याय परिणमनरूप (हो) परन्तु वह मोक्ष की सक्रिय अवस्था है। मोक्ष की पर्याय सक्रिय? क्या हाँ? अभी तो यह देह की क्रिया सक्रिय, उसे आत्मा करे। राग की पर्याय सक्रिय, वह आत्मा की। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा... अहो! वीतरागियों ने कहे हुए तत्त्व अलौकिक! अहो! वीतराग ने अनुभव किया हुआ पूर्ण मार्ग। समझ में आया? श्रीमद् ने कहा न एक बार? अहो! यह देह की रचना, अहो! यह चैतन्य का सामर्थ्य, अहो! ज्ञानी, अहो! ज्ञानी की देशना, अहो! ज्ञानी का ध्यान! यह ऐसा होकर... है। अहो! ज्ञानी की समाधि, अहो! उसका वचन का योग, ऐसा करके कहा है। अन्तिम बोल ऐसा कहा है। ... बात की है। आहाहा! यह तो अन्तर की वास्तविक वीतरागता के भास में ऐसा ही जहाँ स्वरूप वहाँ आहाहा! भोगीभाई! इसमें बहुत भरा है, परन्तु अर्थ समझे नहीं न!

मुमुक्षु : समझना हो तो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात सच्ची, सच्ची बात है यह। समझना नहीं और अपना पक्ष रखकर बात करनी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तकों ने इसमें क्या किया? यह कहते हैं न। अरे! भगवान! पुस्तक है या आत्मा है, ऐसा कहे यहाँ तो। सबके पास भगवान आत्मा है, भगवान है। वह तीन काल का तत्त्व भगवान तत्त्व, ऐसे तत्त्व को बन्ध-मोक्ष सक्रियपना वस्तु में—निष्क्रिय में कैसे हो? आहाहा!

यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग के परिणाम, वे भी सक्रिय परिणमन हैं न, इसलिए सक्रिय है। वेदान्त को यह बात नहीं बैठती। वेदान्त ने पर्याय को उड़ायी है और वस्तु नहीं। यह क्या और परिणमन और सक्रियपना? उसने वस्तु को देखा ही नहीं, उसके कथन को करनेवाले ने। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य निष्क्रिय है। निष्क्रिय अर्थात् पर की क्रिया करे, वह तो बात नहीं, राग करे—ऐसा नहीं और मोक्ष की पर्याय भी उसमें नहीं। मोक्ष की पर्याय, निष्क्रिय, मोक्ष की पर्याय—सक्रिय करे, (ऐसा नहीं होता)। आहाहा! अरे... तेरे कथन! भगवान मोक्षतत्त्व, वस्तुतत्त्व निष्क्रिय वह मोक्ष की पर्याय—सक्रिय को वह कैसे करे? समझ में आया? निष्क्रिय है। इस अपेक्षा से **शुद्धनिश्चयनयकर न बन्ध है, न मोक्ष है, और अशुद्धनयकर बन्ध है,...** और वास्तव में तो अशुद्धनिश्चयनय से ही मोक्ष है, लो! अशुद्धनिश्चय अर्थात् व्यवहार।

उस अभाव की अपेक्षा से गिना, हों! अभाव की अपेक्षा से हुआ न। पर्याय है, वह तो एकदेश शुद्धनय है। एकदेश शुद्धनय, वह व्यवहार में जाता है, भाई! आहाहा! एकदेश शुद्धनय से मोक्ष, वह भी व्यवहार में जाता है। वह तो एकदेश—खण्ड शुद्ध कहा है। व्यवहार में जाता है। समझ में आया?

इसलिए बन्ध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहिए। अर्थात्? बन्ध के नाश का यत्न, वह भी व्यवहार पर्याय है। समझ में आया? **यहाँ यह अभिप्राय है...** देखो! यत्न अवश्य करना चाहिए का अर्थ कि, ध्रुव में प्रयत्न अन्तर लक्ष्य करना चाहिए। वह यत्न उठता है, वह पर्याय है और वह व्यवहार है, व्यवहार है। उस व्यवहार से आगे पूर्ण होने से, वह भी व्यवहार है। समझ में आया? **यहाँ यह अभिप्राय है कि सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा...** सिद्ध समान अर्थात् पर्याय नहीं, हों! द्रव्य पूरा। शुद्धात्मा अपना स्वयं का ध्रुव शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... आहाहा! द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... अर्थात् वस्तु... वस्तु... वस्तु..., सिद्ध... सिद्ध... सिद्ध... सिद्ध... शाश्वत् ऐसा **अपना आत्मा शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्पसमाधि में लीन...** देखो! ऐसा भगवान आत्मा, उस ओर की रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसी अरागी-वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति के काल में ऐसा आत्मा उसे उपादेय अर्थात् दृष्टि में होता है। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा... वीतराग—रागरहित, यह पर्याय की बात है, हों! अभी यह। यह पर्याय रागरहित हुई, निर्विकल्प अभेद शान्ति हुई, उसमें जो लीन हुआ, वह पर्याय है। उस पर्याय में इस शुद्धात्मा पर लक्ष्य है, इसलिए वही उपादेय है। ध्रुव उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? यह तो 'समझ में आया' तो अपने विश्राम है न, यह तो पहले का है, नया कहीं अभी के लिये नहीं। दूसरे को 'साबडे मध्ये' और कुछ न कुछ होता है। यहाँ समझ में आया, यह पहले से ही है। यह विश्राम का वाक्य है। यह विश्राम का मार्ग है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान ध्रुव जो शुद्धनय का आत्मा कहा, उस नय का आत्मा कहो या यह आत्मा स्वयं। नय को उसे विशेषण कहा नहीं। वस्तु जो ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... उसके ऊपर दृष्टि देनेवाली दशा, उसमें स्थिर होनेवाली दशा, उसे निर्विकल्प शान्ति कहते हैं। उसमें लीन होने के समय यह द्रव्य उपादेय है उसे। समझ में आया? **अन्य**

सब हेय हैं। ओहोहो! क्षायिक समकित की पर्याय प्रगट हुई, परन्तु द्रव्य में एकाग्र होने के काल की अपेक्षा से वह भी हेय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक ही बात है। क्षायिक सम्यक्त्व हुआ द्रव्य के लक्ष्य से, वह क्षायिक समकित भी हेय है। क्योंकि द्रव्य में लक्ष्य करना है वापस। उसके लक्ष्य से नयी पर्याय प्रगट होती है। क्षायिक समकित प्रगट हुआ, उसके लक्ष्य से चारित्र प्रगट नहीं होता। समझ में आया? मोक्षमार्ग हेय है और मोक्ष भी हेय है। है कहाँ उसे परन्तु? हेय है। निश्चयमोक्षमार्ग भी हेय है (क्योंकि) पर्याय है, द्रव्य वह उपादेय है। आहाहा!

यह तो परमात्मप्रकाश है। परमात्मा द्रव्य वस्तु, परमात्मा द्रव्य वस्तु, वही उपादेय आदरणीय है, बाकी कोई आदरणीय है नहीं। सब जाननेयोग्य है। समझ में आया? अरे! इसके घर की पूर्णता की बात इसे सुनने को मिलती नहीं, वह कब प्रयत्न करे और कब उसमें स्थिर हो? आहाहा! ऐसे का ऐसे बकवास में और बकवास में जिन्दगी चली जाती है। और वाद-विवाद से झगड़े किये। वस्तु पड़ी रही एक ओर।

कहते हैं, ऐ भगवान! यहाँ तो 'एक ही द्रव्य उपादेय और बाकी सब हेय' में क्या आया? समझ में आया? यह तो मुक्त सदृश शुद्धात्मा उपादेय इति भावार्थ। सदृश का अर्थ त्रिकाली स्वयं। समझ में आया? इसे विश्वास में भी आना चाहिए न। वस्तु, वस्तु शाश्वत् अनन्त गुणधामरूप द्रव्य-वस्तु, वह लक्ष्य करनेयोग्य है। एक ही लक्ष्य का दौर वहाँ करनेयोग्य है। बाकी सब पर्याय प्रगटी हो, वह भी लक्ष्य करनेयोग्य नहीं, इस अपेक्षा से हेय कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

इन मुनियों को भी छठवें गुणस्थान में ऐसे तीन कषाय का अभाव, चारित्र हुआ है, उन्हें भी इन तीन कषाय के अभाव की, चारित्र की पर्याय, वह उपादेय नहीं। आहाहा! क्योंकि उसका तो ऐसे द्रव्य के ऊपर अन्दर में एकाकार उसका वहाँ है। परमेश्वर के ऊपर जहाँ नजर लगायी है, वह परमेश्वर परद्रव्यस्वरूप त्रिकाल ध्रुव है। वह आदरणीय है, बाकी दूसरा आदरणीय नहीं। छोटाभाई! ... सोनगढ़वाले व्यवहार को ऐसा कहते हैं। प्रभु! सोनगढ़वाले को व्यवहार रहने दे। भगवान को कह। उसमें

वह सब क्रिया-ब्रिया का क्या हुआ? तीस वर्ष आम नहीं खाया, हरितकाय (नहीं खायी) उसका क्या हुआ? उससे कुछ लाभ हो, ऐसा स्याद्वादनय होगा या नहीं? स्याद्वाद ऐसा नहीं उसमें? तो स्याद्वाद किसे कहते हैं? आहाहा!

भगवान! तू कहाँ पूरा नहीं कि तुझे पर का आश्रय लेना पड़े? 'ढींग धणी माथे कियो, कुण गंजे नरखेत।' आता है न, आनन्दघनजी में? वह ढींग धणी यह द्रव्य, हों! भगवान आत्मा सत्‌शाश्वत्, ध्रुव शाश्वत् ध्रुव, वह पर्याय का व्यवहारपना उसे वहाँ झुका। देखो, व्यवहार से काम होता है या नहीं? अरे! परन्तु सुन तो (सही)! किस अपेक्षा से बात है? व्यवहार से निश्चय का आश्रय किया, तब लाभ हुआ या नहीं? ऐई! अरे... भगवान! वह पर्याय ने द्रव्य के ऊपर लक्ष्य किया, तब पर्याय प्रगट हुई, वह भी हेय है। आहाहा! यह चिदानन्द ध्रुव शाश्वत् प्रभु, यह नजर करके आदरनेयोग्य है। ठेठ से ठेठ केवलज्ञान हो तब तक। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसा है, वैसा समझाया तो समझा तब कहे, आहाहा! दिया अर्थात् क्या? यह ऐसा मेरे लक्ष्य में नहीं था, वह लक्ष्य में आया, उसे दिया, ऐसा (कहा जाता है)। ऐसा आत्मा जो कहते हो, वैसा हमको लक्ष्य में नहीं था। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा द्रव्यार्थिकनय का विषय अर्थात् द्रव्य वस्तु, वस्तु... वस्तु... वस्तु... महा परमेश्वर चेतन महाप्रभु, चेतन महाप्रभु ध्रुव में लक्ष्य करना अर्थात् उसका नाम उपादेय हुआ। उसका आश्रय करना, वही मोक्ष का मार्ग प्रगट हो और उससे मोक्ष होता है। इसलिए वह एक ही आदरणीय है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ६, रविवार, दिनांक - १४-११-१९६५
गाथा - ६९, ७० प्रवचन - ५०

गाथा - ६९

परमात्मप्रकाश है, ६९ (गाथा)। **आगे निश्चयनयकर जीव के जन्म, जरा, मरण, रोग, लिंग, वर्ण और संज्ञा नहीं है, आत्मा इन सब विकारों से रहित है, ऐसा कहते हैं—**

६९) अत्थि ण उब्भउ जर-मरणु रोय वि लिंग वि वण्ण।
णियमिं अप्पु वियाणि तुहुँ जीवहँ एक्क वि सण्ण॥ ६९॥

अन्वयार्थ :- हे जीव आत्माराम!... तू आत्मा है। वह आत्मा, उस **जीव के जन्म नहीं है,...** आत्मा जन्मता नहीं। आत्मा उसे जान, उस आत्मा को जन्म नहीं। पर्याय में जो जन्म की योग्यता है, वह वस्तु में नहीं। उसे आत्मा जान कि जिसे जन्म नहीं। समझ में आया? वह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, उसे जन्म नहीं, ऐसे आत्मा को जान। जन्म से 'मैं जन्मा' यह मान्यता आत्मा के स्वभाव को रुँधकर जन्म वह मैं, ऐसा मानना है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

जरा (बुढ़ापा) नहीं है... शरीर की जीर्णता, वह आत्मा में नहीं। मैं वृद्ध, ऐसा अपने को मानना, उसने आत्मा माना नहीं। मैं वृद्ध, ऐसा जिसने माना कि मैं वृद्ध, तो मैं ऐसा आत्मा वृद्ध नहीं। वृद्ध तो शरीर की—जड़ की अवस्था है। उसे मैंरूप से मैं वृद्ध हूँ—ऐसी मान्यतावाले को आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है, ऐसी उसकी श्रद्धा नहीं। समझ में आया? मैं वृद्ध हूँ, ऐसा माननेवाले को धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। मैं ज्ञानानन्द आत्मा हूँ, ऐसा अन्दर अभिप्राय में अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। आहाहा! अभी आयेगा तुम्हारा... कहो, समझ में आया?

इसी प्रकार **मरण...** नहीं। आत्मा ध्रुव चिदानन्दमूर्ति आत्मा, उसे मरण क्या?

मरण तो देह की स्थिति है पूरी, आत्मा की स्थिति पूरी नहीं होती। वह तो त्रिकाल ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द सिद्ध समान स्वरूप है। ऐसे आत्मा को न मानकर, 'मैं मर जाता हूँ' ऐसा मानना, वह मिथ्यादृष्टि आत्मा को जानता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा है वह। वह परमात्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसे आत्मा कहते हैं। जन्म-मरण, वृद्धावस्था, वह आत्मा नहीं। वह तो जड़ की अवस्था है। आत्मा कहाँ था उसमें?

अब **रोग...** आया अब। वह रोग हूँ, मैं रोग। वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि आत्मा को जानता नहीं। आत्मा को रोग है नहीं, रोग तो देह की, जड़ की, इस मिट्टी की अवस्था है। समझ में आया? मुझे रोग है, मुझे रोग है, ऐसा माननेवाला आत्मा, आत्मा स्वरूप से क्या है, उसकी इसे खबर नहीं। मूढ़ मिथ्यादृष्टि असत्यदृष्टि, पापदृष्टि, वह मुझे रोग है, मैं वृद्धावस्था हूँ, ऐसा अज्ञानी मानता है।

मुमुक्षु : ....थकान लगे उसका करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ लगता नहीं। वह तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है, सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का स्वरूप है उसका। उसके ऐसे स्वरूप को न मानकर, मैं वृद्धावस्था, मैं रोगी—ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है, अज्ञान है, भ्रमणा है।

और **चिह्न...** स्त्री, पुरुष, नपुंसक चिह्न। मैं स्त्री हूँ, यह चिह्न है आत्मा में? यह स्त्री का आकार शरीर में, वह तो जड़ का आकार है। ऐसा मानना कि मैं स्त्री के आकारवाला हूँ, मूढ़ है, पापी है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? मैं पुरुषलिंग चिह्न, शरीर के लिंग का आकार, वह अजीव-जड़ का है। ऐसा माने कि मैं पुरुष लिंग हूँ। मूढ़ है। भगवान आत्मा में स्त्रीलिंग, पुरुषलिंगपना वस्तु में है नहीं। मैं पुरुष हूँ, ऐसा अहंरूप से दूसरे को बतलाने का भाव है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! मैं पुरुष हूँ, ऐसा अपने को मानना और दूसरे को ऐसा बतलाना कि मैं पुरुष हूँ, ऐसा जो बतलाने का भाव, वह मिथ्यात्व, अज्ञान, पाखण्ड, भ्रम है। भोगीभाई! आहाहा! पुरुष के चिह्न

इन्द्रिय के, उन इन्द्रिय द्वारा मैं पुरुष हूँ और यह चेष्टा इन्द्रिय की हो, उस द्वारा मैं पुरुष हूँ, ऐसा दूसरे को बतलाना, वह मिथ्यात्वभाव है। नेमिदासभाई! भगवान आत्मा वह ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसे उसरूप से अपने को मानना और दूसरे को उस प्रकार से मनवाने के लिये मिथ्या प्रयास करता है, वह मिथ्यात्व दृष्टि भाव है। समझ में आया? ...भाई! कहो, समझ में आया?

वर्ण... शरीर के रंग, रंग। उस रंग द्वारा अपने को अधिक बतलाना। मैं रूपवान हूँ, मैं काला हूँ, मैं कुबड़ा हूँ, ऐसा जिसे आत्मा को बतलाने का, मानने का भाव है, वह मिथ्यात्व है। उसे आत्मा वर्णरहित है, उसकी श्रद्धा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **आहारादिक एक भी संज्ञा व नाम नहीं है,...** उसे आहारसंज्ञा, आहार की संज्ञा की इच्छा, वह आत्मा है, ऐसा मानना मिथ्याभ्रम है। आत्मा आहारसंज्ञा स्वरूप से है ही नहीं। ओहोहो! भयसंज्ञा स्वरूप से आत्मा को मानना, भगवान ज्ञानस्वरूप, भय संज्ञास्वरूप है नहीं। भयसंज्ञावाला, मैं भयवाला, ऐसा माना, उसने आत्मा ज्ञानस्वरूप शुद्ध है, उसकी उसे श्रद्धा नहीं। भोगीभाई! सूक्ष्म बात है, बापू! यह ऐसा कुछ आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... करे, परन्तु वह आत्मा कहना किसे?

यह भय। मैथुन संज्ञा की वृत्ति हो, वह आत्मा नहीं, वह तो विकार है। मैथुनसंज्ञा द्वारा अपने को अपनापना मानना, वह मिथ्याश्रद्धा है। आहाहा! समझ में आया? और देह की चेष्टाओं की क्रिया द्वारा मैं पुरुष हूँ, इसलिए यह मेरी क्रिया होती है, ऐसा मानना वह चैतन्य के स्वरूप का अभाव मानना है, वह चैतन्य भिन्न है—ऐसा जानता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! कहो, जमुभाई!

परिग्रहसंज्ञा। मैं लक्ष्मीवाला हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि आत्मद्रव्य को दूसरा द्रव्य नहीं हो सकता। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप है, ऐसी दृष्टि छोड़कर मैं लक्ष्मीवाला हूँ, वह मिथ्यादृष्टि है। और लक्ष्मी की संज्ञावाला हूँ, ममत्व संज्ञावाला हूँ, वह भी आत्मा को विकारमय जाना, माना, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! भगवान परमेश्वर तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ प्रभु (ने) जिसे आत्मा कहा, उस आत्मा में यह नहीं। तथापि उन्हें आत्मा का मानना अथवा उस द्वारा अपने को अधिकता मानना, वह मिथ्यात्व लक्षण के भाव हैं। आहाहा!

तू निश्चयकर जान। हे आत्मा! भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव फरमाते हैं, भाई! प्रभु! तू निश्चय से जान। वास्तव में सत् स्वरूप भगवान चिदानन्द आत्मा में यह नहीं, यह नहीं, ऐसा निश्चय से जान। समझ में आया?

भावार्थ :- वीतराग निर्विकल्पसमाधि से विपरीत... क्या कहते हैं अब? वस्तु जो है भगवान आत्मा, सच्चिदानन्द ज्ञानानन्द अनन्त गुण का धाम आत्मा, अनन्त गुण का धाम आत्मा, उससे विरुद्ध अर्थात् कि उसकी जो वीतराग शान्ति चाहिए... भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वरूप जिसका आत्मा, उसके स्वभाव के लक्ष्य से होनेवाली वीतरागी शान्ति, वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र—ऐसे जो परिणाम। क्या कहा? भगवान आत्मा वस्तु वीतराग निर्दोष आत्मतत्त्व, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा को प्राप्ति के परिणाम रागरहित आत्मा की श्रद्धा—सम्यग्दर्शन, रागरहित आत्मा का ज्ञान, रागरहित स्वरूप में स्थिरता, ऐसी निर्विकल्प अर्थात् स्थिरता की शान्ति द्वारा जो आत्मा अनुभव में आये, ऐसी शान्ति के परिणाम से उल्टे परिणाम। कैसे?

जो क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विभावपरिणाम,... क्या कहा, समझ में आया? नौ तत्त्व है न तत्त्व? उसमें आत्मतत्त्व किसे कहना? अकेला ज्ञायक चिदानन्द शुद्धस्वरूप परमानन्द की मूर्ति, वह आत्मा। उस आत्मा की अन्तर्मुख श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह निर्विकल्प उपयोग शुद्ध उसे कहना संवर और निर्जरा। वह संवर और निर्जरा वे आत्मा के लक्ष्य से होते परिणाम, ऐसे परिणाम से विपरीत परिणाम पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध, वे सब विपरीत परिणाम हैं, अर्थात् कि आस्रव के परिणाम हैं। क्या कहा?

भगवान आत्मा ऐसे ज्ञानघन चिदानन्द शुद्धस्वरूप वस्तु, वह आत्मा और उसकी अन्तर में उसके लक्ष्य से श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति हो, वह धर्मरूपी संवर-निर्जरारूपी शुद्धोपयोगरूपी परिणाम, वह पर्याय। उस शुद्धोपयोग से विपरीत... स्वभाव के आश्रय से जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति के परिणाम हों, वह शुद्धोपयोग अथवा मोक्ष का मार्ग अथवा संवर और निर्जरा। उससे उल्टे पुण्य-पाप, क्रोध, मान, माया, लोभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे सब शुद्धोपयोग से विपरीत परलक्ष्य से उत्पन्न हुए हैं। स्वभाव के लक्ष्य से उत्पन्न हुई श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति के परिणाम, उनसे उल्टे पुण्य, पाप, दया,

दान, भक्ति, व्रत आदि भाव। वे सब परलक्ष्य से हुए भाव, वह आस्रव। समझ में आया ? और उस आस्रव से उपार्जित कर्म। वह आस्रव निमित्त हुआ और नये रजकण बँधे, वह अजीवतत्त्व कर्म।

कर्मों के उदय से उत्पन्न हुए जन्म-मरण... समझ में आया ? तत्त्व, नौ तत्त्व को पहिचानना पड़ेगा या नहीं नौ को ? बल्लभदासभाई ! नौ है न ! जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। अब कहते हैं कि नौ में नौ तत्त्व किस प्रकार सिद्ध होते हैं ? कि भगवान आत्मा तो शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति ज्ञानानन्द वीतरागबिम्ब प्रभु, वह तो आत्मा। ऐसे आत्मा के लक्ष्य से हुई श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति शुद्धोपयोग, वह तो संवर और निर्जरा। ऐसे (स्व) लक्ष्य से संवर, निर्जरा उत्पन्न न करके, पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुए पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव वह आस्रव, उससे उत्पन्न हुआ कर्म वह अजीवतत्त्व। आत्मा, संवर, निर्जरा से (विपरीत) आस्रव और अजीव। उस अजीवतत्त्व से उत्पन्न हुए जन्म और मरण। बल्लभदासभाई !

कर्मों के उदय से उत्पन्न हुए जन्म-मरण आदि अनेक विकार हैं,... समझ में आया ? **वे शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं हैं,...** वस्तु दृष्टि, सत्य दृष्टि, सत्य दृष्टि। वस्तु ज्ञानानन्द प्रभु प्रत्येक का आत्मा, हों ! आबाल-गोपाल। भगवान आत्मा अन्दर वस्तु जिसे कहते हैं, वह तो शुद्ध निश्चय से तो वह जन्म-मरण, यह कर्म से उत्पन्न होते भाव, इनसे रहित है। वह कर्म से उत्पन्न होते भाव को 'मेरा' मानना, वही मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया ? आहाहा ! भगवान आत्मा एक समय में आनन्द की खान, चिद्घन नित्यानन्द की मूर्ति प्रभु। आत्मा उसे कहते हैं (कि) नित्यानन्द जिसमें रहता है। कायम अतीन्द्रिय आनन्द रहता है, उसे आत्मा कहते हैं। उस आनन्द की दृष्टि हुई और ज्ञान और रमणता हो, उसे शुद्धोपयोगरूपी संवर-निर्जरा तत्त्व कहते हैं। ऐसा तत्त्व उत्पन्न न करके, स्व-वस्तु के लक्ष्य को छोड़कर, परलक्ष्य के लक्ष्य से जितने पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, जप तप के भाव हों, वे सब आस्रवतत्त्व हैं। उस आस्रव से कर्म का बन्धन होता है, वह अजीवतत्त्व है। पर्याय, हों ! पर्याय है न, परमाणु तो है वह है। उस अजीवतत्त्व से यह जन्म-मरण, आहारसंज्ञा, स्त्रीलिंग, पुरुष आकार सब उस कर्म के कारण से हुए हैं। उन्हें आत्मा के मानना, वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। आहाहा ! न्यालभाई ! आहाहा !

अरे! भाई! तुझे नौ तत्त्व की जैसी मर्यादा है, उसकी तुझे खबर नहीं होती और धर्म हो जाये? समझ में आया? धर्म तो वह शुद्धात्मा भगवान आत्मा के अन्तर में वीतरागी परिणति द्वारा उसका ध्यान करना, ऐसी परिणति को धर्म कहा जाता है। उसका ध्यान न करके पर के लक्ष्य के ध्यान में जो पुण्य और पाप के, शुभ-अशुभभाव हों, वह तो आत्मा के ध्यान से विपरीत आर्त और रौद्रध्यान है। ऐसे शुभाशुभभाव से हुए जो जड़कर्म, वह तो अजीवतत्त्व की पर्याय हुई नौ तत्त्व में। अजीव की पर्याय से उत्पन्न होते जन्म-मरण, लिंग के जो आकार, वे सब कर्म के कारण से हुए हैं, भगवान आत्मा के नहीं। आहाहा! ... किसे कहना? भाई! आहाहा! एक-दो शब्द आवे वहाँ अधिक हो जाता है अन्दर से। आहाहा! यह सब लक्षण मिथ्यात्व के हैं। समझ में आया? क्योंकि वह तो जरा राग की मन्दता से हुआ क्षयोपशम, उसे अहंपने माना, मिथ्यात्व है। आत्मा अखण्डानन्द ज्ञायक है, उसकी उसे प्रतीति है नहीं। आहाहा! समझ में आया? जरा दया, दान के भाव किये, वे भाव किये उससे ऐसा दूसरे से अधिक हूँ, ऐसा मनवाना है। ये करते नहीं और मैंने किये, ये करते नहीं और मैंने किये। इस प्रकार दूसरे से अपने ऐसे भाव से दूसरे से अधिकपने मनवाना है, इसने स्वयं को उसके अधिकपने माना है। आहाहा! इसके दया, दान के परिणाम से इसने अधिक अपने को माना है। इसलिए दूसरे को भी बताता है कि देखो मैं यह हूँ, हों! यह करता हूँ, मैं अधिक हूँ, हों! यह सब लक्षण मिथ्यादृष्टि के हैं। उसने आत्मा हूँ, ऐसा अनन्त काल में वास्तविक रीति से सुना नहीं। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है न! परमात्मा अर्थात् स्वरूप आत्मा का, परम आत्मस्वरूप शुद्ध, ज्ञानघन, वस्तु दल चैतन्यघन, शान्तरस का, वीतरागीरस का पिण्ड, वह आत्मा। ऐसे आत्मा को छोड़कर पर लक्ष्य से हुए पुण्य और पाप और उनसे हुए कर्म और उनसे हुई यह सब सामग्रियाँ। समझ में आया? वे आत्मा की नहीं। आहाहा! **क्योंकि निश्चयनयकर आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकर पूर्ण है,...** भगवान आत्मा केवलज्ञान अर्थात् उस केवलज्ञान की पर्याय की बात यहाँ अभी नहीं। केवल—अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली चारित्र-शान्ति, अकेली स्वच्छता और प्रभुता के गुण का प्रभु वह पिण्ड है। आहाहा! पूर्ण है। पर्याय की अपूर्णता का कहाँ प्रश्न है,

यह तो द्रव्य की बात है न। द्रव्य उसे कहते हैं पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण परमेश्वरता, पूर्ण परमेश्वर प्रभुता—ऐसे अनन्त गुण केवल अकेले गुणों का पिण्ड उसे आत्मा कहते हैं। उसे पर पदार्थ के संयोग कर्म से मिले, उसमें अपनी अधिकता बतलाना, उस द्वारा मैं शोभा को प्राप्त होता हूँ, ऐसा मानना, राग से भी अधिकता बतलाकर अपनी शोभा अपने को मानना और ज्ञान के कुछ उघाड़ की पर्याय के अधिक से मैं अधिक हुआ, ऐसा मानना, वह सब आत्मा के स्वभाव की दृष्टि से विपरीत दृष्टि है। कहो, जमुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? किसमें अधिक था? दूसरे की अपेक्षा अर्थात् क्या? अपनी अपेक्षा हीन हो गया, फिर दूसरे की अपेक्षा की क्या बात है यहाँ? जमुभाई!

भगवान आत्मा... क्या कहा यहाँ? **निश्चयनयकर आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकर पूर्ण है,...** पूर्ण है। ऐसे पूर्ण आत्मा को उस प्रकार से न मानकर उसे अपूर्ण ज्ञान में अभिमान आया, राग में अभिमान आया, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़, उसे आत्मा की श्रद्धा की खबर नहीं। आहाहा! भीखाभाई! आहाहा! कुछ भाषा आयी वहाँ मैं कुछ हूँ, हों! प्ररूपण करता आता है, मुझे प्ररूपण करना आता है। उसे नहीं आता। ...भाई! तूने भाषा द्वारा तेरी अधिकता मानी? वह तो जड़ है, वह तो कर्म की उपाधि से उत्पन्न हुई भाषा है, आत्मा की भाषा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा गुण से पूर्ण है, उसे ऐसे संयोगवाला मानना, विकारवाला मानना, अपूर्ण पर्याय में अभिमान जितना मानना, वह मिथ्यात्व है। हिम्मतभाई! प्रवीणभाई! क्या करना इसमें? भगवान आत्मा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हमारे भाई कहते हैं न, स्पष्टता करो। तब अधिक सूक्ष्म लगता है। पोल उघड़ती है, ऐसा कहते हैं यह। बिना भान के चले तब तक दिक्कत नहीं परन्तु इसका स्पष्ट हो... कहते हैं न? तब ऐसा कहे, दृष्टान्त आवे तब पोल उघड़ जाती है। भाई! यह तो समझाने की पद्धति में यह प्रकार न हो, तो उसे समझे कैसे?

यहाँ तो भगवान आचार्य कहते हैं, ऐसी वस्तु है कि भगवान आत्मा उसे कहते

हैं, यह आत्मा उसे कहते हैं नौ तत्त्व में कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य से परिपूर्ण भरपूर, परिपूर्ण भरपूर, परिपूर्ण परमात्मा परमस्वरूप वस्तु। इसके अतिरिक्त के सब संयोगी भाव इन्द्रिय के, पुरुष के लिंग के आदि सब कर्मजनित... और आत्मा को पर्याय में रागादि हो, वे भी कर्मजन्य उपाधि, भगवान आत्मा का वह भाव नहीं और अल्पज्ञता आदि का भाव, वह भी एक समय का अंश अपूर्ण भाव, उसे आत्मा की अधिकता से मानना, वह पूर्णानन्द भगवान की दृष्टि से विरुद्ध है। समझ में आया? धर्मचन्दजी! क्या कहा यहाँ? देखो!

कैसा है आत्मा, कहा न? अनन्त गुण ज्ञानादि अनन्त गुण से है न? ६९ है न? **'कृत्वा'** देखो! है न? **'केवलज्ञानाद्यनन्तगुणैः कृत्वा'।** अभिन्न है उससे। भगवान आत्मा वस्तु उसे कहते हैं, आत्मा द्रव्य, द्रव्य-वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें एक-एक गुण की बेहदता, अनन्तता, अनन्तता ऐसे अनन्त-अनन्त गुण की बेहदता का परिपूर्ण रूप, उसे आत्मा कहते हैं। निश्चय का आत्मा वह। पर्याय में अल्पज्ञता आदि, वह तो व्यवहारनय का आत्मा है। भाई! आहाहा! आत्मा में क्षयोपशम पर्याय, वीर्य आदि का अल्प उघाड़ आदि, वह तो वीर्य व्यवहारनय का आत्मा। वह व्यवहारनय अभूतार्थ है, उसे इतना मैं—ऐसा मानना (वह मिथ्यादृष्टि है)। समझ में आया? आहाहा! व्यवहारनय का आत्मा, वह भूतार्थ नहीं, त्रिकाल एकरूप परिपूर्ण, वह वस्तु नहीं। बल्लभदासभाई! यह जीवाजीव नहीं आता? क्या आता है तुम्हारे? जीवाजीव अधिकार में... जीव-विकार... जीव-विकार किसे कहना? थोकड़ा में आता है वहाँ। ...भाई! जीव किसे कहना? भाई! भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव परमेश्वर केवलज्ञानी ने किसे जीव कहा है? किसे तेरा आत्मा कहा है? वह आत्मा तो परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन—आनन्द से परिपूर्ण। अपूर्ण नहीं, राग नहीं, संयोगी क्रिया नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा परिपूर्ण वस्तु के स्वभाववाला अकेला अखण्ड एक तत्त्व आत्मा, उसे छोड़कर...

और अनादि-सन्तान से प्राप्त जन्म, जरा,... समझ में आया? उनसे तो भिन्न है यह भगवान। जन्म से भगवान परिपूर्ण तत्त्व स्वभाव वह जन्म से तो भिन्न है। उसे जन्मवाला मानना, वह तो अभिन्न माना। समझ में आया? उसे **मरण...** अनादि सन्तान की पर्याय का जो अन्दर मरण हो (अर्थात्) पर्याय बदले, उसे मैं हूँ—ऐसा मानना, वह

तो अनन्त गुण से परिपूर्ण भगवान को श्रद्धा में से छोड़ दिया। पर्याय के लक्ष्यवाला आत्मा उतना अथवा रागवाला आदि आत्मा जाना, उसने वस्तु अखण्ड प्रभु त्रिकाल द्रव्य है, उसे दृष्टि की खबर नहीं। समझ में आया?

मरण, जरा,... शरीर की वृद्धावस्था, वह तो कर्मजन्य उपाधि है। भगवान परिपूर्ण द्रव्य में वह नहीं। उससे भिन्न है आत्मा। मरण से भिन्न है। अपने परिपूर्ण स्वभाव के गुण से एक अभिन्न है। अपने परिपूर्ण गुण से अभिन्न वस्तु है परन्तु उस चीज़ से तो भिन्न है। **रोग...** से भिन्न है। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण है। यह अभी आत्मा की बात चलती है, हों! भगवान हुए, उनकी बात नहीं। वे तो पर्याय में परिपूर्ण परमात्मा अरिहन्त हो गये। यह तो अभी परिपूर्ण वस्तु है, वह रोग से रहित है। ऐसे परिपूर्ण निश्चय तत्त्व को रोगवाला मानना, वह भ्रम और अज्ञान और पाखण्ड है, पापदृष्टि है। समझ में आया? पापदृष्टि कहो या मिथ्यादृष्टि कहो। मिथ्यादृष्टि कहो या असत्यदृष्टि कहो। मिथ्या अर्थात् असत्य, असत्य अर्थात् पाप। आहाहा! गजब भाई! समझ में आया?

शोक... उसे शोक, कर्मजन्य उपाधि विकल्प शोक है। वह भगवान आत्मा परिपूर्ण स्वभाव के तत्त्ववाले को शोकवाला मानना; शोक से भिन्न को शोकवाला मानना, वह विपरीत मान्यता है। आहाहा! समझ में आया? **भय...** भयवाला मानना। भय से भगवान भिन्न है। यह आत्मा अभी वर्तमान भय से भिन्न है, पृथक् है। भय में तन्मय हो तो भय कभी छूटता नहीं। भय से भिन्न है। ऐसे भगवान को—भय से भिन्नवाले को भयवाला मानना, वह विपरीत मान्यता है। समझ में आया? आहाहा! कितनों ने तो यह सुना नहीं हो। क्या है यह? यह तो मानो कहाँ की बात होगी? वस्तु किसे कहे? परिपूर्ण वस्तु को परिपूर्ण प्रतीति में न लेकर, उसे दूसरे प्रकार से मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा दुःखी होता ही नहीं। आत्मा दुःखी हो? आत्मा तो सुख का सागर है। समझ में आया? यह आत्मा उसे कहते हैं सच्चिदानन्दस्वरूप। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, ऐसा आत्मा, उसे दुःखी मानना, (वह)

मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। ऐई, भीखाभाई! सच्चिदानन्द प्रभु। आत्मा अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का सागर। समझ में आया? ऐसे आत्मा को भयवाला मानना, शोकवाला मानना, भिन्न (स्व) चीज़ से उसे न मानकर भिन्नवाले से मानना, (वह मिथ्यादृष्टि है)। यह आत्मा की बात, भाई! अलौकिक है, बापू! इसने कभी जाना नहीं और कैसे ज्ञात हो, उसकी पद्धति की भी खबर पड़ी नहीं। ऐसा जाना है, माना है बहुत बार कि हम आत्मा जानते हैं, पहिचानते हैं, खबर है—ऐसा अभिमान किया है। समझ में आया?

स्त्री,... नहीं आत्मा। यह शरीर का लिंग वह तो मिट्टी, जड़ का है, धूल का। यह माँस के आकार स्त्री के स्तन, योनि, आँखें, वे तो जड़, मिट्टी धूल के आकार हैं। ऐसे आकारवाला आत्मा को मानना; जिससे भिन्न है, उसे अपना मानना, वह तो मिथ्या भ्रम अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

पुरुष,... लिंग। शरीर के आकार यह पुरुष के जड़ की पर्याय मिट्टी की दशा है। अजीव, माँस की दशा को आत्मा की मानना... भगवानभाई! समझ में आया इसमें? यह भगवान की बात चलती है यह। आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान! तू आत्मा किसे कहना? कि आत्मा में, पुरुष के लिंग के आकार आत्मा में नहीं। वे तो जड़ के आकार हैं। अजीव के आकारवाला आत्मा को मानना, उस द्वारा मैं पुरुष हूँ—ऐसा मानना, उस भिन्न को अपनी चीज़ मानना, इसका नाम भ्रम है। भगवान पुरुष आकार से भिन्न आत्मा अन्दर है। आहाहा!

नपुंसकलिंग,... पावैया, हींजड़ा होता है या नहीं? वह हींजड़ापना आत्मा में है नहीं। वह तो शरीर के लिंग में अन्दर में मिट्टी, धूल है अजीव, उसके अन्दर के आकार हैं। अन्दर तो भगवान आत्मा ज्ञानानन्दकन्द आत्मा है, सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञान का कन्द आत्मा है। ऐसे आत्मा को नपुंसकलिंग से भिन्न जानना चाहिए, उसके बदले मैं नपुंसक हूँ, यह मैं पावैया। (ऐसा मानना) मूढ़ है। समझ में आया? कितने ही ऐसे होते हैं न? हम स्त्रियाँ हैं, हों! हमको छंछेड़ना नहीं। यह जमींदारनी हो न बड़ी? जमींदारनी हो न? राजा की पुत्री हो न बड़ी जमींदार राजा की, यहाँ राजा की पुत्री हो और यहाँ राजा के घर में आयी हो। उस राजा को दो-दो करोड़ की आमदनी हो तो भी डरावे अन्दर। महाराजा! ध्यान रखना, हम क्षत्रियाणी हैं, हमको छंछेड़ना नहीं, हों! हौले से (आहिस्ता

से) देकर कह दे। ऐई जमुभाई! अरे! मूढ़। क्षत्रियाणी कौन था इसमें? शरीर का आकार, वह तो जड़ का आकार। वह तो उसका अवतार तो जड़ देह की अवस्था है। भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द निर्मलानन्द भिन्न है, इसे उसका अहंकार?

मुमुक्षु : बहादुरी प्रगट करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहादुरी मूढ़ता की प्रगट करता है। आहाहा! और यह पुरुष भी कहे बहुत बार स्त्री को, हों! यह कहीं कम नहीं कितने ही। हम आदमी हैं, हों! ध्यान रखना, स्त्री से हम नहीं दबेंगे। आदमी, पुरुष कहना किसे? यह हड्डियों के आकार को आदमी कहना? वह तू? तू तो अन्दर ज्ञानानन्द की मूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध भिन्न है। उसे चीज़ से भिन्न आत्मा पहचानना चाहिए, उसके बदले भिन्न से आत्मा को पहचानना (वह मिथ्यादृष्टि है)। समझ में आया? **सफेद...** शरीर का वर्ण सफेद हो, वह तो जड़ की दशा है, मिट्टी की अवस्था है, वह आत्मा की अवस्था है? वह आत्मा की है?

मैं भोला, मैं रूपवान... ऐसा मानना वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द परिपूर्ण तत्त्व। मैं काला... शरीर काला हो न तो लज्जित हो। एक लड़का कहता था, अरे! ऐसे काले शरीर की अपेक्षा रूपवान मिला होता तो। परन्तु क्या है इसमें कहा? दुनिया में कुछ दिखे तो सही अच्छे। अरे! भगवान! कहाँ भूला परन्तु तू? शरीर के रंग, वह तो हड्डियों के, चमड़ी के, माँस के रंग। वह रंग कहाँ आत्मा में है? भगवान आत्मा अन्दर अरूपी ज्ञानघन है वह तो। जिसे रंग, रस, स्पर्श है नहीं। ऐसा अरूपी घन आत्मतत्त्व ज्ञानानन्द की मूर्ति है। उसे आत्मारूप से न जानकर ऐसे काले वर्णवाले से लज्जित हो जाये। मूढ़ है। वर्ण तो जड़ का है। समझ में आया? इत्यादि रंग हरा आदि। समझ में आया?

आकार लो फिर। शरीर का आकार सुन्दर हो न, तो मेरा आकार सुन्दर है, हों! सब अवयव सुगठित हैं। सुगठित-घड़े हुए मानो व्यवस्थित हों। किसका आकार, बापू? वह तो जड़ का है, वह तो मिट्टी का है। इस दाल-भात में से खड़ा हुआ और श्मशान की राख हो जायेगी यह तो। भगवान आत्मा ऐसा नहीं। अन्दर चिदानन्द का कन्द अनादि-अनन्त तत्त्व, सत्त्व अनादि ज्ञायकमूर्ति प्रभु, ऐसे आत्मा को आत्मा न

मानकर, न जानकर ऐसे आकारवाला मानना, आकार से भिन्न को आकारवाला मानना, (वह) भ्रमणा है। आकार से भिन्न जान भगवान। समझ में आया?

यह आँख जरा-सी फूट गयी हो न, चश्मा-बश्मा लगाकर ऐसे दिखे नहीं, ऐसा करे। अब आँख फूटी, वह तो जड़ की है। उसमें आत्मा कहाँ फूट गया है? वह तो ज्ञायक चिदानन्द ज्ञानानन्द की मूर्ति, ज्ञानानन्द से भरपूर पदार्थ है। सुना नहीं कभी। आहाहा! यहाँ तो पूर्ण वस्तु है। अकेले अनन्त गुण का पिण्ड ही प्रभु है, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो नौ तत्त्व का पहला आत्मा के बोल की व्याख्या चलती है यह। आहाहा! और नौ तत्त्व की हमको खबर है, श्रद्धा है। भगवान! सुन भाई!

मुमुक्षु : रटने में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रटने में भी कहाँ ठिकाना है? नहीं है, उसे रटता है। इस जीव को शरीर है और इस जीव को वर्ण है और देव को इतना लम्बा आयुष्य है, इतना उसे आकार है और सात हाथ का ऊँचा शरीर है। यह रटे, लो! परन्तु वह तो सब जड़ को है।

अन्तर वस्तु जो ज्ञानानन्द प्रभु ज्ञानप्रकाश की मूर्ति आनन्द का स्वभाव भरपूर है। परन्तु वह वस्तु कहीं नजर ही कभी की नहीं। सुना नहीं, विचारा नहीं और होली ऐसी की ऐसी सुलगती जाती है। बाहर में चला जाता है अनन्त संसार से। क्यों, बराबर होगा न? भगवानभाई! क्या होगा यह? शान्तिभाई! पूरे दिन धन्धे के कारण यह भी कहाँ सुनने का समय नहीं मिलता। सुने वह तो वापस ऐसा तो हो नहीं। वहाँ फिर प्रसन्न। ऐसा करो और भक्ति करो और दान करो, हो जायेगा धर्म। धूल में भी नहीं, सुन न अब। समझ में आया? यह विकल्प है, वह तो राग है। राग, वह आत्मा है? कठिन बात!

मुमुक्षु : इसमें शोभा क्या रहे हमारी?

पूज्य गुरुदेवश्री : शोभा, बापू! तेरी आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति उसकी श्रद्धा, वह तेरी शोभा है। बाकी पर की क्रिया के राग में अभिमान करना, वह तेरी अशोभा है। अशोभा को शोभा मान, स्वतन्त्र है। आहाहा! समझ में आया? पाँच, पचास हजार दान दे। कहीं भी मेरा नाम आया? मुम्बई समाचार में आया या नहीं? देखो... देखो... देखो... देखो... एक कौने में लिखा है। कौने में वहाँ गया होगा तू? पृष्ठ कौने में तू गया

होगा वहाँ। परन्तु देखो... देखो मेरा नाम होगा, नाम। तेरा नाम है? नाम में तू घुस गया है? कागज में गया? वह बतावे पुस्तक में से नाम, देखो, इसमें नाम लिखा है। भीखाभाई! अपलक्षण का पार नहीं। श्रीमद् ने लिखा नहीं? प्रभु गुणसम्पन्न, प्रभु पूरा गुणसम्पन्न है परन्तु इसके अपलक्षण का पार नहीं। तो वह कहता है कि, देखो! भगवान को भी अपलक्षण है। अरे! सुन न अब। वह तो यह अपलक्षण कहते हैं। प्रभु! वह तो पहले कहा केवलज्ञान से और अनन्त गुण से परिपूर्ण है, वह तो प्रभु है, परन्तु पर्याय में उसके अपलक्षण का पार नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आहार... उसकी संज्ञारहित, आहाररहित तो (है ही), परन्तु आहार की संज्ञारहित। संज्ञा से भिन्न भगवान है। आहार लेने की वृत्ति और संज्ञा ज्ञान का उघाड़ इतना, उससे भगवान आत्मा भिन्न है। यह अधिक आहार खाये, हम अधिक खाते नहीं, लो! दो लड्डू खाते हैं, तीन लड्डू खाते हैं... क्या है परन्तु यह? आहाहा! पच जाये हमारे तो, हम तो पत्थर खायें तो भी पचे और तुम्हारे तो दूध पीओ तो भी पतली दस्त हो जाये। जमुभाई! हम अर्थात् कौन? तू किसे तुझे कहता है? आहाहा! शरीर में, शरीर में यह तुझे है आत्मा? भगवान आत्मा तो आहारसंज्ञारहित है। यहाँ तो यह कहना है न। आहारसंज्ञा और आहार लेना और यह पचा और नहीं पचा, वह वस्तु में कहाँ है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे बनिया में नहीं देते अपने ऐसे? खाखरा। वह खाकर बैठा हो। ले न। प्रियता बतावे। आहाहा! उस द्वारा शोभा बारात की। भाई! तेरी बारात की शोभा तो अनन्त... यहाँ कहा न केवलज्ञानादि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसे तुझे जानना, अनुभव करना, वह तेरी शोभा है, बाकी सब ओभा है। आहाहा! अरे! इसने आत्मा क्या है, वह मैं स्वयं कितना, कैसा कहाँ हूँ, उसकी इसे खबर नहीं। दूसरे के गज मापे। मकान इतना लम्बा और इतने पैसे की संख्या और... ऐई जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह उल्टा मानकर बैठा, उसकी बात करते हैं यहाँ, लो! समझ में आया? अपने शरीर में पचे नहीं तब, अरेरे! ऐसा मेरा शरीर। उसे ऐसा

शरीर।... कच्चे चने खाये तो पच जाये। परन्तु है क्या अब? उसमें तुझे क्या हुआ? यहाँ तो मौसम्बी खाये तो पचता नहीं। परन्तु किसे? वह तो जड़ है, अब सुन न! आत्मा को पचे कहाँ और अपचे कहाँ? आत्मा तो ज्ञानानन्दमूर्ति है उसे जान, उसे अनुभव कर। इसकी सिरपच्ची कहाँ मांडी यह तूने? वजुभाई! आहाहा!

आहार, भय संज्ञा,... भय से भगवान रहित **मैथुन संज्ञा,...** हों! विषय की मैथुन वासना। स्त्री, पुरुष, नपुंसक की वासना से भगवान पार है। वासना तो विकार है। भगवान आत्मा का स्वरूप तो विकाररहित चिदानन्दस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, उसे वास्तविक रूप से आत्मा जान, तुझे धर्म होकर मुक्ति होगी। ऐसे आत्मा को जाने बिना ऐसे भिन्न चीज़ को आत्मा जान, अधर्म होकर संसार में भटकने का होगा। समझ में आया?

परिग्रहरूप संज्ञा... परिग्रह की संज्ञा, हों! परिग्रह तो उसका नहीं। धूल पाँच, पच्चीस लाख की धूल तो उसकी नहीं। वह तो अजीव की-मिट्टी की है, तेरी कहाँ से घुस गयी तुझमें? परन्तु 'यह मेरे' ऐसी संज्ञा अन्दर संज्ञा खड़ी करे, वह भी आत्मा के स्वरूप से भिन्न है, क्योंकि विकार है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी अधिक कमाना आवे न, उसका अभिमान वापस। तुम तेजहीन, तुमको क्या आता है, दुकान हाथ में रखते हैं, लगाम सब पूरी दुकान की। ओहोहो! भड का पुत्र वास्तविक अभिमानी। बल्लभदासभाई! तू पाव सेर जहर खा तो आधा सेर खाऊँ। बहुत अच्छी बात है। हम गद्दी पर बैठें तो ऐसे लाईन से चले, लो! बराबर काम व्यवस्थित चले। तेजहीन को बैठाया हो तो कहीं तीन दिन से कोई ग्राहक आता नहीं। बहुत अच्छी बात है। ऐ... शान्तिभाई! ऐसा होता है या नहीं? भगवानजीभाई! आहाहा! अरे! भगवान, प्रभु! परन्तु तू कौन और कहाँ फँसा? यह क्या हुआ तुझे यह? यह भूत किसे लगा किस प्रकार तुझे यह? भगवान को भूत लगा। पर्याय में, हों! अन्दर में नहीं। वस्तु में भूत नहीं, वस्तु तो वस्तु भगवानस्वरूप आत्मा है। अवस्था में भूत लगाया।

परिग्रहरूप संज्ञा... कहो, **इन सबों से (भगवान) भिन्न है।** यह आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध ज्ञान-गोला चैतन्यसूर्य प्रभु आत्मा अन्दर है। वह इन सब विकार और पर से भिन्न है। यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं यह? **यहाँ उपादेयरूप अनन्त सुख का**

धाम... अब कहते हैं कि आदरणीय क्या है अन्दर में अंगीकार करनेयोग्य? अन्दर में दृष्टि करनेयोग्य, ज्ञान में ज्ञेय करनेयोग्य, स्थिरता में उसमें स्थिरता करनेयोग्य ऐसा उपादेय अनन्त सुख का धाम जो शुद्ध जीव। अनन्त सुख का धाम तो भगवान आत्मा स्वयं है। **उससे भिन्न जन्मादिक है।** उससे जन्म-मरण आदि भिन्न है। **वे सब त्याज्य हैं,...** वे दृष्टि में छोड़नेयोग्य हैं। श्रद्धा में वे सब नहीं, ऐसा माननेयोग्य और **एक आत्मा ही उपादेय है,...** भगवान अनन्त ज्ञान से परिपूर्ण प्रभु, वही अन्दर श्रद्धा / दृष्टि में आदरणीय करनेयोग्य है। यह करने का धर्म के करनेवाले को हो तो यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्धति ही जानी नहीं तो पद्धति करे कहाँ से? पद्धति जानी नहीं, वह करे कहाँ से? यह पद्धति है कि, भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द से परिपूर्ण प्रभु, वह तुझे अन्दर श्रद्धा में आदरनेयोग्य है, इसके अतिरिक्त यह सब त्याज्य है। यह उपादेय और त्याज्य—हेय की व्याख्या की। समझ में आया?

यह तात्पर्य जानना। लो! अब जरा इस प्रकार से वर्णन करते हैं कि यह सब देह का है, तेरा नहीं। ऐसा कहते हैं। तेरे नहीं तो फिर किसके? कि यह देह के, ऐसा कहते हैं। ... सब देह। आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रहरूप संज्ञा, शोक, भय, स्त्री, लिंग आदि सब देह अर्थात् परवस्तु। आत्मा अर्थात् अखण्ड पूर्ण। यह सब देह का, देह की स्थिति है, तेरी स्थिति है नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ७०

आगे जो शुद्धनिश्चयनयकर जन्म-मरणादि जीव के नहीं हैं, तो किसके हैं? नहीं, नहीं तो किया, परन्तु हैं किसके तब अब? **ऐसा शिष्य के प्रश्न करने पर...** शिष्य ने प्रश्न किया, भगवान! यह सब आत्मा का नहीं तो है किसका तब यह सब? है तो सही, अस्ति तो है, है सही, तब आत्मा का नहीं, तब है किसका? है, उसे कहीं डालना पड़ेगा या नहीं?

७०) देहहँ उब्भउ जर-मरणु देहहँ वण्णु विचित्तु।
देहहँ रोय वियाणि तुहुँ देहहँ लिंगु विचित्तु॥ ७०॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य, तू देह के जन्म-जरा-मरण होते हैं,... हे जन्मे, देह की वृद्धावस्था, देह मरे। यह देह के हैं, भगवान आत्मा के हैं नहीं। आहाहा! **देह के जन्म-जरा-मरण होते हैं, अर्थात् नया शरीर (धरना)...** नया। **विद्यमान शरीर छोड़ना, वृद्ध अवस्था होना, ये सब देह के जानो, देह के अनेक तरह के सफेद, श्याम, हरे, पीले, लालरूप पाँच वर्ण...** इस देह के वर्ण जानो यह। जड़ के रंग और आकार जानो, आत्मा के नहीं। भगवान तो उनसे भिन्न तत्त्व है।

अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चार वर्ण, देह के... लो! वह कहे हम ब्राह्मण, हम ब्राह्मण में अवतरित हुए। ... ब्राह्मण आत्मा कब था? वह ब्राह्मण संज्ञा देह को है, आत्मा को नहीं। भगवान तो परिपूर्ण ज्ञानानन्द है। आहाहा! क्षत्रिय। हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय तो शरीर की अवस्था को कहते हैं। शरीर को है, तू क्षत्रिय है? हम बनिया। अरे! वैश्य, वैश्य आये। बल्लभभाई! हम वैश्य हैं, व्यापारी हैं, बनिया हैं। भगवान आत्मा बनिया होगा? आहाहा! वह तो केवलज्ञान का पिण्ड है, अकेला चिदानन्द का कन्द आत्मा तो है। उसे तुझे वैश्य ठहराना है? वह वैश्य देह को है। उस देह को है वैश्य, आत्मा को है नहीं। और शूद्र हल्के चाण्डाल आदि, वह तो देह के भाव हैं, आत्मा को शूद्र है नहीं। चाण्डाल, हरिजन और फलाना, वह देह को है। आत्मा कहाँ हरिजन, चाण्डाल था? यह भगवान परिपूर्ण ज्ञानानन्द उसे तू आतमारूप से देख, जान और अनुभव कर। इसके अतिरिक्त यह सब देह के, उन्हें तू दृष्टि में से छोड़, इसका नाम तात्पर्य और फल है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक - १५-११-१९६५
गाथा - ७०, ७१, ७२ प्रवचन - ५१

परमात्मप्रकाश पहले भाग की ७०वीं गाथा, यहाँ तक आया, देखो! चार वर्ण देह के जान, देह के। यहाँ तक आया है न? यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह देह का धर्म है जड़ का है; आत्मा का नहीं। देह के हैं, देह के। आत्मा तो ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप वह आत्मा का है। **देह के वात, पित्त, कफ, आदि अनेक रोग...** यह वायु, कफ और पित्त आदि रोग, वे देह के हैं, आत्मा को नहीं। आत्मा को रोग है, ऐसा मानना वह भ्रमणा मिथ्यात्व है। आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्दरूप है, उसे रोग मानना कि मुझे रोग है, यह मिथ्या अभिप्राय दृष्टि मिथ्यात्व, पाप दृष्टि है।

मुमुक्षु : रोग हो तब?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोग किसे रोग? आत्मा को रोग है नहीं और हो, तब फिर क्या? रोग ही शरीर को है। अजीव को रोग है, वह जीव को है, यह मानना, वह जड़, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

देह के वात (वायु), पित्त (गर्मी), कफ, आदि अनेक रोग देह के हैं... देह के रोग को भगवान आत्मा का मानना, वह विपरीत मान्यता और अज्ञान तथा पापदृष्टि है। समझ में आया? वह अजीव की पर्याय को जीव की माना। रोगादि जड़ की पर्याय—अवस्था है, उसे उसने जीव की माना। विपरीत मान्यता और मिथ्यात्व का महान पाप है। और, **अनेक प्रकार के स्त्रीलिंग, पुल्लिग, नपुंसकलिंगरूप चिह्न को...** यह देह के हैं। स्त्री का आकार, पुरुष का आकार, पावैया-हीजड़ा-नपुंसक का आकार वह तो देह का है, आत्मा का नहीं। मैं स्त्री, मैं पुरुष, मैं नपुंसक—ऐसा मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा क्या चीज़ है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

अथवा यति के लिंग को... शरीर का वेश नग्नपना। नग्नपना, वह आत्मा का नहीं, वह तो देह का है। नग्नदशा, वस्त्ररहितदशा, वह आत्मा की है, ऐसा मानना, वह

मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? मुनि को नग्नलिंग होता है, परन्तु नग्नलिंग तो जड़ की पर्याय है, आत्मा की नहीं। और द्रव्यमन, यहाँ **द्रव्यमन...** है जड़ रजकणों से बना हुआ। वह जड़ का है और वह आत्मा का मन, मेरा मन, मेरा मन—ऐसा मानना, वह भी देह को अपना मानने जैसा है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप... क्या कहते हैं? वस्तु जो शुद्ध वस्तु है, ज्ञान जिसका शरीर है, आनन्द जिसका रूप है, ऐसा जो शुद्धात्मा, वस्तुरूप से शुद्धात्मा के सन्मुख, उसके सन्मुख, उसके सन्मुख की सम्यक्श्रद्धा, उसके सनमुख का सम्यक्ज्ञान, उसके सन्मुख का सम्यक्-आचरण, वह अभेदरत्नत्रय, उसे निश्चयरत्नत्रय कहा जाता है। निश्चयरत्नत्रय अर्थात् मोक्ष का मार्ग। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। शुद्ध भगवान, शुद्ध चैतन्य ज्ञान और आनन्द जिसका रूप त्रिकाली है, उसकी अन्तर सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह अभेद रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग, उससे विमुख, ऐसे आत्मा के स्वभाव के सन्मुख परिणाम से विमुख। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन आनन्दकन्द वह आत्मा, उसके सन्मुख के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम से विमुख परिणाम राग-द्वेष-मोह, पुण्य और पाप के भाव, शुभाशुभभाव और वह मैं, ऐसा मिथ्यात्वभाव। शुभ-अशुभभाव और मिथ्यात्वभाव से उपार्जित कर्म। क्या कहा? वस्तु जो आत्मा जिसे कहते हैं, वह आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभावरूप वह आत्मा। उसकी सन्मुख के परिणाम तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के। उन परिणाम से तो कर्म का उपार्जन नहीं होता। उन परिणाम से तो मुक्ति की दशा होती है। ऐसे भगवान आत्मा के सन्मुख से विमुख। स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति के परिणाम से विमुख पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव और वे मेरे, यह मिथ्यात्वभाव। इससे उपार्जित कर्म जड़। समझ में आया?

जो कर्म, उनसे उपजे जन्म-मरणादि विकार है,... उससे यह जन्म, मरण, रोग, वात, पित्त आदि उससे उत्पन्न हुए हैं। **वे सब यद्यपि व्यवहारनय से जीव के हैं,...** पर्याय के सम्बन्ध की अपेक्षा से राग-द्वेष आदि हैं, निमित्त से, व्यवहार से। **तो भी निश्चयनयकर जीव के नहीं हैं,...** वस्तु के स्वभाव की चैतन्य दृष्टि से देखने पर, वह चैतन्य दृष्टि—

सम्यग्दर्शन-दृष्टि से देखने से वे जीव के हैं नहीं। यह पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम या शरीर की क्रिया या स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग या नग्न लिंग, वे आत्मा के नहीं। ओहोहो! समझ में आया? वे देह सम्बन्धी हैं, वे सब देह के हैं। पुण्य और पाप के भाव विकारी परिणाम, जन्म-मरण, स्त्री, पुरुष, नपुंसक के लिंग, यति लिंग और मन जड़, वे सब कर्म के, देह के हैं; आत्मा के नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देह का धर्म किसने कहा? कहा न परन्तु है वह अस्ति है, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह देह का धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं और आत्मा अकेला है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो देह का धर्म, स्वभाव से विपरीत परिणाम से उपार्जित कर्म, उन कर्म से हुए सब भाव देहमय है, अस्ति है; नहीं है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। वे तो कहे, है ही नहीं—'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या', ऐसा नहीं। देह है, कर्म है, स्वभाव शुद्ध चैतन्य से विमुख के परिणाम मिथ्यात्व, राग-द्वेष हैं, उनसे बँधे हुए कर्म हैं, उनसे यह सब संयोगी भाव और संयोगी चीज़ है, परन्तु वह सब देह का है। देह का अस्तित्व, अजीव का अस्तित्व है, वह जीव का अस्तित्व नहीं। समझ में आया?

जीव के अस्तित्व में—आत्मा के अस्तित्व में—उसकी सत्ता में तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द उसकी सत्ता में तो है। और ऐसी आत्मसत्ता की सन्मुख के परिणाम में तो निर्विकारी, अरागी—वीतरागी निर्विकल्प दृष्टि, शान्ति के परिणाम होते हैं। उन परिणाम से विमुख, भगवान आत्मा के स्वभाव से विमुख। यह परिणाम से विमुख यहाँ तो कहा। समझ में आया? आस्रवभाव, बन्धभाव, वह आत्मा के सन्मुख परिणाम—मोक्ष के मार्ग के परिणाम से विमुख परिणाम है। समझ में आया? वस्तु जो है शुद्ध चैतन्य ज्ञान-आनन्द जिसका शरीर अर्थात् वस्तु जिसका स्वरूप। शरीर अर्थात् स्वरूप। उसके सन्मुख के परिणाम तो निर्मल निर्विकारी वीतरागी पर्याय है। उस वीतरागी पर्याय से विमुख जितने पुण्य-पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध शुभाशुभभाव, वे मेरे, ऐसा मिथ्यात्वभाव, उससे हुए जड़कर्म, निमित्त से और उस जड़कर्म से हुई यह सब सामग्री। शशीभाई! यह अस्ति है, ऐसा सिद्ध करना है। उस अजीव का अस्तित्व अजीवरूप से है, पुण्य-पाप के भाव भी अजीवभाव स्वभाव है, वह जीवस्वभाव नहीं।

पुण्य-पाप के भाव भी अजीव स्वभाव, कर्म स्वभाव, देह स्वभाव के भाव, उन्हें गिना गया है, वे चैतन्य भगवान आत्मा के भाव नहीं। आहाहा!

ऐसे जो कर्म से हुए देह, रोग, मुनि का लिंग, स्त्री, पुरुष लिंग और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-बनिया, शूद्र, वे सब कर्म के, देह के भेद हैं। उन्हें आत्मा के मानना, उसका नाम मिथ्या—विपरीत मान्यता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐसा जानना चाहिए, **देहसम्बन्धी है, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ पर देहादिक में ममतारूप विकल्पजाल को छोड़कर...** यह देह, लिंग स्त्री-पुरुष के वेश शरीर के और ब्राह्मण, वैश्य आदि के जाति-वर्ण और पुण्य-पाप के भाव, उनका ममत्व छोड़कर 'वह मैं, वह मैं' ऐसा ममत्व छोड़कर, मैं ज्ञानानन्दस्वभाव हूँ। ऐसे विकल्पजाल को छोड़कर **जिस समय यह जीव...** यह शुभ-अशुभभाव, यह लिंग, वर्ण, इनका ममत्व अर्थात् ये मेरे, ये मेरे—ऐसा भाव छोड़कर। वे भाव छूटे तो उस समय कैसा भाव होगा? शुभ-अशुभभाव, लिंगादि, वर्णादि भाव का ममत्व छोड़कर, वे मेरे—ऐसा भाव छोड़कर कौनसा भाव होगा?

जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनन्दरूप सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है,... यह ममत्व—यह मेरे, ऐसी दृष्टि छूटी तो यह आत्मा मेरा आनन्दकन्द ज्ञायक, ऐसी अन्तर दृष्टि होने से। 'जिस समय' ऐसा है न? यदा, यदा है। है न संस्कृत में। यदा—यह जीव इन पुण्य-पाप के भाव की रुचि छोड़कर, 'यह मैं' ऐसा प्रेम छोड़कर, शरीर, लिंग आदि यह मैं—ऐसा प्रेम छोड़कर भगवान आत्मा के प्रेम में, प्रीति की रुचि में गया तो उसे रागरहित श्रद्धा, रागरहित ज्ञान, रागरहित स्थिरता की अंशा दशा, ऐसा वीतराग सदा आनन्दरूप **सब तरह उपादेयरूप निज (आत्मा उनके) भावोंकर परिणमता है,...** ऐसा आत्मा, उसके भावरूप से—निर्विकाररूप से होता है, तब वह आत्मा उसे उपादेय ज्ञात होता है। क्या कहा?

यह आत्मा वस्तुरूप से ज्ञायक चिदानन्द कन्द आत्मा पदार्थ, उससे विमुख परिणाम जो विकार, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि, उनसे उपार्जित कर्म, उनसे हुई यह नात, जाति, सब स्त्रीलिंग आदि, उनकी रुचि छोड़कर अर्थात् ममत्व—'यह मैं' ऐसा छोड़कर, यह मैं—ऐसा छोड़कर, यह मैं, जिस परिणाम से 'यह मैं' कहा, वह परिणाम वीतरागी परमानन्दरूप परिणमन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? 'यह मैं' यह 'मम' है

न, मम अर्थात् यह मेरे। पुण्य, पाप, संकल्प, विकल्प, शरीर, वाणी, रोग, वे मेरे यह तो मिथ्यात्वभाव था। वह मेरापन छोड़कर यह मैं ज्ञायक चिदानन्द ज्ञान-शरीर, आनन्दस्वरूप ऐसे उसके सन्मुख से, जो विमुख से परिणाम होते थे, उनकी ममता छोड़कर सन्मुख से जो परिणाम श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के हुए, उन **निज भावोंकर परिणमता है,...** उसे अपने निज परिणाम कहा जाता है। समझ में आया ?

तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है,... ऐसे परिणाम के काल में यह आत्मा उपादेय हो जाता है। समझ में आया ? वस्तु आनन्द—शरीर जिसका आनन्दरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दरूप और अतीन्द्रिय ज्ञानरूप, उसके सन्मुख के परिणाम वीतरागी परिणाम करे, तब वह यह आत्मा दृष्टि में उपादेय हुआ। दृष्टि में निश्चित हुआ कि यह उपादेय है। इसके बिना तो पुण्य और पाप के रागादि भाव आदरणीय हैं, यह मान्यता वह मिथ्यात्वभाव की मान्यता है। ओहोहो ! अरे ! कहो, नेमिदासभाई ! क्या होगा यह ? ऐसा सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म काँटा है। न्यालभाई !

भाई ! परन्तु देखो न, ऐसी वस्तु है न, वस्तु है या नहीं ? एक आत्मा महान पदार्थ वस्तु है या नहीं ? अरूपी अर्थात् कुछ वस्तु नहीं ? वह तो रूप नहीं, परन्तु वस्तु नहीं ? तो वस्तु है, जैसी यह चीज़ है, वैसी वह चीज़ है। यह एक-एक रजकण तो एक प्रदेशी है, यह तो असंख्य प्रदेशी दल है पूरा तत्त्व। जैसे परमाणु को स्वीकार किया जाता है, रूपी है इसलिए यह वस्तु है। उसी प्रकार यह आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। वह (पुद्गल) तो एक रजकण है और यह (शरीर) बहुत रजकणों का दल यह इतने में असंख्य प्रदेश में यह सब अनन्त समाहित होते हैं। जैसे यह वस्तु है, वैसे सामने अन्दर चिदानन्द ज्ञानघन वीतरागी मूर्ति परमानन्द का स्वभाव भरपूर यह आत्मा अरूपी वस्तु है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिखता है, यह भी मानता है कि यह दिखता है, करना क्या इसका ? जिसके ज्ञान में ज्ञात होता है कि यह शरीर। यह ज्ञान जानता है कि यह शरीर। या शरीर जानता है ? ज्ञान जानता है कि यह शरीर। वह ज्ञान 'यह हूँ' ऐसी दृष्टि करता नहीं। जिसकी मौजूदगी में पर ज्ञात होते हैं, जिसकी अस्ति में पर ज्ञात होते हैं, वह मानता है कि यह है परन्तु 'मैं हूँ' यह मानता नहीं। शशीभाई ! आहाहा ! गजब

भाई! जिसकी अस्ति-भूमिका में, जिसकी भूमिका में यह शरीर, यह राग, यह... यह... यह... जिसके अस्तित्व में, सत्ता में, अस्ति में, जिसके घर में, जिसके घर में ज्ञात हो कि, यह है। पर्याय उसका घर है न? उसमें यह ज्ञात होता है। वह यह ज्ञात होता है परन्तु मैं 'यह हूँ' ऐसी इसे प्रतीति नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा जिसकी भूमिका में यह ज्ञात होता है, उसी भूमिका द्वारा यहाँ जाये अन्दर तो कहते हैं कि स्वपदार्थ की सन्मुख की वीतरागी पर्याय हो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, उस काल में यह आत्मा आदरणीय हुआ। वरना तो पुण्य और पाप और रोगादि आदरणीय थे, उनकी ममता थी, वह तो मिथ्यादृष्टि था। कहो, समझ में आया इसमें? हें?

मुमुक्षु : ऐसा निर्णय करने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार करता नहीं। दरकार नहीं, नहीं। देखो! ऐसे बाहर की दरकार कितनी इसे ऐसे बात बैठ गयी है। मैं शरीर, मेरी आवाज ऐसी, मेरा कण्ठ ऐसा, मेरी आँखें ऐसी। हराम एक भी वस्तु इसकी हो तो। परन्तु इसे कैसा हो गया? मेरी आँखें हिरण जैसी, मेरे कान ऐसे, मेरा नाक, मेरे दाँत बहुत पक्के... मेरा... मेरा (मानता है) जो इसमें बिल्कुल नहीं। कैसा बैठ गया है इसे। यह मेरे दाँत, यह मेरी जीभ, यह मेरी आँख, यह मेरी इन्द्रिय, यह मेरी अँगुली, यह मेरा शरीर, यह मेरा कन्धा, यह मेरी पीठ, यह मेरा मुख सामने, यह मेरे बाल, इसने ऐसा ही लक्ष्य करके उसे 'मेरा' ऐसा बैठा है, उसको उखाड़कर गुलाँट मारनी है अर्थात् इसमें महान पुरुषार्थ है। रँग गया है रँग उसमें। यह शरीर पतला वह मेरा, दाँत ऐसे कि मेरे, आँख कच्ची पड़ी कि मुझे, आँख अच्छी हुई कि मुझे, फोड़ा हुआ कि मुझे, घाव भरा आया कि मुझे, चमड़ी कुछ रूपवान हुई कि मुझे, काली हुई कि मुझे, शीतला हुई कि मुझे, ऐसा का ऐसा सूख गया तो मुझे। यह बात इसे रटनी पड़ती है? इसे निर्णय हो गया है कि ऐसा जाने। ऐ... जेचन्दभाई! ... यह पैर नहीं हिलते कि मुझे, रोग हुआ कि मुझे। परन्तु तुझे अर्थात् तू कौन? समझ में आया? यह पुत्र आया तो बांझिया का ताना तो मिला (था) मुझे, मिटा मुझे, मिले कहाँ से? ऐसे फट फट रंग, वह ऐसा कि एकदम अन्दर... वह जो मेरे-मेरे ऐसा जैसे दृढ़ करके पड़ा है, गुलाँट खाकर भगवान आत्मा मेरा तो ज्ञान है, मेरा तो आनन्द है, मेरा तो अन्तर पूर्ण अरूपी अतीन्द्रिय ग्राह्य वस्तु है। अरूपी तथापि महान

पदार्थ तो वही है। यह सब पदार्थ का विवेक कर सके, ऐसा तो वह है। जड़ में विवेक करने की सामर्थ्य है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...ठीक भाई! किसे चढ़ावे? आहाहा! यह क्या कहते हैं यह?

भाई! तू जहाँ नहीं, वहाँ तूने तेरे पुरुषार्थ को दृढ़ और पक्का किया है। उस पुरुषार्थ की गति बदल अब। जहाँ तू नहीं, वहाँ तेरे पुरुषार्थ को राग में, पुण्य में, पाप में, देह में, रंग में, वेश में, लिंग में पक्का दृढ़ किया है, भाई! वह पक्का रंग उखाड़ अब। जिस काल में उखड़े, उस काल में आत्मा उपादेय है—ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा! समझ में आया?

जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनन्दरूप... स्वयं आत्मा। **सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है,...** ऐसी पर्यायरूप से होता है। **तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय जानो।** तब आत्मा अन्तर अभिप्राय में आदरणीय जाना। समझ में आया? कहते हैं, दूसरे का बल इसे स्पर्शता नहीं और देने की व्याख्या क्या? कहो। दूसरे का बल इसे स्पर्शता नहीं, इसके पास आता नहीं, उसके प्रदेश में प्रवेश करता नहीं और वह बल दे, इसका अर्थ क्या हुआ? कि, पर से मुझे कुछ काम होगा, ऐसा हुआ। धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यह कहते हैं।

भगवान आत्मा... इसे विश्वास नहीं आता। क्योंकि कितना, कहाँ है उसे कभी विचारकर मनन करके निर्णय किया नहीं। यह महान पदार्थ, महान पदार्थ जिसकी सत्ता में—अस्तित्व में अनन्त ज्ञान की पूँजी, अनन्त आनन्द की पूँजी, अनन्त वीर्य की शक्ति का सत्त्व, अनन्त-अनन्त दृष्टा आदि प्रभुता आदि के गुण, ऐसा यह जो द्रव्य, ऐसा यह जो द्रव्य अर्थात् कि ऐसा जो मैं। समझ में आया? ऐसी दृष्टि और ज्ञान के काल में यह आत्मा उपादेय वर्तता है। आहाहा! यह ७० (गाथा) हुई। ७१।

★ ★ ★

गाथा - ७१

आगे ऐसा कहते हैं कि हे जीव, तू जरा-मरण देह के जानकर डर मत कर— डर नहीं, डर नहीं। शरीर की जरा-अवस्था, रोग-अवस्था, आँखें फूटी, डर नहीं। वह तुझे नहीं और डरता किसलिए है? कहते हैं। जेचन्दभाई! ऐसा कहते हैं, किसकी चिल्लाहट मचाता है? कहते हैं। किसी को हो और तुझे चिल्लाहट कहाँ आयी?

७१) देहहँ पेक्खिवि जर-मरणु मा भउ जीव करेहि।
जो अजरामरु बंभु परु सो अप्पाणु मुणेहि॥ ७१॥

गुलाँट खाती हैं दोनों बातें।

अन्वयार्थ :- हे आत्माराम,... हे आत्माराम! **तू देह के बुढ़ापा मरने को देखकर डर मत कर...** यह देह की वृद्धावस्था होने से ऐसा डर मत कर (कि) अरे! मैं वृद्ध हो गया। वृद्ध है? तू कहाँ वृद्ध है? तू तो जरा रहित है। सामने दोनों शब्द पड़े हैं न? अजर-अमर पड़े हैं। ऐसे जरा-मरण तो यह अजर-अमर। यहाँ क्या कहते हैं? भाई! तू देह में बुढ़ापा यह दाँत (ऐसे) हो जाये, वह बुढ़ापा तुझे नहीं, डर नहीं। आहाहा! यहाँ तो जवान को कहते हैं जवानी से हर्ष न कर, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो द्वेष की व्याख्या अभी जरा ली है। वृद्धावस्था देखकर डर नहीं कि मैं वृद्ध हो गया। तू तो जरा रहित चीज़ है। जरा रहित अजर, जरा रहित अजर और मरण रहित अमर। अजर-अमर भगवान है तू। यह जरा और मरण से डर नहीं, डर नहीं। जरा-मरण तुझे नहीं प्रभु! तुझे नहीं तीन काल में। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो डरने की अपेक्षा ली है न, इसलिए जरा-मरण लिया और यदि राग की अपेक्षा से लो तो जवानी में अन्दर यह जवानी है, (उसमें) राग न कर, न कर। वह तेरी चीज़ में जवानी नहीं, तू तो भिन्न तत्त्व है। समझ में आया? सांढ़ जैसा शरीर ऐसे धम... धम... धम... धम... धम... धम... (करे, उसमें) राग न कर, यह प्रेम न कर, वह तुझमें नहीं, वह जवानी तुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? शरीर का जवानपना देखकर मैं जवान, (ऐसा) न मान, न मान, प्रभु! तू न मान, तू जवान नहीं। वृद्धावस्था देखकर मैं जीर्ण (हो गया), ऐसा न मान, डर नहीं, भय न पा। भगवान अजर पड़ा है अन्दर,

जिसे जरा अवस्था स्पर्शती नहीं। आहाहा!

बीस वर्ष के राजकुंवर ऐसे हजारों रानियों के मध्य में पड़े हों समकितदृष्टि। हम यह जवान, वह हम नहीं, यह स्त्रियाँ हमारी नहीं, यह विकल्प उठे वह हमारे में नहीं, वह दूसरी चीज़ है। हम तो ज्ञानानन्द से भरपूर भगवान आत्मा हैं। अरे! यह जवान और राग और यह, वे मेरे स्वरूप में उनकी गन्धमात्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह सम्यग्दृष्टि राजकुमार पच्चीस वर्ष का जिसके घर में हजारों रानियाँ हों (वह ऐसा मानता है कि) हम इसमें नहीं, वह नहीं, वे जहाँ हैं, वहाँ हम नहीं। आहाहा! हम जहाँ हैं, वहाँ राग और शरीर और जवानी नहीं। समझ में आया? जवानी से जीव को पहिचानना, मूढ़ है। आहाहा! शरीर की वृद्धावस्था से (पहिचानना) कि, यह जीव वृद्ध हो गया। भगवान! यह लक्षण तेरे नहीं। समझ में आया? यह मर गया, भाई! वह जीव मर नहीं जाता। समझ में आया? वह तो अमर चीज़ है। समझ में आया?

कहते हैं कि **बुढ़ापा, मरने को देखकर डर मत कर, जो अजर-अमर परब्रह्म शुद्धस्वभाव है,...** भगवान! तू वर्तमान में वृद्धावस्थारहित, मरणरहित है। तब है क्या? परमब्रह्म। वह तो परम आनन्दमूर्ति आत्मा स्वयं उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? भाई! तू तो प्रभु है न! वह प्रभुता, यह वृद्धावस्था देखकर कैसे डरे? उसमें वृद्धावस्था कहाँ थी भाई? वह रोग देखकर अब रोग के (कारण) सड़ा हूँ। यह सड़ा तो शरीर, उसमें मैं सड़ा, ऐसा वह कैसे मानता है? समझ में आया? ऐसे जवानी शरीर को फूटी, मूंछ निकली, यह मूंछ मुझे आयी। अरे! धर्मी ज्ञानी आत्मा में कहाँ यह शरीर है कि उसे मूंछ आवे। आहाहा! समझ में आया? बाल नहीं होते, क्या कहलाते हैं? यह बाल उगे वे? ... बालरहित शरीर हो कितनों को। बाल ही उगे न हों जन्म से। नाम आया था। है न इन भाई का पुत्र, मनसुखलाल का पुत्र, करोड़पति का पुत्र। पहले से—जन्म से ही बाल ही नहीं कुछ। वह माने कि मैं (बालरहित)। उसका नाम है कुछ शरीर का, ऐसा उसका नाम है। ... वह तू नहीं। अरे! मुझे बाल नहीं, हों! अरे! मुझे बाल नहीं। अब बालरहित शोभा कुछ कहलाये?

मुमुक्षु : गंजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : गंजा, गंजा, बस वह गंजा लो! वह गंजा कहे उसे। जन्म से बाल ही उगे नहीं। वह यहाँ देखा था, यहाँ आया था। मनसुखलाल ताराचन्द, नहीं? अपने आँख का आपरेशन किया था। उनका पुत्र यहाँ आया था। जामनगर से आया था। ... कुछ बाल उगे ही नहीं पहले से। लोंच करने की मेहनत जायेगी। एक व्यक्ति ऐसा कहता था भाई! उसे देखकर ऐसा कहता था। अरे! इसे अभी लोंच का डर लगा अभी इसे। आहाहा! गंजा-गंजा। वह ऐसा ही, परन्तु माने, बस! स्त्री हो तो कहे, मुझे मूंछ नहीं होती, आदमी को मूंछ होती है। परन्तु यह तू क्या कहता है? तुझे और किसी को मूंछ नहीं होती, यह शरीर ही नहीं होता फिर और मूंछ कहाँ से लाया? परन्तु रँग गया न, रंग लग गया इसे। आहाहा!

हमारे अवयव ऐसे और फलाने के अवयव ऐसे। हमारे अर्थात् क्या? भाई! यह शरीर के अवयव तो जड़ के हैं, उनमें हमारे ऐसे और उसे ऐसे, यह पहिचान कहाँ से लाया? आहाहा! भगवान आत्मा अजर, अमर, अरोगी-बाहर के रोगरहित, बाहर की चमड़ी, बालरहित अन्तर के पूर्णानन्द परमब्रह्मवाला आत्मा है। आनन्दमूर्ति आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द की खान आत्मा है। वह यह भी कैसे बैठे? ... ऐसा घुसा डाला वहाँ। जेचन्दभाई! जरा रोग थोड़ा साधारण है बाकी कुछ नहीं होता, शरीर में कुछ है? वहाँ चिल्लाहट मचा जाये, मर जायेंगे यहाँ से। वहाँ कहाँ मौसीबा बैठी है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मरता नहीं। वहाँ भी ऐसा... अधिक आकुलता करे (तो) वहाँ ऐसा शरीर मिलेगा। हाय हाय अब? परन्तु देखनेवाला तो नहीं इतना हो वहाँ। परन्तु देखनेवाला अर्थात् देखनेवाला कहाँ तेरे थे? कि यह परिचित मुझे देखे उसमें शर्म लगती है, ऐसा माने। यह परिचित मुझे ऐसे गरीब देखे, रोगी देखे, ... देखे,... हाय.. हाय..! परन्तु यह परिचित वह तेरे ही कहाँ हैं। आहाहा! परन्तु भारी भ्रम खड़ा किया न (इसने)। इसलिए अपने अनजाने में जाना अब। अनजाने में तू जायेगा न परन्तु तू न? तू तो ऐसे दुःख की ममतावाला वहीं का वहीं यह ममता होली खड़ी है वहाँ। तूने क्या बदला? धर्मचन्दभाई! आहाहा! अरे! भगवान! तेरी जाति तो देख।

कहते हैं कि **उसको तू आत्मा जान।** देखो! यह अन्दर ज्ञान और आनन्द की मूर्ति भगवान आत्मा, उसे आत्मा जान, दूसरे को आत्मा न जान। भाई! यह भूल हुई (कि) भगवान ने पर को माना। समझ में आया? और उसकी हीनाधिकता से मैं हीनाधिक हो गया, संयोग की हीनाधिकता से—विपरीतता से मैं अधिक और विपरीत हो गया। तेरी भूल हो गयी, भाई! आहाहा! तू तो प्रभु ज्ञान की मूर्ति है न! तेरा शरीर अर्थात् ज्ञान अर्थात् स्वरूप, तेरा स्वरूप अर्थात् आत्मा अर्थात् ज्ञानशरीर, आनन्दशरीर वह आत्मा है। वह अरूपी ज्ञानघन है। उसे आत्मा जान, इन सबको आत्मा जानना छोड़ दे। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- यद्यपि व्यवहारनय से जीव के जरा-मरण हैं,... यह व्यवहार से कहा जाता है न निमित्त सम्बन्ध से। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं है,...** यह देह के ही हैं। देह के हैं, यह आत्मा के कहना, वह निमित्त सम्बन्ध से ज्ञान कराने के लिये (कहा है), यह उसकी वस्तु है नहीं। **ऐसा जानकर भय मत कर...** यह डर नहीं, डर नहीं। शरीर शिथिल पड़ जाये। गहरा... गहरा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या परन्तु शरीर... हुआ या आत्मा? जबड़ा मर गया हो, आँख फूटी हो... ऐसे शरीर के काल में बटका भर गया हो सियालिया मुनि के शरीर में। ऐसे अन्दर में ध्यान में अपना आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी दृष्टि में स्थित हैं, उसमें ऐसा हुआ, उसमें धारा आयी एकदम... एकदम केवलज्ञान! वह शरीर व्यवस्थित हो जाता है। वह व्यवस्थित होने लगा तो शरीर व्यवस्थित हो जाये। ऐसा हुआ, ऐसा हुआ...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवस्थितता दवा की नहीं, वहाँ शरीर हो जाये ऐसा उसका ऐसा स्वभाव है। यह भगवान व्यवस्थित हो, वहाँ शरीर ऐसा उसके कारण से होता है। समझ में आया? जिसे वीतराग केवलज्ञान प्रगट हुआ। शरीर पहले ऐसा था खड्डे और ऐसा, ऐसा न रहे अब बाद में। शरीर भी ऐसा (व्यवस्थित) हो जाये... एकदम... जाओ! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो आत्मा किसे कहना और उसे जानना, उसकी व्याख्या है। यहाँ परमात्मप्रकाश है न, तो परम स्वरूप भगवान आत्मा के स्वरूप में जो हो, वह तेरा; इसके अतिरिक्त दूसरा तेरा माना है, वह भ्रमणा है, छोड़ दे भ्रमणा। इसके लिये तो बात चलती है। जरा-सा कुछ हो न, हाय! मुझे अकेला रहना, इसकी अपेक्षा मर जाना। घर में बीस मनुष्य हों और उन्नीस मर जायें और अकेला रहा हो। फिर क्या करता होगा? मर जाता होगा? ....

मुमुक्षु : उसके पास थे कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : थे एक भी कब था तुझे? शरीर ही तेरा नहीं फिर उन्नीस कहाँ से आये तेरे? गजब भाई! आहाहा! कल्पना... कल्पना... कल्पना... मारकर मार डाला जगत को। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... अरे! मेरी यह स्त्री मर गयी। परन्तु थी कब तेरी स्त्री? सुन न! अरे! लड़का ऐसे मर गया, फलाना (हो गया)। परन्तु था कब? वह उसकी अवस्था से वहाँ पूरा हुआ। तुझमें कहाँ था और तेरा कहाँ था? परन्तु मूर्ख ने मूर्खता खड़ी की और फिर पागलपन वेदता है। भीखाभाई! आहाहा!

कहते हैं, **तू अपने चित्त में ऐसा समझ कि जो कोई जरा-मरण रहित अखण्ड परब्रह्म है, वैसा ही मेरा स्वरूप है,...** अर्थात् कि मैं ही **शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है,...** ऐसा। मेरा शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है, सबसे ऊँचा है। है अन्दर, हों! संस्कृत में। **'सर्वोत्कृष्टस्तमित्थंभूतं परं'** मैं ही सर्वोत्कृष्ट चिदानन्द ज्ञायकमूर्ति हूँ। परम मोटा—उत्कृष्ट—सर्वोच्च मैं ही वह पूरा, दूसरा मेरा कोई स्वभाव नहीं। मैं ही बड़ा हूँ, मेरे लिये भगवान भी बड़े नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बाहर की चीज़ों से बड़ा मानना, वह मूढ़ जीव है। सोजिश चढ़ी और शरीर में निरोगता मानना, वह मूढ़ है। ऐसे शरीर, पैसा, स्त्री, पुत्र के ढ़ेर देखकर मैं बड़ा हुआ। मूढ़ है। वह तो बाहर के विष्टा के ढ़ेर है। आहाहा! अमृत का ढ़ेर आत्मा अन्दर है। खबर नहीं होती, खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुफ्त का मोह उत्पन्न किया, घुसे कहाँ से? मोह की व्याख्या

ही यह है—निष्फल। ऐसी भ्रान्ति खड़ी की। वेदान्त कहे, कुछ नहीं। ऐसा नहीं। परन्तु इतना तो है। मोह भी निष्फल। इसका अर्थ (वह है) सही, परन्तु स्वरूप में नहीं इसलिए उसे निष्फल कहते हैं, परन्तु वह है। आहाहा! इसीलिए तो यहाँ दोनों अस्ति तो सिद्ध करते जाते हैं। व्यवहार से है, व्यवहार से है, वस्तु में नहीं। निमित्त सम्बन्ध से है, वस्तु में नहीं। निमित्त सम्बन्ध से ऐसा है। राग, द्वेष, शरीर... (सब है), वस्तु में नहीं। समझ में आया?

शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है, ऐसा तू अपना स्वभाव जान। ऐसा भगवान आत्मा, उस ज्ञान को अन्तर में झुकाकर शुद्धता में आत्मा का आदर कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान शुद्ध प्रभु अमृत का सागर अन्दर पड़ा है। अतीन्द्रिय अमृत के रस के स्वाद से भरपूर भगवान है। गन्ने के टुकड़े में जैसे स्वाद पड़ा है न, चूसते हैं न ऐसे। यह वह नहीं खाते? कुल्फी, कुल्फी। यह तो अकेले अमृत के रस की कुल्फी पड़ी है आत्मा। अतीन्द्रिय (आनन्द के) रस की कुल्फी आत्मा। उस आत्मा को तू आत्मा जान ज्ञान को, श्रद्धा को सन्मुख करके। आहाहा! समझ में आया? महिमा करे नहीं और महिमा आवे कहाँ से? करे नहीं और आवे कहाँ से? कहो अब! महिमा करे नहीं और महिमा आवे कहाँ से? दो प्रश्न सही ... महिमा करता नहीं और महिमा आती नहीं। अब इसका अर्थ क्या? महिमा करता नहीं। यह महिमा लग गयी है। आहाहा! दो लाख, पचास हजार मिले, ढाई लाख, ... तीन लाख धूल मिली। चार लाख, पाँच लाख....

मुमुक्षु : संसार में खो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खो गया ममता से। ममता से खो गया, वस्तु से नहीं। और दूसरे को भी ऐसा माने वापस। इसके गज भी ऐसे। देखो! भाई! उसे पाँच-पाँच पुत्र, सब आज्ञाकारी, सब होशियार, कमाऊँ हुए, उसे पहुँच गये। मुझे अभी पुत्र छोटे, अभी पहुँच गये नहीं, मेरा शरीर शिथिल पड़ा। गजब परन्तु यह तो गज! इसका गज ही उल्टा है। भीखाभाई! नहीं इसके पुत्र, नहीं इसके पास कुछ आया। यह मान-मानकर खड़ा करता है। आहाहा! यह कल सवेरे वह तो छोटा हमारे गाँव का साधारण व्यक्ति था।

उसके पास पचास लाख हो गये। हमारे घर में नौकर था, वहाँ नौकर था, काम करता था, दाना फिराता और फलाना... अभी उसके पास करोड़ रुपये हो गये, लो! अब यह जलन इसे। परन्तु उसे नहीं हुए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं हुए, उसे हुई है ममता। सुन न! तू ऐसा देख कि उसे हुई है ममता और यह आत्मा ममतारहित है, ऐसा देख। यह ममतावाला आत्मा को देखना पर को, उसे आत्मा को देखना आता नहीं। आहाहा! यह ममतावाला दूसरे को देखना, उसने अपने को भी ममतावाला आत्मा को देखा है। परन्तु आत्मा ही राग-द्वेष और विकल्परहित आत्मा, सब आत्मा ऐसे ही हैं। उसे इस प्रकार से न पहिचान की ऐसा बड़ा और यह पैसा और स्त्री और रागवाला, ऐसा न पहिचान। समझ में आया? शशीभाई!

घर में ऐसे पलंग हो और ऐसे मकान दस लाख के, बीस लाख के हों और ऐसे चारों ओर... पुत्र बड़े लोहे जैसे आठ व्यक्ति हों बड़े लम्बे पाँच हाथ के, निरोगी शरीर और आहा! हुकम करे। तुम्हारे कहाँ एक भी है, परन्तु हो उसे ऐसा जाने... हो, उसके भी नहीं और न हो, उसके भी नहीं। इसके लिये तो यहाँ बात चलती है। उसे इस प्रकार से पहिचानना... आहा... आहा! अभी उसे बादशाही है। वह दु:ख के पर्वत में पड़ा है। तुझे भान कहाँ है? यह मेरे... मेरे मानकर भगवान को खो बैठा है वह। खो बैठा, ऐसा पहिचानता नहीं और उसे मिला, ऐसा पहिचाना कैसे तूने? गुलाबचन्दभाई! आहाहा! और इस प्रकार से देखने से ऐसी दृष्टि तूने कहाँ से निकाली? वह खो गया है ममता में, प्रभु! वह आत्मा खो गया है, ऐसा तू देख!

आत्मा वस्तु है। अखण्डानन्द प्रभु आत्मा परमात्मा केवली ने तीर्थंकर भगवान ने आत्मा कहा, वह तो पूर्णानन्द की अमृत की मूर्ति है। वह खो गया उसे और उसको तू अच्छा बड़ा कैसे मानता है परन्तु? समझ में आया? आहाहा! तुझे भी इस प्रकार से तू मानता हो तो उसे तू मानता है, वह तो तेरी भ्रमणा हुई। परन्तु तुझे आत्मा, ओहो! अमृत का पिण्ड प्रभु अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द ध्रुव की जितनी शुद्धता की वृद्धि हुई, उतना

बड़ा। समझ में आया ? गुण की वृद्धि, शुद्धता की वृद्धि से बड़ा, वह बड़ा। गुण की पर्याय से हीन, हीन न्यून वह छोटा। बाहर के कारण से छोटा-बड़ापना है नहीं। आहाहा!

ऐसा तू अपना स्वभाव जान। शुद्धात्मा, शुद्धात्मा। नजर में प्रत्यक्ष न आवे, परन्तु ऐसे ख्याल में आवे या नहीं इसे ? यह आँख बन्द करे तो अन्धेरा ख्याल में नहीं आता ? आता है या नहीं ? वह किसके अस्तित्व में अन्धेरा ख्याल में आया ? अन्धेरे में अन्धेरा ख्याल में आया ? अन्धेरा अन्धेरे में ख्याल में आया ? इस ज्ञान में वह ख्याल में आया। उस ज्ञानमय भगवान को अन्दर देख। देखनेवाले को देख, जो उसमें ज्ञात होता है, उसे न देख। ऐसा आत्मा, **पाँच इन्द्रियों के विषय को...** पाँच इन्द्रिय के विषय। देखो! शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। दोनों, हों! अनुकूल-प्रतिकूल दोनों। अकेले विषय, अर्थात् ऐसे नहीं लेना, कठोर पड़े लोगों को। यह भी विवाद। अरे! यह तो भगवान को मूर्ति को विषय बनाते हैं। अरे! सुन न! भगवान की वाणी कान का विषय है,...। समझ में आया ? विषय अर्थात् लक्ष्य में लेनेयोग्य यह वस्तु। ऐसे लक्ष्य में लेने (योग्य) वस्तु को छोड़कर ऐसा लक्ष्य में लिया चाहे जो शुभाशुभ चीज़ें या कोई भी वस्तु, वे पाँच इन्द्रिय के विषय अर्थात् बाहर की ओर के शुभाशुभ का लक्ष्य छोड़ दे उसे।

समस्त विकल्प जालों को छोड़कर... यहाँ से विषय बदला, तो उसके लक्ष्य से होनेवाले संकल्प और विकल्प छोड़ दे। **परमसमाधि में स्थिर होकर...** शान्ति में स्थिर होकर। समाधि शब्द से शान्ति। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति, उसे यहाँ परमसमाधि कहते हैं। भगवान आत्मा अपनी शान्ति की दृष्टि, शान्ति का ज्ञान, शान्ति की (स्थिरता) में रहकर, **निज आत्मा का ही ध्यान कर,...** उसका ध्यान कर... ध्यान कर... ध्यान कर... ध्यान कर। समझ में आया ? आता है, नहीं आता ? द्रव्यसंग्रह में (गाथा ५६) **'मा चिट्ठह मा जंवह'** आता है। यह श्रीमद् ने.... श्रीमद् ईडर में थे न, वहाँ... यह भगवान आत्मा की ओर के झुकाव का भाव, उसे यहाँ ध्यान कहते हैं। उस ध्यान द्वारा आत्मा को ध्या। आहाहा! समझ में आया ? **यह तात्पयार्थ हुआ।** लो! यह इसका—गाथा का तात्पर्य है। (७१वीं गाथा)

आगे जो देह छिद जावे,... यह देह छिद जाये, टुकड़े हों, **भिद जावे...** छिद्र पड़े,

क्षय हो जावे... ऐसे प्रवाही होकर चला जाये। समझ में आया? एक व्यक्ति ऐसे दवाखाने में गया, खून निकलता था। जहाँ वहाँ गया वहाँ पीठ में से खून सब आधा मण निकल गया सब, पीठ में से आधा मण। हो गया, समाप्त हो गया। जरासा खून निकलता है लाओ जायें दवाखाने। वह दवाखाने गया वहाँ एकदम खून आधा मण (निकल गया)। हो गया। परन्तु जाने दे न, जाये वह, तू कहाँ उसमें गया है? समझ में आया? आहाहा! वह फिर रखने से न रहे, हों! वहाँ पाटा-पिण्डी बाँधूँगा तो रहेगा। धूल में भी नहीं रहेगा, सुन न! वह जहाँ अन्दर फेरफार हुआ वहाँ ऐसे सड़ासड़ हों! ऐसे आधा मण खून एक साथ में। पानी, खून, खून... हो गया। ... पूरा हो गया। यह कहाँ फटेगा? कैसे होगा? उसकी पर्याय कैसे होगी? वह कहीं तेरा है? होने दे न हो वह। कहते हैं, देखन न यहाँ आत्मा को, वह कभी कहीं जाये, ऐसा नहीं। आहाहा! **क्षय हो जावे, तो भी तू भय मत कर, केवल शुद्ध आत्मा का ध्यान कर, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर सूत्र कहते हैं—**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ९, बुधवार, दिनांक - १७-११-१९६५
गाथा - ७२ से ७४ प्रवचन - ५२

परमात्मप्रकाश। पहले भाग की ७२ गाथा। यहाँ आया, देखो।

अन्वयार्थ :- हे आत्मा! यह शरीर छिद जावे,... अर्थात् दो टुकड़े हों। शरीर तेरी चीज़ नहीं।

मुमुक्षु : किसकी चीज़ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की जड़। जड़ के दो टुकड़े हों, उसमें तुझे—आत्मा को क्या है?

मुमुक्षु : जीव का जड़ नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव का जड़ या जड़ का जड़?

मुमुक्षु : जड़ का मालिक नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ का मालिक जड़। जड़ का मालिक आत्मा (होवे तो) वह जड़ हो। शरीर के टुकड़े हों तो भी तू आत्मा है, उसमें समता रख। अर्थात् कि आत्मा की दृष्टि कर कि, मेरे टुकड़े नहीं होते। देखो! अभी यहाँ सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन की बात चलती है। शरीर के टुकड़े होने से मेरे हुए, यह मिथ्यादृष्टि मानता है। क्योंकि आत्मा और शरीर दोनों भिन्न चीज़ है। भिन्न चीज़ के टुकड़े होने से मेरे होते हैं, इस मान्यता में बड़ी मिथ्यात्व की दृष्टि है। **'भिद्यतां'**—छिद्र पड़ जाये शरीर में छिद्र-छिद्र, तो भी डर मत कर, भय न पा। भाई! वह तो जड़ के, जड़ के रजकणों में वह सब पर्याय होती है, तुझमें वह नहीं। वह उसमें होने से मुझमें होती है, यह मान्यता असत्य मिथ्यादृष्टि की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करता है इसलिए। यह क्या कहते हैं, चलता है? मूढ़

होकर करता है भानरहित होकर, ऐसा कहते हैं।

मैं आत्मा हूँ, मेरा स्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह आत्मा कहलाता है। उस आत्मा को न मानकर शरीर में छिद्र पड़े, (वे) मुझे पड़े, वह जड़ को स्वयं आत्मा मानता है, आत्मा को आत्मा मानता नहीं। **'क्षयं यातु' नाश को प्राप्त होवे,...** जीर्ण होकर, टुकड़े होकर पृथक् पड़ जाये। **तो भी तू भय मत कर, मन में खेद मत ला,...** क्योंकि **'निर्मल आत्मानं' अपने निर्मल आत्मा का ही ध्यान कर,...** आत्मा तो ज्ञानानन्द, शरीर से भिन्न है। ऐसा अन्तर में, लक्ष्य में लेकर उसमें एकाग्र हो। समझ में आया? आत्मा तो निर्मल ज्ञानानन्दस्वरूप है, ज्ञान-आनन्द आदि स्वरूप आत्मा है, उसका लक्ष्य करके, उसे ध्येय करके ध्यान कर। यह मेरे हैं, ऐसा मानकर जो हैरान होता है मिथ्यादृष्टिरूप से, उसे छोड़ दे।

अर्थात् वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव... आत्मा कैसा है? यह आत्मा, अभी आत्मा कहते हैं, वह कैसा है? कि पुण्य-पाप के रागरहित चिदानन्द, पुण्य-पाप के रागरहिहत ज्ञानानन्द शुद्धस्वभाव, उसका निर्मल स्वभाव है। **तथा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित...** आत्मा उसे कहते हैं कि जो शरीर नोकर्म, जड़ आठ कर्म, पुण्य-पाप के भाव, वे भावकर्म, उनसे आत्मा भिन्न है। **अपने आत्मा का चिन्तवन कर,...** उसके ऊपर लक्ष्य बाँध, उसे ध्येय बना, उसे अपना स्वरूप जानकर उसमें दृष्टि कर। कहो, समझ में आया इसमें?

जिस परमात्मा के ध्यान से... जो भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द राग, पुण्य, विकाररहित स्वरूप आत्मा स्वयं है, उसका ध्यान कर। उसकी एकाग्रता से **'भवतीरम् प्राप्नोषि'** भवसागर को पार प्राप्त कर। समझ में आया? इन चौरासी के अवतार से मुक्त आत्मा है। चौरासी के अवतार से मुक्त आत्मा है। ऐसे मुक्त आत्मा का ध्यान करने से चौरासी के अवतार तुझे टल जायेंगे। आहाहा! यह प्रथम की बात चलती है, हों! कोई कहे कि, ओहोहो! इतना कहाँ? समता-बमता का बाद में प्रश्न, परन्तु इस देह में होने से मुझे होता है, यह दृष्टि मिथ्यात्व है। यह वेदना अलग बात और यह मुझमें मुझे होता है, यह बात अलग। वेदना, सहनशक्ति न हो तो राग हो, परन्तु यह मुझे होता है, मुझमें

होता है—यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह किसकी बात चलती है यह? यह क्या चलता है? यह हजार बार तो बात चलती है।

ज्ञानानन्द, चिदानन्दस्वभाव की अन्दर दृष्टि कर। जो आत्मा है, उसे देख, उसे मान, उसमें स्थिर हो, यह उसका उपाय है। बात तो साथ में इकट्ठी चलती है। बात यह है कि वह छोड़ना नहीं और ऐसा का ऐसा रखकर कुछ दूसरा उपाय होगा? समझ में आया? जो परवस्तु है, आत्मा की चीज़ नहीं, उस चीज़ में टुकड़े छेदन, भेदन या अभाव होने से मेरा छेदन-भेदन हुआ, यह उसकी मान्यता में उसने भ्रम घुसाया है। यह मान्यता (छोड़कर) अपने स्वरूप की दृष्टि कर। मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ। मुझमें राग नहीं तो शरीर कहाँ से आया? समझ में आया? टुकड़े होने पर निर्बलता के कारण सहनशीलता न हो और द्वेष हो, तथापि वह द्वेष और शरीर मुझमें ही नहीं। समझ में आया? वह द्वेष और शरीर, शरीर तो है ही नहीं परन्तु उसके लक्ष्य से जरा जो द्वेष हुआ, वह भी स्वरूप में नहीं। ऐसा आत्मा ज्ञानानन्द चिदानन्दमूर्ति आत्मा उसे कहते हैं। उस आत्मा को तू मान, उसे पहिचान और उसकी श्रद्धा कर। इसके अतिरिक्त इस प्रकार से दुःख टलेगा नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

भगवान चिदानन्द वस्तु है। परमात्मा केवली तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा को पुण्य-पाप के आस्रव से, कर्म से, शरीर से भिन्न देखा है। भगवान ने उसे आत्मा कहा है। यहाँ, हों! इस आत्मा को। इस आत्मा को भगवान ने ऐसा देखा, ऐसा कहा, ऐसा जाना कि वह आत्मा उसे कहते हैं। यह तो शरीर, कर्म और पुण्य-पाप के विकार रहित आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को उनसे सहित मानकर मुझे ऐसा होता है, मुझे ऐसा होता है। तू अर्थात् कौन? तू तो आत्मा। शरीर के टुकड़े होने से मुझे हुए, उसमें छिद्र पड़ने से मुझे हुए, उसमें रोग होने से मुझे हुए। मूढ़ है? तेरी भ्रमणा के कारण तू दुःखी होता है, दूसरा कोई कारण नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? भगवान चिदानन्द प्रभु आत्मा जिसे कहते हैं, वह स्वयं ही परमस्वरूप आत्मा है। उसके ध्यान में उसे प्रतीति कर, लक्ष्य कर, स्थिर हो, उससे भवतीर पा जायेगा; दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- जो देह के छेदनादि कार्य होते भी... छेदना आदि कार्य हो, वह तो जड़ में होता है। टुकड़े का कार्य, वह तो परमाणु मिट्टी वह तो शरीर टुकड़े जड़ है, उसमें होता है। आत्मा उसे माने कि मुझमें होता है। यह तो उसकी मान्यता में विपरीतता है, दृष्टि झूठी है। समझ में आया? **होते भी राग-द्वेषादि विकल्प नहीं करता,...** अर्थात् कि वे टुकड़े हों, इसलिए मुझे मुझमें कुछ होता है, ऐसा द्वेष करता नहीं। और आत्मा ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञान है, उसे उपादेय जानकर, उसमें कुछ होता है, उसका जाननेवाला रहता है। आहाहा! गजब बात!

निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ... वस्तु... वस्तु... वस्तु। वस्तु में अन्तर में यह वस्तु, यह आत्मा, यह वस्तु—ऐसे इस वस्तु में ऐसा एकाग्र होने से उसे निर्विकल्प दृष्टि होती है। क्या कहा? यह आत्मा, यह आत्मा, यह आत्मा—ऐसे यह आत्मा, ऐसा होने से उसमें राग और पुण्य-पाप मिश्रितरहित, रागरहित सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प होती है, उससे आत्मा यह है, ऐसा माना जाता है। ऐसे **निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ...** अर्थात् कि वस्तु को वस्तुरूप से स्वभाव शुद्ध है, वह महान ज्ञान आदि आनन्द का सागर आत्मा, उसे उसकी ओर का 'यह आत्मा' ऐसे दृष्टि करे, तब उसे राग की एकता टूटकर, स्वभाव की एकतारूपी निर्विकल्प दृष्टि होती है। उससे आत्मा जाना, माना जाये। समझ में आया? कहो, रतिभाई!

निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ... अर्थात्? यह शुद्ध आत्मा परमानन्द की मूर्ति उसके ऊपर जहाँ दृष्टि हुई अर्थात् निर्विकल्प दृष्टि हुई। ऐसे भाव को प्राप्त होता हुआ **शुद्ध आत्मा को ध्याता है,...** ऐसा कहते हैं। ऐसा अन्तर में एकाग्र हुआ, तब ही आत्मा का ध्यान यथार्थ होता है। यह आत्मा है, ऐसा उसे अनुभव में आता है। ओहोहो! समझ में आया? **वह थोड़े ही समय में मोक्ष को पाता है।** भगवान आत्मा जिसे आत्मा कहते हैं, उसमें ज्ञान और आनन्द, निर्दोष वीतरागता से भरपूर पदार्थ उसे—आत्मा को यह आत्मा, ऐसी दृष्टि हो, वहाँ उसकी—विकल्प की एकता टूट जाती है। इसलिए कहा कि, निर्विकल्प रागरहित वस्तुस्वभाव को मानने पर रागरहित दृष्टि हो, तब उसे मान सकता है। समझ में आया?

लो, यह उपाय कहा साथ में। इस आत्मा को दुःख से मुक्त होने का (उपाय

कहा)। यह शरीर में छिद्र हो, भेद हो, धूल हो, वह मुझमें नहीं, ऐसा कब माने? कि मुझमें चिदानन्दस्वरूप वह मैं—ऐसी अन्तर्मुख की दृष्टि करे, तब अन्तर्मुख की दृष्टि में रागादि मेरे नहीं, ऐसा आने पर शुद्धात्मा मैं हूँ, उसमें अन्तर की एकाग्रता हो, उस निर्विकल्प एकाग्रता में आत्मा ध्यान में आया कहलाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? अल्प काल में वह विकार, कर्म और शरीर से रहित होकर परमात्मा होगा। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ७३

आगे ऐसा कहते हैं, जो कर्मजनित रागादिभाव और शरीरादि परवस्तु हैं, वे चेतन द्रव्य न होने से निश्चयनयकर जीव से भिन्न हैं, ऐसा जानो—७३।

७३) कम्महँ केरा भावडा अण्णु अचेयणु दव्वु।
जीव-सहावहँ भिण्णु जिय णियमिं बुज्झहि सव्वु॥ ७३॥

अन्वयार्थ :- हे जीव... परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव फरमाते हैं, ऐसा सन्त फरमाते हैं। हे आत्मा! **कर्मोंकर जन्य रागादिक भाव...** यह कर्म के जड़ के सम्बन्ध में आने से, जड़ के सम्बन्ध में स्वभाव के सम्बन्ध से छूटने से, चिदानन्द ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मा के सम्बन्ध से छूटने से, जड़ के सम्बन्ध में आने से पुण्य और पाप के राग-द्वेष भाव होते हैं। **और दूसरा शरीरादिक अचेतन पदार्थ...** और दूसरा शरीर। दो बात। जड़कर्म के सम्बन्ध में आने से अन्तर में स्वभाव का सम्बन्ध-संग छोड़कर, कर्म के संग में जुड़ने से दया, दान, पुण्य, पाप, काम, क्रोध, विकार होता है वह और बाह्य में शरीरादि अचेतन। **इन सबको निश्चय से जीव के स्वभाव से जुदे जानो,...** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों दो लिये, दो लिये न। दूसरा लिया न। कर्मोंकर रागादि और चैतन्य द्रव्य दो, दो बातें ली। एक शरीरादि और कर्म के सम्बन्ध से हुआ विकार,

उसमें कर्म आ गया। उससे जीव को—जीव स्वभाव अलग जान। भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप, आत्मा अर्थात् अविनाशी ज्ञान-आनन्द की शक्ति—स्वरूप, उससे कर्म के सम्बन्ध में हुई विकल्पों की जाल, कर्म उसमें आ गये और अचेतन शरीर, उससे आत्मा भिन्न जान। आहाहा!

जीव के स्वभाव से जुदे जानो,... आहाहा! समझ में आया? **अर्थात् ये सब कर्म के उदय से उत्पन्न हुए हैं,...** आत्मद्रव्य वस्तु में से प्रगट हुआ, वह भाव नहीं विकार और शरीर। भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति आनन्द, उसके द्रव्यस्वभाव में से विकार उत्पन्न हुआ नहीं। वह पुण्य-पाप के शुभ, अशुभ, दया, दान, काम, क्रोध के भाव, कर्म के सम्बन्ध से, लक्ष्य से उत्पन्न हुए, वे अचेतन हैं और शरीर अचेतन है। दोनों से भगवान चेतनस्वभाव भिन्न है। समझ में आया?

इस प्रकार शरीर से चेतन भिन्न और विकार स्वभाव से उसका चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव भिन्न। शरीर से, कर्म से चेतन द्रव्य भिन्न और विकार से चैतन्य का ज्ञानानन्दस्वभाव भिन्न। समझ में आया? गाँठ—मडागाँठ मुड़ गयी हो न ऐसे। मडागाँठ नहीं सुनी? यह सर्दी की ठण्ड हो, बहुत ठण्ड हो और निकले न वे किसान, क्या कहलाता है वह? हल लेकर। फिर वह हो न हल का... वहाँ ऐसे बैठ जाये। उसमें ऐसे ठहर जाये कि वहीं के वहीं मर जाये। लकड़ी हो न लकड़ी पकड़ ले। उसी प्रकार यह राग पुण्य-पाप के भाव, शरीर को ऐसी गाँठ लगा दी है कि ये मेरे। मडागाँठ वहाँ चिपट गयी है, ऐसा कहते हैं। जामनगर में वह दरवाजा है न? कालावड का दरवाजा बन्द था। बहुत सर्दी पड़ी। बेचारा एक किसान झट सवेरे जाऊँ घुस (जाऊँ)। बाहर था। परन्तु वह बाहर (था), उघाड़ने में देरी लगी तो ऐसी सर्दी लगी कि ऐसा का ऐसा मर गया वहीं का वहीं।

यह पुण्य और पाप जो कर्म सम्बन्धी विभाव और कर्म के संयोग से हुआ शरीर जो अचेतन की जाति है सब, उसे 'मैं' ऐसा मानकर मिथ्यात्व की मडागाँठ लगायी है इसने। कहो, भीखाभाई! आहाहा!

कहते हैं कि यह भगवान आत्मा उसे **ये सब कर्म के उदय से उत्पन्न हुए हैं,**

आत्मा का स्वभाव निर्मल ज्ञान-दर्शनमयी है। वह तो जाननेवाला-देखनेवाला, जाननेवाला-देखनेवाले का स्वरूप तत्त्व है वह तो। उसे यह विकार और अचेतन से भिन्न जान। उसे जान, उसमें श्रद्धा कर और उसमें स्थिर हो। भवभ्रमण रहेगा नहीं। विशिष्टता क्या डाली है ? देखो ! विशिष्टता यह डाली है टीका में थोड़ी... भावार्थ यह है कि मिथ्यात्व या पुण्य-पाप के भाव, वे मेरे, यह मिथ्यात्वभाव है। शुभ-अशुभभाव मलिन परिणाम, वह आत्मा के निर्मल स्वभाव में (है, ऐसा मानना) वह मिथ्यात्वभाव है। अव्रत भाव—राग का त्याग नहीं, ऐसी आसक्ति भाव, विकार। यह एक समय में पाँच है, ऐसा सिद्ध करना है, ध्यान रखना। कषाय। प्रमाद—स्वरूप में स्थिरता नहीं और रागभाव प्रमाद परिणाम, कषाय परिणाम, योग, यह पाँच एक समय में पाँच विकार की पर्याय है।

योगों की निवृत्तिरूप परिणाम है,... आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव, उसकी एक समय में, सेकेण्ड के असंख्य भाग में मान्यता जो विपरीत—यह ज्ञायक की रुचि छूटकर राग की रुचि, शरीर की रुचि अर्थात् वह मैं, ऐसा मिथ्यात्वभाव, अव्रतभाव, प्रमाद, कषाय, योग, यह पाँचों ही एक समय की पर्याय है। भगवान आत्मा इनसे निवृत्तस्वरूप है। समझ में आया ? यह पाँच प्रकार की मिथ्यात्व आदि की पर्याय विकृत भाव, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग। भगवान आत्मा उसी समय में उनसे निवृत्तस्वरूप है।

यह पाँच प्रकार के परिणामवाला आत्मा नहीं। समझ में आया ? यह पाँच प्रकार के परिणामवाला आत्मा (—ऐसा मानना), वह मिथ्यादृष्टिपना है। आहाहा ! अन्दर (शब्दार्थ में) तो शरीर डाला हुआ, उसमें और यह डाला। टीका में है न। समझ में आया ? वस्तु शुद्ध ज्ञानघन, सिद्धस्वरूप है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही आत्मा द्रव्य वस्तु है। उस वस्तु में कुछ न्यूनता नहीं। ऐसी वस्तु की एक समय की पर्याय में, पर्याय अर्थात् अवस्था मिथ्यात्वभाव, यह पुण्य के परिणाम वे मेरे; पाप परिणाम मेरे—यह मिथ्यात्वभाव; अव्रत—स्वरूप में स्थिरता का अभाव ऐसा अविरतभाव; प्रमादभाव; कषायभाव; योगभाव—यह पाँचों एक समय की विकृत विभावी दशा है। उसे मेरा मानना, यह मिथ्यादृष्टि है। शरीर कहीं आगे (दूर) रह गया। समझ में आया ?

यह पाँच प्रकार की मिथ्या आदि की पर्याय अन्तर स्वरूप में नहीं। ज्ञानानन्दस्वभाव

में उसकी एकता नहीं, एकता नहीं। ऐसी पाँच प्रकार की पर्याय से लक्ष्य—ध्येय—अवलम्बन—आश्रय छोड़कर शुद्ध ज्ञानघन आत्मा का लक्ष्य—ध्येय और अवलम्बन करके। अर्थात् पाँच प्रकार की पर्याय से निवृत्तरूप। है न? जो परिणाम हैं, उस परिणामकाल में—उस काल में शुद्धात्मा उपादेय है। **उस समय शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** क्या कहा? कि भगवान आत्मा वस्तु उसकी एक समय की दशा में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग यह परिणाम, उस परिणाम को उपादेय माना, वह मिथ्यात्व। वहाँ आत्मा श्रद्धा में आया नहीं, उसने आत्मा को माना नहीं।

आत्मा माना कब, किस काल में कहलाये? कि इन पाँच परिणाम के लक्ष्य को—ध्येय को—अवलम्बन को छोड़कर, ज्ञान चिदानन्दस्वरूप, पूर्ण स्वरूप 'यह मैं' —ऐसे पाँच से निवृत्त होकर और जो परिणाम स्वभाव सन्मुख हुए, उन परिणाम के काल में आत्मा उपादेय है। समझ में आया? उपादेय समझ में आया? जो यह मिथ्यात्वादि पर्याय उपादेय (हुई है), उपादेय अर्थात् मेरे भाव से माना था। वह आत्मा माना, तब कहलाये (कि) इन पाँच परिणाम की रुचि—प्रेम—लक्ष्य—ध्येय—अवलम्बन छोड़कर, यह वस्तु ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्यघन के अवलम्बन से उत्पन्न हुए, पाँच परिणाम से निवृत्तरूप परिणाम, उस परिणाम के काल में आत्मा यह है, ऐसा माना जाता है। समझ में आया? ऐसे आत्मा.. आत्मा नहीं, कहते हैं यहाँ तो। आहाहा!

यह आत्मा है, ऐसा माना किस परिणाम से कहलाये? कि, जो परिणाम मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय के, योग के एक समय के थे, उस पर्याय की अंश बुद्धि में पड़ा हुआ, उसे विकार उपादेय है, उसे आत्मा आदरणीय नहीं। इन पाँच पर्याय का एक समय का काल, उसके ओर की रुचि—लक्ष्य—ध्येय—अवलम्बन छोड़कर ध्रुव चिदानन्द ज्ञानमूर्ति है, उसमें अन्तर पाँच परिणाम से निवृत्त परिणाम स्वभाव सन्मुख के परिणाम के काल में यह आत्मा उपादेय माना जाता है। समझ में आया? ऐ... जमुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना उपादेय, परन्तु क्या उपादेय? रुचि में तो राग का आदर मानता है, वहाँ और आत्मा उपादेय कहाँ आया? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पुण्य-

पाप के भाव सुहाते हैं, मिठास है। समझ में आया? राग के भाव में, पुण्य के भाव में, पाप के भाव में मिठास / मजा / ठीक / हित ठीक पड़ता है—ऐसा भाव जहाँ है, वहाँ तो आत्मा का अनादर है, मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

उस भाव के अभाव काल में, उस भाव के अभाव काल में यह पाँच प्रकार के मिथ्यात्व आदि परिणाम का अभाव काल। ऐसे स्वभाव-सन्मुख के काल में उनसे निवृत्तिरूप परिणाम हुए, उस परिणाम के काल में यह आत्मा अनुभव में आता है, तब उसे आत्मा उपादेय हुआ। आहाहा! है न? उपयोग निवृत्ति परिणाम काल में। यह भाषा इसमें बहुत लेंगे। यह हेतु है। वस्तु है न। उस समय में। ऐसा आवे न, १४३-१४४ (गाथा, समयसार)। उस समय सम्यग्दर्शन, ज्ञान नाम पाता है। वाह! तदा काले, यदात्वे। जाना जाता है। भगवान आत्मा माना कब जाये? कि यह पाँच प्रकार की पर्याय का प्रेम-रुचि छोड़कर ज्ञायकस्वभाव, यह स्वभाव पूर्ण शुद्ध चैतन्य, उसके सन्मुख के और मिथ्यात्वादि पाँच परिणाम के निवृत्तरूप, निवृत्तरूप और स्वभाव के सन्मुख की प्रवृत्तिरूप परिणाम काल में आत्मा जाना जाता है। समझ में आया?

योगों की निवृत्तिरूप परिणाम हैं, उस समय शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। कहो, योगों की निवृत्ति चौदहवें (गुणस्थान) में होती है। यहाँ तो उस मिथ्यात्व के उस पर्याय का एक समय जो है,... बस। आहाहा! समझ में आया? वस्तु ध्रुव ज्ञानानन्द घन भगवान के परिणमन में—पर्याय में विपरीत मान्यता (अर्थात् कि) यह पुण्य, वह मुझे मिठास, मजा, वह मिथ्यात्वभाव है। कितने ही ऐसा कहे न, हमारे भोग की वासना तो पर है, अब आयी उसमें क्या? बहुत अच्छी बात है, सुन। उस वासना में जिसे मिठास है, मजा है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? पाप के परिणाम हिंसा, झूठ, चोरी के हों और उसमें उसे ठीक लगे। क्यों ठीक लगे? कि ऐसा चिदानन्दस्वरूप है, वह ठीक लगा नहीं। ज्ञानानन्दस्वभाव वस्तु ज्ञान चिदानन्दस्वरूप, वह ठीक लगा नहीं। इसलिए उसे पुण्य और पाप के भाव में ठीक लगता है। वह ठीक लगता है, वहाँ हितरूप दृष्टि से पड़ा है। उसे मिथ्यात्वभाव, पर्यायबुद्धिभाव, उसे अज्ञानभाव कहते हैं। उस काल में तो वही आदरणीय है। क्या कहा? आहाहा!

यह पर्याय के अंश के समय की रुचि (छोड़ने से) उन पाँच प्रकार के परिणाम

से निवृत्तरूप परिणाम हुए और स्वभाव शुद्ध ज्ञानघन की प्रवृत्तिरूप परिणाम हुए, उसमें प्रवृत्ति हुई। यहाँ से निवृत्ति हुई। आत्मा से निवृत्ति थी और मिथ्यात्व राग-द्वेष की प्रवृत्ति की प्रवृत्ति थी। छोटाभाई! वह मिथ्यात्वभाव था। कठिन बात, भाई! उस परिणाम की निवृत्ति, भगवान परम स्वभाव आनन्द के भाव के आदररूप परिणाम की प्रवृत्ति। समझ में आया? उस काल में शुद्धात्मा ही उपादेय है। आहाहा! अब ७४ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ७४

ज्ञानमय... ज्ञान प्रभु आत्मा अकेला चैतन्यप्रकाश का स्वभाव। ज्ञान चिद्घन ज्ञानमय ऐसा आत्मा, उससे **भिन्न परद्रव्य को छोड़कर...** उन भिन्न परपदार्थों को छोड़कर, **तू शुद्धात्मा का ध्यान कर,...** उनके लक्ष्य को छोड़कर तू परमात्मा के साथ डोर बाँध। परमात्मा अर्थात् तू, हों! वापस।

७४) अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु परायउ भाउ।
सो छंडेविणु जीव तुहुँ भावहि अप्प-सहाउ॥ ७४॥

अन्वयार्थ :- हे जीव! **हे जीव! तू ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर...** आहाहा! ज्ञानस्वभावमय आत्मा, ऐसा लिया। ज्ञानस्वभावमय आत्मा। यह पुण्य-पाप के विकल्प, शरीरमय आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह ज्ञानमय—चैतन्य के स्वभावमय आत्मा, उसे छोड़कर। **अन्य जो दूसरे भाव हैं, उनको छोड़कर अपने शुद्धात्मस्वभाव को चिन्तवन कर।** चिन्तवन शब्द से यहाँ विकल्प नहीं। शुद्धात्मा अन्तर में दृष्टि निर्विकल्प कर, उसका नाम आत्मा और उसे चिन्तवन कर, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् क्या? कि जो शुभ और अशुभ रागादि का चिन्तवन करता था, तब उनमें एकाग्र था। आत्मा का चिन्तवन किया अर्थात् उस आत्मा में एकाग्र हुआ। एकाग्र हुआ, उसे यहाँ चिन्तवन कहा जाता है। समझ में आया? यह अकेला मक्खन परोसा जाता है यह। आड़ी-टेढ़ी दूसरी सब बातें पड़ी रही जहाँ हो वहाँ। आहाहा!

कहते हैं, भाई! तू ज्ञानमय स्वभाव सिद्ध है न अन्दर ऐसा। क्या वह पुण्य-

पापमय आत्मा है? शरीरमय है? कर्ममय है? किसमय तन्मय है? किसमय स्वरूप है? किससे वह तन्मय है? भगवान आत्मा जानने-देखने के ध्रुव स्वभाव से वह भगवान तन्मय है। जानने-देखने के ध्रुव स्वभाव से वह भगवान तन्मय है। उसे छोड़कर जितने दूसरे... हैं, अन्दर दूसरा डालना है, इसलिए बात दूसरे प्रकार से ली है, टीका में दूसरे प्रकार से है। शुद्धात्मा से दूसरी जो चीज़ है, उसका (लक्ष्य) छोड़कर भगवान आत्मा में जा। ऐसा भगवान पूर्णानन्द ज्ञानमय प्रभु, उसमें एकाग्र हो। यह आत्मा की चिन्तवना कही जाती है। समझ में आया?

भावार्थ :- अब ज्ञानमय के साथ विशेष कहते हैं। यह अकेला केवलज्ञानमय कहा भले पाठ में, स्पष्टीकरण किया, **केवलज्ञानादि अनन्त गुणों की राशि...** भगवान आत्मा केवल; केवल अर्थात् वह केवल पर्याय की बात नहीं। अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली शान्ति, अकेली प्रभुता, अकेली स्वच्छता, अकेला प्रत्यक्ष स्वसंवेदन होने के गुणमय ऐसा भगवान अनन्त गुण की राशि, अनन्त गुण की राशि, अनन्त गुण की राशि, लो! पिण्ड।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह यह राशि—अनन्त गुण की राशि। स्वभाव है और शक्तियों की संख्या क्या? वस्तु है, उसकी शक्ति अर्थात् गुण, उस गुण का अमापपना और उस गुण की संख्याओं का भी अमापपना। क्या कहा? भगवान आत्मा वह ज्ञानमय, वह ज्ञानगुण भी अमाप है और उसके साथ दूसरे गुणों की संख्या भी अमाप है। वह ज्ञान जाननेवाला शक्ति, जाननेवाला शक्तिमय आत्मा। उस जाननेवाला शक्ति का ही अनन्तपना है। ऐसे दर्शन शक्तिमय आत्मा। उस दर्शन का अमापपना है। ऐसे अनन्त गुण का संख्या से अमापपना है। समझ में आया? आहाहा!

पैसे के, धूल के अंक सीखा सब। इतने मुझे पैसे। हराम तुझे हो तो। ऐसा मेरा शरीर। हराम तीन काल में हो तो शरीर (तेरा)। ओहोहो! जिसमें स्वयं नहीं, उसे अपना मानना, वह उसे नकार करना कठिन पड़ता है, नहीं, नहीं। शरीर मेरा, यह शरीर मेरा नहीं? यह कर्म मेरे नहीं? यह राग मेरा नहीं? अरे! सुन न अब। ऐ... धर्मचन्दजी!

आहाहा! अब कभी क्या, सवेरे उठकर ऐसे नहा-धोकर स्वच्छ साबुन-बाबुन, वस्त्र-कपड़े और क्या कहलाता है वह तुम्हारे? पाउडर चोपड़े। परन्तु वह ... होता है न ऐसा? ऐसे-ऐसे (करे)। ब्लेड लोहे की नहीं? ऐसे करे। नहा-धोकर... आहाहा! अरे! यह तो मिट्टी धूल है परन्तु तेरी चीज़ का अंश भी उसमें नहीं। आहाहा!

यह कहते हैं कि इसके बिना चलता नहीं, ऐसी मान्यता का भ्रम तुझे महा दुःखदायक है। समझ में आया? भगवान आत्मा तो राग बिना चलावे, ऐसी वह चीज़ है। उसने राग और शरीर, कर्म बिना चलाया, ऐसा वह तत्त्व है। आहाहा! यह आत्मा जो टिक रहा है, वह विकार, कर्म और शरीर बिना त्रिकाल टिक रहा है। नेमिदासभाई! आहाहा! उसे, इनके बिना मैं नहीं रह सकता, मूढ़ मिथ्यादृष्टि का महान कषाय का पाप है। उनके बिना मैं नहीं रह सकता, वह आत्मा को मसल डालता है। आहाहा!

भगवान आत्मा ऐसे अनन्त गुण की राशि प्रभु, असंख्य प्रदेश हो, गुण अनन्त और एक-एक गुण का अमाप अचिन्त्य सत्त्व शक्ति-स्वभाव, उसका पूरा भगवान अनन्त गुण की राशि है वह तो। अरे! उसमें एकाध राग-द्वेष की दुःख की पर्याय जितना उसे मान लेना। एकाधरूप से पाँच, पचास लाख के पैसे जितना मानना... समझ में आया? महामिथ्या श्रद्धा अर्थात् असत्य पाप की दृष्टि सेवन करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उससे बचने का उपाय.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है ही नहीं उसमें, बचना क्या? है नहीं, फिर प्रश्न क्या? वह है नहीं, उसे मेरा माना, वह असत्य दृष्टि है, वह सत्य दृष्टि, सच्ची दृष्टि, सत् स्वरूप का सत्कार नहीं, वह तो असत् का सत्कार है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तू तो अनन्त गुण की राशि है न प्रभु! आहाहा! ऐसे अनन्त गुण की राशि-ढेर के आत्मा को एक राग के अल्प पुण्य के परिणाम हों, वैसा मानना, अनन्त गुण की राशि भगवान को तूने चीर डाला। यह नहीं, यह मैं, ऐसा नहीं, यह मैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा, उससे भिन्न, **आत्मा से जुदे जो मिथ्यात्व रागादि अन्दर के भाव...** देखो! **मिथ्यात्व रागादि अन्दर के भाव तथा देहादि बाहिर के परभाव...** शरीर,

वाणी, मकान, पैसा, गहना, धूल धमाका। **ऐसे जो शुद्धात्मा से विलक्षण परभाव हैं,...** भगवान ज्ञानमय अनन्त गुण की राशि ऐसा भगवान अपना आत्मा, उसके साथ कोई लक्षणवाला मिले नहीं। पुण्य-पाप के भाव, शरीर, पैसा यह सब विलक्षण है, यह चैतन्य के लक्षण से कोई उसके साथ मिलते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मछली के बच्चे हों रूपवान थोड़े से चोखटा मनुष्य जैसा लगे। अपने लड़के को छोड़कर कहे कि यह मेरा लड़का है। कितनी मूढ़ता! कहते हैं, उसमें कोई लक्षण मनुष्य का नहीं। समझ में आया? मनुष्य के आकार की मछली होती है, हों! ऐसा होता है। रूपवान ऐसा... जिसमें मनुष्य का कोई लक्षण नहीं। बालकपना हो या जवान भले, परन्तु कोई हो यह तो...

इसी प्रकार भगवान आत्मा जिसके ज्ञान, दर्शन, आदि अनन्त गुणस्वरूप जिसका स्वरूप है। उसमें पुण्य-पाप और शरीर में कोई तेरी जाति का लक्षण उनमें है नहीं। तेरे स्वभाव के निशानवाले कोई पुण्य-पाप और शरीर, कोई तेरे निशानवाले कोई पदार्थ नहीं। आहाहा! देखो! बात-बात में बदलते हैं बात, हों! थोड़ी-थोड़ी। भले ऐसा कहे, यह मेरे नहीं, परन्तु उसमें बात को बदलते हैं।

भाई! तू तो अनन्त गुण की राशि के लक्षणवाला तेरा स्वरूप है न। उससे यह सब विलक्षण उसके मेल में, लक्षण में मिलान नहीं खाये, ऐसे सब पुण्य और पाप, दया, दान, भक्ति, काम, क्रोध, शरीर, पैसा, धूल धमाका, स्त्री, पुत्र, शरीर। ऐसे विलक्षण तत्त्वों को तेरे लक्षण के साथ मिलावे कि, यह मेरे। आहाहा! समझ में आया? कुत्ते का बच्चा अच्छा लगेगा कि यह मेरा उत्तराधिकार रखेगा मेरे पुत्ररूप से, पुत्र नहीं है इसलिए। नेमिदासभाई! नहीं पाले? कबूतर अच्छा रखे तो? अकेले साथ में खिलाये तो सही न थोड़ा। कबूतर रखे थे एक व्यक्ति ने। खबर है? उसके साथ खेलने को। धणी-बणी न हो तो क्या करना? कबूतर के साथ खेले। बोलना कहाँ रहे? वह तो घूं... घूं... करे। वह उत्तराधिकार रखता होगा? उसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव, शरीरादि तेरे लक्षण से विलक्षण तेरी चीज़। आहाहा! अरे! परन्तु उनसे तुझे अपना मानना, जो तेरे नहीं, तुझमें नहीं, तीन काल में तेरे होनेवाले नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे के ऐसे तुम भी इस दुनिया में चतुर कहलाते हो और विचार किया नहीं, तब अब क्या करना है? घर के लोग भी तुमको ऐसे अडकमदार माने। भाई खड़े होंगे तो बाधा नहीं आवे। कहो, समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान के सामने आडा धरा तूने पुण्य और पाप और शरीर, यह तेरा सूर्य भगवान अस्त हो गया, हों!

परमात्मप्रकाश की शैली एक-एक शब्द को भिन्न-भिन्न करके (समझाते हैं)। एकसाथ समुदायरूप से भिन्न बतावे, परन्तु वापस उसे भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्तमान वर्तन में साथ में दिखता हो भिन्न-भिन्न, उसके साथ भिन्नता की और एकता की बुद्धि कैसे है, यह बताते हैं। समझ में आया? वे सब परभाव हैं, भगवान! यह ज्ञानमय, अनन्त गुणमय भगवान आत्मा के लक्षण से कोई पुण्य, पाप, शरीर, कर्म किसी लक्षण से मिलान खाये ऐसा नहीं है। भिन्न जाति के लक्षणवाले, भिन्न जाति के आत्मा के लक्षण के साथ उसे एकपना कैसे हो? आहाहा!

उनको छोड़कर... भगवान कहते हैं कि अब तू उन विलक्षण भावों को छोड़ न! वे तुझमें रहनेवाले नहीं, वे तेरे हुए नहीं, तेरे हैं नहीं, तुझमें एक समय भी तेरे स्वरूप में वे प्रविष्ट नहीं। समझ में आया? आहाहा! अब उसमें हमारी स्त्री। भिन्न है, भिन्न ही है, भाई! तू तेरा और दूसरे को कहीं किंचित् भी कहीं मिलान नहीं। अब मिलान नहीं, उन्हें मेरा मानकर तू मेल करने जाये, वह मेल किस प्रकार होगा? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तेरे अनन्त गुण की राशिस्वरूप तू प्रभु, उससे विरुद्ध लक्षणवाले भाव को उसे अपनेरूप मानना छोड़कर, जहाँ अनन्त गुण की राशि है, वहाँ अपनेरूप से आ जा। आहाहा! मूल पूँजी में आ जा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा परभाव, **उसको छोड़कर केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयरूप...** देखो! यहाँ दूसरी शैली की। **कार्यसमयसार का साधक...** क्या कहते हैं? देखो, शैली क्या लेते हैं? कि भगवान आत्मा... मूल तो परिणति बतलानी है। कहते हैं कि ऐसे विकल्प आदि को छोड़कर कार्यसमयसार जो केवलज्ञानादि प्राप्त हो, उसका साधकपना **अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है, उसरूप परिणत हुए...** क्या कहते हैं? कि, यह आत्मा अनन्त गुण

की राशि ऐसा भगवान, उससे विरुद्ध जो पुण्य-पाप, शरीरादि विलक्षणवाले उन्हें लक्ष्य में से, ध्येय में से छोड़। और आत्मा ज्ञायक अनन्त गुण है, उसे कार्यसमयसार, ऐसा जो मोक्ष, उसके कारणरूप जो अभेदरत्नत्रय (अर्थात्) वह शुद्ध चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसी अभेद रत्नत्रय की परिणति जो पूर्ण कार्यसमयसार मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

परिणत हुए... ऐसे विशिष्टता तो यहाँ लेनी है। ऐसी अभेदरत्नत्रय परिणति होने से आत्मा का ध्यान कर, ऐसा। क्या कहा? भगवान अनन्त गुण का राशि—पिण्ड आत्मा ऐसे प्रभु, उससे विपरीत विकार और शरीर का लक्ष्य-ध्येय छोड़ दे और इसका लक्ष्य कर। अर्थात् क्या कहा? कि जो मोक्षरूपी कार्यसमयसार, उसके कारणरूप उस शुद्धात्मा-सन्मुख की अन्तर की अभेद श्रद्धा, अभेद ज्ञान और अभेद चारित्र ऐसी अभेद रत्नत्रयरूप परिणति करके कि जो परिणति कार्य की साधक है। मोक्षरूपी कार्य की अभेदरत्नत्रय साधक है। कि जो अभेदरत्नत्रय के काल में अभेदरत्नत्रय परिणत होकर आत्मा का ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वस्तु अनन्त गुण की राशि ऐसा भगवान, उसका कार्य जो समयसार मोक्षदशा, उसका कारण अर्थात् कि पूर्व के विलक्षण जो भाव, उनका लक्ष्य छोड़कर यहाँ लक्ष्य किया, श्रद्धा-ध्येय करके ऐसा जो अभेद श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के परिणाम, उनके द्वारा आत्मा का ध्यान किया, वे परिणाम केवलज्ञान के साधक हैं। समझ में आया? उन परिणाम में आत्मा को चिन्तवन कर, ऐसा कहते हैं। **उसरूप परिणत हुए अपने शुद्धात्म स्वभाव को चिन्तवन कर...** ऐसा कहते हैं। **और उसी को उपादेय समझ।** भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप है, उस अभेदरत्नत्रय से उपादेय जान कि जिससे कार्यसमयसार / मुक्ति हुए बिना रहेगी नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १०, गुरुवार, दिनांक - १८-११-१९६५
गाथा - ७५ से ७७ प्रवचन - ५३

गाथा - ७५

परमात्मप्रकाश, पहले भाग की ७५वीं गाथा है। **आगे निश्चयनयकर आठ कर्म और सब दोषों से रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी आत्मा को तू जान, ऐसा कहते हैं—**

७५) अट्ठहँ कम्महँ बाहिरउ सयलहँ दोसहँ चत्तु।
दंसण-णाण-चरित्तमउ अप्पा भावि णिरुत्तु॥ ७५॥

अन्वयार्थ :- 'अष्टभ्यः कर्मभ्यः' शुद्धनिश्चय से वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से देखने पर, **ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित...** आत्मा है। वस्तु अभेदरत्नत्रय के काल में यह आत्मा है, ऐसा अनुभव में आनेयोग्य है।

मुमुक्षु : अभेद तो आठवें से शुरु होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद यहाँ चौथे से की बात है। कहेंगे, देखो न!

शुद्ध निश्चय अर्थात् आत्मा अकेला शुद्ध परम अनन्त गुण का धाम, उसे अन्तर्मुख से देखने पर वह आठ कर्म से रहित है और **मिथ्यात्व रागादि सब विकारों से...** वह भावकर्म। शुभाशुभभाव राग-द्वेष आदि **मिथ्यात्व रागादि सब विकारों से रहित 'दर्शनज्ञानचारित्रमयं' जो शुद्ध उपयोग के साथ रहनेवाला अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप...** भावस्वरूप। यह अभेद रत्नत्रय की व्याख्या है।

जो आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को शुद्ध उपयोग द्वारा; शुद्ध उपयोग द्वारा अर्थात् कि... जो आत्म वस्तु की सन्मुख की एकता दर्शन-ज्ञान और चारित्र की, जिसे यहाँ रत्नत्रय कहते हैं। कि जिसकी वह श्रद्धा, जिस श्रद्धा से द्रव्य की प्रतीति की, जिस ज्ञान ने द्रव्य को जाना, जो स्थिरता द्रव्य में की, उसकी कीमत है। क्या कहा, समझ में

आया? शुद्धोपयोग के साथ रहनेवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावस्वरूप, उसे अभेदरत्नत्रय कहेंगे यहाँ अर्थ में टीका में। वस्तु शुद्ध चैतन्यज्योति परम आनन्दस्वरूप, उसे अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता ऐसे जो अभेद रत्नत्रय अर्थात् कि ऐसा जो शुद्धोपयोग। ऐसे **आत्मा को निश्चयकर...** अन्दर ध्यान करता है। समझ में आया? उसे **चिन्तवन कर...** अथवा ध्यान कर। भगवान आत्मा अकेला शुद्धस्वरूप परमानन्द, उसके अन्तर्मुख का सम्यग्दर्शनरूपी रत्न जिसने पूरे आत्मा को प्रतीति में (लिया), ज्ञान करके जिसने प्रतीति में लिया है, ऐसे सम्यग्दर्शन रत्न की कीमत है। जिसने महान अमूल्य आत्मा जिसने प्रतीति में लिया। निर्विकल्परूप से, हों! राग से श्रद्धा (करे), वह वस्तु नहीं।

आज तो दूसरा विचार आया था। वह आता है न? '**चरित्तदंसणणाणठिदो**'। वह बात करना चाहते हैं। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' अपना स्वभाव ज्ञायक चैतन्यस्वरूप शुद्ध, उसकी अन्तर के स्वभाव की अन्तर की एकता की दृष्टि, जिसने ज्ञान द्वारा आत्मा को अन्तर स्वज्ञेय करके और जानकर जहाँ अन्तर प्रतीति—अभेद सम्यग्दर्शन हुआ है, सम्यग्ज्ञान हुआ है, उसने स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान के काल में उसमें स्थिर हुआ है। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन-(ज्ञान)-चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं, उसकी कीमत है। कोई शरीर, वाणी की कीमत या पुण्य-पाप के परिणाम की कोई कीमत नहीं। समझ में आया? इसीलिए इसे यहाँ रत्नत्रय कहते हैं। उस रत्न की कीमत है कि जो चैतन्यरत्न अकेला आनन्दमय, जिसने अन्तर में प्रतीति में लिया, अन्दर में उसे ज्ञान करके ज्ञान किया, उस ज्ञान की कीमत है। समझ में आया? अकेली व्यवहार श्रद्धा की कुछ कीमत नहीं, शास्त्र के ज्ञान की भी कुछ कीमत नहीं। समझ में आया? उसे भेदरत्नत्रय भले कहे, परन्तु उसकी कीमत नहीं। वह तो निमित्त है, आरोप से साथ में कथन किया जाता है।

वस्तु ज्ञायक चैतन्य ज्योति पूर्णानन्द का अनुभव करके, ज्ञान में वस्तु लेकर ज्ञान ने जिसे—आत्मा को ज्ञेय बनाया, उसी ज्ञान की कीमत है। और उस ज्ञान को रत्न कहा जाता है। और उसमें यह आत्मा शुद्धस्वरूप परमात्मा है, ऐसी जिसे (दृष्टि होकर) पर,

विकल्प और शरीरादि का जहाँ अभिमान उड़ गया है। अहंपना विकल्प का या पर का या पर के जानपने का अहंपना जहाँ उड़ गया है। समझ में आया? अपना स्वभाव... दूसरी गाथा शुरु की है न। शुभ-उपयोग, शुभ-उपयोग में स्थिर हो, वह मिथ्यादृष्टि परसमय है। समझ में आया? अपना भगवान, उसे अन्तर विकल्प से समेटकर निर्विकल्प के अनुभव, दृष्टिसहित जिसने श्रद्धा-ज्ञान में उपयोग किया है, ऐसे उपयोगमय आत्मा का तू ध्यान कर, यह रत्नत्रय है। ओहोहो! समझ में आया? यह कर, यह करने की क्रिया कही। चिन्तवन कर, ऐसा कहा न? '**भावय**' आया न? '**भावय**', '**भावय**'। भाव... भाव... भाव। ओहोहो!

भावार्थ :- देखे... जो देखे हुए बाहर के भाव, उन्हें भूल जा; बाहर के सुने हुए भाव को भूल जा; अनुभव किये हुए ऐसे रागादि के भोग सब, भोग शब्द से रागादि का भोग, हों! अकेले विषय का भोग, ऐसा कुछ नहीं। बाह्य पदार्थ की विस्मयता से उत्पन्न हुआ भाव, (उसे) भूल जा। अन्तर पदार्थ की विस्मयता के अनुभव की दृष्टि करने से जो अभेद अनुभव होता है, वही ध्यान और वही कर्तव्य और वही रत्नत्रय कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? उसे देखे, ऐसा। यह देखना भूल जा, उसे देख। यह सुनना भूल जा, अन्दर का श्रवण कर ज्ञानानन्द कौन है। रागादि के भोग को भूल जा, आत्मा का भोग कर।

शुद्ध आनन्दमय आत्मा नित्यानन्द प्रभु, जिसमें अकेला अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण भरपूर, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा को अन्तर्मुख... देखे हुए, मिले हुए भोगों को छोड़कर, उनकी अभिलाषा को छोड़कर, यहाँ तो और ऐसा कहते हैं। उनकी भावना छोड़ दे। ऐसा भगवान... यह तो परमात्मप्रकाश है न! परम स्वरूप भगवान आत्मा का आदर करके **सब विभाव-परिणामों को छोड़कर निजस्वरूप का ध्यान कर। यहाँ उपादेयरूप अतीन्द्रियसुख से...** देखो! यहाँ तो आनन्दमय भगवान आत्मा शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी में, वाणी में आनन्द कहीं नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उनमें भी कहीं आनन्द नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द से तन्मय ऐसा भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय सुख से एकमेक तन्मय, अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द से एकमेक एक स्वरूप भगवान आत्मा।

सब भावकर्म,... पुण्य-पाप के विकल्प, जड़ कर्म, नोकर्म से भिन्न अतीन्द्रिय आनन्द से एकमेक ऐसा आत्मा है। **वही अभेदरत्नत्रय को धारण करनेवाले निकट भव्यों को उपादेय है,...** अल्प काल में जिसकी केवलज्ञानदशा होनेवाली है। समझ में आया? यहाँ ऐसा कहा है, केवलज्ञान की उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति। दूसरी गाथा। सब शैली... केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति। समझ में आया? वस्तु... **अभेदरत्नत्रय को धारण करनेवाले...** जीवों को ऐसा आत्मा उपादेय है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह वस्तुस्वरूप आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द से, अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास के स्वाद से भरपूर भगवान पूरा, उसके ऊपर ज्ञान उसका करके उसकी प्रतीति करके उसकी स्थिरता (हो), ऐसे अभेदरत्नत्रय काल में, अल्प काल में जिसे मुक्ति होनी है, अर्थात् पूर्ण दशा प्रगट होनी है, उसे अभेदरत्नत्रय के काल में यह आत्मा आदरणीय है। बहुत सूक्ष्म। कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहा? गाथायें ही ऐसी हैं, वस्तु ऐसी है, वाच्य ऐसा है। समझ में आया? अभेदरत्नत्रय, आहाहा! उस परिणाम की कीमत है कि जिस परिणाम ने परिणामी को पकड़ा, उस परिणाम की कीमत है श्रद्धा की कि जिस परिणाम से उस भगवान को अन्तर (में) पकड़ा। उस ज्ञान परिणाम की कीमत है कि जिसने ज्ञानस्वरूप ऐसा भगवान, उसे ज्ञेय बनाया। उस परिणाम की कीमत है कि जो ज्ञायक में स्थिर हुआ। बस, उसकी कीमत है। धीरुभाई! यह सब बाहर की कीमत उड़ गयी। आहाहा! समझ में आया?

उस अतीन्द्रिय आनन्द से एकमेक है। अरे! परन्तु इसे विश्वास में कहाँ (आता है)? इसे अभी आनन्द यहाँ... यहाँ... यहाँ (लगता है)। जब तक इसे पुण्य-पाप के विकल्प में मिठास अनुकूल ऐसे देखे, वहाँ मिठास (आती है), कुछ चेष्टा, अनुकूल शरीर की सुन्दरता (देखकर) ऐसे मिठास वर्तती है, वह अन्दर मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? ऐसे मिथ्यात्वभाव में मिठास में पड़े हैं, उन्हें यह आत्मा उपादेय नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से तन्मय, उसमें अकेला आनन्द ही पड़ा है। जिसे पर की कुछ भी, विकल्प से लेकर किसी चीज़ की विस्मयता, आश्रयता, अधिकता, अद्‌भुतता दिखती नहीं। समझ में आया? शुभराग से लेकर किसी भी पदार्थ की, बाह्य के किसी भी पदार्थ की जिसमें विस्मयता, अचिन्त्यता, अद्‌भुतता, अधिकता

भासती नहीं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की जहाँ अधिकता भासित होती है। ऐसे अभेदरत्नत्रय के धारण करनेवाले... स्थिरता सहित यहाँ लेना है। निकट भव्यों को जिन्हें एक-दो (भव करके) अल्प काल में मुक्ति है, केवलज्ञान है। उन्हें इस प्रकार से आत्मा उपादेय—ग्रहण करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

भैंसों को खुले कपासिया के गोदाम में छोड़े, वे फिर कपास कैसी मिठास से खाये! ऐसे ताजा, नये ऊँच कपास (हो)। उसके ऊँचे गुड़ के ऐसे भेली के भेली टुकड़े बारीक करके डालें हों थाली में, उन्हें खाये। चारा नहीं। सिर ऊँचा न करे वे। वह गुड़ और गन्ना या कपास खाने से सिर ऊँचा न करे वे। करे? एकरस हो जाये। इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का गोदाम है न! कहते हैं कि उसमें पड़ा। ऊँचा, ऊँचा सिर विकल्प का होता नहीं। समझ में आया? अभी यह समझे बिना, पात्रता बिना आँखें बन्द करके ऐसे-ऐसे करे, उसे कुछ मिले, ऐसा नहीं, हों! वह तो सब ढोंग बहुत करते हैं। समझ में आया? अभी व्यवहार का ठिकाना न हो, वह ऐसा ध्यान करने जाये कि हम ध्यान करते हैं। जड़ का ध्यान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा आवे, लौकिक में लोग कुछ महिमा करे ऐसा। समझ में आया? आहाहा! यह जगत की वह भी इसके बहाने भी जगत में कुछ अधिक है, ऐसा मनवाना है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि, भाई! तेरी चीज़ क्या है? बापू! वह ऐसे मिले, ऐसी नहीं। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : कितनी कीमत दे तो मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र की कीमत दे तो ही मिले, ऐसा है। परन्तु उस कीमत में तो जवाबदारी वह बाहर की एकदम उड़ जाये। आहाहा! हल्का... हल्का... हल्का... कुछ नहीं मिलता। दुनिया क्या कहती है, दुनिया क्या मानती है? शास्त्र के पठन से भी जिसे अन्दर में कीमत नहीं आती। दुनिया को समझाना आया, इसलिए कुछ कीमत है, ऐसा जिसे लगता नहीं। समझ में आया? भीखाभाई! आहाहा! और जिसे बहुत शुभभाव होते हों, उसकी भी जहाँ कीमत अन्तर में लगती नहीं। ऐसे

जीव को आत्मा उपादेय है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? उसे उसका ध्यान वहाँ लगेगा, दूसरे का वहाँ लगेगा नहीं। समझ में आया? ओहोहो! एक-एक गाथा में... ७५ हुई।

★ ★ ★

गाथा - ७६

ऐसे तीन प्रकार आत्मा के... पहली बात ली थी पहले। **आत्मा के कहनेवाले प्रथम महाधिकार में जुदे-जुदे स्वतन्त्र भेद भावना के स्थल में नौ दोहा-सूत्र कहे।** यह भेद भावना के नौ कहे। पहले आया था। अभेदरत्नत्रय की बात थी, भेदरत्नत्रय की नहीं, परन्तु भेद भावना की है यह। यह पूरे हुए। **आगे निश्चयकर सम्यग्दृष्टि की मुख्यता से स्वतन्त्र एक दोहासूत्र कहते हैं—**

७६) अप्पिं अप्पु मुणंतु जिंउ सम्मादिट्ठि हवेइ।
सम्माइट्ठिउ जीवडउ लहु कम्मइँ मुच्चेइ॥ ७६॥

अन्वयार्थ :- अपने को अपने से जानता हुआ... भगवान ज्ञानस्वरूप परमात्मा अकेला शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान **अपने से...** अपनी निर्मल, निर्विकार धारा—उस वीतराग परिणति से अपने को अपने से, अपने को अपने से अर्थात् स्वयं आत्मा रागरहित श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति ऐसी वीतराग परिणति से **जानता हुआ...** देखो! यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान की व्याख्या है यह। **अपने को...** भगवान शुद्ध चैतन्य वस्तु को, **अपने से...** वीतरागी चैतन्य की परिणति, वह अपने से। **जानता हुआ...** स्वयं अपने को जानता हुआ। **यह जीव सम्यग्दृष्टि होता है,...** वह जीव निश्चय सम्यग्दृष्टि होता है। कहो, समझ में आया इसमें? आत्मा को अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को। अपने से अर्थात् निर्दोष वीतराग पर्याय द्वारा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति द्वारा आत्मा को, अपने से जानता है। इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन। समझ में आया? **वह जीव सम्यग्दृष्टि होता है, और सम्यग्दृष्टि हुआ संता...** सम्यग्दृष्टि होता हुआ, **जल्दी कर्मों से छूट जाता है।** यह सम्यग्दर्शन... अपने आत्मा—अपने आत्मा को अपनी वीतरागी पर्याय द्वारा जानता है,

वह अल्प काल में वीतरागी केवलज्ञान की पर्याय को प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- देखो! आया। **यह आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ...** यह अपने से कहा था। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव वह वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ। अर्थात् लौकिक ज्ञान, शास्त्र ज्ञान में नहीं परिणत (हुआ)। स्व वीतरागी आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान में पर्यायरूप से परिणमा, वह **अन्तरात्मा होकर...** लो, यह अन्तरात्मा। अपना आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में राग और पुण्यरहित स्व आत्मा का संवेदन, संवेदन आत्मा का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, उसमें परिणत हुआ, परिणत हुआ—पर्याय से परिणमित, वह अन्तरात्मा हुआ, वह अन्तरात्मा हुआ। देखो! समझ में आया?

अपने को अनुभवता हुआ... अपने स्वरूप को अनुभवता हुआ, स्थिरता करके वेदता हुआ, **वीतराग सम्यग्दृष्टि होता है,...** यह सम्यग्दृष्टि ही वीतराग है परन्तु विशेष स्थिरतासहित यहाँ बात लेनी है। समझ में आया? ओहोहो! परमात्मप्रकाश में तो अकेला मक्खन है! सत्य का... सत्य का... सत्य का... अकेला दोहन!! भीखाभाई! इसमें कहीं दूसरे ऐसे... कहते हैं, वह भगवान आत्मा अपने निर्दोष स्वसंवेदनज्ञान से परिणत हुआ। अन्तरात्मा परमात्मा स्वयं स्वरूप है, उसे स्वसंवेदनज्ञान से परिणमित जाना, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

तब सम्यग्दृष्टि होने के कारण से ज्ञानावरणादि कर्मों से... वह आठ कर्मों से **शीघ्र ही छूट जाता है...** स्वभाव का सम्यक् स्वसंवेदन से परिणमन होता सम्यग्दृष्टि परमात्मा अपना स्वरूप, उसे स्वसंवेदन से परिणमता अन्तरात्मा होता हुआ व्यक्तरूप से परमात्मा अल्प काल में होता है। ऐसी तीन बातें की। परमात्मा स्वयं वस्तुस्वरूप से है। समझ में आया? परमात्मा स्वयं वस्तुस्वरूप से है। उसका वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान, वह अन्तरात्मा है। उससे अनुभवते हुए वह व्यक्तरूप से परमात्मा होता है। समझ में आया? शक्ति का प्रगटरूप से परमात्मा होता है। यह उसका उपाय है, बाकी कोई दूसरा उपाय नहीं। शीघ्र अर्थात्? ऐसी स्थितिवाले को अल्प काल में ही केवलज्ञान प्राप्ति का काल होता है ऐसा, शीघ्र अर्थात्। समझ में आया?

रहित हो जाता है। यहाँ जिस हेतु वीतराग सम्यग्दृष्टि होने से यह जीव कर्मों से छूटकर सिद्ध हो जाता है,... वीतराग सम्यग्दृष्टि। आगे फिर विशेष स्थिरतासहित बात ली है। **इसी कारण वीतराग चारित्र के अनुकूल...** पहले वीतराग समयग्दर्शन हुआ, वीतरागी सम्यग्ज्ञान हुआ, स्वरूप आचरणरूपी वीतरागता हुई, परन्तु अन्तरात्म हुआ और उग्ररूप से जहाँ अन्तर अनुभव में जाने से विशेष वीतरागतासहित की। **वीतराग चारित्र के अनुकूल...** बहुत ही अन्तर अनुभूति की स्थिरता के अनुकूल। **जो शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व है,...** शुद्ध भगवान आत्मा के अनुभूतिरूप से वीतराग समकित है। **वही ध्यावने योग्य है,...** इस पाँचवें काल के जीव को ऐसा कहते होंगे? खबर नहीं होगी कि पाँचवें काल में ऐसा नहीं होता? नहीं होता, उसके लिये कहते हैं? समझ में आया? केवलज्ञान की बात नहीं, परन्तु केवलज्ञान इस प्रकार से होता है, ऐसी अनुभूति यहाँ इस काल में हो सकती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो, उससे होगा, अभी हुआ ही है। केवल (ज्ञान) नहीं क्या? श्रद्धा अपेक्षा से, ज्ञान अपेक्षा से, इच्छा अपेक्षा से, भावना अपेक्षा से, निश्चय अपेक्षा से (केवलज्ञान हुआ है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। अरे! नहीं, नहीं। नहीं, न करके उसे... वह अभी यह नहीं, इसलिए हो गया, पुरुषार्थ को रोक लिया। सुन न! पूरा आत्मा भगवान तेरे पास है या नहीं? जिसमें ऐसे अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें पड़ी हैं। अब एक केवलज्ञान पर्याय के लिये ना किसलिए करता है? ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें, अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें और अनन्त -अनन्त आनन्द की पर्यायें, वे तो पड़ी हैं द्रव्य में। क्या नहीं अभी? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आती नहीं, इसे बैठता नहीं, भाई! यह प्रतीति कहीं ऐसे कुछ कल्पना से हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसकी कीमत देनी पड़े इसमें। इसलिए उसे

रत्नत्रय कहा न भाई! वह कीमत से मिलता है।

मुमुक्षु : किस कीमत से?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कीमत अन्तर के अनुभव की एकाग्रता की अपार श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग चारित्र के अनुकूल... ओहो! आज तो सवेरे ऐसा आया कि, ओहो! आठ वर्ष के राजकुमार ध्यान में जंगल में अकेले... होंगे, बैठे होंगे। आहाहा! उसमें कोई राजा शिकार करने निकला तो ऐसा देखकर, आहा! छोटी मोरपिच्छी हो, छोटा कमण्डल हो। आठ वर्ष के राजकुमार। (वैराग्य का) प्याला फटकर हो गये अन्दर। माता! हमको संसार का दुःख लगा। यह भी है न सब यह। भाई! यह हीरा के थाल, यह नीलम की पाट के बँगले, यह पद्मिनी जैसी स्त्रियों से विवाह कराऊँगी बड़ा होवे तो। माता! हमको दुनिया की ओर के भाव दुःखदायक लगते हैं। आहाहा!

वह मणिरत्न के पुतले जैसा शरीर। अरे! धूल के ढ़ेर में भगवान छिपा, प्रभु! हम उसे शोधने वन में जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! वह काल,... समझ में आया? आहाहा! मक्खन जैसा शरीर और अरेरे! उसके ऊपर लक्ष्य करने से राग होता है, वह चीज़ किस काम की? जिसका लक्ष्य करने से, आश्रय करने से राग हो, अरे! यह दुःख हो, वह किस काम का? आहाहा! भगवान एक हमारा आनन्दकन्द, वह हमको काम का है, हमको दूसरे कोई काम के नहीं। आहाहा! वे ध्यान में स्थित अभेदरत्नत्रय में अल्प काल में केवलज्ञान को पायेंगे। यह धुरन्धर बड़ी पेढी माँडी है इसने। आहाहा! यह बड़ा धन्धा और यह पेढ़ियाँ और आहाहा... पाँच लाख, दस लाख की आमदनी। यह सब आत्मा की पूँजी को लुटाने की पेढ़िया हैं। यह पेढ़ी मांडी मुनि ने यह अन्तर में। आहाहा! यह शान्तरस का प्रवाह तो अनुभव किया है न पहले सम्यग्दर्शन में, अब उसमें एकदम स्थिर होने के लिये चल निकले। हमारे कोई साथ नहीं होता, भाई! यह मुर्दा अर्थी में दूसरे के साथ नहीं बँधता। समझ में आया? अन्दर के आनन्द के प्रवाह को देखा है न। श्रद्धा, ज्ञान में स्वाद लिया है, उसे साधने सारी दुनिया की उपेक्षा और एक भगवान आत्मा की अपेक्षा। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी शुद्धात्मा की चारित्र सहित वीतरागता **वही ध्यावने योग्य है,...** यहाँ तो उत्कृष्टरूप से कहते हैं। **ऐसा अभिप्राय हुआ। ऐसा ही कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ में निश्चयसम्यक्त्व के लक्षण में किया है...** देखो! यह निश्चय समकित का लक्षण। मोक्षप्राभृत की गाथा। आहाहा! क्या कहते हैं! गाथा देखो!

सद्दव्वरओ सवणो सम्मादिट्ठी हवेई णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं॥

यह '**सद्दव्वरओ**' सत् द्रव्य, सत् द्रव्य उस **आत्मस्वरूप में मगन...** वह स्वद्रव्य। स्वद्रव्य ज्ञायक चिदानन्द भगवान आत्मा, उस स्वद्रव्य में लीन-रति प्राप्त। देखो! है न? रत, रत। भगवान आत्मा में मगन हो गया है। वह **मगन हुआ जो यति...** यति, यति है न। '**सवणो**' है न। श्रमण, श्रमण। '**सद्दव्वरओ सवणो**' है न? दिगम्बर मुनि लेना है। श्रमण अर्थात् दिगम्बर मुनि। समझ में आया? जिनकी बाह्य दशा एक वस्त्र के धागेरहित हो गयी है। आहाहा! जिन्हें शरीर की विभूषा भी है नहीं, जिन्हें अकेला दिगम्बर नग्न शरीर माता से जन्मा वैसा रह गया। ऐसा जो श्रमण। यहाँ श्रमण की प्रधानता से बात करते हैं। कोई ऐसा कहता है, देखो! श्रमण हो, उसे निश्चय समकित होता है। उत्कृष्ट चारित्र के साथ वर्णन करना है।

आत्मस्वरूप में मगन '**सद्दव्वरओ**'। परद्रव्य अर्थात् विकल्प पुण्य-पाप में उसकी मगनता छूट गयी है। भगवान निर्विकल्प आनन्दमय प्रभु में जिसकी मगनता जमी है। ऐसा उत्कृष्ट मगनतावाला ऐसा साधु लिया है यहाँ। मोक्षपाहुड़ है न, मोक्षप्राभृत है न। मोक्षपाहुड़ की गाथा है न। मोक्ष तो चारित्रवन्त पाते हैं न! चारित्रवन्त ओहो! सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र की रमणता का उग्र भाव, दिगम्बर नग्न मुनि बाह्य में हो, उसे अभ्यन्तर ऐसी मगनता होती है। समझ में आया? जिसे बाह्य में वस्त्र, पात्र आदि हों, संयोग हो, उसे ऐसी मगनता नहीं होती। गृहस्थाश्रम के अन्दर रहे हुए को सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की मगनता होती है। समझ में आया? परन्तु वस्त्र, पात्रसहित मुनि नाम धराते हों, उन्हें तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। मुनि माने। आहाहा! उस दशा के योग्य अकषाय स्वभाव हो गया है, इसलिए उन्हें नग्नदशा हो गयी, सहज हो गयी। आहाहा! ऐसी मुनि की दशा में '**सद्दव्वरओ**' ऐसा कहना चाहते हैं यहाँ। समझ में आया? द्रव्य

में लीन है। सम्यग्दृष्टि लीन है, परन्तु उतना नहीं। वह उग्रता। यहाँ मोक्ष बतलाना है न, मोक्षप्राभृत की गाथा और उसके साथ मिलाया इन्होंने। उस वीतरागचारित्र के अनुकूल शुद्धात्मा का कहा था न? उसके साथ मिलाया।

भगवान आत्मा अपने स्वरूप के अनुभव की दृष्टि के निश्चय समकितसहित, स्वरूप के निश्चय ज्ञानसहित, स्वरूप में उग्र लीनता में मगन हैं, ऐसे श्रमण वे अल्प काल में मुक्ति को पाते हैं। छोटाभाई! आहाहा! कहो, अब यह लोग क्या कहते हैं? भगवान! यह सब करके श्वेताम्बर सबको करेंगे। प्रभु! प्रभु! तू क्या कहता है भाई? समझ में आया? यह सब मन्दिरों को (लोप) करके स्थानकवासी के उपाश्रय करायेंगे। प्रभु! तू यह क्या कहता है भाई? हमारी क्या भावना है और क्या दिल है, उसे भाई! देखे बिना तू यह क्या कहता है? आहाहा!

अहो! मुनिपद तीन काल—तीन लोक में ऐसा होता है। देखो न! आहाहा! जिसे स्वद्रव्य में लीनता जम गयी है। उसे वस्त्र, पात्र लेने का विकल्प नहीं हो सकता। उसे संयोग ऐसे होते ही नहीं। वह इसके अर्थ में उन्होंने किया है, भाई! '**सद्दव्वरओ**' यति शब्द है न। दूसरे साधु मान ले तो? इसलिए यह दिगम्बर यति, ऐसा लिखा है। यह अर्थ है न टीका के? संस्कृत। '**सवणो**' शब्द पड़ा है न, इसलिए कोई कहे, '**सद्दव्वरओ**' श्रमण दूसरे में भी होते हैं। वस्त्र, पात्र रखते हों और साधु माने उसे '**सद्दव्वरओ**' हो। अभी स्वद्रव्य की दृष्टि नहीं, फिर वहाँ स्वद्रव्य लीन कहाँ से आया? साधुपद है, उसकी खबर नहीं, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं। समझ में आया? धर्मचन्दजी! आहाहा!

जिसे चैतन्य के ज्ञायकभाव में लीनता ऐसी जमी है कि जिसे वस्त्र, पात्र लेने की वृत्ति हो सकती ही नहीं। ऐसी जिसकी नग्नदशा सहजरूप से टिकी, हो गयी है। करनी नहीं, वह ऐसी हो जाती है। उसके ऐसा संयोग में उसका स्वभाव द्रव्य में बहुत लीन है तथापि वह नग्नपना, वह मुनिपना नहीं। समझ में आया? मुनिपना तो उस काल में तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव में स्वद्रव्य में लीन है, ऐसी दशा को मुनि कहते हैं। समझ में आया?

मगन हुआ जो यति... इसलिए श्रमण शब्द पड़ा है न। ओहोहो! धन्य... धन्य...

दशा! **यति वह निश्चयकर सम्यग्दृष्टि होता है,...** अर्थात् निश्चय सम्यग्दृष्टि विशेष स्थिरतासहित की यह बात है। निश्चय सम्यग्दृष्टि वहाँ ही होता है और चौथे में नहीं, ऐसा यहाँ नहीं। परन्तु जैसी वस्तु की दृष्टि का अनुभव हुआ, उसमें स्थिरता जमी है, इसलिए उसे विशेष वहाँ सम्यग्दृष्टि वीतरागचारित्रसहित का कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? यह पुस्तक लिखते हैं, विकल्प आता है, तथापि कहाँ पृष्ठ पड़े हैं और कौन लेगा, (उसकी) जिन्हें पड़ी नहीं। आहाहा! वे यह मुनि कहलाते हैं! समझ में आया?

वीतरागभाव में झूलते होते हैं मुनि। छठवें-सातवें में... छठवें-सातवें में... छठवें-सातवें में... कहते हैं, उसमें जैसा सम्यग्दर्शन में भगवान को देखा था श्रद्धा से अथवा ज्ञान से जाना था, चारित्र में स्वाद भी लिया था... समझ में आया? वह विशेषरूप से परिणमता, ऐसे भाव से विशेषरूप से परिणमता हुआ **सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ...** देखा? यह पाठ है। '**सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं**'। यह सम्यक्त्व की प्रतीति, ज्ञान की रमणता में परिणमता, परिणमता, परिणमता केवलज्ञान को पाता है और आठ कर्म को नाश करता है। अर्थात् कि उसके द्रव्य के ऊपर ही उसकी नजर लगी है, इस प्रकार से परिणमता, परिणमता, उसके लक्ष्य से परिणमता परिणमता हुआ केवलज्ञान को पाता है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ... देखो! यह चारित्र की स्थिरता भी सम्यक् ऐसे वस्तु के ऊपर जो दृष्टि पड़ी थी अनुभव परिणत, उसकी उस दृष्टि में, ध्येय में, ध्येय में... ध्येय में लिया हुआ भगवान, उसमें स्थिर होता हुआ वह समकित का परिणमन कहा यहाँ। ध्येय में परिणमा। द्रव्य के ध्येय से परिणमा है न। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की कथनी, न भूतो न भविष्यति। कोई भार नहीं, इस प्रकार से बात करे। श्वेताम्बर... दूसरे अन्य में तो है नहीं, परन्तु यह सत्य की बात, ओहोहो! समझ में आया? यहाँ क्या कहना है? और मस्तिष्क में आया था कि समकित से परिणमित ऐसा, आया न शब्द? भाई! इसलिए ऐसा कहते हैं कि ऐसे जो सहित माना है न दृष्टि में, ऐसे के ऐसे ध्येय को बिल्कुल अस्थिरता होने नहीं देता। ... आठ कर्म का नाश कर डालता है। ... ध्येय को बिल्कुल अस्थिर होने नहीं देता, ऐसा का ऐसा ऐसे

हो जाता है अन्दर। आठ कर्म का नाश कर डालता है। बस, वजन यह आया ध्येय का। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन ने जो ध्येय भगवान पूर्ण को माँडा था, उसे और उसे ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा करते-करते कहते हैं, समकित का परिणमन परिणमता आठ कर्म का नाश कर डालता है। समझ में आया? उसके ध्यय में विशेष स्थिर होता है, वह भी एक समकित का ही परिणमन गिना, भाई! आहाहा! वाह! एक वस्तु देखो क्या (कहते हैं)! भगवान आत्मा स्वसंवेदन और दृष्टि से जिस प्रतीति में ध्येय को द्रव्य यह पकड़ा है, उसकी उस पकड़ में और पकड़ में परिणत होता हुआ आठ कर्म का नाश करता है। समझ में आया? '**सम्मत्तपरिणदो उण**'। परिणमनवाला। '**खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं**' परिणमता हुआ। भाषा, दुष्ट अष्ट कर्म शब्द प्रयोग किया है। आठों ही कर्म दुष्ट हैं। ले! पुण्य भी दुष्ट? पुण्य, सातावेदनीय, असातावेदनीय सब आठों कर्म दुष्ट।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब आया। आहाहा! '**दुट्ठट्ठकम्माइं**' शब्द पड़ा है न। दुष्ट आठ कर्म। भगवान परम आनन्दमयकर आत्मा, ऐसा। आनन्दमय लिया न। परम आनन्दमय भगवान, दुष्ट आठ कर्म। समझ में आया?

यह भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से एकमेक प्रभु जिसके आनन्द के, जिसकी दृष्टि में ध्येय पूरा भगवान भूतार्थ पड़ा है न! बस! उसी और उसी के आश्रय से रहा हुआ परिणमन करता हुआ समकितदृष्टि उस समकित से परिणमन होता हुआ दुष्ट आठकर्म का नाश हो जाता है। जड़ को दुष्ट कहना? वह विकारी परिणाम से बँधे हुए सब कर्म ही सब दुष्ट हैं। दुःखदायी हैं, नहीं आता? ... दुःख, दुःख, दुःख। यह सब आठों ही कर्म दुःख। दुःख अर्थात् जड़ कहीं दुःख नहीं। उसके अवलम्बन से जितनी परिणति पड़ी है, वह सब दुःखदायक है। आहाहा! समझ में आया? यह ७६ (गाथा) हुई। यह एक स्वतन्त्र गाथा थी सम्यग्दृष्टि की। अब इसमें कोई और ऐसा ही ले जाये कि चौथे (गुणस्थान में) निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होता... समझ में आया? तो इस बात का स्पष्टीकरण इस गाथा ७७ में आता है। ७७ में इसका स्पष्टीकरण आता है।

★ ★ ★

गाथा - ७७

इसके बाद मिथ्यादृष्टि के लक्षण के कथन की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं— वह '**अप्पिं अप्पु मुणंतु**' ऐसा था और '**सद्दव्वरओ**' आधार दिया था। यह '**पज्जय-रत्तउ**' आया अब। पर्याय रत बस। समझ में आया? '**अप्पिं अप्पु मुणंतु**' था। आत्मा आत्मा से अपने को जाने। अब यहाँ आया कि '**पज्जय-रत्तउ जीवइउ**' परसमय की व्याख्या। अहो! जिसकी रुचि अनेक प्रकार के पुण्य, पाप, शरीर, वाणी सब पर्याय है, सभी पर्यायें, शरीर... शरीर में जिसका प्रेम है, वह पर्यायरत है, राग में जिसे प्रेम है, वह पर्यायरत है, पुण्य के परिणाम में जिसे प्रेम है, वह पर्यायरत है, वह द्रव्यरत नहीं। आहा! यह शरीर है, वह मुझे ठीक है, सुखरूप है और दु:खरूप है, ऐसा द्वेष है, वह जड़ में प्रेम रखता है। वह जड़ का प्रेमी है, आत्मा का प्रेमी नहीं। राग-पुण्य परिणाम में जिसका प्रेम है, उसे शरीर, कर्म और देह का ही प्रेम है, उसे आत्मा का प्रेम नहीं।

७७) पज्जय-रत्तउ जीवडउ मिच्छादिट्ठि हवेइ।
बंधउ बहु-विह-कम्मडा जैं संसारु भमेइ॥ ७७॥

आहाहा! **अन्वयार्थ :- वह मिथ्यादृष्टि होता है, और फिर वह अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधता है,...** वस्तु के स्वद्रव्य स्वरूप की दृष्टि से विमुख पुण्य-पाप के विकल्प आदि सब सामग्री संसार की, उसमें जिसने प्रेम स्थापित किया है, वह पर्यायरत है। वह **अज्ञानी अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधता है, जिनसे कि संसार में भ्रमण करता है।** उस द्वारा चार गति में भ्रमण करता है। यहाँ सामने कहा था कि '**कम्मइँ मुच्चेइ**' यहाँ कर्म बाँधकर भटकेगा। उसकी सामने-सामने गाथा है। समझ में आया? यह व्याख्या हुई... यह बाद में आयेगा। परमात्मा की अनुभूतिरूप श्रद्धा ... ऐसा लिया है, भाई! अर्थात् सम्यग्दर्शन निश्चय, उससे विमुख ऐसा लिया है। विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ११, शुक्रवार, दिनांक - १९-११-१९६५
गाथा - ७७ प्रवचन - ५४

परमात्मप्रकाश, पहला भाग, ७७ गाथा, इसका भावार्थ। मिथ्यात्व की व्याख्या करते हैं। मिथ्यात्व किसे कहना?

भावार्थ :- परमात्मा की अनुभूतिरूप श्रद्धा से विमुख... यह आत्मा परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्य है। मिथ्यात्व की व्याख्या करनी है न! अर्थात् यह आत्मा परमस्वरूप, आनन्द-ज्ञानस्वरूप, ऐसा यह आत्मा परमात्मा, इसकी अनुभूति—इसका जो अनुभव, परमात्मस्वभाव का अनुभव, ऐसी श्रद्धा, अनुभूतिरूप श्रद्धा, समझ में आया? उससे विमुख। यह आत्मा वस्तु अखण्ड ज्ञान चैतन्यमूर्ति परमात्मस्वरूप स्वयं, परम स्वरूप का अनुभव—उसे अनुसरकर ज्ञानानन्द आदि का अनुभव, उस अनुभूतिरूप श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। उससे विपरीत। समझ में आया? देखो! यह सम्यग्दर्शन आ गया। परमात्मा की अनुभूतिरूपी श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। आया न? क्या कहा? क्या आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या? यह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप वस्तु परमस्वरूप निज परमात्मा का अनुभव, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा की निर्विकल्प श्रद्धा का अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम सम्यग्दर्शन। उससे विमुख—उल्टा आठ मद। अर्थात् क्या कहते हैं? स्वरूप परमानन्द शुद्ध द्रव्यस्वभाव के अनुभव में मैं आत्मा हूँ, यह ऐसा उसमें अहं, मम श्रद्धा, ज्ञान में वर्तता होता है। उसे छोड़कर जातिमद आदि में अहंपना। जाति, कुल आदि आठ मद में अहंपना, वह मिथ्यात्व का लक्षण है। समझ में आया?

जो आठ मल... शंका, कांक्षा आदि समकित के हैं न, **छह अनायतन,...** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और उनके माननेवाले छह और **तीन मूढ़ता...** देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता,

शास्त्र मूढ़ता। **इन पच्चीस दोषोंकर सहित...** इन पच्चीस दोषसहित, **अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व परिणाम जिसके हैं,...** इतनी व्याख्या की। समझ में आया? ऐसे स्वरूप शुद्ध चैतन्य के अनुभव के सम्यक् में तो 'मैं आत्मा पूर्ण अखण्ड हूँ' ऐसी प्रतीति और उसका अनुभव (होता है), उससे उल्टे आठ मद और आठ मल में अहंपना और अपनापना करके, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के भाव में अपनापना मानकर और तीन मूढ़ता में अपनापना मानकर, ऐसे दोषसहित अतत्त्वश्रद्धा—वह तत्त्वश्रद्धा से विपरीत मान्यता, वह मिथ्यात्व परिणाम, उसका नाम मिथ्यात्व के परिणाम हैं। उस अनुभूति के परिणाम सम्यग्दर्शन के परिणाम थे, उससे यह उल्टे। समझ में आया?

वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। ऐसे जिसके परिणाम हैं, सम्यग्दर्शन से उल्टे, वह जीव मिथ्यादृष्टि, असत्यदृष्टि कहलाता है। **वह मिथ्यादृष्टि नर नारकादि विभाव-पर्यायों में लीन रहता है।** मनुष्यपना, देवगति आदि उस गति में लीन है। स्वभाव की दृष्टि में लीन नहीं। ज्ञायक चैतन्य हूँ, उसकी अन्तर रुचि और अनुभव नहीं, इसलिए वह चार गति के भाव की पर्याय में लीन रहता है। समझ में आया? **उस मिथ्यात्व परिणाम से...** उस विपरीत मान्यता के कारण से **शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ्मुख...** मिथ्याश्रद्धा की पर्याय के कारण से... भगवान शुद्धात्मा का जो अनुभव, वह सम्यक् परिणाम है, उससे विपरीत **पराङ्मुख अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है,... शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ्मुख...** मिथ्यात्व परिणाम से, शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ्मुख ऐसे मिथ्यात्व परिणाम से, **अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है,...** आठों कर्म अनेक प्रकार के बाँधता है। कहो, समझ में आया इसमें? है, पुस्तक है या नहीं? कितनी बातें कीं! दो-तीन पट्टी ऐसी, ऐसी और ऐसी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। वस्तुस्थिति जो है, वस्तु परमात्मा निज स्वरूप, उसकी पर्याय जो सम्यक् अनुभव, सम्यक् अनुभव, ज्ञान और आनन्द के वेदन के भानसहित की प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन। ऐसी पहिचान करायी। उस पर्याय से विपरीत पर्याय मिथ्यात्व अर्थात् कि आठ मद, मल आदि में अहंपना, उसके अनुभव में रहना, वह मिथ्यात्वभाव, वह अतत्त्वश्रद्धा कही जाती है। ऐसे मिथ्यात्व परिणाम से, शुद्धात्मा के

अनुभव से उल्टे मिथ्यात्व परिणाम से अनेक प्रकार के आठ कर्म बाँधता है। शुद्धात्मा के अनुभव के परिणाम से मुक्ति होती है, तब शुद्धात्मा अनुभव परिणाम से उल्टे परिणाम से आठ कर्म बँधते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

जिनसे कि... अब कर्म बाँधता है उल्टे, उसके कारण, **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूपी पाँच प्रकार के संसार में भटकता है।** अनादि से ऐसे पाँच, मिथ्यात्व परिणाम के कारण से कर्मों के बन्धन से पाँच प्रकार के संसार परिवर्तन में परिभ्रमण करता है। **ऐसा कोई...** द्रव्य की बात लेंगे अर्थकार, हों! द्रव्यसंसार कहा न? द्रव्य अर्थात् **ऐसा कोई शरीर नहीं,...** जगत में। ऐसा लिया द्रव्य में। ऐसा कोई शरीर नहीं जगत में कि, **जो इसने न धारण किया हो,...** समझ में आया? यह द्रव्य, द्रव्यसंसार। अनन्त काल में परमात्मस्वभाव के अनुभव की सम्यग्दर्शन से विरुद्ध परिणाम से बाँधे हुए कर्म से ऐसा कोई शरीरभाव जगत में रहा नहीं कि उस शरीर में उपजा न हो।

न धारण किया हो,... अनन्त शरीर धारण किये। एकेन्द्रिय का, दोइन्द्रिय का, त्रीन्द्रिय का, चौइन्द्रिय का, पंचेन्द्रिय का, नारकी का, मनुष्य के, देव के अनन्त-अनन्त शरीर। जगत में औदारिक, वैक्रियक,... समझ में आया? तैजस और कार्मण आदि ऐसा कोई शरीर बाकी नहीं रहा, आहारक को एक ओर रखो। समझ में आया? कि उस शरीर में उपजा न हो और मरा न हो। अनन्त शरीर धारण किये। यह बराबर होगा? अशरीरी आत्मा शुद्धात्मा के अनुभव के भाव से तो परमानन्द की मुक्ति मिले, भव का अभाव हो। उस शुद्ध भगवान आत्मा के अनुभव से उल्टे परिणाम से, मुक्ति से विरुद्ध पाँच प्रकार का संसार प्राप्त होता है। उसमें शरीररूपी संसार ऐसा इस जगत में कोई शरीर बाकी नहीं रखा कि वह शरीर इसने धारण न किया हो। बराबर होगा यह? सड़े हुए शरीर भी अनन्त बार धारण किये, निरोग शरीर अनन्त बार धारण किये। यह तो उसका विस्तार होता है शरीर का। शरीर धारण नहीं किया, ऐसा कहा न? कोई शरीर बाकी नहीं रखा। सड़ा हुआ शरीर सातवें नरक का और वैक्रियकशरीर, ऐसे अनन्त बार धारण किये। राजापने के महा सुन्दर शरीर अनन्त बार धारण किये, व्यन्तर और देव के वैक्रियकशरीर अनन्त बार धारण किये, एकेन्द्रिय निगोद के शरीर भी अनन्त बार धारण किये। दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ढोर के औदारिकशरीर अनन्त बार

धारण किये। समझ में आया? अशरीरी भगवान आत्मा को अनुभव किये बिना इस मिथ्यात्व परिणाम के कारण से बाँधे हुए कर्म से कोई शरीर बाकी नहीं रखा अभी तक के काल में।

ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है,... चौदह ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं **कि जहाँ न उपजा हो और न मरण किया हो,...** समझ में आया? क्या कहा? यह आत्मा आनन्द ज्ञान चिदानन्दस्वरूप भगवान परमानन्द की मूर्ति आत्मा है। उसके भान बिना, उसकी पहिचान बिना उससे विपरीत पहिचान अर्थात् मिथ्याश्रद्धा द्वारा संसार में भटकने में इसने कुछ बाकी नहीं रखा। कोई शरीर ऐसा नहीं कि इसने धारण न किया हो, कोई क्षेत्र ऐसा नहीं कि जहाँ जन्मा और मरा न हो।

मुमुक्षु : चन्द्रलोक में....

पूज्य गुरुदेवश्री : चन्द्र में क्या, सिद्ध भगवान है वहाँ जा आया है। लो, चन्द्रलोक में। ठीक! अनन्त बार, सिद्ध भगवान हैं वहाँ निगोदरूप से अनन्त बार जा आया है। आहाहा! जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ निगोद के जीव हैं एकेन्द्रिय के। आत्मा के सम्यक् अनुभव, सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा आनन्द ज्ञानमूर्ति है, ऐसे अनुभव के सम्यग्दर्शन बिना इसके मिथ्यात्व परिणाम से बाँधे हुए कर्म से कोई क्षेत्र बाकी नहीं रखा कि जहाँ अनन्त बार जन्मा और मरा न हो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ोसी कहाँ से हुआ? चक्रवर्ती के पास गया था जेल में जब पिंजरे में खड़ा रखा तब। समझ में आया? आहाहा! सिद्ध का क्षेत्र बाकी नहीं रखा कि जहाँ अनन्त बार जन्मा और मरा न हो। आहाहा! चौदह राजू ब्रह्माण्ड भगवान तीर्थंकर ने असंख्य योजन में कहे, वहाँ सिद्ध भगवान का क्षेत्र है, वहाँ भी यह जीव अनन्त बार मिथ्या परिणाम, मिथ्यादृष्टिरूप से ऐसे अनन्त अवतार वहाँ धारण किये हैं। समझ में आया?

ऐसा कोई काल नहीं है कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हों,... अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी का कोई एक समय ऐसा नहीं कि जिसमें अनन्त बार जन्म और मरण न किये

हों। ओहोहो! सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव का जाननेवाला, जाननेवाले को जाना नहीं। सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव का जाननेवाला भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा का सम्यक् अनुभव, दृष्टि अनुभव किया नहीं, इसलिए इस प्रकार से उसके विपरीत उल्टे भाव से कोई शरीर बाकी नहीं रखा, क्षेत्र बाकी नहीं रखा, काल कोई बाकी नहीं रखा कि जहाँ अनन्त बार जन्मा और मरा न हो। अरे! इसने विचार कहाँ किये हैं? इसने तो यह वर्तमान एक बनिया हुआ। जेचन्दभाई! एक शरीर कुछ सड़ा, हाय... हाय! क्या हुआ परन्तु? कहते हैं कि ऐसा कोई शरीर बाकी नहीं रखा सड़ा हुआ या अच्छा कि धारण नहीं किया हो। यह वर्तमान ऐसे शरीर तो अनन्त बार आये हैं, ऐसा कहते हैं। अनन्त बार ऐसा हो गया है। मनुष्यरूप से होकर, जेचन्दभाई नाम होकर और मोहनभाई के भाई के नाम होकर ऐसे शरीर अनन्त बार आये हैं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त काल। आदि कहीं काल है? अनादि का अनादि, अनादि की कोई आदि है? पहले आत्मा कहीं नया था, ऐसा है? अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... इस अनादि के अनन्त काल के, अनन्त काल के अनन्त पुद्गलपरावर्तन, उसके अनन्त पुद्गलपरावर्तन में एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाती है। एक चौबीसी में दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम जाते हैं। एक सागरोपम में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योम जाते हैं, एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान तीर्थंकरदेव परमात्मा केवलज्ञानी ने तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें यह फरमाया है कि हे जीव! इस आत्मा के अनुभव... आत्मा आनन्दमूर्ति, वह आनन्द की खान है, जिसमें अतीन्द्रिय रस का भण्डार आत्मा है, उसका तूने अनुभव और अन्तर सम्यक् अनुभव बिना मिथ्यादृष्टि के अनुभव से मिथ्याश्रद्धा (से) अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, जैन का साधु (होकर)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा है कब, परन्तु देखने की मेहनत की है? यह दिखता है, उसे शरीर और यह होली। मोहनभाई! यह शरीर मैं, यह रोग मैं, यह राग मैं, यह पुण्य

मैं, यह पाप के भाव वह मैं। मैं... मैं... मैं... उसका घुस गया है विकार में और पर में। मैं विकार और पर से भिन्न हूँ, ऐसा शोधा कब है ? यह तो बात करते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छुड़ावे परन्तु ? आहाहा! जिसने जोड़ी वह तोड़े, जोड़ी है इसने। राग और द्वेष, पुण्य और पाप आदि का जुड़ान इसने किया है। भगवान अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानानन्द सिद्ध समान आत्मा का स्वरूप है। जैसे अनन्त सिद्ध भगवान हुए, वैसा ही इस आत्मा का अन्तर स्वभाव ऐसा है। ऐसे स्वभाव को भूलकर मिथ्यादृष्टि पुण्य-पाप मेरे, शरीर मेरे, मद जाति, कुल मद आदि है न ऊपर, देखो न! जो जाति मिली वहाँ मैं, यह मेरे माता का कुल बहुत ऊँचा। परन्तु तुझे माँ कब थी ? मेरे बाप का कुल बहुत ऊँचा, हम बड़े संघ के संघपति, ईश्वरपना मिला, महत्ता, मान, रूप का मद, कुल का मद, शास्त्र का, पठन का-विद्या का मद, विद्या का मद, वह सब मिथ्यादृष्टि को मद होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

एक समय में भगवान ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु, ऐसा जिसे श्रद्धा-ज्ञान में, अनुभव में आवे, उसे किसमें अभिमान आवे ? किसमें अहंपना आवे ? महा भगवान जहाँ अहंरूप से भासित हुआ है। वह आत्मा भासित हुए बिना इसे या विद्या में अभिमान, तप में अभिमान, कहीं थोड़े-बहुत तप चार-छह महीने करे तो हमने तप किये। अब वह तो राग की मन्दता, तूने क्या किया ? यह उसके अभिमान। समझ में आया ? जाति, कुल, रूप, मद इत्यादि।

बल—शरीर का बल, उसका अभिमान। वह तो मिट्टी, धूल है। वह कहाँ तू आत्मा है ? आत्मा तो भिन्न है। उसका (शरीर का) बल तो मिट्टी का है। उसके बल का अभिमान। एक मुट्ठी मारें तो हम ऐसा करते हैं। मर गया मिथ्यादृष्टि में, सुन न! पर का अभिमान। ऐसे अभिमान आठ मद के, दोष का कहा न ? ऊपर कहा वह। और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तथा उनके माननेवाले को सच्चा माना। ऐसे मिथ्यात्व के भाव से कोई काल बाकी नहीं रखा कि जिसमें यह जन्मा और मरा न हो। आहाहा!

और ऐसे अशुद्धभाव नहीं हैं, जो इसके न हुए हों। क्या कहते हैं, देखो! **ऐसा**

कोई भव नहीं,... यह चार गति में ऐसा कोई भव नहीं कि जो नहीं पाया हो। एक अनुत्तर विमान के भव की बात छोड़ दो। समझ में आया? अनन्त बार देव भव, अनन्त बार नारकी के, अनन्त बार ढोर के, अनन्त बार राजा के, अनन्त बार रंक के, अनन्त बार अरबोंपति सेठ के, अनन्त बार रोटियाँ सौ बार माँगे तब एक बार मिले, ऐसे भिखारी के—ऐसे भव अनन्त बार अनन्त जीव ने किये हैं। कहो, यहाँ थोड़ा-सा जहाँ घट जाये, उसे बढ़ जाये तो हें... हें... हो गया कहाँ से यह? मोहनभाई! आहाहा!

अनन्त बार, अनन्त बार एक-एक एकेन्द्रिय के शरीर, दो इन्द्रिय के भव, तीन इन्द्रिय के भव, चार इन्द्रिय के भव, पाँच इन्द्रिय में नारकी, एक-एक नारकी के अनन्त भव पहले नरक के। दस हजार वर्ष की स्थिति से नरक का भव किया, ऐसे अनन्त भव। दस हजार और एक समय के भव, ऐसे अनन्त भव। आहाहा! नारकी में कम से कम आयुष्य दस हजार वर्ष का है। उस दस हजार के भव में यह भव किये वे अनन्त। फिर दस हजार (वर्ष) और एक समय के भव ऐसे अनन्त, यह दस हजार और दो समय के भव, वे अनन्त, ऐसे तीन, चार, पाँच, छह, सात ऐसे सब एक-एक समय अधिक ले लेना। एक सागरोपम के पहले नरक के भव अनन्त। दूसरे नरक में एक सागर से एक समय के अधिक के अनन्त, जाओ... तैतीस सागर (तक)। तैतीस सागर के नारकी के भव। इसने भी... बापू! इसे खबर नहीं। यह इतना यहाँ आया।

अनन्त-अनन्त काल में इस आत्मा के अनुभव—सम्यग्दर्शन बिना इसने स्वर्ग के अनन्त भव (किये)। वापस स्वर्ग में भी दस हजार वर्ष की स्थिति से अनन्त, एक समय के अधिक में अनन्त, ऐसे ३१ सागर के भव अनन्त। जैन का साधु अनन्त बार हुआ, जैन साधु हुआ। देखो, यहाँ कहेंगे बाद में। **ऐसे अशुद्ध भाव कोई बाकी नहीं हैं,...** जिस पुण्यभाव से जिसने नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार प्राप्त किया। समझ में आया? ऐसे ग्रैवेयक के भव भी अनन्त बार किये और उस ग्रैवेयक के भव के भाव भी अनन्त बार किये। देखो! है न? कोई ऐसा भव बाकी नहीं रखा आत्मा के अनुभव बिना। आत्मा के अनुभव, आनन्द के अनुभव सम्यग्दर्शन बिना, समझ में आया? इसने कोई भव बाकी नहीं रखा कि जिस भव में न उपजा हो। ओहोहो! अरबों-अरबों रुपये के बँगले और

अरबों की कीमत की आमदनी महीने की, ऐसे राजा के भवरूप से अनन्त बार हुआ है। समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाकी रखा। हाँ, ऐसा बोलो न भाई! यह तुम्हारे बाप को लक्ष्य करके बारम्बार कहते हैं। बहुत बार चिल्लाहट मचाते हैं। झट यहाँ से जाना है। परन्तु कहाँ जाना है वहाँ? कहो, यह तुम्हारा चिरंजीवी कहता है। यह आत्मा, आत्मा अखण्डानन्द भगवान तीर्थंकरदेव ने देखा, ऐसा पूर्णानन्द का कन्द, उसका इसने अनुभव नहीं किया, बस। जिसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, उसके बिना ऐसे सब भव अनन्त बार किये। कहो, समझ में आया इसमें ?

यह भव से थकता नहीं। भव में दुःख से मानो ऐसे छूट जाऊँ, ऐसा। परन्तु चारों भव—गति दुःख है। यह देव का भव किया इसने, नौवें ग्रैवेयक कोई सुने तो ३१ सागर की स्थिति अनन्त बार। अहमिन्द्र उससे बड़ा कोई नहीं। वे सब देव अहमिन्द्र असंख्य देव, हों! असंख्य देव। ऐसे पुण्य किये, महाव्रत के भाव पुण्य, दया, दान, भक्ति ऐसे शुभभाव ब्रह्मचर्य, मुनिपना, नग्नपना लेकर ब्रह्मचर्य पालन किया, महाव्रत पालन किये, ऐसे मिथ्यादृष्टिरूप से ऐसे भाव किये, उसके कारण नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। समझ में आया ? गोपालदासभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये, परन्तु यह तो भव किये की बात करनी है या उसकी करनी है ? सम्यग्दृष्टि की कहाँ, वह तो अनुत्तर (विमान में) जाता है। मिथ्यादृष्टिरूप से अनन्त बार गया, उसकी बात करनी है यहाँ। सम्यग्दर्शन के बाद भव हैं, वे तो जाननेयोग्य हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा भव बाकी नहीं और ऐसा अशुद्धभाव बाकी नहीं। अशुद्धभाव अर्थात् पुण्य और पाप। ऐसा पुण्य और पाप भाव बाकी नहीं कि जिसने अनन्त बार पुण्य और पाप न किये हों। अनन्त बार किये हैं। अनादि काल का इतिहास है। यह तो भगवान केवलज्ञानी बारोट हैं। दुनिया के नहीं कहते ? होते हैं न सबके कुल

के बारोट। सुन! तेरे कुल की बात। यह भगवान तीन काल—तीन लोक की बात जानते हैं। उन भगवान की वाणी में आया कि अरे, आत्मा! तेरा इतिहास तो सुन। तेरे बाप के बाप और सब आये अनन्त बार हुए। वे सब तेरे बाप मरकर अनन्त बार पड़े नरक में, तू गया मरकर नरक में, तेरी स्त्री मरकर गयी नरक में। ऐसे अनन्त भव किये। आहाहा! समझ में आया?

यह तो स्त्रीरूप से अनन्त बार हुआ और उसमें तेरा पति मर गया और नरक में गया अनन्त बार और तू भी फिर इकट्ठी हो गयी नरक में अनन्त बार। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? यह फिल्म बताते हैं। आहाहा! यहाँ जरा थोड़ा... मिले तो, आहाहा! हो जाये। अब अनन्त काल में एक यह दो, चार, पचास वर्ष, वर्ष कितने? पचास, साठ, सत्तर उसमें तो मानो। आहाहा! हम बढ़ गये, हमको ऐसा हो गया, हमने बाहुबल से पैसा प्राप्त किया और हमारे पिता नहीं रख गये थे, घर के फर्नीचर किये, कमरे किये, मकान बनाये, क्या कहलाता है सब? वस्त्र-बस्त्र समझे न?

मुमुक्षु : फर्नीचर।

पूज्य गुरुदेवश्री : फर्नीचर किये और यह सब भाई हमारे बाहुबल से हमने किया, पिता तो कुछ छोड़ नहीं गये थे। लो! परन्तु तूने क्या किया? न्यालभाई! आहाहा! मूढ़! तूने मिथ्यात्व के अज्ञानभाव किये। वह चीज़ तो उसके कारण से आनेवाली और आयी। यहाँ तो हमने यह किया। यह तो बात ऐसी करे, तब ऐसा चौड़ा होकर, आहाहा! उसमें पाँच, दस लाख मिले हों और बीस लाख मिले हों, ओहोहो! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। कहते हैं कि भाई! इस भ्रमणा में तूने ऐसे भव अनन्त बार भगवान को भूलकर किये। भगवान अर्थात् आत्मा, हों! आहाहा! देखो! यहाँ भाव है।

ऐसे अशुद्ध भाव नहीं हैं, जो इसके न हुए हों। देखो! है न? ऐसे पुण्यपरिणाम एक भी ऐसे नहीं कि जो इसे अनन्त बार न हुए हों, ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरगोत्र के भाव की बात अलग है। समझ में आया? उसमें आवे यह? क्या है? क्या है? भव नहीं, अशुद्धभाव आये, यहाँ भाव की बात चलती है। फें... फें... हो जाता है। भव की बात नहीं, अशुद्धभाव, उसमें पुण्य आया, ऐसा कहता हूँ। अशुद्धभाव कोई बाकी नहीं अर्थात् पुण्यभाव कोई बाकी नहीं, ऐसा। भव की बात नहीं, अभी लेंगे तो वापस।

अशुद्धभाव कोई नहीं बाकी, उसमें यह पुण्यभाव कोई बाकी नहीं कि तूने पुण्य अनन्त बार न किया हो। महाव्रत के भाव, दया-दान के भाव, करोड़ों रुपये के दान के भाव, समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम के मिथ्यादृष्टिरूप से आत्मा के भान बिना (किये)। ऐसा कोई पुण्यरूपी शुभभाव—अशुद्धभाव बाकी नहीं रहा। शुभभावरूप अशुद्धभाव बाकी नहीं रखा कि अनन्त बार न किया हो। कहो, अब वे कहे, शुभभाव से धर्म होता है। कल वे कहे, मिथ्यादृष्टि के शुभभाव से धर्मध्यान होता है। है न श्वेताम्बर में... उसे मानना। कुछ भान नहीं होता, यह वह क्या कौन जाने अन्धेरे में अन्धेरा।

यहाँ कहते हैं, अनन्त अवतार में, आत्मा जन्म-मरण, शरीररहित ऐसा तत्त्व है, उसके अनुभव के सम्यग्दर्शन बिना, इसने अशुद्धभाव, उसके दो प्रकार—पुण्य और पाप, उसमें पुण्य अशुद्धभाव ऐसा कोई बाकी नहीं रखा कि तूने नहीं किया। पुण्यभाव भी अनन्त बार अशुद्ध अनन्त बार किये। नौवें ग्रैवेयक में जाये, ऐसे पुण्य भी अनन्त बार किये और सातवें नरक में जाये, ऐसे पाप भी अनन्त बार किये। आहाहा! कहो, है भगवानजीभाई! यह अशुद्धभाव कोई बाकी नहीं रखा किये बिना। आहाहा! यहाँ तो जरा सा....

मुमुक्षु : पुण्यभाव से भव घटते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। हाँ, यह बात है। आत्मा वह पुण्य-पाप के रागरहित की चीज़ है। अखण्डानन्द ज्ञानानन्द सिद्धस्वरूप आत्मा का है। ऐसा आनन्दमूर्ति के भान बिना, सम्यक् बिना, उसके सेवन बिना, उसके आदर बिना, पुण्य-पाप के आदरभाव से मिथ्यात्वभाव में कोई भाव बाकी नहीं रखा। आहाहा! समझ में आया इसमें? इसमें तो एक जरा-सा कुछ मिले वहाँ... त्याग थोड़ा करे तो आहा! अपने बहुत त्याग किया। एक राग कुछ मन्दता का त्याग हुआ, ब्रह्मचर्य ले लिया या एक फलाना किया, हरितकाय का त्याग किया, (वहाँ) ओहोहो! सुन न! ऐसे भाव तो अनन्त बार किये हैं, नया कौनसा था? राग की मन्दता के अशुद्धरूपी पुण्यभाव अनन्त बार तूने मिथ्यादृष्टिरूप से किये, सम्यग्दर्शन का भान नहीं इसलिए। समझ में आया? है न? **इस तरह अनन्त परावर्तन इसने किये हैं।** लो! अनन्त परावर्तन / बदला किया। शरीर का बदला, क्षेत्र

का, काल का और भव का तथा भाव का। **ऐसा ही कथन मोक्षपाहुड़ में निश्चय मिथ्यादृष्टि के लक्षण में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है**—लो! गाथा है न?

'**जो पुणु परदव्वरओ**' उससे सुलटा। उसमें चौदहवीं थी। '**मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू। मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं॥**' वह चौदहवीं थी। '**सद्दव्वरओ**' यह १५ है। अज्ञानी जीव वह आत्मा के सम्यक् भान बिना वह द्रव्यकर्म—आठ कर्म के अभिमान किये, आठ कर्म जड़ ज्ञानावरणीय मिट्टी धूल आठ कर्म, वे मेरे... मेरे मानकर अनादि से लीन हुआ। भावकर्म, वह पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव में लीन हो गया (और) भगवान को—आत्मा को भूल गया। आत्मा पुण्य-पापरहित तत्त्व चिदानन्द ज्ञानमूर्ति सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा हुआ भगवान आत्मा, ऐसा आत्मा, उसे भूलकर इसने पुण्य और पापरूपी भावकर्म अनन्त बार लीन होकर किये। यहाँ लीन नहीं था तो वहाँ लीन है, ऐसा कहना है। समझ में आया? शुभाशुभभाव ऐसे जो अशुद्ध परिणाम, उनमें लीन हुआ और नोकर्म शरीर, ऐसे परद्रव्य में,... देखो! इन सबको परद्रव्य कहा। परद्रव्य कहा पुण्य-पाप के भाव दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा के भाव भी विकार हैं और परद्रव्य हैं, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! उसे परद्रव्य कहा। किसे? भावकर्म को यहाँ कहना है अधिक। द्रव्यकर्म, नोकर्म तो जड़ है, परन्तु यह तो पुण्य के परिणाम दया, दान, भक्ति, व्रत के परिणाम को परद्रव्य कहा। समझ में आया?

वे साधु के व्रत धारण करने पर भी... देखो! जैन साधु हो, हजारों रानियों को छोड़े, व्रत लिये हों तो भी वह उन व्रत के परिणाम पुण्य है, उसमें लीन है, इसलिए मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कन्हैयालालजी! है न, लिखा है, देखो स्पष्टीकरण किया। बाहर का क्रियाकाण्डी साधु हो, रानी छोड़े, स्त्री-पुत्र छोड़े, करोड़ों रुपये छोड़े, साधु हो, दया, दान, व्रत के परिणाम करे परन्तु वह परिणाम व्रत के परिणाम, वह शुभराग है, उसमें लीन है कि यह मेरा धर्म है, इसका नाम मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? है या नहीं इसमें लिखा? लिखा है? यह तो स्पष्टीकरण किया है, हों! टीका में लिखा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु इसका अर्थ लिखे न पूरा। '**परदव्वरओ**' की व्याख्या की। परद्रव्य में जो पुण्य परिणाम हैं व्रत के, ऐसा। इसमें पुण्य परिणाम जो व्रत

के हैं, वे धारण करने पर भी उनमें लीन था, इसलिए मिथ्यादृष्टि है, ऐसा स्पष्ट किया है। वह भावकर्म का स्पष्ट किया जरा। समझ में आया? भावकर्म, द्रव्यकर्म। परद्रव्य में लीन कहा न? पाठ। तो परद्रव्य की व्याख्या की कि द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म और भावकर्म। अब भावकर्म में स्पष्ट किया कि, क्योंकि उसमें गर्भ में समझे नहीं इसलिए। यह भावकर्म कैसा? कि व्रत धारण किये। यह पुण्य राग, वह भावकर्म, उसमें लीन हुआ, स्वद्रव्य की दृष्टि भूल गया। समझ में आया? गये हैं, प्रेमचन्दभाई गये हैं, राणपुर गये हैं। परद्रव्य... परद्रव्य (ऐसे) बिना भान के चल जाये। परद्रव्य की व्याख्या हो तब उसके तीन प्रकार पड़ते हैं। एक तो जड़कर्म आठ, एक तो शरीर और एक तो दया, दान, व्रत के परिणाम और हिंसा, झूठ, चोरी के भाव, उन सब विकार को परद्रव्य कहते हैं। अर्थात् उस परद्रव्य में ऐसे व्रत के परिणाम शुभभाव भी अनन्त बार हुए, उसमें लीन हुआ परन्तु उनसे रहित आत्मा हूँ, उसका उसने सम्यग्दर्शन का भान किया नहीं। इसलिए मिथ्यादृष्टिरूप से व्रत पालन किये, वह अनन्त बार भटका।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह पुण्यबन्ध का मार्ग है। यह मिथ्यादृष्टि उसे धर्म मानता है, इसलिए उसमें लीन हो गया, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कौन करता था? धूल। समझ में आया?

साधु के व्रत धारण करने पर भी मिथ्यादृष्टि ही हैं,... क्यों? कि, वह **सम्यग्दृष्टि नहीं...** क्योंकि वह पुण्य-पाप के भाव में लीन हो गया। यहाँ स्पष्ट स्पष्टीकरण किया। अब वे आठ कर्म, नोकर्म और पाप में लीन तो ठीक, परन्तु कोई कहे पुण्य में लीन हो, वह (क्या)? कि भाई! आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यमूर्ति है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान के भान बिना अज्ञानी व्रत धारण करे तो भी व्रत के परिणाम में लीन ही रहता है। उनसे पृथक् आत्मा का भान है नहीं। वह शुभराग है, उस शुभराग को वह धर्म मानता है, इसलिए उसमें लीन हो गया है। भगवान आत्मा वह शुभ और अशुभराग से भिन्न है, उसका उसे सम्यग्दर्शन का भान नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

और मिथ्यात्वकर परिणमते दुःख देनेवाले आठ कर्मों को बाँधते हैं। लो! ऐसे व्रत में लीन हो, वह मिथ्यादृष्टि आठ कर्म को बाँधे, ऐसा कहते हैं। यह तो स्पष्टीकरण किया। जिसे आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति सम्यग्दर्शन में अनुभव में आया नहीं, वह व्रत धारण करे तो भी वे व्रत के परिणाम राग की मन्दता के हैं, उनमें लीन होता हुआ मिथ्यादृष्टि नये आठ कर्म को बाँधता है। ऐसा कहते हैं, लो! वह व्रत के परिणाम में लीन हुआ, वह मिथ्यादर्शन आदि, दर्शनमोह आदि आठों ही कर्मों को बाँधता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा चैतन्यसूर्य भगवान ज्ञानानन्द का समुद्र आत्मा है। ज्ञान भगवान महिमावन्त पदार्थ और आनन्द जिसका अन्तर रूप, उसका अन्तर में भान सम्यग्दर्शन-अनुभव बिना उसमें वह लीन नहीं। इसलिए यह कहते हैं कि व्रतादि धारण करे तो वह शुभभाव में लीन होता हुआ मिथ्यादृष्टिरूप से दर्शनमोह आदि आठों कर्मों को बाँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो साधु के कहे न। क्या कहा यह? किसकी बात चलती है यह? पुण्य भाव कहा, साधु के व्रत कहता हूँ। महाव्रत कहता हूँ, फिर कितना समझना है तुम्हारे? महाव्रत, दया, दान के भाव, पंच महाव्रत के परिणाम कितनी बार आये? परन्तु वे साधु के व्रत हुए न, साधु हुआ न, लोग कहे न साधु। लोग क्या कहे उसे? साधु को ऐसे व्रत होते हैं, द्रव्यलिंगी को, मिथ्यादृष्टि को, ऐसा कहते हैं। ऐसे व्रत कहीं गृहस्थाश्रम में नहीं होते मिथ्यादृष्टि को, ऐसा कहते हैं। साधु अर्थात् कि यह बाहर साधु हुआ हो नग्न मुनि दिगम्बर और पंच महाव्रत बराबर पालता हो दया, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ऐसे भाव, परन्तु वह भाव है राग और उस राग में लीन है। क्योंकि राग से पृथक् आत्मा का भान नहीं, इसलिए राग में लीन मिथ्यादृष्टि आठ कर्म को दर्शनमोह आदि आठों को बाँधता है, ऐसा कहते हैं। यह तो उत्कृष्ट बात की न, सब नीचे के बोल हों, इसमें समाहित हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं।

श्रावक का नाम धरावे, बारह व्रत के परिणाम करे तो वे बारह व्रत के परिणाम तो शुभ हैं। दया, दान, भक्ति के परिणाम भी शुभ हैं। उन्हें धर्म माने अर्थात् उनमें लीन है। वह भी श्रावक नाम धराकर मिथ्यादृष्टि आठ कर्म को नया बाँधता है। दर्शनमोह

सहित आठों कर्म बाँधता है, ऐसा कहते हैं। यह गर्भित में आ जाता है। साधु की बड़ी बात करते हैं, नीचे (सब आ जाते हैं)। साधु अर्थात् इस लोक में साधु कहे न, लोग तो कहे न व्यवहार से। समझ में आया? कठिन बात है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह णमो लोए सव्व साहूणं में नहीं आते। समझ में आया?

फिर भी आचार्य ने मोक्षपाहुड़ में कहा है— मोक्षपाहुड़ नहीं, यह शब्द खोटा है। प्रवचनसार है, यह तो लिखा है। प्रवचनसार की गाथा है, वह तो उक्तम् कहा है उसमें, यह तो इन्होंने डाला, अर्थकार ने डाला। उसमें तो उक्तम् इतना। 'पुनः उक्तम्' बस। प्रवचनसार गाथा में कहा है।

जे पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिद्दिट्ठा।
आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणेयव्वा॥

प्रवचनसार, अध्याय दूसरा, गाथा दूसरी। क्या कहते हैं? **जो जीव परपर्याय में रत मिथ्यादृष्टि हैं,...** अर्थात् कि जो कोई आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प के राग भाव में लीन हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। **ऐसा भगवान ने कहा है,...** ऐसा भगवान तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञानी परमात्मा ने कहा है। पर पर्याय में रत है। पर अर्थात् पुण्य और पाप, शरीर आदि सब परपर्याय है। समझ में आया? उसमें रत है, लीन है। भगवान ज्ञानानन्द प्रभु की अन्तर अनुभव की दृष्टि नहीं, इसलिए उसमें उसका एकाग्रपना नहीं। इसलिए वह पुण्य के भाव में शुभभाव-अशुभभाव में लीन वर्तता है, उसे भगवान ने मिथ्यादृष्टि कहा है। समझ में आया? वह परसमय है, ऐसा।

और जो उपयोग लक्षणरूप निजभाव में लिप्त रहे हैं, वे स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानो। समझ में आया? जाननेवाला-देखनेवाला, जाननेवाला-देखनेवाला, ऐसे स्वभावस्वरूप आत्मा है। जाननेवाला-देखनेवाला उपयोग लक्षणवाला चैतन्य है, ऐसा भान करके उसमें स्थिर होता है, उसे स्वसमय अर्थात् आत्मा में आया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि की बात की। उस अन्तरात्मा को परसमय में डालते हैं न? उसमें यहाँ नहीं, यहाँ तो इसकी बात है।

दूसरे भाग में वह है। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' (समयसार, गाथा-२) उसमें यह है। जो कोई जीव, आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञान उपयोग चैतन्यलक्षणस्वरूप की रुचि-दृष्टि छोड़कर पुण्य-पाप के विकल्प में लीन एकाग्र वर्तता है, उसे भगवान ने मिथ्यादृष्टि कहा है, उसे परसमय कहा है। वह पर में वर्तता है, स्व में नहीं। वह स्व आत्मा में नहीं, पर में वर्तता है, इसलिए परसमय कहा। और जाननेवाला-देखनेवाला आत्मा है, जाननेवाला-देखनेवाला, वही आत्मा है, ऐसे जानने-देखने के लक्षणवाले आत्मा में जो दृष्टि वर्तती है, उसे स्वसमय सम्यग्दृष्टि कहा। वह आत्मरूप दृष्टि हुई, इसलिए आत्मा में वर्तनेवाला सम्यग्दृष्टि कहा। कहो, समझ में आया? **ऐसा जानो।** '**मुणेयव्वा**' है न? '**मुणेयव्वा**' शब्द है। उसे ऐसा जानो, ऐसा पाठ है न मूल पाठ में।

सारांश यह है कि जो परपर्याय में रत हैं, वे तो परसमय (मिथ्यादृष्टि) हैं... भगवान ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा में लीनता का जहाँ अभाव है, उसे पुण्य-पाप के विकल्प, राग और शरीर में जिसकी लीनता वर्तती है, उसे परसमय—आत्मा के अतिरिक्त परभाव में वर्तनेवाला मिथ्यादृष्टि कहते हैं। वह आत्मा स्वसमय के अतिरिक्त पुण्य-पाप के भाव में लीन, वह परभाव में, परसमय में, पर में वर्तता है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। **और जो आत्म-स्वभाव में लगे हुए हैं,...** '**आदसहावम्मि**' ऐसा है न पाठ। **आत्म-स्वभाव में लगे हुए हैं,...** भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य शुद्ध आनन्द में जिसकी अन्तरदृष्टि अनुभव की हुई है और सम्यग्दर्शन से वह आत्मा में लगा है अन्दर में, वह स्वसमय आत्मावाला सम्यग्दृष्टि हुआ। कहो, समझ में आया? परवाला, वह मिथ्यादृष्टि हुआ और स्ववाला, वह सम्यग्दृष्टि हुआ।

यह आत्मा अनन्त गुण की राशि प्रभु, उसमें अन्तर का अनुभव, अन्तर अनुभव की सम्यग्दृष्टि, उसमें वह दृष्टि पड़ी है अनुभव की, उसके झुकाव में एकाग्र है, इसलिए उसे स्व आत्मावाला स्वसमय कहा जाता है। और जो उसे भूलकर पुण्य और पाप, विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, शरीर आदि में जो परवस्तु में लीन है, परभाव में लीन है, उसे परसमय अर्थात् परभाव में वर्तनेवाला मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। बहुत संक्षिप्त व्याख्या। कहो, समझ में आया इसमें?

एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। उसी प्रकार आत्मा अपनी दृष्टि में सम्यक्

अनुभव में अन्तर... रागादि हो, हो, परन्तु दृष्टि में उनका वर्तन नहीं, उसमें रहना नहीं। दृष्टि अनुभव 'ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ' उसमें अन्तर झुका हुआ परिणमन है, वह स्वयं आत्मा में ही रहा हुआ है। उसे स्वसमय सम्यग्दृष्टि कहते हैं और उसमें नहीं, और पुण्य-पाप के अकेले विकल्प, शुभाशुभभाव... समझ में आया? परावलम्बी सब आचरण के भाव, उनमें वर्तनेवाला परसमय मिथ्यादृष्टि है। भगवान आत्मा का शुद्ध स्वभाव परमानन्द का स्वभाव, उसमें अन्तर दृष्टि से वर्तता है, वह सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि नहीं। अन्तिम योगफल। देखो! इस योगफल में वापस।

यहाँ पर आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से पराङ्मुख... ऐसा लिया है। मिथ्यात्व, यह लिया। ... आत्मज्ञान से विरुद्ध वह मिथ्यादृष्टि, ऐसा नहीं। भाई! यह वीतराग समकित पहले से ही है। पाठ में है न, '**स्वसंवित्ति**' है पाठ में। '**स्वसंवित्तिरूपाद्वीतराग**' सम्यग्दृष्टि। '**स्वसंवित्ति**' आत्मज्ञान—यह आत्मा ज्ञानानन्द, उसका अन्तर अनुभव का भान, ऐसा वीतराग सम्यग्दर्शन, उसे ही वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। उससे विरुद्ध मिथ्यात्व कहा। आत्मा का वीतरागी समकित, उससे विरुद्ध मिथ्यात्व, ऐसा कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह वे कहते हैं न, मिथ्यादृष्टि भले हो। परन्तु वीतराग सम्यग्दर्शन है आठवें में। अरे! भाई! परन्तु पहले से ही उठाया था न, पहले से नहीं कहा? परमात्मानुभूतिरूप श्रद्धा से विमुख। उससे पहले से उठाया है, सारांश में यह डाला। टीका में है न। परमात्मानुभूतिरूप प्रतिपक्ष, ऐसा लिया। यहाँ '**स्वसंवित्तिरूपाद्वीतराग**' सम्यक् के प्रतिपक्षभूत। दोनों एक ही बात है। समझ में आया? यह तो बहुत बोल लिये हैं। '**दृष्टिरभिप्रायो रुचिः प्रत्ययः श्रद्धानं यस्य स भवति मिथ्यादृष्टिः**' '**मिथ्या वितथा व्यलीका**' बहुत बोल लिये उल्टे।

यहाँ तो दो बात—एक, परमात्मा ज्ञानानन्दस्वरूप उसका अन्तर अनुभव का सम्यग्दर्शन (और) उससे विपरीत, वह मिथ्यात्वभाव। वह वीतराग सम्यग्दर्शन कहो या आत्मा की अनुभूति कहो, परमात्मा का अनुभव कहो, स्वसम्यग्दर्शन के अनुभव की दृष्टि कहो, सब एक ही बात है। उससे विपरीत वह मिथ्यादृष्टि, पुण्य-पाप में लीन, वह

मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यह तो वीतराग आया न। वीतराग आया था। वीतराग ही है, सुन न। राग में एकता नहीं, स्वभाव में एकता, वह वीतराग दृष्टि और वीतराग अनुभूति ही है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से... '**स्वसंवित्ति**' है न पाठ में। '**स्वसंवित्ति**' अर्थात् अपना ज्ञान। स्व अर्थात् आत्मा, उसकी '**संवित्ति**' अर्थात् ज्ञान। ज्ञान और वह ले साधारण ज्ञान। परन्तु साधारण तो... यह ज्ञान वीतराग समकित (सहित) कहा यहाँ तो। आत्मा अखण्ड ज्ञान चैतन्यमूर्ति के अनुभव का ज्ञान, ऐसी जो दृष्टि, वह वीतराग सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? उससे **पराङ्मुख जो मिथ्यात्व है, वह त्यागने योग्य है।** ऐसा मिथ्यात्वभाव छोड़नेयोग्य है। कहो, यह योगफल किया। ओहो!

भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान आनन्दघन का अनुभव करना, उसमें आत्मा ही आदरणीय है। यह मिथ्यात्व, जिसमें राग-द्वेष की लीनता, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह त्याज्य है, वह त्याग करनेयोग्य है। पहले उसका त्याग करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। त्याग आया न? उसके त्याग बिना दूसरा त्याग आया कहाँ से? पुण्य-पाप के राग में मेरापना ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और स्वभाव के मेरेपने का अभाव, ऐसा मिथ्यात्वभाव का त्याग (हो), तब उसे स्वभाव के अनुभव की दृष्टि, उसका आदर होने से मिथ्यात्व का त्याग होता है। मिथ्यात्व के त्याग के पश्चात् आत्मा में जितनी लीनता होती है, उतना अव्रत आदि का त्याग होता है। ऐसा है। पहले तो ऐसा मिथ्यात्व का त्याग करना चाहिए और आत्मा के ज्ञानानन्द के अनुभव की सम्यग्दृष्टि प्रगट करना चाहिए, ऐसी बात करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १२, शनिवार, दिनांक - २०-११-१९६५
गाथा - ७८-७९ प्रवचन - ५५

गाथा - ७८

आगे मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से यह जीव संसार-वन में भ्रमता है,... देखो! इसका मुख्य मुद्दा यह है। कहेंगे कर्म की शक्ति। समझ में आया? यह पहला शब्द है न ऊपर, '**मिथ्यात्वोपार्जितकर्मशक्तिं**' ऐसा पाठ है। मिथ्यात्व की व्याख्या ऊपर आ गयी है कि, **आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से पराङ्मुख जो मिथ्यात्व है,...** अन्तिम लाईन आ गयी ७७ में। उसका यहाँ शीर्षक बाँधा। आत्मा की शुद्ध चैतन्यस्वरूप दृष्टि निर्विकल्प, अन्दर सम्यग्ज्ञान ऐसा जो आत्मज्ञान, उससे विपरीत पुण्य-पाप के विकल्प, उनकी कुछ कीमत नहीं। वाणी, शरीर की कुछ कीमत नहीं। कीमत आत्मा ज्ञान, आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, शुद्ध निर्विकल्प अखण्ड आनन्दकन्द है, उसकी अन्तर की सम्यग्दर्शन की कीमत है। अन्तर अनुभव में उसका ज्ञान, उसकी प्रतीति, उसकी स्थिरता की कीमत है। उसका नाम उसे आत्मज्ञान कहा, उसका नाम वीतराग समकित कहा। समझ में आया?

जिसमें राग उठता है शुभ का, उसकी भी कीमत ज्ञानी को नहीं। क्योंकि राग आत्मा का स्वरूप नहीं। और वाणी निकले वह तो जड़ की है, उसकी तो कीमत ाानी को है ही नहीं। कीमत है आत्मज्ञान की। वह आत्मज्ञान वीतराग समकित है। उससे पराङ्मुख, वह मिथ्यात्व है। यह ऊपर आ गया है। समझ में आया? शुद्ध ज्ञानानन्द का अन्तर अनुभव में उसका ज्ञान होकर, उस आत्मजाति का ज्ञान होकर, आत्मा की जाति अखण्ड आनन्दकन्द का अनुभव होकर उसमें प्रतीति होना, उसका नाम वीतराग सम्यग्दर्शन और उसका नाम आत्मज्ञान। समझ में आया?

इसके अतिरिक्त इससे विपरीत एक विकल्प भी दया, दान, व्रत, भक्ति का उठता है, उसे अपना मानना, वाणी को अपनी मानना, शरीर को अपना मानना, अर्थात् कि

वाणी हैं, वह मैं बोलता हूँ, यह मेरी वाणी है, ऐसी मिथ्यादृष्टि को जो मान्यता है, वह मिथ्यात्व से उपार्जित कर्म, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? ज्ञान ज्ञाता चिदानन्द स्वरूप की निर्विकल्प अनुभव दृष्टि और ज्ञान से विरुद्ध जितना शुभ-अशुभराग या वाणी, देह, वे मेरे काम, मैंने किये, मैंने किये—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उस मिथ्यात्वभाव से उपार्जित कर्म, उसकी शक्ति भटकाती है, ऐसा यहाँ कहा जाता है। समझ में आया? शुरुआत यहाँ से की है। ऐसे **कर्मों से यह जीव संसार-वन में (भटकता) भ्रमता है,...**

७८) कम्मइँ दिढ-घण-चिक्कणइँ गरुवइँ वज्ज-समाइँ।
णाण-वियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडहिँ ताइँ॥ ७८ ॥

परन्तु यहाँ वजन यहाँ से लेना, हों! उन कर्म से वजन नहीं लेना। ऊपर शीर्षक क्या कहा है? वजन समझ में आता है? उसका दोर भगवान आत्मा अखण्डानन्द की दृष्टि और सम्यक् अनुभव बिना मिथ्यात्वभाव से बाँधे हुए कर्म, वे कर्म जीव को भटकाते हैं, ऐसी शक्ति... ऐसे स्वयं निमित्त हुआ है, वे बँधे हुए (कर्म) इसे भटकाने में निमित्त होते हैं, ऐसा कहना है। क्यों दाँत निकाले (हँसे)? उसमें उन कर्म का जोर आता है इसलिए?

मुमुक्षु : बात तो वहाँ से ली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कहाँ ली है? मिथ्यात्व से ली है न।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व द्वारा अनेक प्रकार के उपार्जन किये....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ से तो ली है बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गाथा नहीं? इस गाथा का उपोद्घात क्या है? ऊपर शीर्षक क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : टीकाकार भी इसका अर्थ करते हैं न। टीका इसका विस्तार है, इसका विस्तार वह स्वयं करते हैं कि यह कर्म क्यों हुए? कि मिथ्यात्वभाव से हुए।

आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य के भान बिना यह पुण्य-पाप के विकल्प, देह, वाणी मेरे—ऐसी मान्यता में एकाकार हुआ, उसे कीमत दी। उसने कीमत दी। पुण्य-पाप रागादि, देहादि मेरे, ऐसी कीमत दी मिथ्यात्वभाव में उसकी। ऐसे मिथ्यात्वभाव से बँधे हुए कर्म, उन कर्म के कारण भटकता है। शुरुआत यहाँ से आयी है।

अब यह कर्म कहते हैं। **'तानि कर्माणि'।** यहाँ तो वह दृढ़पना कहेंगे न, वह मिथ्यात्व का जोर... जोर था, ऐसा भाई यहाँ लेना है। क्या कहा, समझ में आया? कर्म को कठोर शब्द से वर्णन करेंगे। परन्तु उस कठोर में वह मिथ्यात्व का कठोरपना था, इसलिए। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- वे ज्ञानावरणादि कर्म... उसमें दर्शनमोहनीय इत्यादि आ गया। **ज्ञानादि गुण से चतुर...** भगवान आत्मा ज्ञान विचिक्षण है। ज्ञान विचिक्षण का अर्थ करेंगे अनन्त ज्ञान आदि सम्पन्न गुणसम्पन्न, आनन्दकन्द, निर्मलानन्द, सहजानन्दमूर्ति है। ऐसा आत्मा अपने भाव को—ऐसे स्वभाव को भूलकर जो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न किया, उससे बँधे हुए कर्म, ऐसे ज्ञान विचिक्षण भगवान आत्मा को वह कर्म गिराता है। समझ में आया?

इस प्रकार मिथ्यात्वभाव से निमित्त हुआ उसका चिकना कर्म है, वह इसे उल्टे भाव में वह इसे निमित्त होता है, ऐसा पारस्परिक लेना है। ज्ञान विचिक्षण जीवडो। यह भगवान आत्मा तो ज्ञान का पिण्ड, ज्ञानपुंज है बस। उसमें कोई व्रत, दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम उसमें है ही नहीं। समझ में आया? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी वस्तु में नहीं। ऐसा ज्ञान विचिक्षण जीवडो प्रभु चैतन्य ज्ञान, केवलज्ञान कन्द, उसने ऐसे स्वभाव की इतने जोर से उल्टी मान्यता की है। इतने जोर से उल्टी मान्यता की है, इतने जोर से कर्म जो बँधा। वह कर्म कैसा है? ऐसा कहते हैं, देखो! **खोटे मार्ग में पटकते (डालते) हैं।** स्वयं खोटे मार्ग में गया पहले, उससे बँधे हुए कर्म, वे खोटे मार्ग में पतन करते हैं। दोनों ऐसे ले लिया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा सत्पुरुष बिना कौन कर सके?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु स्वयं पुकार करती है और लिखते हैं। न्यालभाई कुछ

कहते थे न भाई! उसमें है, उसका अर्थ करते हैं। न्यालभाई! भाई! तुम्हारे हाथ में है, पृष्ठ है या नहीं? कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान ज्ञानमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा। इसके अतिरिक्त एक विकल्प उठना, उसका आत्मा स्वामी नहीं। जड़ की क्रिया देह, वाणी का आत्मा स्वामी तीन काल—तीन लोक में नहीं। ऐसा नहीं जाना हुआ और इतना ही उल्टा माना हुआ। जो विचिक्षण केवलज्ञान कन्द आत्मा है, उतने ही जोर से इसने पुण्य और पाप के विकल्प, देह, वाणी, मन, कर्म वे सब 'यह मैं, यह नहीं, यह मैं, यह इतना नहीं, इतना मैं'—ऐसे मिथ्यात्व के जोर से बँधे हुए कठोर कर्म, उस खोटे मार्ग में गया था, (तब) बँधे हुए कर्म इसे खोटे मार्ग में पटकते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

भ्रमणा में चढ़ जाये भ्रमणा में। कितनी बार ज्ञान का उघाड़ थोड़ा हो, राग कुछ हो, वाणी कुछ हो, शरीर अच्छा हो, उसे ऐसा हो जाये कि आहाहा! अपने को बहुत मिला। समझ में आया? वह मिथ्यात्व मार्ग है, कहते हैं। उस मिथ्यामार्ग में बाँधे हुए कर्म, वे वापस उसे मिथ्यामार्ग में पटकते हैं, वहाँ उसे अभिमान कराते हैं, पछाड़ते हैं। अल्प ज्ञान का उघाड़, उसमें यह मैं, यह मैं, यह मैं। ज्ञान विचिक्षण जीवडो, केवलज्ञान कन्द, पूर्णानन्द, उससे अल्प ज्ञान का अभिमान, राग का अभिमान, शरीर की क्रिया यह मेरी, यह मैं—ऐसे मिथ्यात्वभाव से बाँधा हुआ चिकना, कठोर। चार शब्द लेंगे कठोर। **'दृढानि बलिष्ठानि घनानि निबिडानि चिक्कणान्य'** इतने शब्द लेंगे। है न, पाठ में ही है न परन्तु। **'दिढ-घण-चिक्कणइँ गरुवइँ वज्ज'**। हेतु है उसमें। इतने जोर से इसने मिथ्यात्व किया हुआ है। समझ में आया?

यह ज्ञान का पुंज आत्मा अकेला चिदानन्द घन। एक समय में जिसमें अनन्त परमात्मा रहे हुए है। अनन्त सिद्ध की पर्याय अनन्त... अनन्त... हो, वे अनन्त परमात्मा जिसके पेट में रहे हैं। एक समय का सिद्ध भगवान ऐसे अनन्त समय के अनन्त सिद्ध वे आत्मा में वे अनन्त सिद्ध एक समय में अभी रहे हुए हैं। ऐसे पूर्ण परमात्मा को इस प्रकार से न स्वीकारकर, उसे जोर से अल्प ज्ञान, राग और निमित्त में जोर दिया कि, इतना मैं, इतना मैं। ऐसे अनन्त परमात्मरूप भगवान ज्ञान विचिक्षण जीवडो, उसे इतना मैं, (ऐसा मानकर) उसका इतना जोर मिथ्या अभिप्राय में दिया, उससे बँधे कर्म ऐसे

चिकने हुए, कहते हैं। देखो! वे **खोटे मार्ग में पटकते हैं।** आहाहा!

कैसे हैं, वे कर्म बलवान हैं,... वे कर्म बलवान हैं। यहाँ उल्टा बलवानपना दिया। यहाँ तो जोर यहाँ से कहना है। बल से जोर दिया था कि, मैं इतना ही हूँ, अल्प ज्ञान की पर्याय बस... बस ओहोहो! राग, पुण्य का भाव बस, अब बाद में क्या? वाणी, देह, ओहो। मेरी वाणी, मेरी देह। समझ में आया? ऐसे बलवान जोर से मिथ्यात्व के भाव को सेवन किया हुआ, उतना ही बलवान कर्म में रस पड़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसकी कीमत आँकनी चाहिए, उसकी कीमत नहीं की। कीमत तो ज्ञानानन्दस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की कीमत आँककर अन्दर में अनुभव में सम्यग्ज्ञान और दर्शन प्रगट करना चाहिए। ऐसी कीमत न आँककर, कीमत आँकी वर्तमान ज्ञान के उघाड़ भाव की थोड़ी, थोड़ा उघाड़, राग, निमित्त की कीमत आँककर मिथ्यात्वभाव का जोर दिया, जिसकी कुछ कीमत नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा बलवान कर्म बँधा। कैसा है? **बहुत है,...** समझ में आया? **'दृढानि बलिष्ठानि'। विनाश करने को अशक्य हैं, इसलिए चिकने हैं, भारी हैं, और वज्र के समान अभेद्य हैं।** इतने नाम दिये। समझ में आया?

यह सब इस ओर से यहाँ मैं लेता हूँ, हों! भाई! यहाँ से इतना जोर किया हुआ, इतने जोर के कर्म (बँधे)। परन्तु उसकी पर्याय में निमित्त, निमित्त ऐसा हुए बिना, उसके उपादान में ऐसा रस और योग्यता कहाँ से हो? समझ में आया? आहाहा! पोपटभाई दाँत निकालते हैं, यह कहते हैं कर्म की शक्ति। ऐसा नहीं, लिखा है ऐसा। समझ में आया? **'णाण-वियक्खणु जीवडउ'** ऐसा है न! उसका—विचिक्षण का अर्थ करेंगे अन्दर, हों! ज्ञान विचिक्षण जीव समझे न? अनन्त गुण विचिक्षण ऐसा लेंगे वापस। पहले साधारण अर्थ करके ज्ञान कैसा है? अनन्त गुण विचिक्षण दक्ष। भगवान आत्मा जिसका एक ज्ञान गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अमाप एक ज्ञानगुण में अनन्त परमात्मा स्थित हैं केवलज्ञान की पर्यायवाले परमात्मा। एक ज्ञानगुण में केवलज्ञान की पर्याय परमात्मा की, ऐसे अनन्त परमात्मा एक गुण में स्थित हैं। समझ में आया?

ऐसे-ऐसे अनन्त गुण, एक दर्शनगुण में अनन्त दर्शन शक्ति के परमात्मा स्थित है। उस श्रद्धागुण में परम अवगाढ़ समकित की पर्याय के परमात्मा स्थित हैं। एक

यथाख्यातचारित्र की पूर्ण स्थिरता, वह चारित्र के एक गुण में है, ऐसी स्थिरता, अनन्त काल की केवली की अनन्त स्थिरता, वह सब पड़ी है। ऐसा जो अनन्त गुण का पिण्ड भगवान आत्मा, उसे भूलकर, उसे भूलकर और एक पर्यायबुद्धि में... उस द्रव्यबुद्धि को इतनी प्रतीति और ज्ञान चाहिए, उसे भूलकर। यहाँ तो पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि, द्रव्यदृष्टि समकित, भाई! इस प्रकार से बात उठायी है। समझ में आया?

आज जरा वह याद आया। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ भगवान पूर्णानन्द प्रभु का सम्यग्दर्शन। भूतार्थ भगवान, उससे अभूतार्थ एक समय की पर्याय, राग, निमित्त सब अभूतार्थ है। समझ में आया? उसमें जोर दिया। मिथ्या अभिप्राय से, मिथ्या श्रद्धा से, उस जोर में यह सब भाव पड़े थे चिकने होने के, दृढ़ होने के, बलवानपने के। समझ में आया? उसके कारण सामने कर्म भी ऐसे बँधे। ओहोहो!

भावार्थ :- यह जीव एक समय में... देखो! **लोकालोक के प्रकाशनेवाले केवलज्ञान आदि का अनन्त गुणों से बुद्धिमान चतुर है,...** भगवान आत्मा महा चतुर। जिसकी एक पर्याय में लोकालोक जाने ऐसा चतुर, एक पर्याय में लोकालोक सामान्य देखे, ऐसा चतुर। अनन्त आनन्द जिसकी एक समय की पर्याय में प्रगट (हो), ऐसा महा आनन्दित आत्मा। ऐसे अनन्त गुण का धनी भगवान। ऐसा बुद्धिमान चतुर, लो! बुद्धिमान डाला। समझ में आया? यह चतुर की व्याख्या की। ऐसे स्वभाववान को विपरीत मान्यता से इतने ही विरुद्ध की मान्यता से बाँधे हुए कर्म से ऐसे स्वभाव को भी नीचे गिरा दिया। समझ में आया? आहाहा!

तो भी इस जीव को वे संसार के कारण कर्म ज्ञानादि गुणों का आच्छादन करके... देखो! भगवान ज्ञानमय प्रभु, आनन्दमय प्रभु अकेला शान्तरस का पिण्ड, कषाय के एक अंशरहित पूरा तत्त्व ऐसा भगवान, उसने उल्टे भाव से बाँधे हुए कर्म, उसे उल्टे भाव में पटक देते हैं एकदम। समझ में आया? **अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विपरीत...** देखो भाषा! देखो! इसमें भेदरत्नत्रय की व्याख्या नहीं करे। अकेला अभेदरत्नत्रय निश्चयमोक्षमार्ग, ऐसा कहेंगे। और उसमें न्याय देंगे कि वह उपादेय है। यदि कर्म से ही होता हो, तब तो फिर यह उपादेय करने का इसे प्रसंग नहीं

रहता। अन्त में है न, भाई! उपादेय। यह कर्म में जितना स्वयं ने उल्टा जोर दिया था, उतने ही जोर से इसे उस ओर जोर देने पर उतना ही आत्मा को नीचे गिरा देते हैं। परन्तु उस काल में भी जो आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र अखण्डानन्द प्रभु के अभेदरत्नत्रय को प्रगट करे तो, वह आत्मा उपादेय है और वह (कर्म) हेय हो जाता है। ऐसा अवकाश रखकर बात की है। समझ में आया?

अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विपरीत... क्या कहा? भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड अभेद वीतराग अकेला वीतराग-विज्ञानघन, जिसमें राग के अंश का अवसर नहीं, अल्प ज्ञान का जिसमें अवसर नहीं। वह तो पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... है। उसकी पूर्ण की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, ऐसा अभेदरत्नत्रय। उससे उल्टे मार्ग में यह कर्म का उदय वह उल्टा पड़ा हुआ, उल्टे कर्म उल्टे में गिरा डालते हैं। समझ में आया? आहाहा! कभी कर्म का नम्बर आया, ऐसा भाई कहे, प्रेमचन्दभाई ऐसा कहते हैं। कभी नम्बर आवे वहाँ बदल डाला। कभी मुश्किल से नम्बर आवे निमित्त का और कर्म का। नम्बर नहीं आया, स्वयं इसने आत्मा अपने अखण्ड अभेद स्वभाव को माना नहीं। राग को, कर्म को और पर्याय के अंश को ही पूरा माना है। यह पूरा माना वही पर्यायबुद्धि, वही महामिथ्यात्व भाव है। समझ में आया? आहाहा! इस मिथ्यात्व भाव के जोर की चिकनाहट के वज्र जैसे भाव से कठोर... छोटाभाई! अब यह क्या अर्थ करते हैं, ऐसा कहते हैं कितने ही। देखो न, यह क्या कहा?

अभेदरत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग से खोटा मार्ग—उन्मार्ग। आहाहा! वर्तमान संयोग की ओर के उघाड़ का भाव, संयोगी श्रद्धा और संयोगी विकारी भाव, उसकी जिसे कीमत कराते हैं, ऐसे वे कर्म हैं, ऐसा कहते हैं। चैतन्य की अभेद कीमत छुड़ा देते हैं। स्वयं ने छोड़ी थी, इसलिए कर्म बाँधे और छुड़ा देते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अभेदरत्नत्रय ऐसा मोक्षमार्ग, देखो! एक ही मोक्षमार्ग, हों! उसमें वापस उस भेदरत्नत्रय को यहाँ निकाल दिया है। ऐसा जो सच्चा मोक्षमार्ग, भगवान अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु के अन्तर का उसका ज्ञान—आत्मा का ज्ञान, आत्मा की श्रद्धा, आत्मा की स्थिरता—ऐसा अभेदरत्नत्रय मोक्षमार्ग, ऐसी जो कीमती चीज़, उससे (विपरीत) कर्म के कारण से, यह कर्म उसे नीचे गिरा डालता है, कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वस्तु ऐसी है। चिल्लाहट मचाये ऐसा है। अररर! लोप हो जाता है यह सब, व्यवहार का लोप (हो जाता है)। यहाँ तो शास्त्रज्ञान की भी कीमत नहीं। शास्त्रज्ञान की कीमत कैसी? आत्मज्ञान और आत्मदर्शन की जो प्रतीति और अनुभव, उसकी कीमत है। वह कीमत न करके यह शास्त्रज्ञान की, बाहर की श्रद्धा की और राग की तथा निमित्त की जिसने बहुत जोर देकर कीमत की है, उस मिथ्यादृष्टि ने बाँधे हुए कठोर कर्म उसे अभेदरत्नत्रय से गिरा देते हैं एकदम, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नेमिदासभाई! निमित्त किसने दिया था जोर का?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जोर यहाँ भाव करता है जोर वाला, उसमें वह निमित्त होता है, ऐसा कहना है। दोनों एक भाग कर डालना है। यह कर्म और उल्टी मान्यता दोनों एक हैं, एक है अर्थात् उसने कराया, ऐसा। आत्मा में कहाँ है? ऐसा यहाँ कहना है। मिथ्यात्वभाव आदि आत्मा में कहाँ है? रागभाव वह आत्मा में कहाँ है? आत्मा में नहीं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और ऐसा जो कर्म, वह सब कर्म से यह गिराते हैं ऐसा यहाँ कहा जाता है। आत्मद्रव्य से गिरता है वह? और आत्मद्रव्य से कर्म में बन्धन में निमित्त हुआ जाता है? समझ में आया? वस्तु भगवान ज्ञानानन्द, पूर्णानन्द प्रभु ऐसे द्रव्यस्वभाव से कर्म में निमित्त होगा?

ऐसा भगवान आत्मा जिसकी—वस्तु की कीमत करनी चाहिए, वस्तु का ज्ञान होना चाहिए, वस्तु में स्थिरता होना, ऐसी कीमत होना चाहिए। उसकी अपेक्षा दूसरी कीमत इसने गिनी अन्दर में। समझ में आया? या शास्त्र के ज्ञान की कीमत गिनी, या वाणी की कीमत गिनी, या शरीर की कीमत गिनी। यह कीमत गिनी, इसलिए इसका मिथ्यात्वभाव हुआ। आहाहा! उससे स्वयं बड़ा हूँ, ऐसा माना। ऐसे द्रव्यस्वभाव महान है, ऐसा दृष्टि में माना नहीं। भूल इसकी की हुई इसे अवरोधक हुई, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! गोपालभाई!

स्वयं ने जोरदार उल्टा भाव सेवन किया हुआ। उसके जितने बोल कहे हैं, उतना

जोर सेवन किया हुआ। आया कहाँ से उपादान में? उसे निमित्त तो यह था न, उपादान तो उसका रस है, परन्तु निमित्त तो ऐसा था। ऐसे ही रसवाला चिकना भाव भारी वज्र जैसा। क्या कहा? समझ में आया? दृढ़, बलवन्त, घन वह सब। यहाँ घन घन भगवान था, उससे उल्टे भाव किये हुए। उससे बाँधे हुए यह परमाणु की पर्याय हुई, उसके उदय में ऐसा भगवान, तथापि उन्मार्ग में डालता है, खोटे मार्ग में कर्म ले जाता है। उसके लक्ष्य से हुआ, वह खोटे मार्ग में जाता है। आत्मा के लक्ष्य से नहीं, वह खोटे मार्ग में जाये, जाये ही। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? कहो, जमुभाई!

अर्थात् मोक्ष-मार्ग से भुलाकर भव-वन में भटकाते हैं। समझ में आया? '**उन्मार्गे**' है न? उन्मार्ग, उन्मार्ग। उसे वे मना लेते हैं। कर्म मनवा लेते हैं, ऐसा कहा। मानता है यह स्वयं, परन्तु कर्म उसे उल्टे मार्ग में मनवा लेते हैं। समझ में आया? उल्टी श्रद्धा... भगवान अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यमूर्ति की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, वह अभेदरत्नत्रय मोक्षमार्ग। उससे विपरीत-उल्टे भाव से भेदज्ञान का अंश, राग, निमित्त आदि भेद भाव को अपने जोर से ही उतना मैं, वही मैं, वही मैं... ऐसे मिथ्यात्वभाव से बँधे हुए कर्म, उसे निमित्त में आत्मा जुड़ने से उससे गिरता है। यहाँ नहीं जुड़ता, इसलिए (गिरता है)।

यहाँ यह अभिप्राय है कि संसार के... देखो, अब लेंगे। **संसार के कारण जो कर्म और उनके कारण मिथ्यात्व रागादि परिणाम हैं, वे सब हेय हैं,...** कब हेय हों? वह करा दे तो फिर हेय तो होने का समय रहे नहीं। स्वयं उसे मानता कर्म के उदय के जोर में, उसका जोर जाता, उसे कहते हैं कि भाई! यह तुझे भटकाता, अब उसे हेय जान। छोड़, हेय है। भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति, अखण्ड आनन्द प्रभु आत्मा की अन्तर दृष्टि करके, उसे (कर्म को) हेय जान। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! संसार का कारण कर्म। भाई! यदि उससे हो तो कर्म भटकाया करेंगे, हेय जानने का समय इसे रहेगा नहीं। परन्तु इसने जिसे उपादेय माना था, उसे हेयरूप से मान, यह तेरे अधिकार की बात है। समझ में आया? इसका अर्थ यह आ गया कि, वह कर्म का जोर, उसमें उपादेयपना माना था, इसलिए वहाँ उसके कारण से गिरा, ऐसा कहने में आया था। समझ में आया? इसे कोई मारे तो प्रसन्न हो, यह गजब! कोई मारे तो प्रसन्न हो। हा! यह

भटकाता है, हा! कर्म परद्रव्य भटकावे। हा! यह तेरी प्रसन्नता किस प्रकार की? जड़ कर्म तुझे मारे? कि, हा! परन्तु तू तेरे उल्टे भाव से मरे, तब जड़कर्म मारते हैं, ऐसा कहने में आता है, सुन न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसे कहाँ खबर है? वह तो तू निमित्त हुआ था, ऐसा ही तू निमित्त बना, उसे निमित्त बना ऐसा। तू जैसा निमित्त उसे हुआ था, उस प्रकार से उसके उदय काल में तू उसे निमित्त बना, तब उपादेय माना उसने तो। समझ में आया? ऐ... राजमलजी! यह कहते हैं कि, अर्थ करने की पद्धति में अन्तर है। परन्तु यहाँ क्या कहा अन्त में? पहले शीर्षक बाँधा था यहाँ से और अन्त में वापस क्या कहा? कि, उसे हेय जान। हेय किस प्रकार से जाने यह? वही जब कराया करे, वही करावे तो हेय जानने का अवसर कहाँ रहा इसे? परन्तु स्वयं अपने आत्मा को भूलकर कर्म के निमित्त में भाव में उपादेयपना मानता था, इसलिए अब छोड़ और उसे हेय मान, ऐसे उपादेय मान। समझ में आया?

भटकाते हैं। यहाँ यह अभिप्राय है कि संसार के कारण जो कर्म (निमित्त) और उनके कारण मिथ्यात्व रागादि परिणाम हैं,... है न? विपरीत मान्यता और राग-द्वेष के परिणाम, **वे सब हेय हैं,...** सब हेय। इसका अर्थ हुआ कि, उन सबको तू उपादेय मानकर भटकता था यहाँ, उसे—आत्मा को उपादेय मानकर उन्हें हेय जान, लो! ऐसा यहाँ योगफल यह है। समझ में आया? बादशाह भगवान, परन्तु उसकी इसे (खबर नहीं)। यह पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... वह क्या होगा कौन जाने पूर्ण? यह सब। इसलिए कहते हैं कि अब तू जिसे उपादेय मानकर भटका, उसने उससे भटकाया, ऐसा कहने में आया। अब उसे तू तेरे अधिकार से हेय जान। तेरे अधिकार से ही तूने उसे उपादेय माना था। समझ में आया?

वे सब हेय हैं,... सब हेय कहा है न! समझ में आया? ज्ञान उपादेय कहा न यह? इसका अर्थ वह हेय हो गया। '**उन्मार्गे पातयन्तीति। अत्रायमेवाभेदरत्नत्रयरूपो निश्चयमोक्षमार्ग उपादेय**' ऐसा। इसके अन्दर से निकाला। अर्थ तो इसमें से निकाला

भाई इसमें। इसका अर्थ हुआ कि तू ऐसा मानता था, उसे उपादेयपने के जोर में। बदल डाल अब, इसे उपादेय मान तो वह हेय हो जायेगा, ऐसा। समझ में आया? कौन? **अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग है,...** देखो! भगवान आत्मा एक स्वरूप से प्रभु अनन्त गुण की राशि, ध्रुव वस्तु की अन्तर्मुख की प्रतीति सम्यग्दर्शन, उसे ज्ञेय बनाकर उसका ज्ञान—आत्मा का ज्ञान, उसमें स्थिर होकर आंशिक चारित्र—ऐसा अभेद रत्नत्रय, वही मोक्षमार्ग है। वह उपादेय है। उसे प्रगट करने की अपेक्षा से उपादेय है। उपादेय तो द्रव्य है, परन्तु यह प्रगट जो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष करता है, उन्हें हेय जानकर; यह प्रगट करनेयोग्य यह है, इसलिए उपादेय जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

गजब बात परन्तु! लोगों को यह कोलाहल.. कोलाहल हो गया है। अरे! भगवान! बापू! यह कोलाहलरहित चीज़ है यहाँ तो। यहाँ तो आहाहा! ग्यारह अंग और नौ-नौ पूर्व के पठन की भी कीमत नहीं। ग्यारह अंग और नौ पूर्व के क्षयोपशम की कीमत कुछ जरा भी फूटी बादाम जितनी नहीं। कलश में आ गया था न पहले। समझ में आया? आहाहा! ऐसे व्यवहार श्रद्धा का विकल्प है, उसकी कोई कीमत नहीं और राग की मन्दता की चैतन्य के समक्ष कुछ कीमत नहीं। तो उसके समक्ष वाणी और शरीर की कीमत कहाँ से हो? आहाहा! समझ में आया?

अभेदरत्नत्रय की कीमत है, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? यह उपादेय कहा, उसका अर्थ कि वह प्रगट करनेयोग्य यही है। ये मिथ्यात्वादि, कर्मादि हेय करके, अर्थात् 'हेय करके' तो उसे उपदेश में लिखा, परन्तु यहाँ आत्मा यह अखण्ड आनन्द की प्रतीति, अनुभव में उसका ज्ञान और उसकी लीनता बस, वही ग्रहण करनेयोग्य है, वही प्रगट करनेयोग्य है, बाकी कोई प्रगट करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? इसमें तो व्यवहार समयग्दर्शन, व्यवहारिक ज्ञान शास्त्र का या व्यवहार से राग की मन्दता का आचरण उपादेय नहीं, प्रगट करनेयोग्य नहीं, ऐसा हुआ इसमें। आहाहा! ऐ... छोटाभाई! नास्ति में आ गया, यह प्रगट करनेयोग्य नहीं। हो, हो, परन्तु प्रगट करनेयोग्य नहीं। आहाहा!

यह तो परमात्मप्रकाश है। भगवान आत्मा स्वयं ही परमात्मा है। एक अंश में कमी वस्तु में, द्रव्य में नहीं। ऐसे परमात्मा को अन्तर अभेद दृष्टि, ज्ञान और शान्ति से, जो मोक्ष का मार्ग, वही प्रगट करनेयोग्य है, वही उपादेय है, वही मोक्ष का वास्तविक

कारण है। पर्याय की अपेक्षा से। समझ में आया? यह ७८ (गाथा) हुई। देखो! इसमें पहले और अन्त में सब आत्मा आया है, हों! विपरीतता में भी आत्मा और सुलटे में भी आत्मा की दशा प्रगट करना, यह दो बातें आ गयीं। कर्म का बीच में डालकर यह... आहाहा! एक छोटा लड़का गाली देकर चला जाये तो इसे ठीक न लगे और यहाँ वह कर्म हैरान करे तो कहे, हा! यह देखो आया या नहीं इसमें? जड़ ने तुझे मार डाला। कि हाँ, देखो आया या नहीं? भगवान कहते हैं। यह मार डाला तूने उल्टा करके तुझे तूने मार डाला, सुन न! भगवान पूर्णानन्द का स्वभाव, उसकी दृष्टि नहीं की, तूने पूरे चैतन्य जीवन को मार डाला। अल्प ज्ञान, विपरीत श्रद्धा, राग-द्वेष आदि के परिणाम को मानकर पूरे आत्मा के जीवन पूर्णानन्द को तूने रौंध डाला। उससे बँधे हुए कर्म, उससे रौंधा गया, ऐसा कहा गया है। आहाहा! देखो! हमारी बात आयी या नहीं? परन्तु ...! तुझे मार डाला कर्म ने, यह बात मेरी आयी, उसमें तू क्या कहता है? जड़ ने तुझे मार डाला, अजीव ने तुझे मार डाला, इस बात में तू प्रसन्न होता है। परन्तु उल्टा यह उसे ठीक पड़ता है। उसे शास्त्र में से निकालना ठीक पड़ता है। घनघाति। यहाँ घन शब्द आया न, इसलिए वापस वह घनघाति कर्म याद आया। घन कर्म बँधा है न वहाँ। परन्तु ऐसा ही घन यहाँ कठोर विकार इसने किया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तुझे करनेयोग्य हो तो यह एक है। पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा, उसके अन्तर में अनुभव में अनुभव करके, उसकी प्रतीति—सम्यग्दर्शन करके और उसमें स्थिरता करना, वही तुझे करनेयोग्य है, बाकी सब बातें थोथा है। समझ में आया? आहा! लो! यह तो और याद आया कि व्यवहार का उपदेश देते नहीं कहा न भाई कल? कि, इसमें तो इनकार करते हैं, इसमें तो कहते हैं, ऐसा उपदेश भी निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट करना, ऐसा कहना, ऐसा आया या नहीं इसमें यह? ऐई! वह तो बीच में व्यवहार आता है, उसका उत्साह क्या? समझ में आया? निश्चय स्वरूप के अनुभव, दृष्टि, स्थिरता में पूर्ण न हो, वहाँ बीच में व्यवहार आता है, उसका उत्साह क्या? उत्साह है, उसे स्वभाव का आदर नहीं। समझ में आया? उसमें ऐसा जोर देने जाये कि यदि ऐसा व्यवहार हो तो यहाँ निश्चय हो। जोर खोटा हो गया। समझ में आया? मार्ग अजब है, भाई! वीतरागमार्ग, वह कहीं आली दुआली (का मार्ग) नहीं। आहाहा!

कहते हैं, व्यवहार का उपदेश, भाई! वह वाणी में भले आता हो, वह वाणी कहाँ इसकी है? वाणी मैं करूँ, यह कहाँ आत्मा में है? विकल्प भी मैं करूँ, यह वस्तु में नहीं, फिर वाणी मैंने की, यह वस्तु में कहाँ थी? आहाहा! ऐसी वाणी निकल गयी, ऐसा कहते हैं। आत्मा को अभेदरत्नत्रय, वह उपादेय है, ऐसा निकलेगा। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उस भेद के भाव व्यवहार करे, करना, हों! करनेयोग्य है। उसमें प्रसन्न हो जाये। हा! अब आया उसका सच्चा ज्ञान।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक कहते हैं, हों! मक्खन में, वह छाछ इतनी भरी हो और मक्खन तो इतना हो और छाछ हो दो मण की बड़ी कोठी भरी हुई। और कलश... कलश दे तो सब ले जाये, गाँव में सब प्रसन्न हो, लो! बात सच्ची इसकी, हों! इसके घर में इसकी माँ ने किया हुआ है न! बहुत लेने आवे, माँ! छाछ दो, माँ! छाछ देना। ले, ले जा। ... ले जा भाई ले जा। सब प्रसन्न हों और मक्खन रहे घर में इतना।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! तू तो अखण्डानन्द प्रभु है न, भाई! तेरे अनुभव की दृष्टि करके, ज्ञान करके स्थिर होना, एक ही बात है यहाँ। बीच में व्यवहार आवे, उसका उत्साह नहीं होता और उसे स्थापित करने पर भी ऐसा लगे कि, यह, यह करनेयोग्य। व्यवहारनय के कथन में आवे, वह तो है ऐसा बतलाने के लिये, परन्तु करनेयोग्य... कल आया था अपने, नहीं? भाई! वर्तमान आलोचना में। शुभाशुभभाव को मैं करता नहीं, कराता नहीं, करते हुए मैं सम्मत होता नहीं। मैं उसमें सुख मानता नहीं। शुभभाव कोई करता हो, उसे मैं कराता नहीं, मैं करता नहीं और (कोई) करता हो, उसे ठीक सुख मानूँ नहीं। क्योंकि वह तो दु:ख है। कठिन बात है, भाई! समझ में आया? इसका नाम आलोचना और संवर कहते हैं। आया था न? कन्हैयालालजी! दोपहर में कल।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश तो देता ही है कौन? वह तो वाणी है, उपदेश ही कहाँ आत्मा का था। उपदेश आत्मा कौन दे? वह तो वाणी जड़ की है। जड़ को बोले कौन? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग एक ही उपादेय है। है तो उपादेय आत्मा, परन्तु प्रगट करनेयोग्य हो तो यह एक ही बात है, दूसरी नहीं, इस अपेक्षा से बात की है। व्यवहारमोक्षमार्ग बीच में आता है, वह उपादेय नहीं न, ऐसा हुआ न? प्रगट करनेयोग्य भी नहीं, ऐसा हुआ इसमें आया अर्थ। आ जाये, (वह) अलग बात है, प्रगट करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। गजब मार्ग है बापू! वीतराग का मार्ग। ७८ गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ७९

आगे मिथ्यात्व परिणति से यह जीव तत्त्व को यथार्थ नहीं जानता, विपरीत जानता है, ऐसा कहते हैं— देखो, आया न? मिथ्यात्व परिणति से, हों! मिथ्यात्व परिणति के कारण से, अपनी विपरीत मान्यता के कारण से, ऐसा वापस आया। कर्म के कारण से नहीं। मिथ्यात्व परिणति—विपरीत मान्यता के कारण से यह जीव तत्त्व को यथार्थ नहीं जानता। कर्म के कारण से, दर्शनमोहनीय के कारण से यहाँ तत्त्व को यथार्थ नहीं जानता, ऐसा नहीं। वह तो निमित्त है। तेरी विपरीत मान्यता के कारण से तू तत्त्व को जानता नहीं। **यथार्थ नहीं जानता, विपरीत जानता है,... 'जिउ मिच्छत्तें परिणमउ'** देखो! भाषा ली, हों! तुरन्त ही ली इस गाथा में। यह शीर्षक बाँधा है, इस कारण से बाँधा है, ऐसा कि मिथ्यात्व परिणमन लेना है न वापस, इस कारण से।

७९) जिउ मिच्छत्तें परिणमउ विवरिउ तच्चु मुणेइ।
कम्म-विणिम्मिय भावडा ते अप्पाणु भणेइ॥ ७९॥

अन्वयार्थ :- यह जीव अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणत हुआ,... भगवान ज्ञानमूर्ति को, ज्ञानमूर्ति, पूर्णानन्द को न मानकर अतत्त्वश्रद्धानरूप (अर्थात्) राग को धर्म मानकर, अल्पज्ञ दशा को पूर्ण मानकर, निमित्त से आत्मा में कुछ होता है, ऐसी विपरीत मान्यता। **अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणत हुआ, आत्मा को आदि लेकर...** देखो! आत्मा को आदि लेकर। आत्मा ज्ञायक पूर्णानन्द है, पूरा आत्मा पूर्ण ज्ञायक है, उसे न मानकर, पूर्ण को पूर्ण न मानकर... आत्मा आदि लिया न? आत्मा उसे कहना कि जो शरीर, कर्म और

पुण्य-पापरहित। और एक समय की पर्याय भी वह व्यवहार आत्मा है। त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति अखण्ड पूर्णानन्द, वह निश्चय आत्मा। ऐसे निश्चय आत्मा को इस प्रकार से न मानकर। समझ में आया?

आत्मा को आदि लेकर तत्त्वों के स्वरूप को अन्य का अन्य श्रद्धान करता है,... समझ में आया? **यथार्थ नहीं जानता। वस्तु का स्वरूप तो जैसा है, वैसा ही है,...** देखो! वस्तु ज्ञायक चैतन्य तो जैसी है, वैसी है। पुण्य-पाप के विकल्प भी मलिनरूप से हैं, वैसे हैं। कर्म के जड़ का उदयपना अजीव का वह जैसा है, वैसा है। उसे ऐसा न मानकर वह मिथ्यात्वी जीव—विपरीत मान्यतावाला आत्मा, मिथ्यात्व में परिणमता जीव **वस्तु के स्वरूप को विपरीत जानता है,...** वस्तु के स्वरूप को उल्टा जानता है। **अपना जो शुद्ध ज्ञानादि सहित स्वरूप है,...** देखो आया आत्मा। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द पूर्ण अखण्डानन्द प्रभु आत्मा, ऐसा जो आत्मा का द्रव्यस्वरूप शुद्ध, शुद्ध परिपूर्ण वस्तु, परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द परिपूर्ण, परिपूर्ण ऐसा स्वरूप, **उसको मिथ्यात्व रागादिरूप जानता है।** उसे भ्रमणावाला, रागवाला, पुण्यवाला ऐसे आत्मद्रव्य को मानता है। समझ में आया?

'**शुद्धात्मानुभूतिरुचिविलक्षणेन मिथ्यात्वेन**' है न, लिखा है, देखो! '**विलक्षणेन मिथ्यात्वेन**' देखो! '**शुद्धात्मानुभूतिरुचिविलक्षणेन मिथ्यात्वेन**' ऐसा लिया है। '**सन् जीवः परमात्मादितत्त्वं च यथावद् वस्तुस्वरूपमपि विपरीतं**' ऐसा है न? अर्थात्? '**परमात्मादितत्त्वं**' अर्थात्? यहाँ परमात्मप्रकाश है न मूल पुस्तक। परमात्मा अर्थात् द्रव्य, अपना द्रव्य परमात्मा। ऐसे परमात्मतत्त्व को इस प्रकार से परमात्म पूर्णानन्द पूर्ण है, ऐसा न मानकर। समझ में आया? मिथ्यात्व आदि अर्थात् कि यह अल्प ज्ञान, रागादि। अल्पज्ञान भी, वह अल्पज्ञान वह व्यवहारिक आत्मा, अभूतार्थ आत्मा है। भूतार्थ आत्मा त्रिकाली नहीं। समझ में आया?

परमात्म द्रव्य पूर्ण वस्तु, वह परमात्म तत्त्व। उससे उल्टा एक समय का ज्ञान, दर्शन और वीर्य का उघाड़ व्यवहार आत्मा, वह अभूतार्थ आत्मा, वह त्रिकाल आत्मा नहीं। उसे आत्मा माने, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसे मिथ्यात्वसहित को आत्मा मानता है। समझ में आया? शुद्ध ज्ञानादिसहित भगवान, उसे मिथ्यात्व-रागादिरूप जानता है।

असत्य मान्यता से उसे अल्प ज्ञान, दर्शन, वीर्यवाला या रागवाला उस मिथ्यात्वसहित, उसने असत्यसहित आत्मा को माना। पूरा पूर्ण सत्यस्वरूप है अखण्डानन्द, उसे न मानकर उसने ऐसी मिथ्याश्रद्धावाला आत्मा, वह अल्प ज्ञान, दर्शन, वीर्य और रागवाला जाना, उसने मिथ्यात्वसहित ही आत्मा को जाना। समझ में आया?

उससे क्या करता है? 'कर्मविनिर्मितान् भावान्' कर्मोंकर रचे गये शरीरादि परभाव हैं... लो! यह कर्म से रचित शरीर, वाणी, मन, **उनको अपने कहता है,...** समझ में आया? पूर्ण भगवान स्वभाव को न जानकर, न मानकर, अपूर्ण दशा रागादि को अपना पूर्ण स्वरूप मानकर मिथ्यात्व और राग-द्वेषसहित जोर से उपार्जित किये कर्म, उनसे बने शरीर और वाणी। **उनको अपने कहता है,...** उन्हें अपना मानता है। **अर्थात् भेदविज्ञान के अभाव से...** शरीर का गोरापन, तो कहे मैं गोरा हूँ। धूल की पर्याय गोरा की, वह मेरी पर्याय, अपने को शरीर और वाणी की पर्याय द्वारा दूसरे को अधिकपने मनवाने का, दिखलाने का भाव वह गोरा (पन) को, वाणी को स्वयं ही अपना मानता है। समझ में आया? मैं यह, ऐसा हुआ न इसे? गोरा और यह वाणी वह मैं, यह मैं। देखो! यह मेरी अधिकता, यह मेरी विशेषता। यह मैं, ऐसा। यह मैं हुआ न? इसलिए इससे मुझे पहिचानो। मैं भी इससे हूँ, इससे मुझे जानो। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि के कारण इस शरीर की पर्याय और वाणी की पर्याय, इस द्वारा यह मैं हूँ, ऐसा। इस प्रकार मुझे मैं मानता हूँ, इस प्रकार तुम भी मुझे इस प्रकार से बड़ा, अधिक कहो। समझ में आया या नहीं? करना, कराना, अनुमोदन, यह आ गया। मैं गोरा, दूसरे का काला शरीर तो मैं गोरा, इस प्रकार भी मेरी प्रसिद्धि हो अर्थात् आत्मा की प्रसिद्धि। समझ में आया?

आदि श्याम, स्थूल, कृश,... मेरा शरीर स्थूल, मैं जाड़ा बलवान? जाड़ा बलवान समझते हो? बोलने में। तगड़ा, वह नहीं, बोलने में जोरदार। यह जाड़ा बळियो हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। डाटा बळियो, जोरदार। परन्तु वह तो जड़ की दशा है। वह तो कर्म से हुई दशा है जोरदार की वाणी की भाषा, कण्ठ। यह स्थूल और कृश हुआ न। इत्यादि सब कर्मजनित देह के भाव हैं। **कर्मजनित देह के स्वरूप को अपना जानता है,...** आहाहा! **इसी से संसार में भ्रमण करता है।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... इस कारण से, ऐसा। स्वरूप को अपना जाने, इस कारण से भ्रमण करता है, ऐसा। कर्म के कारण से नहीं, ऐसा। उसे उस कर्मजनित भाव को स्वयं मानता है, इसलिए भटकता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा ही है न!

यहाँ पर कर्मों से उपार्जन किये भावों से भिन्न जो शुद्ध आत्मा है, उससे जिस समय रागादि दूर होते हैं, उस समय उपादेय है, क्योंकि तभी शुद्ध आत्मा का ज्ञान होता है। क्या कहते हैं ? ऐसे उपादेय... उपादेय (कहे), ऐसा नहीं। जिस काल में, जिस समय में, शुद्ध ज्ञायकभाव सन्मुख की अनुभव दृष्टि हुई, उसकी ओर का ज्ञान और एकाकार हुई, उस काल में आत्मा उपादेय है। इसके अतिरिक्त कोई उपादेय आत्मा नहीं। आहाहा! समय लिया है, हों! रागादि निवृत्ति काल में, ऐसा है न पाठ में, प्रत्येक में यह आता है।

मुमुक्षु : उपादेय है, ऐसा बोले तो कुछ लाभ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी लाभ नहीं। उपादेय भाषा में क्या आया ? वे तो शब्द हैं, वह कहाँ इसके हैं ? वे शब्द कहाँ इसके हैं ? विकल्प में बोले कि उपादेय है। वह कहाँ विकल्प इसका है तो उपादेय हुआ ? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। विकल्प से उपादेय माना, वह उपादेय है ही नहीं। शरीर से उपादेय माना, वाणी से उपादेय है ही नहीं। अन्दर की शुद्ध परिणति, रागरहित परिणति द्वारा आत्मा उपादेय उस काल में उपादेय हुआ, वरना उपादेय है नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १३, रविवार, दिनांक - २१-११-१९६५
गाथा - ८०-८१ प्रवचन - ५६

गाथा - ८०

परमात्मप्रकाश है, पहले भाग की ८०वीं गाथा है, ८०। ७९ हुई। **इसके बाद...** ७९ में कहा इसके बाद। **उन पूर्व कथित...** अर्थात् पूर्व में कहा था। शरीर काला, सफेद, मिश्र वर्णवाला इत्यादि। कर्मजनित भाव हैं वे सब। वे कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई शरीर की अवस्थायें हैं। **जिस मिथ्यात्व परिणाम से...** वह अपनी उल्टी मान्यताओं के भाव द्वारा। यहाँ वजन है। कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया? **मिथ्यात्व परिणाम से...** विपरीत परिणाम। आत्मा का स्वरूप शुद्ध ज्ञानानन्द, उसके सम्यक् परिणाम द्वारा उसे अपने अनुभव को मानना चाहिए। सम्यक् परिणाम द्वारा शुद्ध चैतन्यस्वरूप अखण्ड ज्ञायक, ऐसे अनुभव को मानना चाहिए, ऐसा न मानकर स्वयं ही मिथ्यात्व परिणाम द्वारा। समझ में आया? मिथ्या अर्थात् झूठे परिणाम द्वारा बहिरात्मा बहिरबुद्धि वह शरीर की सब अवस्थाओं के रंग आदि को आत्मा के स्वभाव में साथ में सम्बन्ध करता है कि यह मैं हूँ। अथवा दूसरे के आत्मा को भी इस प्रकार से शरीर कृश, पतला, स्थूल, काला, सफेद ऐसे रंग कर्मजनित भाव से मिथ्यात्व परिणाम के कारण दूसरे आत्मा को भी इस प्रकार से पहिचानता है। उसकी बहिरात्म बुद्धि है। इसलिए बहिरात्मा शब्द प्रयोग किया है। **अपने मानता है, और वे अपने हैं नहीं,...** वह शरीर की कृशता, स्थूलता, रोगता, निरोगता, कालापन, सफेदपन, लालपन, मिश्र रंगपना, वह अपने नहीं। **ऐसे परिणामों को...** ऐसी पर्याय को, **पाँच दोहा-सूत्रों में कहते हैं**—देखो, ऐसे परिणाम की बात चलती है यह। देह की वर्ण, रंग, अवस्था, वे सब परिणाम जड़ के हैं।

८०) हउँ गोरउ हउँ सामलउ हउँ जि विभिण्णउ वण्णु।
हउँ तणु-अंगउँ थूलु हउँ एहउँ मूढउ मण्णु॥ ८०॥

देखो! '**मूढउ मण्णु**' इसलिए यहाँ से निकाला है। मिथ्यात्व अपने मिथ्यात्व

परिणाम से मानता है। वह कर्म उसे मनाता है, ऐसा नहीं। दर्शनमोह का कर्म, पाप उसे यह पर कर्मजन्य की पर्यायें उसे मनाता है, ऐसा नहीं। अपने सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा शुद्धात्मानुभूति से यह आत्मा अखण्ड ज्ञानस्वभाव हूँ, ऐसा नहीं मानकर इस मिथ्या परिणाम से बहिर पर्याय को अपनी मानता है। कहो, समझ में आया?

मैं गोरा हूँ। सफेद हूँ। सफेद पर्याय है। रंग की, शरीर की अवस्था है सफेद तो। उस अवस्थावाला मैं हूँ। मैं एक शुद्ध वीतराग ज्ञानानन्द एक स्वभावी आत्मा, उसकी रुचि-दृष्टि छोड़कर इस शरीर की पर्याय के अस्तित्व में मैंपना (माना है)। यहाँ मैंपना नहीं, इसलिए यहाँ मैंपना माना है, माना है। समझ में आया? अपने को भी, सफेद वर्ण द्वारा दूसरे से मैं कुछ अधिक हूँ, ऐसे रंग द्वारा अपनी अधिकता मनाना। समझ में आया? शरीर की आकृति की अनुकूलता, शरीर के रंग ऐसी वर्तमान पर्याय द्वारा अपने को अधिक मानना अथवा दूसरे से इस प्रकार से दूसरे की आकृति और रंग की अपेक्षा मैं अधिक हूँ, (यह) तीन को ही आत्मा मानता है। समझ में आया? मैं गोरा हूँ। ऐसे तो स्थूल बात है यह। मैं शुद्ध चिदानन्दस्वरूप अखण्ड ज्ञायक एक स्वभावी हूँ, ऐसी दृष्टि के अभाव में इस पर्याय का इसे अधिकपना ही अन्दर भासित होता है। समझ में आया?

मैं काला हूँ,... यह तो शरीर की पर्याय है। आत्मा की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, उस पर्याय से आत्मा ऐसा है, ऐसा बतलाये। उसके बदले उस पर्याय से विरुद्ध मिथ्या परिणाम और असत्य परिणाम से यह पर्याय में मैं अथवा इस पर्याय से मैं, ऐसा जानना, वह बहिरात्मबुद्धि है। समझ में आया? बहिरात्म अर्थात्? बाहर की पर्याय को अपने स्वरूप में मिलाना, सम्बन्ध कराना, रचना, इसका नाम बहिरात्मा कहा जाता है।

मैं ही 'विभिन्नः वर्णः' (मिश्र वर्ण) अनेक वर्णवाला हूँ,... लाल, पीला इत्यादि मैं हूँ। शरीर के भिन्न-भिन्न रंग हों कोई मुख के, हाथ के, हथेली के, कान के उन सब रंग की मिश्रितता द्वारा यह पर्याय, उसके ऊपर इसका अस्तित्व का लक्ष्य है। उस अवस्था को आत्मा के ज्ञानस्वभाव के साथ जोड़ता है, सम्बन्ध करता है, वह बहिरात्मा मिथ्यात्व परिणाम से करता है। समझ में आया?

मैं 'तन्वंगः' कृश (पतले) शरीरवाला हूँ,... मैं तो कृश हूँ, पहले से मेरा तो शरीर ही कृश है, हों! पतली काठी, शरीर की पतली काठी। यह भाई की काठी पतली है न, देखो न! काठी अपने ऐसा नहीं कहते? शरीर की पतली काठी द्वारा आत्मा को सम्बन्ध करना और पहिचानना, वह मिथ्यात्व परिणाम अपने उल्टे परिणाम से मान रहा है। समझ में आया? **मैं 'स्थूलः'** मोटा शरीर है, मेरा मोटा शरीर है। यह शरीर मोटा, इसलिए इसके अन्दर में ही ऐसा हो कि, मोटा शरीर है मुझे, मेरा शरीर जाड़ा। इसलिए किसी समय और मेरा कहे और किसी समय मैं जाड़ा, ऐसा भी कहे। यह तो शब्द की वह, परन्तु बात तो मैं जाड़ा। मैं जाड़ा, वह तो शरीर, मिट्टी, धूल है, वह तो जड़ है। जड़ के जाड़े से आत्मा को जाड़ा मानना, मूढ़ है। मिथ्या परिणाम से बहिरबुद्धि को बहिरबुद्धि द्वारा बहिर् वस्तु को अपनी मानता है। कहो, समझ में आया इसमें?

इस प्रकार मिथ्यात्व परिणामकर... देखा? **परिणत...** ऐसा। उल्टी मान्यता से परिणमन करता हुआ। विपरीत मिथ्यात्व द्वारा परिणत पर्याय में परिणमता हुआ। ऐसे परिणमन लेना है वापस। **मिथ्यादृष्टि जीव को...** यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे जीव! ऐसा जो माने, उसे **मूढ़ मान।** ऐसा कहते हैं। वह मूढ़ जीव है। फिर त्यागी हो, मुनि हो, बाहर में चाहे जो वेश धारण किया हो, परन्तु ऐसी शरीर की कर्मजनित भाव की शरीर पर्याय, उस द्वारा अपने को अधिक मानता हो और दूसरे को इस प्रकार से मनवाता हो तो उसे मूढ़ जान। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- निश्चयनय से... सत्य दृष्टि से देखे, सत्य दृष्टि से देखे, तो **आत्मा से भिन्न...** यह सब आत्मा की चीज़ से भिन्न है। **जो कर्मजनित गौर स्थूलादि भाव हैं,...** यह सब शरीर की अवस्था, आँख की सुन्दरता, नाक की कोमलता, कान की कुण्डल जैसी आकृति, ऐसे सबमें मैंपना, (ऐसी) अन्दर सूक्ष्म शल्य रहती है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? ऐसी स्थिति के आकारों में 'मैं' ऐसा जो भाव रहता है, **वे सर्वथा त्याज्य हैं,...** देखो! यहाँ 'सर्वथा' शब्द रखा है। शास्त्र में कथंचित् और कथंचित् अनेकान्त चाहिए या नहीं?

वे सर्वथा त्याज्य हैं,... भगवान आत्मा, कहेंगे अभी। यह स्थूल आदि पर्याय, कृश आदि पर्याय—अवस्था की बात है, हों! परिणाम की। द्रव्य, गुण तो कहाँ इसे

दिखते हैं? समझ में आया? ऐसे परिणाम को... है न? पहले आ गया था। **ऐसे परिणामों को पाँच दोहा-सूत्रों में कहते हैं।** यह पर्याय में अवस्था जड़ की, शरीर की उसमें मैंपना मानता है, वह सर्वथा त्याज्य है, कहते हैं। छोड़, छोड़, वहाँ छोड़। वह सब अवस्था जड़ की, मिट्टी की है। पुद्गल मिट्टी, धूल की दशा है। वह मेरी है, ऐसा ज्ञान में जुड़ान सम्बन्ध न कर। जिसके साथ सम्बन्ध नहीं, उसका सम्बन्ध न कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

क्षण-क्षण में मिथ्या परिणाम की स्थिति का वर्णन है यह। कहाँ-कहाँ इसे मिथ्या परिणाम मिथ्यात्व के, हों! कहते हैं कि ऐसी देह की दशा बहिरबुद्धि के मिथ्यात्व से परिणमित मानता है, वह सर्वथा छोड़नेयोग्य है। सर्वथा त्याज्य है न? कथंचित् त्याज्य और कथंचित् ऐसा है, इसमें? यहाँ उपादेय है, ऐसा कहेंगे। 'भी' अनेकान्त में तो ऐसा चाहिए न। सर्वथा परवस्तु, पर्याय सर्वथा त्याज्य? यह एकान्त हो जाता है। यही अनेकान्त है कि परपर्याय सर्वथा लक्ष्य और रुचि छोड़नेयोग्य है और **सर्व प्रकार...** इस ओर गुलाँट खाती है अब बात। देखो! पाठ में ही है यह **सर्व प्रकार...** वह **सर्व प्रकार...** वापस उपादेय में, उपादेय में सर्व प्रकार है। दोनों ओर है ऐसे।

एक ओर भगवान आत्मा सर्व प्रकार से, ऐसा है न? सर्व प्रकार से वापस, उसमें कथंचित् प्रकार से, ऐसा नहीं। शुद्ध चिद्घन आत्मा। आत्मा की व्याख्या करते हैं अब। कि, सर्व प्रकार से उपादेयभूत आदरणीय, परन्तु कौन? कौन? कैसा आत्मा? सर्व प्रकार से सर्वथा प्रकार से आदरणीय दृष्टि में सम्यग्दर्शन के परिणाम के काल में। समझ में आया? मिथ्यात्व के परिणाम काल में, बहिरात्मबुद्धि यह पर को माने, वही सम्यग्दर्शन के परिणाम के काल में सर्व प्रकार से उपादेयभूत, तब ही उपादेयभूत दृष्टि में आता है। समझ में आया?

यह हेय है, उसी क्षण में सर्व प्रकार से उपादेयभूत वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव। यह व्याख्या। 'एक' शब्द रह गया है। टीका में, अर्थ में (रह गया) है, टीका में है। कैसा है आत्मा? कि जो दृष्टि—सम्यग्दर्शन के परिणाम के काल में उपादेयभूत हो सकता है। समझ में आया? मिथ्यात्व परिणाम के काल में उन अवस्थाओं में क्षण-क्षण में उसका अस्तिपना, होनापना उसे मान रहा है देह की दशा को। वह सर्व प्रकार

से आराधनेयोग्य। पाठ में उपादेयभूत है, उसका 'आराधने योग्य' अर्थ किया है। समझ में आया?

सर्व प्रकार से सेवनयोग्य, कोई कथंचित् इस प्रकार से और कथंचित्, ऐसा नहीं। सर्व प्रकार से वस्तु वीतराग निर्दोष स्वरूप है आत्मा का तो। वीतराग अर्थात्? वह तो वस्तु है, वह निर्दोष चैतन्य का पिण्ड है। क्योंकि पुण्य-पाप, वह तो आस्रवतत्त्व है; कर्म, शरीर वह अजीवतत्त्व है। उनसे भिन्न निर्दोष वीतरागीस्वरूप, वह आत्मा स्वयं वीतरागस्वरूप है। वर्तमान, हों! वर्तमान की बात चलती है यह।

आत्मा उसे कहते हैं कि विकल्प के रागरहित अर्थात् वीतरागस्वरूप, ऐसा। वीतराग चैतन्य ज्ञायकस्वभाव शान्तरस का पिण्ड, ऐसा वीतराग नित्यानन्द, जिसमें नित्य आनन्द पड़ा है। उस आत्मा में नित्य आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द है। वीतराग, ऐसा कहकर निर्दोषता सिद्ध की, निर्दोषता सिद्ध करके निर्दोष ऐसा अतीन्द्रिय आनन्दमय है वह। समझ में आया? नित्यानन्द—वस्तु जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, जैसी वस्तु नित्य है, वैसा आनन्द भी नित्य उसमें पड़ा हुआ है। आहाहा!

वस्तु अरूपी होने पर भी पदार्थ है या नहीं? और पदार्थ है, वह चौड़ा भी है न? परमाणु एक प्रदेशी है, यह (आत्मा) असंख्य प्रदेशी है। चौड़ा है, अरूपी, तथापि चौड़ा है; अरूपी, तथापि पदार्थ है; अरूपी, तथापि नित्य आनन्द से भरपूर है। अरूपी अर्थात्, अरूपी अर्थात् कहीं अवस्तु, ऐसा नहीं। उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं, परन्तु उसमें ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का दल, आनन्द का दल रसकन्द नित्यानन्द आत्मद्रव्य है। वह एक स्वभाव है। यहाँ तो द्रव्य लेना है न? भगवान वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव यह आत्मद्रव्य। उसे आत्मा कहते हैं। पर्याय की अल्पता की भी यहाँ आत्मा में बात है नहीं। एक समय की पर्याय की अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, अल्पवीर्यता, वह तो व्यवहारनय का आत्मा। पुण्य-पाप भले नहीं, परन्तु पर्याय का आत्मा वह व्यवहारनय का आत्मा। पुण्य-पाप के विकल्प तो नहीं, कर्म, शरीर, अजीव नहीं, परन्तु उसकी पर्याय का वर्तमान परिणमन का अंश है अल्प, वह तो व्यवहारनय का आत्मा। वह अभूतार्थ में जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एकसाथ में दो आत्मा?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकसाथ में दो। द्रव्य और पर्याय। द्रव्यरूप आत्मा त्रिकाली, यह वीतराग एक स्वभाव (और) एक समय की पर्याय। दो का होकर प्रमाणज्ञान। परन्तु निश्चय वस्तु यह। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा यहाँ तो स्वयं वीतरागी स्वरूप। वीतरागी अर्थात्? पुण्य-पाप के सदोष विकल्प से रहित वस्तु है। इसलिए अत्यन्त आत्मा—वर्तमान आत्मा उसे कहते हैं और भगवान ने ऐसा आत्मा उसका, उसका ऐसा है, वैसा देखा, वह भगवान आत्मा तो निर्दोष आनन्द के दल का पिण्ड पड़ा है, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग नित्यानन्द, ओहो! जिसमें आनन्द का दल तो नित्य पड़ा है। जिसकी एकाग्रता में आनन्द ही झरे, ऐसी वह चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य आनन्द की मूर्ति अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय आनन्द जैसा सिद्ध को है, केवली को जैसा अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में है, ऐसे ही अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर पूरा दल है। यहाँ आनन्द की प्रधानता ली है, दूसरे गुण तो साथ में भले पड़े हैं। क्योंकि जगत को दुःख नहीं चाहिए और सुख चाहिए है। समझ में आया? अरे.. प्रभु! तू तो नित्य आनन्दवाला है न! तुझमें आनन्द कब कम है? और आनन्द से कब तू रहित रहा है? आहाहा! निर्दोष, नित्य आनन्द का रस पिण्ड प्रभु आत्मा, वह एक स्वभाव है। ऐसा कहना है न, वस्तु कहनी है न। एक स्वभाव, एक स्वभाव, एक स्वभाव उसे भगवान, आत्मा कहते हैं।

वह आत्मा **सर्व प्रकार आराधनेयोग्य...** देखो कहा न? **वीतराग नित्यानन्द (एक) स्वभाव जो शुद्धजीव है,...** 'एक' बीच में डाल देना थोड़ा। ऐसे सम्यक् परिणाम, सम्यग्दर्शन के परिणाम, सम्यग्ज्ञान के परिणाम द्वारा ऐसा एकरूप भगवान नित्यानन्द प्रभु, वह सेवनयोग्य अर्थात् उसका आश्रय करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया इसमें? इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप-आचरण कहा जाता है। गजब भाई धर्म की बात! कहो, इसमें भगवान की सेवा कहाँ गयी? लौकिक सेवा तो कहाँ गयी बाहर की? दूसरे की सेवा करना, ऐसा नहीं कहते लोग? यह तो कहते हैं कि शरीर की अवस्था जहाँ आत्मा में नहीं, वहाँ उस अवस्था द्वारा क्रिया करे, यह बने

कैसे ? परन्तु परपदार्थ में भगवान जैसे तीन लोक के नाथ आदि की ओर झुकाव भाव वह भी रागभाव है। वह कहीं परमार्थ से आराधन—सेवन नहीं। आहाहा!

परमार्थ से आराधन भगवान आत्मा नित्यानन्द—नित्य आनन्द—शाश्वत् आनन्दवाला, ऐसा। नित्यानन्द अर्थात् जैसा आत्मा कायम है, वैसा आनन्द भी कायम भरा हुआ है। ऐसा एक स्वभावी नित्य आनन्द, एक स्वभावी नित्य आनन्द, उसे उपादेय करके सेवनयोग्य है। उसे दृष्टि में, वहाँ लक्ष्य में लेकर और वहाँ एकाग्र होनेयोग्य है। कहो, समझ में आया ? लो! इसका नाम धर्म। गजब बात, भाई! यह तो दया, व्रत, भक्ति, दान और उसमें धर्म। यह धर्म उसमें न कहो तो कहे, अरे! भगवान ने कहा है न उसमें। अरे, प्रभु! सुन न, भाई! वह तो शुभभाव को व्यवहार धर्म कहा है। व्यवहार धर्म अर्थात् कि वह धर्म नहीं, पुण्यभाव, पुण्यभाव को व्यवहार से (धर्म कहा)। किसे वह व्यवहार से ? जिसे नित्यानन्द भगवान आत्मा के अन्तर की दृष्टि में आत्मा आया है, ऐसे निश्चय परिणाम में आदरणीय हुआ है, निश्चय परिणाम के काल में आदरणीय हुआ है, उसे राग बाकी रहा, उसे व्यवहार धर्म कहा जाता है। आहाहा! एक बड़ी खलबलाहट, ककलाट। ऐसा भगवान आत्मा जो वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव, एक स्वरूप, ऐसे स्वभाव से यह सब चीज़ें भिन्न हैं, ऐसा कहना है। है न ?

वह इनसे भिन्न है... यह सब देह की दशायें, उसकी यह हलन-चलन की क्रियायें, यह वाणी की अवस्थायें, सब शुद्ध जीव भगवान से अत्यन्त भिन्न हैं। ऐसा होने पर भी, ऐसा कहते हैं। भिन्न है तो भी, जो कोई आत्मा राग और विषय की वासना के वश पड़े हुए। विषय अर्थात् पर के लक्ष्य में हुआ राग और अपनी अस्थिरता से हुआ विकार, उसके वश पड़े हुए, उसके आधीन हो गये जीव **शरीर के भावों को अपने जानता है,...** वह शरीर की सब पर्यायों को अपने (साथ में) जोड़ता है। समझ में आया ? पाठ तो ऐसा है अन्दर में, हों! '**शुद्धजीवे यो योजयति**' ऐसा है। जोड़ता है। है नहीं, उसे जोड़ता है; है, उसे तोड़ता है। भगवान आत्मा को नित्यानन्द का सम्बन्ध है। भगवान आत्मा को नित्य-कायम अतीन्द्रिय आनन्द का सम्बन्ध है, उसे तोड़ता है कि यह सम्बन्ध नहीं। शरीर आदि अवस्था का सम्बन्ध भिन्न है, उसे जोड़ता है कि यह मुझे है। समझ में आया ?

स्वभाव के आधीन हुआ हो, तब तो सम्यक् परिणाम हुए। वीतराग निर्दोष आनन्द स्वरूप जिनबिम्ब आत्मा, जिनबिम्ब आत्मा के वश हुए परिणाम तो शुद्ध हैं। परन्तु ऐसे विकल्प के वश हुआ आत्मा ऐसी क्षण-क्षण में आकृति देह की वर्ण-रंग की सफेद, काले की, उसके वस्तु के स्वरूप में है नहीं, भिन्न है, उसे जोड़ता है। सम्बन्ध करता है कि मुझे, इसके सम्बन्ध है। इसलिए मैं ऐसा हूँ, समझ में आया? गजब! सूक्ष्म बात है यह। क्षण-क्षण में आकृतियों के अभिमान में उसका वश, परवश कैसा होता है, यह बताते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान वस्तु कायम आनन्द की थप्पी से भरपूर भगवान है। आहाहा! क्या कहा? नित्यानन्द क्या कहा? गोदाम में थप्पियाँ भरी होती हैं या नहीं? इसी प्रकार ऐसे अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की थप्पी पड़ी है आत्मा में, ऐसा कहते हैं। एकसाथ है, उसमें एक के बाद एक बोरी होती है। वस्तु में ज्ञान भी एकसाथ पूर्ण, आनन्द भी पूर्ण एकसाथ में। क्षेत्र में उसका भेद नहीं कोई कि यह ज्ञान, यहाँ दर्शन, यहाँ आनन्द। वस्तु के असंख्य प्रदेश का महा गोदाम भगवान। उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन (की थप्पियाँ हैं)। क्योंकि जिसका गुण है, उसकी अनन्तता को क्या कहना! जिसका एक गुण है, उसमें अनन्त परमात्मा बसे हुए हैं अभी। केवलज्ञान अनन्त हों, वह सब बसे हुए हैं या नहीं? अनन्त आनन्द की, सिद्धदशा की—ऐसे अनन्त आनन्द बसे हैं। ऐसे इत्यादि-इत्यादि पर्याय का जो व्यक्तपना अनन्त है, वह सब एक-एक गुण में सब भरा हुआ है। समझ में आया?

ऐसा वीतराग निर्दोष, नित्यानन्द, नित्यज्ञान, नित्यानन्द, नित्यश्रद्धा इत्यादि गुण साथ में। यहाँ आनन्द को मुख्य लिया है। एक स्वभावी भगवान, उसे जोड़ना चाहिए कि यह मैं, यह मैं। अन्तर परिणाम द्वारा यह मैं—इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म परिणाम। इसका नाम धर्म के परिणाम। यह परिणाम नहीं करके अधर्म परिणामवाला राग के वश हुआ यह सब भिन्न अवस्थाओं को 'ये मुझमें हैं'—ऐसा कल्पना से जोड़ता है। समझ में आया?

वह अपनी स्वात्मानुभूति से रहित हुआ... देखो! परिणाम कहे थे न, उन मिथ्यात्व परिणाम से, बहिरबुद्धि से वह वस्तु इसमें नहीं और जोड़ता है। किसलिए जोड़ता है?

कि शुद्धात्मानुभूति के भाव से रहित है इसलिए। भगवान ज्ञानानन्द प्रभु... यह आठ वर्ष का बालक हो या करोड़ पूर्व का देह हो, आत्मा में कहीं वहाँ अन्तर नहीं। आत्मा में अन्तर है कुछ ? बड़ा स्थूल शरीर हो या कृश हो, उम्र सौ वर्ष की हो और कोई पाँच वर्ष की हो, उसके आत्मा में अन्तर है नहीं। पुराने वर्ष हुए हों तो आत्मा पुराना नहीं होता ? आहाहा !

ऐसा जो शुद्ध जीव ऊपर कहा, उसकी अपनी शुद्धात्मानुभूति, ऐसा शुद्ध वीतराग –स्वभाव, उसका अनुभव। अनुभूति अर्थात् स्वरूप को अनुसरकर निर्मल परिणाम का होना। निर्विकार अनुभव होना, ज्ञान को ज्ञान से वेदना, आनन्द को आनन्द की पर्याय से आनन्द की प्रतीति होना, ऐसी शुद्धात्मानुभूति ऐसा एक परिणाम है वह। वह कहा था जीव। वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव वह द्रव्य, वह द्रव्य और यह कहे परिणाम। अर्थात् कि नौ तत्त्व में लें तो यह कहे संवर, निर्जरा के परिणाम। और नौ तत्त्व में कहें तो जो पर अवस्था को अपने में जोड़ता है, वह आस्रव, बन्ध के परिणाम। समझ में आया ? वह पर्याय है या नहीं आस्रव-बन्ध की ? यह संवर, निर्जरा की पर्याय है शुद्धात्मानुभूति। पर्याय है।

शुद्ध जीव को आदरणीय और उपादेय करके जो परिणाम हुए, उसे शुद्धात्मानुभूति पर्याय कहते हैं। उस पर्याय से रहित अर्थात् द्रव्य, उसकी पर्याय उससे रहित हुआ। यह शरीरादि अवस्था को अपनी माने। अवस्था भी सिद्ध की। शरीरादि की अवस्था भी अस्तिरूप से है, ऐसा सिद्ध किया। अकेला आत्मा सत्य 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' ऐसा नहीं। आहाहा ! शरीर की अवस्था, रजकणों का दल, वह पर्यायरूप से है, उसका अस्ति सिद्ध किया। उसे मानने की मूढ़ पर्याय सिद्ध की। और उससे उल्टी (अर्थात्) सुलटी जो शुद्धात्मानुभूति, उसे भी सिद्ध किया और द्रव्य को सिद्ध किया। आहाहा ! समझ में आया ?

यह नौ तत्त्व की यह क्रीड़ा की माँडी है यह सब। आहाहा ! लोग कहते हैं न नौ तत्त्व, नौ तत्त्व। एक व्यक्ति कहता था, समयसार न ? नौ तत्त्व की व्याख्या पन्द्रह दिन में वाँच गया, उसमें क्या है ? बहुत अच्छी बात, बापू ! समयसार की महिमा चले न ! बापू ! कहा, यह तो अशरीरी पदार्थ बतलानेवाला यह समयसार है। (संवत्) १९७८ में

कहा कि यह समयसार अशरीरी तत्त्व को बतलानेवाला वाचक है। एक व्यक्ति कहे, मैं पन्द्रह दिन में वाँच गया, उसमें क्या? कोई बहुत जीव, अजीव और पुण्य-पाप। बात तो यही है। बात... आहाहा!

भगवान! उसमें जीवतत्त्व किसे कहना? यह उसे जीवतत्त्व कहना। उसमें संवर, निर्जरातत्त्व किसे कहना? कि उसका—स्वभाव की अनुभूति हो उसे संवर-निर्जरा कहना। उसमें आस्त्रव-बन्ध तत्त्व किसे कहना? उस स्वभाव को भूलकर परवस्तु को अपनी माने मिथ्यात्वभाव से, उस मिथ्यात्वभाव को आस्त्रव और बन्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? और यह आत्मद्रव्य ऐसा, उसकी अनुभूति संवर-निर्जरा, उसकी पूर्ण निर्मलता, उसे मोक्षतत्त्व कहा जाता है। वह भी पर्याय है। वह कहाँ द्रव्य है, गुण है? उसका वर्णन समयसार में है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

देखो! वापस क्या लिया? '**शुद्धात्मानुभूतेश्च्युतः**' भाई! ऐसा लिया। च्युत किसलिए लिया? कि शुद्धात्मानुभूति से च्युत कर्म कराता है, ऐसा नहीं। '**च्युतः सन्**'। च्युत होता हुआ, ऐसा है न? ऐसा है न? भाई! होता हुआ। उसे कर्ता सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा वीतराग नित्यानन्द एक स्वभावी प्रभु की अनुभूति पर्याय, उससे च्युत। अनुभूति थी, वह च्युत हुआ? समझाना किस प्रकार से? अनुभूति से रहित हुआ। भाषा तो ऐसी है। विवाद करे कि देखो, शुद्धात्मानुभूति थी? यह तो कर्ता-कर्म में पहले बोल में यह आया है न? अपनी निज दशा की अवस्था को उत्पन्न नहीं करता, अथवा उससे रहित करता हुआ। ऐसा पाठ है ६९-७० (गाथा) में। उदासीन अवस्था को छोड़कर, ऐसा पाठ है। छोड़कर, इसका अर्थ क्या? थी और छोड़ी है? परन्तु थी, (अर्थात्) उसे ऐसी ही अवस्था होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं मूल तो।

भगवान आत्मा यह ज्ञानानन्द एक स्वभावी निर्दोष आनन्द का कन्द वह आत्मा। उसकी तो शुद्धात्मानुभूति ही पर्याय होनी चाहिए, उसकी दूसरी पर्याय होती नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसी पर्याय को न प्रगट करता हुआ, उसे यहाँ च्युत होता हुआ कहा गया है। आहाहा! च्युत ही है अनादि से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! वीतराग ने कहे हुए तत्त्व यथार्थरूप से जाने नहीं। श्रीमद् कहते हैं उसमें (क्षमापना में)। हे प्रभु! आपने कहे हुए तत्त्वों को मैंने जाना नहीं, आपने कहे हुए दया, शील को जाना नहीं, हों!

पहिचाना नहीं, ऐसा कहा है वहाँ। किसे कहना दया और किसे कहना शील? किसे कहना संयम और किसे कहना त्याग? प्रभु! आपने कहे, उसे हमने पहिचाना नहीं। अज्ञानी अपनी कल्पना से सब रूप माने, वह भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा माने। क्यों, भगवानजीभाई!

अपनी शुद्धात्मा... वापस शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? स्व शब्द पड़ा है, देखो! संस्कृत में। स्वशुद्धात्मानुभूति। वापस भगवान की अनुभूति नहीं, भगवान पर रह गये। भगवान नित्यानन्द आत्मा... यह आठ वर्ष की बालिका भी अनुभूति कर सकती है। ऐसा नहीं कि यह स्त्री है और इतनी ऐसा नहीं। आहाहा! वह बालिका आत्मा नहीं? बालक भी नहीं, शरीर भी नहीं, फिर प्रश्न कहाँ? और उसे काल की हद भी नहीं, वह तो नित्यानन्द कहा। नित्यानन्द अर्थात् फिर उसे—आत्मा को काल की मर्यादा कहाँ और आनन्द को कहाँ? आहाहा! समझ में आया?

ऐसा नित्यानन्द भगवान आत्मा की अनुभूति से स्वयं च्युत होता हुआ, ऐसा। किसी का दोष नहीं, कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! भगवान ने देखा हो, तब तक अपने तो भ्रष्ट ही रहेंगे न! तूने भगवान को पहिचाना ही कहाँ? भगवान का केवलज्ञान एक समय की पूर्ण दशा जिसमें तीन काल—तीन लोक ज्ञात हो जाये, ऐसी एक समय की पर्याय प्रगट की इतनी महासत्ता, उसका स्वीकार करनेवाले को अन्दर में अनुभूति हुए बिना स्वीकार होता नहीं। क्योंकि पर्याय का स्वीकार अपनी मोक्षपर्याय के स्वीकार बिना और उस मोक्ष पर्याय का स्वीकार द्रव्य के स्वीकार बिना हो नहीं सकता। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि, भाई! वह **अपनी शुद्धात्मानुभूति से रहित हुआ मूढ़ात्मा है।** मूढ़ात्मा वापस। 'भवतिति' ऐसा कहा है न? भवति—मूढ़ात्मा होता है। शुद्धात्मानुभूति से च्युत होता हुआ मूढ़ात्मा होता है। वह भी करता होकर करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह कहे, नहीं, नहीं। कुछ कर्म का दोष कहो मूढ़ात्मा में और कर्म हटा तो यहाँ कुछ लाभ हो। परन्तु यह किसका कहते हैं परन्तु? आहाहा! परन्तु वह तो जड़ है, अब उसके साथ क्या? उसे तो खबर भी नहीं कि हमको कौन कहता है हटना या नहीं हटना? आहाहा!

भाई! तू पूर्णानन्द का नाथ है न, उसकी अनुभूति, उसकी पर्याय जो प्रगट होनी चाहिए, उस जाति की। जाति है, वैसी पर्याय की भात आनी चाहिए। उस भात से भ्रष्ट हुआ वह तू, किसी के कारण से नहीं। 'मूढ़ात्मा भवति'। वह तू ही मूढ़ होकर परिणम रहा है, ऐसा कहते हैं। परमात्मप्रकाश है न! परमात्मा द्रव्य है। उसकी पर्याय शुद्धात्मानुभूति हो। उससे च्युत होकर यह पर्याय प्रगट की है, वह मूढ़ात्मा होकर परिणम रहा है। कहो, समझ में आया इसमें?

★ ★ ★

गाथा - ८१

आगे फिर मिथ्यादृष्टि के लक्षण कहते हैं। '**अथ**' शब्द है न, '**अथ**' अर्थात् अभी उसके साथ सब जोड़ते हैं।

८१) हउँ वरु बंभणु वइसु हउँ हउँ खत्तिउ हउँ सेसु।
पुरिसु णउँसर इत्थि हउँ मण्णइ मूढु विसेसु॥ ८१॥

अन्वयार्थ :- मिथ्यादृष्टि अपने को... ऊपर से मिथ्यात्व परिणमन पहले से ले लिया है। ८० में से। मिथ्यात्व परिणमनवाला जो अपनी विपरीत मान्यता के परिणमन के कारण से, **अपने को ऐसा विशेष मानता है, मैं 'वरः ब्राह्मण' मैं श्रेष्ठ (जाति का) ब्राह्मण हूँ,...** दूसरी जाति की अपेक्षा मेरी जाति ऊँची है, ऐसा। इसलिए '**वरः**' शब्द प्रयोग किया है। हम ब्राह्मण हैं। अरे! भगवान! आत्मा ब्राह्मण कैसा? वह ब्राह्मण तो शरीर को पहिचानने की बात है। शरीर ही जहाँ आत्मा का नहीं, वहाँ आत्मा ब्राह्मण कैसा? अपने आत्मा को ब्राह्मण की मुख्यता से, अधिकता से पहिचानना, उस भिन्न चीज़ को आत्मा में जोड़कर मान रहा है। कहो, समझ में आया?

मैं वणिक हूँ,... हम दशाश्रीमाली, विसाश्रीमाली, फलानी जाति के बनिया। भगवान! बनिया आत्मा कैसा? परन्तु उसे जिस जाति में जन्मे न, उसे ऐसा ही हो जाता है कि हम बनिया, हों! ... बनिया तो हड्डियों का नाम है, आत्मा में बनिया-फनिया कैसा? यह तो शरीर, मिट्टी-धूल है। समझ में आया? हम बनिया के पुत्र। बनिया का पुत्र होगा आत्मा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहे। परन्तु बनिया का पुत्र नहीं, बनिया उसका बाप भी नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! ज्ञानानन्द वीतराग निर्दोष स्वभाव, वह अन्दर लेंगे, देखो! वह का वह शब्द लेंगे। वीतराग सदानन्द एक स्वभाव... उसमें लेंगे। समझ में आया?

भगवान आत्मा तो परमानन्द निर्दोष स्वभाव से भरपूर एक स्वरूप है। उसे बनिया हूँ, ऐसा मानना, वह बलजोरी से, कहते हैं कि नहीं है, उसे हठ करके मनवाने जैसा है, ऐसा कहते हैं। '**योजयति**' कहेंगे, हों! देखा, '**योजयति संबद्धान् करोति**' यहाँ दो शब्द प्रयोग किये हैं, दो शब्द प्रयोग किये। '**योजयति**' और '**संबद्धान् करोति**'। जो नहीं... उसमें '**योजयति**' अकेला था। इसमें दो प्रयोग किये हैं। जो ब्राह्मणपना, वैश्यपना आत्मा में नहीं। उसे योजता है, जोड़ता है और सम्बन्ध करता है। मुफ्त का अभिमानी मूढ़। गजब बात भाई! नित्यानन्द एक स्वरूपी भगवान के साथ यह बनियापना, हम बनिया हैं, हम तेजहीन हैं बनिया। और ऐसा कहे कितने ही, हम बनिया तेजहीन कहलाते हैं। अरे! बनिया का तेजहीनपना आत्मा में है ही नहीं। बनिया नहीं वहाँ फिर तेजहीनपना कहाँ से आया? परन्तु कहते हैं कि नहीं को बलजोरी से यह हठ करके जोड़ना चाहता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। जो वस्तु में नहीं, उसे हठ से जोड़ना चाहता है। नहीं जुड़ता, कहते हैं। आहाहा!

महिलायें कहे, हम बनियानी हैं, हम बनिया की पुत्रियाँ हैं। भगवान! बनिया और बनिया की पुत्री आयी कहाँ से? आत्मा में तो तीन काल में नहीं। समझ में आया? जिसमें जो नहीं, उसे बलजोरी से सम्बन्ध मिथ्याश्रद्धा से करना चाहता है, ऐसा कहते हैं। नहीं... नहीं... नहीं... कहते हैं। नहीं, उसे जोड़ता है और है, उसे तोड़ता है। आहाहा! तुझे सम्बन्ध तो आनन्द के साथ ऐसे भगवान को है। त्रिकाल आनन्द के साथ सम्बन्ध है, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान चाहिए। उसके बदले उनके साथ सम्बन्ध है, यह मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई! भीखालाल मगनलाल। वहाँ अन्दर... रात्रि में बारह बजे उठे, बोले हाँ। कोई स्वप्न में भी नहीं मिलता। जागृत में तो हो किसका, परन्तु स्वप्न में भी नहीं और स्वप्न आवे ऐसा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भाई! यह रंग चढ़ा, रंग चढ़ गया है। भगवान को आत्मा का रंग चढ़ना चाहिए। श्रद्धा, ज्ञान, शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... ऐसी श्रद्धा, ज्ञान का अन्तर में रंग चढ़ना चाहिए, यह रंग चढ़ गया है। दूसरे रंग में, रास्ते में चढ़ गया। समझ में आया? जहाँ-तहाँ बलजोरी से बनिया मनावे और दूसरे को भी बनियारूप से पहिचाने, वह सब दृष्टि मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शशीभाई! मोढ बनिया। विसाश्रीमाली बनिया।

मुमुक्षु : कहा न मिथ्यात्व के रंग में चढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : रंग में चढ़े।

मैं क्षत्री हूँ,... हम राजपूत के पुत्र हैं, हों! सँभालना हमारे सामने पड़ना। भगवान! बलजोर किसलिए करता है—जोड़ता है? ज्ञानानन्द वीतरागस्वभाव नित्यानन्द शाश्वत् आनन्द का तत्त्व प्रभु में यह है नहीं और तू यह क्या जोड़ता है? उल्टा कहाँ से जोड़ देता है? हम क्षत्रिय हैं, हम राजकुटुम्बी हैं, राज के बीज हैं। ओहो! यह कहाँ से लाया तू? भगवान आत्मा तो निर्दोष आनन्द का कन्द सर्वज्ञ परमात्मा ने तेरा देखा है। वह तेरा देखा, उसे तू न देख? तेरा आत्मा भगवान ने तो निर्दोष वीतरागी आनन्दकन्द को देखा है। भगवान ने ऐसा देखा और तू दूसरे प्रकार से देखे? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर के ज्ञान में तेरा आत्मा वीतरागी निर्दोष एक स्वभावी देखा है उन्होंने। उन्होंने देखा, वैसा तू न देखे और उससे विरुद्ध माने कि मैं क्षत्रिय हूँ, हम शूद्र हैं, हम चाण्डाल हों, हरिजन, ढेढ़ हल्के कुल में हमारे सेवा करने के आचरण, बापू! हम तो सेवायें करते हैं। आहाहा! शूद्र आदि। हम तो सेवा का धर्म हमारा, बापू! शूद्र का सेवा का धर्म, क्षत्रिय का लड़ने का धर्म, बनिया का व्यापार का धर्म, ब्राह्मण का जाप इत्यादि। यह बात ही सब खोटी है। जाति ही आत्मा में नहीं। आहाहा!

मैं पुरुष हूँ... लो! आदमी तो है न आत्मा? यह तो हड्डियाँ हैं, मिट्टी, धूल, अजीव धूल, दाल, भात और सब्जी से बना हुआ यह पिण्ड है। और इसकी राख होकर श्मशान में धूल हो जायेगी। यह पुरुष वह आत्मा है? यह तो धूल की आकृति को नाम दिया है। वास्तव में पुरुषवेद जो अन्दर है, वह आत्मा नहीं। यह पुरुषपना तो कहाँ से

आया ? समझ में आया ? यह पुरुषपने की आकृति तो जड़ की आकृति है। यह मैं, ऐसा भगवान निर्दोष परमात्मा के साथ यह ऐसे धूल के पिण्ड को मानना, जोड़ना, बहुत विपरीत होता है, कहते हैं। ऐसा सम्बन्ध नहीं और तू सम्बन्ध '**योजयति**' जोड़ता है, तू जोड़ता है। जोड़ने में ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु ऐसा तो हो न लोगों को ? आदमी हो तो आदमी होगा या नहीं ? परन्तु आदमी है कब ? तीन काल-तीन लोक में आदमी की गन्ध आत्मा में नहीं। भगवान आत्मा अरूपी ज्ञानघन आत्मा है। उसे आदमी जड़ की क्रिया और कदाचित् पुरुष के वेद का विकार ले, वह विकार, वह वस्तु में तीन काल में नहीं। वह तो वीतराग, वीतरागस्वरूप चिदानन्द है। उसे पुरुष के विकारवाला जोड़ना या पुरुष की आकृतिवाला जोड़ना, (वह) मिथ्या परिणाम से जोड़ता है। समझ में आया ? अब ऐसी बात तो कितनों ने तो सुनी न हो, भगवानजीभाई! नहीं सुनी ? तुम तो पुराने सुननेवाले वहाँ। अरे! भगवान! बापू!

भाई! तेरे दो भाग हैं न। एक ओर जड़ तथा विकार का भाग और एक ओर परमात्मा अपना भाग। परमात्मा वर्णन करना है न यहाँ। उस परमात्मा का भाग मेरा, ऐसा न मानकर, यह विकार और शरीर के अवयवों के भाग मेरा मानना, वे तेरे नहीं और मानना, वह योजना झूठी होती है, भाई! समझ में आया ? आहाहा! अरे!

मैं **नपुंसक हूँ।** पावैया होते हैं न हीजड़ा, नारकी के जीव को नपुंसक शरीर होता है। यहाँ भी नपुंसक होते हैं न पावैया, उसे नपुंसक कहते हैं। भगवान! वह नपुंसकपना कहाँ है ? वह शरीर की आकृति में अवयव कोई ऐसे हों। वह कहाँ आत्मा की चीज़ है ? और नपुंसकपने का विकृतभाव, वह भी कहाँ भगवान आत्मा में पड़ा था, जुड़ा था ? उसे—आत्मा को नपुंसक मानना, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ मानता है। नहीं है, उसे बलजोरी से जोड़ता है।

और स्त्री हूँ। लो! बस इसे तो रँग गया हो। स्त्री के अवयव और शरीर के, बस, यह अवयव मेरे और यह चेष्टा मेरी और यह सब मैं। यह ऐसे भगवान वीतराग आनन्दकन्द प्रभु की अनुभूति से भ्रष्ट हुए इस शरीर के आकारों को बस यह, यह मैं, यह मैं यह, इन अवयवों में मैं। ऐसे अवयवोंवाला वह मैं, ऐसे अवयवोंवाला वह पुरुष,

ऐसे अवयववाला वह स्त्री, ऐसा वह आत्मा। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार शरीर के भावों को मूर्ख अपने मानता है,...** यह शरीर की जड़ दशा, इसे मूढ़ अपनी मानता है। आहाहा! यह तो मिथ्यात्व के भिन्न-भिन्न लक्षणों का वर्णन है। समझ में आया? **सो ये सब शरीर के हैं, आत्मा के नहीं हैं।** यह सब शरीर की दशायें हैं, मिट्टी की। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो नित्य शाश्वत अतीन्द्रिय आनन्द और शाश्वत ज्ञान का, रस का पिण्ड आत्मा है। ऐसे आत्मा को अनुभूति से अनुभव करना, इसका नाम धर्म है। इससे यह विपरीतवाला मानना, उसका नाम मिथ्यात्व के अधर्म परिणाम हैं। उन अधर्म परिणाम से चारों गतियों में भटक रहा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक - २२-११-१९६५
गाथा - ८१ से ८३ प्रवचन - ५७

पहले भाग की ८१वीं गाथा। यहाँ आया है, देखो! **इस प्रकार शरीर के भावों को मूर्ख अपने मानता है।** भावार्थ के ऊपर है। मैं ब्राह्मण हूँ, वैश्य हूँ, क्षत्रिय हूँ, शूद्र हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, नपुंसक हूँ, यह सब शरीर की दशायें हैं। **मूर्ख अपने मानता है। सो ये सब शरीर के हैं, आत्मा के नहीं हैं।** परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं वापस कि भाई! यह शरीर के नहीं, इसलिए चाहे जैसा शरीर हो और वहाँ केवल (ज्ञान) पावे, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। स्त्री का शरीर हो और साधुपद पावे, केवल (ज्ञान) पावे। क्योंकि पुरुष और शरीर और स्त्री तो आत्मा में है नहीं। वह यहाँ नहीं कहना। यहाँ तो शरीर की पर्याय को अपनी मानता है, वह भ्रम अज्ञानी है, इतनी बात करनी है। वह विषय अभी यहाँ नहीं। समझ में आया? यह शूद्र है, वह भी केवल (ज्ञान) पावे, स्त्री का शरीर हो और केवल (ज्ञान) पावे। क्योंकि यहाँ तो सब समान कहा है। शरीर की पर्याय है, उसमें आत्मा की है नहीं। तो आत्मा को क्या दिक्कत? ऐसा यहाँ कहना नहीं है। यहाँ तो शरीर की पर्याय को अपनी अनुभवे—माने, वह मूढ़ है, इतनी बात है। समझ में आया? वह विषय अभी है नहीं।

भावार्थ :- यहाँ पर ऐसा है कि निश्चयनय से... वास्तविक रीति से, **ये ब्राह्मणादि भेद कर्मजनित हैं, परमात्मा के नहीं हैं,...** आत्मवस्तु में ये हैं कहाँ? ये परमात्मा के हैं नहीं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक, ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय है नहीं। **इसलिए सब तरह आत्मज्ञानी के त्याज्यरूप हैं...** ऐसा है। आत्मज्ञानी को सब तरह त्याज्यरूप है। धर्मी को आत्मज्ञान में यह त्याज्य अर्थात् हेय है। इतनी बात को यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? **सब तरह आत्मज्ञानी के त्याज्यरूप हैं...** ऐसा नहीं कि यह कोई कथंचित् पुरुष का देह है, इसलिए इससे उसमें केवल (ज्ञान) हो न, इसलिए कुछ उपादेय होगा। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

त्याज्यरूप हैं तो भी जो निश्चयनयकर आराधनेयोग्य... भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप वीतराग, वही सेवनयोग्य है, वह अन्तर में अनुभव करनेयोग्य है। ऐसा **वीतराग सदा आनन्द एक स्वभाव...** सदा आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द एक स्वभाव। **निज शुद्धात्मा में इन भेदों को लगाता है,...** ऐसा वीतराग निजानन्द प्रभु, उसमें स्त्री, पुरुष, नपुंसक, ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय इत्यादि को जोड़ता है कि, यह वह मैं, यह वह मैं। **अर्थात् अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मानता है; स्त्री, पुरुष, नपुंसक मानता है, वह कर्मों का बन्ध करता है,...** कर्मों का बन्ध करता है। समझ में आया? आत्मा में यह शरीर की अवस्थायें हैं नहीं। उसे अपना माने कि मैं ब्राह्मण, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं क्षत्रिय, मैं स्त्री, मैं पुरुष, मैं नपुंसक। वह आत्मज्ञान में त्याज्य है, उसे आदरणीय मानता है, वह मूढ़ है। **वह अज्ञान से परिणत हुआ...** देखो! यहाँ लेते हैं अब। वह स्वयं अज्ञान से परिणत हुआ। कर्म के कारण से नहीं। अपने स्वरूप के ज्ञानानन्द के भान बिना अज्ञान से परिणत हुआ। **निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित हुआ...** भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप की भावना अर्थात् यह कैसे वृद्धि पावे, शुद्ध हो। ऐसी भावना के बदले, 'यह मेरी चीज़ है' ऐसे पर की भावना करता है, वह मूढ़ात्मा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मानना, वह मानना ऐसा नहीं। शरीर की कोई भी अवस्था मुझमें है ही नहीं। लो, ऐसे अभी उसे ऐसा स्मरण करता है। यह शरीर की रोग अवस्था, निरोग अवस्था मेरी अवस्था है, यह मूढ़ मानता है, ऐसा कहते हैं। पापी जीव ऐसा मानता है, ऐसा कहते हैं। पापी अर्थात् आत्मा के ज्ञान की परिणतिरहित। आत्मा का स्वरूप उसके भान बिना, अज्ञानरूप से परिणमता हुआ यह देह की अवस्थायें मेरी है, मुझे है, इनके कारण से मुझे ठीक है, यह हो तो मुझे ठीक पड़ता है, ऐसा माननेवाले पापदृष्टि मूढ़ात्मा अज्ञानी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मनुष्य है? कहाँ गये सेवंतीभाई? क्या हुआ यह? मनुष्य है या आत्मा है यहाँ? यहाँ बात किसकी चलती है इसमें? मनुष्य तो मिट्टी,

धूल है यह। वह आत्मा है? यह शरीर की अवस्था और शरीर, वह मिट्टी पुद्गल जड़ है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या? वह आत्मा है यह? मनुष्य है यह? यह मनुष्य है? यह तो जड़ है। मनुष्यगति कहो तो उसकी पर्याय में जो है वह। वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं। समझने का कहाँ? परन्तु यह तो सब एकमेक हो गया है अन्दर। सेवंतीभाई! बारम्बार यह पूछा करते हैं, हों! वह अन्दर से एकमेक ऐसा हो गया मानो....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूध-पानी एकमेक हुए ही नहीं। दूध दूध में और पानी पानी में।

यहाँ कहते हैं, हम बनिया, हम क्षत्रिय, हम शूद्र, हों! सेवा करनेवाले। और हम पुरुष, हम स्त्री, हम नपुंसक। वह तो सब शरीर की दशा, शरीर की पर्याय है। भगवान आत्मा की पर्याय है? द्रव्य, गुण तो नहीं परन्तु उसकी पर्याय है? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। पर्याय अर्थात् अवस्था उसकी है? द्रव्य, गुण तो भिन्न है परन्तु पर्याय उसकी है वह? पर्याय उसकी वह नहीं। मानता है तो अज्ञानी चाहे जो माने।

मुमुक्षु : हो जाये या नहीं उसकी?

पूज्य गुरुदेवश्री : माने, इसलिए कहीं उसकी हो जाये? कहो, समझ में आया? क्योंकि उसकी भावना स्व-चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द हूँ, उस ओर की भावना अर्थात् एकाग्रता नहीं, इसलिए उसे यह पर्याय मेरी है, ऐसी पर में एकाग्रता, विकार में, मूढ़पने में एकाग्र होता है। वह वस्तु में तो नहीं, वह तो जड़ है। समझ में आया? ८१ हुई।

★ ★ ★

गाथा - ८२

आगे फिर मूढ़ के लक्षण कहते हैं—

८२) तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढउ मण्णइ सव्वु॥८२॥

अज्ञानी आत्मा के चैतन्यस्वरूप के भान बिना अज्ञानरूप से परिणमता हुआ। समझ में आया? कहते हैं... आगे लेंगे यह। ....

अन्वयार्थ :- मैं जवान हूँ,... जवान हूँ, मैं जवान। भाई! जवान तो जड़ की अवस्था है, वह आत्मा की अवस्था नहीं, वह तो मिट्टी की अवस्था है। जड़ रजकणों के पुद्गल का मोड़ना उसकी वह पर्याय है। जवान आत्मा नहीं। उसके बदले हम जवान हैं, हों! हमको बुलाना नहीं, बताना नहीं। बहुत अच्छी बात है। मूढ़ बड़ाई, प्रतिष्ठा और कोई भी जगत की कीर्ति के लिये उस वस्तु को अपनी मानता है।

बुड्ढा हूँ,... वृद्ध हो गया वृद्ध, मैं अब वृद्ध हो गया। शरीर जीर्ण हो गया अब हमारा। परन्तु तेरा कहाँ शरीर है? वह तो जड़ है, धूल है। **शूरवीर हूँ...** बलवान हूँ, मेरा बल देखा! एक हाथ मारूँ तो दीवार गिरा डालूँ, नीम को हिला डालूँ, नीम को ... मैं यह हूँ, मैं शूरवीर हूँ। चाहे जितना हो, वह पण्डित कहाँ से हो गया? शूरवीर हूँ, शूरवीर। धमाल धमाल ... **पण्डित हूँ...** कहाँ पण्डित था? मूर्ख ज्ञान का उघाड़ चाहे जितना हो, वह पण्डित कहाँ से हो गया? ज्ञान का चाहे जितना उघाड़, वह पण्डित कहाँ से हो गया? वह तो पर्याय का उघाड़, एक समय की पर्याय है। उसे अपने को इस प्रकार से मानना, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अरे! ... कहते हैं कि भाई! तू केवलज्ञान का कन्द है न, एक समय में पूर्णानन्द परमात्मा का कन्द पूरा अनन्त परमात्मा का रूप तेरा है। उसके एक समय के ज्ञान के उघाड़ का अभिमान... अभिमान... अभिमान... हम ऐसा जानते हैं, हमको यह आता है, हमको यह आता है। कहते हैं कि मूर्ख है। शशीभाई! ... वह पर्यायबुद्धिवान पर्याय को, अंश को अपना मानता है। जैसे शरीर की अवस्था अपनी नहीं, उसी प्रकार ज्ञान की

क्षयोपशम अवस्था—अंश भी वह वास्तव में आत्मा की है ही नहीं। परालम्बी का क्षयोपशम, वह बन्ध का कारण है पर्याय। आहाहा! समझ में आया?

सबमें श्रेष्ठ हूँ... बड़ा ईश्वर हूँ, संघ का श्रेष्ठ हूँ, फलाना का बड़ा... ऐसे मूढ़। भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति की भावना छोड़कर और इस भावना में यह मूर्ख पड़ा है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, क्या करना इसमें अब? ... वह तो पर्याय, कहते हैं, वास्तव में वह क्षयोपशम है, वह जड़ है—ऐसा यहाँ कहते हैं। लो! इस चैतन्य की पर्याय तो आनन्द दे, ऐसी होती है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? उघाड़ की पर्याय जो दुःख दे, वह पर्याय आत्मा की कैसी वह? आहाहा! समझ में आया?

जड़ वास्तव में वह जड़ ही है, अचेतन है, उसमें परिणमता-परिणमता वापस नीचे निगोद में जायेगा। वह कहाँ आत्मा की पर्याय है! आत्मा की पर्याय तो निर्मल और आनन्द होनी चाहिए। समझ में आया? यहाँ तो सबमें, शरीर में इकट्ठा यह डाल दिया। ...आहाहा! समझ में आया? निगोद के जीव का परिणमन और वापस नौवें ग्रैवेयक गया, नौ पूर्व और ग्यारह अंग का परिणमन था उघाड़ का। क्या सब अचेतन जड़! चैतन्य की दशा कहाँ है वह? चैतन्य की दशा तो द्रव्य, ज्ञान को... जो ज्ञान सम्यक् अनुभव हो। उस आत्मा की पर्याय को आत्मा कहते हैं। आहाहा! रतिभाई! यह तो जहाँ दो, चार जवाब आये और फलाना सब लड़के सीखे... मुझे आता है, हों! मुझे बहुत जानकारी है... बहुत अच्छी बात। मूर्ख है, कहते हैं। समझ में आया?

सबमें श्रेष्ठ हूँ 'क्षपणकः' दिगम्बर हूँ,... दिगम्बर शरीर भले हो, परन्तु वह दिगम्बर आत्मा है, ऐसा मानना मूढ़ है, ऐसा कहना है। इससे कोई ऐसा माने कि दिगम्बरदशा हो तो ही मुनिपना हो, ऐसा कौन निर्णय करे इसमें से? ऐसा कहे। ऐसा नहीं, वह दूसरी बात है। अभी तो शरीर की दिगम्बरदशा, वह आत्मा है—ऐसा मानना, वह मूढ़ है। परन्तु मुनिपना हो जब अन्दर में भावलिंग प्रगट हुआ हो, तब शरीर की अवस्था दिगम्बर ही होती है, दूसरी दशा होती ही नहीं। तथापि वह दिगम्बरदशा मैं हूँ, ऐसा (मानना) मिथ्यात्व है। इसलिए चाहे जिस दशा में मुनिपना हो, ऐसा यहाँ कहना नहीं है। आहाहा! कहीं जहाँ बात हो वहाँ कहीं की कहीं ले जाये।

अब '**वन्दकः**' **बौद्धमत का आचार्य हूँ...** '**वन्दकः**' का अर्थ किया है न... '**क्षपणको दिगम्बरोऽहं वन्दको बौछोऽहं**' मैं बौद्ध हूँ ... आत्मा कब बौद्ध था? समझ में आया? **और मैं श्वेताम्बर हूँ,...** लो! आया अब। **मैं श्वेताम्बर हूँ,...** सफेद वस्त्र पहननेवाला मैं साधु। वह तो धूल, जड़ की अवस्था हुई। आत्मा में कहाँ थी वह? इसका अर्थ ऐसा नहीं कि श्वेताम्बर की अवस्था हो या दिगम्बर की अवस्था हो, चाहे जहाँ मुनिपना हो, ऐसा यहाँ कहना नहीं है। वह दूसरी बात है, यह दूसरी बात है अभी। खिचड़ा करते हैं ऐसा कहते थे। भीखाभाई! यहाँ तो श्वेत वस्त्र एक जड़ की दशा है, दिगम्बर दशा वह जड़ की दशा है, बौद्ध दशा वह जड़ की दशा है, उसे आत्मा मानना मूढ़ है, अज्ञानी है। समझ में आया? **सब शरीर के भेदों को मूर्ख अपना मानता है।** आचार्य स्वयं कहते हैं (कि) मूढ़ है। दिगम्बर हूँ, श्वेताम्बर हूँ, यह हूँ, यह हूँ, वह तो जड़ की-शरीर की अवस्था है। **ये भेद जीव के नहीं हैं।**

भावार्थ :- यहाँ पर यह है कि,... यह व्यवहारनयकर ही अभिन्न है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? पाठ में ऐसा है, हों! संस्कृत में है न '**व्यवहारेण भिन्नान्**' अभिन्न अर्थात् उसके हैं, ऐसा कहा जाता है, ऐसा। ऐसा ही कहा जाये न निमित्त से... निमित्त से... **यद्यपि व्यवहारनयकर ये सब तरुण... वृद्धादि...** निमित्त की अपेक्षा से ऐसा बोलना में आता है। **शरीर के भेद आत्मा के कहे जाते हैं, तो भी...** देखो! यह दो नय विरोध है। **निश्चयनयकर वीतराग सहजानन्द एक...** ... निश्चयनयकर भगवान वीतराग **सहजानन्द एक स्वभाव जो परमात्मा उससे भिन्न हैं।** यह पण्डिताई भिन्न है और यह शरीर, अवस्था दिगम्बर और श्वेताम्बर और बौद्ध, वह सब भिन्न है।

ये तरुणादि विभावपर्याय कर्म के उदयकर उत्पन्न हुए हैं,... जो तरुण आदि विभाव दशा, कर्म के उदय से वह तो दशा हुई है। देखा? यह पण्डित कर्म के उदय से हुआ, ऐसा.... उसका कोई क्षयोपशम नहीं, वह सब कर्म की जाति है। आत्मा कहाँ है वह? आहाहा! समझ में आया? **ये तरुणादि विभावपर्याय कर्म के उदयकर उत्पन्न हुए हैं,...** यह सब विभाव पर्याय है। यह क्षयोपशमभाव, अनादि का अज्ञान, वह सब विभाविक पर्याय (है); आत्मा की पर्याय नहीं। आहाहा! **इसलिए त्यागनेयोग्य हैं,...**

कहो, समझ में आया? इसलिए छोड़नेयोग्य है। हेय आया न? छोड़नेयोग्य है, दृष्टि में छोड़नेयोग्य है ऐसा, वे मेरे नहीं।

तो भी उनको साक्षात् उपादेयरूप... कहते हैं कि जो छोड़नेयोग्य है। **तो भी उनको साक्षात् उपादेयरूप निज शुद्धात्मतत्त्व में जो लगाता है,...** वह मैं हूँ, ऐसा लगाता है, वह मैं हूँ—ऐसा लगाता है, इसलिए मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह वीतराग परमानन्द, सहजानन्द एक स्वरूप ऐसा परमात्मा उससे सब पण्डिताई, शरीरादि की भिन्नता है। उसे भगवान वीतराग आत्मा के साथ, हाँ यह मेरे, यह मेरे, इनसे मैं बड़ा और ऐसी दूसरे की दशा को बड़ा माने, मूढ़ है वह, कहते हैं। समझ में आया?

साक्षात् उपादेयरूप निज शुद्धात्मतत्त्व में जो सम्बन्ध करता है, ऐसा लेते हैं। समझ में आया? '**योजयति...**' योजयति, उसमें '**संबद्धान**' है, इसमें '**योजयति**' है। समझ में आया? '**योजयति**' है, उसे जोड़ता है। भगवान ज्ञायक चिदानन्दमूर्ति आनन्दस्वरूप, उसमें—आनन्दमूर्ति में इन भावों को ऐसे जोड़ता है, यह जोड़ता है और इस प्रकार से आत्मा को स्वयं को पहिचानता है और दूसरे को भी इस प्रकार से पहिचानता है और इस प्रकार से दूसरे को पहिचान कराने का प्रयत्न करता है। वह मूढ़ जीव है। समझ में आया? आहाहा! अज्ञानी जीव उसे आत्मा के मानते हैं। वे अज्ञानी क्यों कुछ बढ़ाई जगत में मानते हैं, वह ज्ञान के उघाड़ की, दुनिया के शरीर की, जवान अवस्था की, नग्न दशा की... बाहर की प्रतिष्ठा के लिये दुनिया इज्जत गिने....

धन का लाभ इत्यादि... कीर्ति लाभ, मान का लाभ, महत्ता बतावे यह इत्यादि कारण से। ऐसे **विभाव परिणामों के आधीन होकर...** ऐसे विकारी पर्याय के आधीन होकर। आत्मज्ञान और आत्मा के आधीन छोड़ करके। **परमात्मा की भावना से रहित हुआ...** भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु की अन्तर की एकाग्रता जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र सम्यक् अन्तर स्वरूप की **भावना से रहित हुआ मूढ़ात्मा हैं, वही जीव के ही भाव मानता है।** उसे जीव का भाव मानता है। वह जीव स्वरूप तो अखण्ड आनन्दकन्द, उसके अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् स्वभाव को अवलम्ब कर होता हुआ वह जीवभाव कहलाता है। यह जीवभाव नहीं कहा जाता। समझ में आया? ... शुभयोग, उदयभाव, वह आत्मा को लाभ करे। यहाँ तो कहते हैं, क्षयोपशमभाव, परालम्बी उघाड़, नौ पूर्व

का उघाड़, ग्यारह अंग का उघाड़ आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं करता। उसे आत्मा के लाभ में जोड़ता है, इसका अर्थ कि, अपने मानता है। ... भाई! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और दूसरी बात है। यह तो अन्दर के स्वभाव से विपरीत मान्यता हो, उसकी बात है। यह तो शरीर की अवस्था को, उघाड़ के भाव को अपना मानता है, वह मूढ़ है, इतनी बात अभी है। इससे श्वेत वस्त्रवाला मुनि हो सकता है और दिगम्बर हुआ इसलिए, शरीर दिगम्बर हुआ इसलिए मुनि हो गया—ऐसा नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ८३

आगे फिर भी (मूढ़ के लक्षण) कहते हैं—

८३) जणणी जणणु वि कंत घरु पत्तु वि मित्तु वि दव्वु।
माया-जालु वि अप्पणउ मूढउ मण्णइ सव्वु॥ ८३॥

आहाहा! आचार्य तो अभी ऐसी शैली से बात करते हैं जरा।

अन्वयार्थ :- माता... शरीर की माता, वह आत्मा की मेरी है, ऐसा मानता है, मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? यह मेरी माँ, यह मेरी माँ। कहाँ तेरी माँ थी? आत्मा को माँ होती है? समझ में आया? यह मेरे **पिता...** जनक, जनक। मुझे जन्मदाता, तुझे जन्म दिया होगा आत्मा ने और शरीर को उन्होंने? यह मेरा पिता। मूढ़। भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप सहजात्म वीतरागस्वरूप उसमें ऐसे भाव को लगाता है। वह असत्य को सत्य मानता है, ऐसा यहाँ लेंगे। वे सब असत्य हैं, असत्य अर्थात् कि अपने सत् स्वरूप में वे नहीं। सब मायाजाल है। ... सब मायाजाल। मायाजाल कही सही, परन्तु उसकी व्याख्या? कि सत्स्वरूप भगवान की अपेक्षा से असत्य और मायाजाल। उसकी (स्वयं की) अपेक्षा से वस्तु है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो स्वरूप है। दोनों स्वरूप नहीं? उसका स्वरूप इसका नहीं। इस अपेक्षा से यह स्वरूप सत् है ज्ञानानन्द प्रभु, तो वह स्वरूप सब इसकी अपेक्षा से असत्य है। **पिता और (मेरी) स्त्री...** ... अनुकूलता बोलती हो न ऐसे ... यह हमारे घर में... परन्तु घर में कहाँ? तेरा घर ही कहाँ है? यह सब आचार्य को ऐसा किसलिए कहना चाहिए? ... भूल होती होगी? यह मेरी कान्ता / स्त्री, कान्ता अर्थात् प्रिय है। कान्ता का अर्थ प्रिय। यह मेरी प्रिय स्त्री है, अर्धांगना है, हों! हमारी घरवाली है, घरवाली कहाँ से? तेरा घर वहाँ कहाँ घुस गया? जमुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या घर था? घर तो तेरा यहाँ है, अनन्त गुण का पिण्ड वह तेरा घर है। यह धूल का घर है। धूल की आकृति होगी? आहाहा! ... गहराई से ऐसी मिठास वेदन करे और हमारे घर की स्त्रियाँ बहुत सुघड़... सुघड़... सुघड़... मिठास आवे ऐसी, और वह सुने तो उसे ऐसा हो। आहाहा! ... कामकाज घर का देखो तो ऐसा... कोई दो रिश्तेदार आये हों, खड़े हों तो ऐसे प्रसन्न हो जाये घर को देखकर। अच्छा मूढ़ है वह सब पर की अवस्था को मेरी मानकर उत्साह किसका करता है तू? जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : सच्ची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है तो मेल बहुत... उसके कारण से तो यहाँ रहे हैं। तो यह सब खोटा है, ऐसा। कहो, समझ में आया इसमें? यह हमारा घर। ऐसा जहाँ घर को देखे न वहाँ ... आहाहा!

मुमुक्षु : यह किसका घर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का घर है, पुद्‌गल का घर, पुद्‌गल की रचना से घर खड़ा हुआ। भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो बहुत लेंगे अन्दर।

और बेटा,... मेरा पुत्र हो, पुत्र एम.ए. हुआ, विलायत गया हुआ। तीन हजार का वेतन है। रामजीभाई को तो और बड़ा पुत्र है ... सात, आठ हजार वेतन ऐसा सुमन, लो! भाई! वह बेचारा कहे अरे! इसमें धूल है, इसमें कुछ मुझे यह करना ... समझ में आया? किसका पुत्र? पुत्र का आत्मा भिन्न, उसका शरीर भिन्न। तुझे लेना, देना कहाँ था उसे कहीं? परस्पर सम्बन्ध नहीं। मुफ्त का मेरा पुत्र। मेरे शरीर का आकार ऐसा सब उसमें आकार हुआ। ... है न सब बात है न सब बहुत बने। ... और इस शरीर की अवस्था वहाँ घुस गयी होगी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है सब होता है, बाल का हो ... यह पागलपना कहते हैं, मूढ़पना, ऐसा कहते हैं। पागल हुआ है ..., किसी की चीज़ को मेरी मानकर गहल-पागल हुआ है... क्या हुआ तुझे यह? क्या कहा?

बेटी... यह मेरी पुत्री बहुत होशियार है, एम.ए. में पास हुई है और फिर अमेरिका भेजनी है। फिर एक व्यक्ति बोलता था ... हमारी पुत्री, हमारी पुत्री ... यह मेरी पुत्री... क्या है परन्तु अब? धीरे-धीरे बात करो न। ... बहुत पढ़ी है, बहुत बुद्धिवाली, बहुत बुद्धिवाली और अमेरिका जानेवाली है ... क्या है परन्तु अब? धूल में भी नहीं तेरी पुत्री परस्पर (सम्बन्ध) तीन काल में। एक समयमात्र तेरी पर्याय में भी आयी नहीं, पर्याय में आया राग, वह तेरा नहीं, तो यह कहाँ से तेरी आ गयी? आहाहा! समझ में आया?

बेटी, मित्र... हमारा मित्र है उसके घर में और हमारे घर में सब एक ही है। ... सही अवसर पर वह आकर खड़ा रहे। उसे आवश्यकता हो तो हम जाकर खड़े रहें। ऐसा हमारे मित्र है। ... धूल में भी नहीं, सुन न! मूर्ख का नाता है, माना हुआ है। मित्र कैसा? समझ में आया? **वगैरह सब कुटुम्बीजन...** यह हमारे कुटुम्बी गोत्र के हैं सब। हमारे कुटुम्ब के होते हैं और सबका कुटुम्ब ... याद करके पाँच, पाँच पेढ़ी और दस, दस पेढ़ी के आंबा निकाले। आंबा निकालकर उसमें से हमारे कुटुम्बीजन हैं, आंबा को देखो! ....

यह हमारी **कुटुम्बीजन, बहिन,...** हमारी बहिन है, सहोदर है, एक उदर से उत्पन्न हुए हैं। सहोदर एक उदर में रहे, इसलिए हमारी बहिन। कौन रहे उदर में और कौन रहे तेरे? यह चीज़ ही भिन्न है, उसमें लाया कहाँ से कि मेरी बहिन है? यह हमारी **भानजी,...** खोज-खोजकर निकाला लगता है यह। हमारी यह भानजी है, हमारी बहिन की पुत्री है। बहिन कहाँ तेरी थी, वह और भानेज तेरी हो? मेरे और ... झूठे परिवार ... मायाजाल में परिवार। उस मायाजाल को अपना मानकर मूढ़ अपने आत्मा को भूल जाता है, ऐसा कहना है यहाँ तो। समझ में आया?

यह हमारे **नाना,...** हमारी माँ के पिता होते हैं नाना। नाना कहते हैं न उन्हें? हमारी माँ के पिता हैं। नाना, नाना। ऐ मोहनभाई! यह सब ऐसा साधु को कहने का क्या काम होगा? कहते हैं कि क्षण-क्षण में जहाँ-जहाँ मिथ्यात्वभाव सेवन करता है, पर को अपना मानकर, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। भाई! नाना हमारा। यह हमारे **मामा...** हमारी माँ के भाई हैं मामा। ओहोहो! **भाई...** यह हमारे भाई हैं। हमारे बड़े भाई हैं, हमारे छोटे भाई हैं। ऐसे तीन काल में भाई-बहिन नहीं आत्मा में। किसके साथ लगा... दु:ख का .... वे मेरे यही मिथ्यात्व है और यही महादु:ख है। दु:ख की व्याख्या क्या? यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... मुझे मारनेवाले। यह मेरे का भाव उसे मारनेवाला है। ये मेरे, ऐसा भाव जीव को मार डालने का है। वह दु:ख है। आहाहा!

यह हमारे **भाई, बन्धु...** समझे न? **और रत्न,...** हमारे घर में देखो! इसमें रत्न हैं, यह रत्न। हमारे पिता की पेढ़ी से, पेढ़ी से चले आते हैं ... **माणिक,...** यह हमारे माणिक है, यह माणिक देखने से यह हमारा माणिक, हों! समझ में आया? यह **मोती,...** यह मोती ... यह हमारा मोती, देखो। हमने बहुत वर्ष पहले बेचा हुआ यह हमारा मोती। कहाँ से आया तेरा मोती परन्तु? तेरा मोती तो यहाँ है। आत्मा ज्ञानानन्द वह तेरा मोती। यह कहाँ से आया बाह्य में? कहते हैं। **सुवर्ण,...** सोना, सोना के गहने आवे न ... परन्तु तेरा तो यहाँ है आत्मा। वहाँ कहाँ से घुस गया आत्मा?

चाँदी,... चाँदी के पाट पड़े हों न सौ, दौ सौ चाँदी के पाट ... वह **धन,...** लक्ष्मी, रुपया, पैसा... **धान्य,...** तिल, बाजरा और गेहूँ और हमारे यह कोठियाँ भरी हैं बाजरा की सब बारह महीने कम न हो वह भी मर जायेगा ... पुत्र कहाँ तेरे बाप के थे? उसके

कहाँ थे ? कहो, यह **द्विपदांदी...** दो पैरवाले मनुष्य होते हैं न, नौकर, नौकर, हों ! नौकर यह हमारा नौकर पचास वर्ष से हमारा नौकर है। हमारे पिता, इसके पिता, तब का यह नौकर। ... ..भाई ! यह फिर वांदी... वांदी क्या कहा ? दासी, लो ! यह **धाय,...** माता, धायमाता।

नौकर, चौपाये-गाय,... ... यह गाय मेरी है। ... यह गाय मेरी परन्तु अब ... ली थी न डेढ़ सौ रुपये में, तब महिमा करते थे और जहाँ ली दो महीने हुए वहाँ वह करे ... देखने के समय महिमा की, लेने के समय सड़ी हुई करके... क्या है परन्तु ? शिवा पटेल ! कहाँ से गाय तेरी आ गयी यहाँ ? आहाहा ! **गाय, बैल,...** बैल / बलद, बलद होता है न बड़ा खूँटा... **घोड़ी,...** लो ! घोड़ा, घोड़ा अच्छा हो और यह घोड़ा हमारे देखो... यह **ऊँट,...** अच्छा ऊँट हो तो कहे हमारा ऊँट है। परन्तु कहाँ ऊँट ? तू ऊँटिया हो गया। तू ऊँटिया हो गया, तेरा ऊँट हो।

हाथी... राजा हो न .... यह हमारा हाथी त्रिलोकमण्डन हाथी। रावण जब बैठता होगा, रावण को तो ... चौरासी लाख हाथी का बड़ा बादशाह, चौरासी लाख हाथी थे उसके घर में उसमें यह बड़ा। यह मेरा हाथी, यह मेरा हाथी रावण को ऐसा हो। .... पड़ा रहा, राम ले आये घर में, अयोध्या ले आये। लंका से उठाकर अयोध्या ले आये। वहाँ हो गया उसे जातिस्मरण। चार व्यक्ति बैठे हैं न ऊपर, देखो न ! भरत, शत्रुघ्न, ... राम और लक्ष्मण जाते हैं वहाँ, भरत ने दीक्षा ली, हों ! राजकुमार खड़े ... जहाँ दीक्षा ली उसे जातिस्मरण हो गया। अरे ! यह तो हम इसके साथ थे। यह और हम पूर्वभव में मित्र थे। उस हाथी को जातिस्मरण हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हाथी को हुआ। फिर आहार लेता है पन्द्रह-पन्द्रह दिन में वह। ... जातिस्मरण ज्ञान है, अन्दर सम्यग्दर्शन है... अरे ! पशु का अवतार। कहाँ राजकुँवर को ऐसी.... और कहाँ हमारा यह अवतार। आहाहा ! कहते हैं कि वह हाथी-बाथी किसी के हैं नहीं, किसके होंगे ? ... सुन न !

रथ,... बड़े ऊँचे रथ हो और ऐसे देखकर रत्न के शृंगारित माणेक रत्न के भरे हुए ऊपर, स्फटिक हो न, माणेक, माणेक ऐसे भरे हुए... लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये के रथ होते हैं। नेमिनाथ भगवान का रथ अलग, कृष्ण का अलग, बलदेव का अलग, जब लड़ाई करने गये न, तब जरासंध के लोग उन्हें बतलावे, जरासंध को बतलावे। वे

सब होशियार हों वे सब। गाँव के क्या कहलाते हैं? देश के परिचित सबको पहिचानते हों। जरासंध को बतलावे, साहेब! वह रथ है नेमिनाथ भगवान का, वे अन्दर नेमिनाथ भगवान विराजते हैं। तीन ज्ञान के धनी हैं, तीर्थंकर हैं। वे यहाँ श्रीकृष्ण के साथ आये हैं, ऐसा कहे, हों! वह माने नहीं। समझ में आया?

और वह कहे, मार ऐसे मार। ....! परन्तु वे तीन ज्ञान के धनी तीर्थंकर हैं। वे राजकुमार बैठे हैं सिर पर मुकुट और यह सब ... उनके सफेद घोड़े हैं वे ... और यह फलाना घोड़ा, वह श्रीकृष्ण को और ऐसे घोड़े हैं वे बलदेव... रथ-बथ किसका? ... भगवान तो अन्दर कहे, रथ भी मेरा नहीं और यह विकल्प भी मेरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ... देखो न, **रथ, पालकी,...** ऊँची पालकी रत्न की जड़ की बड़ी पालकी, बैठे न राजकुमार। लोग उठावे... **ये सर्व 'मायाजाल'...** क्या कहा? मायाजाल का अर्थ असत्य किया। पाठ में ही है, हों! इस संस्कृत में यह असत्य है, असत्य है, मायाजाल है। यह धुँआ का बाथ तेरे हैं नहीं। आहाहा!

असत्य हैं, कर्मजनित हैं,... 'कृत्रिममपि' असत्य हैं, कृत्रिम हैं,... **'आत्मीयं स्वकीयं मन्यते'** यह कृत्रिम अर्थात् कर्मजनित ऐसा अर्थ किया। **तो भी 'मूढः' अज्ञानी जीव अपने मानता है।** अपने मानता है। यह हमारे कितनी ऋद्धि। हमारे यह ... अरे! तुम्हारी ऋद्धि भगवान अन्दर पड़ी है, भाई! तेरी ऋद्धि तुझसे एक समय, एक क्षेत्र और प्रदेश से दूर नहीं। एक प्रदेश भी दूर हो, वह तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! कहीं भी भूला है न! दीवार के साथ सिर फोड़ा जहाँ, तहाँ। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु की अन्तर की श्रद्धा और अनुभव की भावना छोड़कर यह सब हम... हम... हम... हम... हम... उसमें वेग में... वेग में... वेग में... वेग में... वेग में... बह गया है मूढ़, कहते हैं। मानता है, **अपने स्वरूप को अज्ञानी जीव मानता है।** अब जरा स्पष्टीकरण अधिक करते हैं।

भावार्थ :- ये माता-पिता आदि सब कुटुम्बीजन परस्वरूप भी हैं,... एक बोल। परस्वरूप है, यह भगवान आत्मस्वरूप नहीं। **सब स्वारथ के (साथी) हैं,...** दूसरा बोल। ये सब स्वार्थ के सगे हैं, स्त्री, पुत्र यह सब कहा वे सब, हों!

मुमुक्षु : ....सेवा करेंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सेवा करता था धूल? जड़ को जड़ स्पर्शे, यह (आत्मा) स्पर्शता भी नहीं, भिन्न भिन्न है। कौन किसकी सेवा करे? गजब बात भाई यह! यह सब मायाजाल है। यह एक तो परस्वरूप है, सबके नाम लिये न इतने।

स्वारथ के (साथी) हैं,... सब स्वार्थ के हैं। छह महीने (रोग) खिचें (और) रात्रि जागरण लेना पड़े तो मन में गहराई में हो जाये कि झट खाट छोड़े तो अच्छा। छह महीने जहाँ खिंच जाये... एक के बाद एक, एक के बाद एक। आहाहा! कब मरेगा, कब मरेगा और अपनी उपस्थिति नहीं हो और मरेगा तो लोगों में क्या कहना? जवान व्यक्ति पच्चीस वर्ष का मनुष्य। समझ में आया? एक गाँव में खिंच गया लड़का जवान मरने की तैयारी। थोड़े से दिन खिंचे, उसके बाप का बाप आकर बात करता था। अरे! दुःखी होता है, अब रात्रि जागरण करना पड़े न ... अब छूटे तो अच्छा है। यह अभी पचास, साठ, पचास वर्ष के पुत्र के बाद की बात करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... समझ में आया? ताराचन्दभाई का था वह लड़का सोमचन्द का मगन। मगन था मगन ... हम तब वहाँ थे। सोमचन्द का बड़ा। सोमचन्द नहीं? ... तब हम वहाँ थे। रात्रि जागरण हो ... वृद्ध बोलते थे, लो! गुलाबचन्दभाई! यह वह नागनेश में थे....

इस जगत में ऐसा है, भाई! मुफ्त में उत्साह करके लगा है। जरा जहाँ महीने और पन्द्रह दिन खिंचे, हड्डियाँ अन्दर पसलियों में खलबलाहट होती हो। रात्रि में उसे नींद न आवे और कोई जगता न हो उसके बाद ... अरे! सब निश्चिन्त से सो रहे हैं, यहाँ जलता है, सुलग उठा हूँ। अभी तक किया और कोई सामने देखता नहीं। यह दाह... दाह... दाह... मूढ़ किसका लगा है परन्तु? कब चीज़ तेरी थी? समझ में आया? आहाहा!

सब स्वारथ के हैं,... दो बोल। **शुद्धात्मा से भिन्न...** भगवान शुद्ध चैतन्य प्रभु से भिन्न वह परस्वरूप कहा था न, **परस्वरूप भी है, स्वार्थ के है, शुद्धात्मा से भिन्न भी हैं, शरीर सम्बन्धी हैं,...** यह चौथा बोल लिया। यह तो शरीर के सम्बन्धवाले हैं सब। तेरे

कहाँ थे? आहाहा! **हेयरूप सांसारिक नारकादि दुःखों के कारण होने से त्याज्य भी हैं,...** पाँचवाँ बोल। .... वे सब हेयरूप संसारी नारकी के दुःख का कारण, वह नरकादि दुःख के कारण हैं, वे सब निमित्त। स्त्री, पुत्र, माँ, बाप, पैसा सब नरकादि चार गति के दुःख में जाने के वे सब निमित्त हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात भाई! कड़वा घूँट परन्तु इसकी अपेक्षा यह तो बहुत मीठी बात है, परन्तु इसे उतरती नहीं। नरकादि चार गति के दुःख का कारण होने से **त्याज्य भी है,...** समझ में आया? अन्दर पाठ में है, हों!

'जनन्यादिकं परस्वरूपमपि शुद्धात्मनो भिन्नमपि हेयस्याशेषनारकादिदुःखस्य कारणत्वाद्धेयमपि' ऐसा होने पर भी, ऐसा कहना है। आहाहा! संसार का चित्राम देते हैं या नहीं? वे दुःख के कारण होने पर भी। अब, ऐसा होने पर भी **उनको जो जीव साक्षात्...** भगवान आत्मा... देखो, सर्वथा **उपादेयरूप अनाकुलतास्वरूप पारमार्थिक सुख से अभिन्न....** भगवान आत्मा है। वह वीतरागी अनाकुल परमार्थ सुख आनन्द से भगवान आत्मा अभिन्न है। वे भिन्न हैं तो यह आनन्द से अभिन्न है, ऐसा कहना है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के अनाकुल रस से अभिन्न है, ऐसा आत्मा वीतराग परमानन्दरूप, स्वयं परमानन्दरूप एक स्वभाववाला शुद्धात्मा द्रव्य। भगवान ऐसा आत्मा, वह पर से भिन्न स्वार्थ के सगे, ऐसे पाँच बोल कहे। तथापि ऐसे आनन्दमूर्ति भगवान के साथ जोड़ देता है। उसके साथ जोड़ देता है ....। यह मेरे... मेरे... मेरे... ऐसा अज्ञानी, है नहीं, उसके और मेरे (है, ऐसा मानकर) जोड़ देता है। समझ में आया? यह पाँच बोल कहे न—भिन्न, परस्वरूप, स्वार्थ के सगे, (हेयरूप, नारकादि दुःखों के कारण) यह भगवान आत्मा उपादेय अनाकुल आनन्दस्वरूप, अनाकुल आनन्द वीतराग आनन्द से अभिन्न ऐसा भगवान, ऐसा एक स्वरूपी प्रभु, उसके साथ 'ये मेरे' ऐसा सम्बन्ध करता है, वह मूढ़ जीव है। मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी ऐसी चीज़ को अपनी मान बैठा है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दूर-अलग पड़े तो याद आवे। सच्ची बात है। अरे! कोई सगा का ... क्या कहलाता है? समझ में आया? कहीं का कहीं सगा हो और यदि कुछ पाँच हजार का वेतनदार हो तब ... हमारे सगा हैं, हमारे सगा हैं। क्या है परन्तु तुझे? समझ में आया? हमारे सगा हैं... क्या है परन्तु? तुझे किसका हर्ष आता है? हमारा भाई ... हमारी बुआ फलाना के हैं, हमारे साले की बहू फलाना में है। क्या है परन्तु तुझे। किसका हर्ष ऐसा पागलपन का? गहलपना-पागल। जेचन्दभाई! यह पागल है, बापू! यह तो। पागल है, कहते हैं, पागल है। सेवंतीभाई! यहाँ प्रत्यक्ष दिखता है या नहीं? इसमें प्रश्न कहाँ है? वस्तु अलग, अलग चीज़ दु:ख का निमित्त है, कारण है। स्वार्थ के सगे हैं, प्रत्यक्ष दिखती है सब बात, उसमें तू कहाँ पड़ता है? परन्तु ... इसका अर्थ उल्टा करे। इस प्रकार से तो ... दूसरे के होंगे, परन्तु मेरे अलग, मेरे अलग ... बहुत अच्छा। आहाहा! कहा था न एक बार? एक व्यक्ति को। बस सब नि:शंक हैं। कैसे हों कहा कहे? (संवत्) १९८७ की बात है। ... मैं एक बात पूछता हूँ। धर्म समझनेवाले धर्म में नि:शंक न हों, ऐसे तुम सबको शंकावाले स्थापित करते हो? तो मैं तुमको एक पूछता हूँ, जब विवाह किया, तब रात्रि में तुमको यह स्त्री मार डालेगी, ऐसी शंका हुई थी? अनजान थी, एकदम अनजान पहली रात्रि में... अनजाने, तुमको ऐसी शंका हुई थी? बहुतों की रानियाँ मार डालती हैं पहले दिन में। ऐसा है, अब यह मार डालेगी ऐसा। तुम्हारे प्रेम के कारण यह शंका होती नहीं।

उसी प्रकार जिसे आत्मा का भान हुआ, उसके प्रेम के कारण उसकी शंका नहीं होती। ... तुमको शंका हुई थी कहा, कभी सोलह वर्ष की ... अठारह, बीस वर्ष के हों और पहले दिन विषयवासना की रति के प्रेम में पड़े, भूल गये क्या करेगी... शंका हुई है कुछ? जिसका जिसे प्रेम, उसमें उसे शंका नहीं होती। इसी प्रकार भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप के भान में जो वस्तु हुई, उसे शंका नहीं होती। शंका कैसी? समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा परमार्थ सुख तो आत्मा, उससे एकमेक प्रभु है। ऐसे शुद्धात्मद्रव्य के साथ यह लगावे। **वह मन, वचन...** देखो! इसके साथ दूसरी बात ली। उसमें '**अज्ञानपरिणत:**' लिया था। समझ में आया? ... यहाँ **मन, वचन, कायारूप परिणत**

हुआ... ऐसा लिया। मन, वचन और काया के लक्ष्य से यह मेरे, ऐसा परिणत हुआ, **शुद्ध अपने आत्मद्रव्य की भावना से शून्य (रहित) मूढ़ात्मा है,...** कहो, समझ में आया? मन, वचन, काया व्यापार परिणत है न। स्वशुद्धात्म द्रव्य, ऐसा यहाँ से लिया। ... समझ में आया?

८१ में '**अज्ञानपरिणतः**' था ८१ में अन्तिम शब्द है न ८१ में '**अज्ञानपरिणतः**' ऐसा शब्द था। ८१ की अन्तिम लाईन संस्कृत की। उसमें था '**परमात्मभावनाच्युतः सन् मूढात्मेति**' पूरी वस्तु ऐसे पर है न, इसलिए उसके लक्ष्य से मन, वचन, काया में एकाकार होकर परिणमकर, समझ में आया? अपने आत्मद्रव्य से शून्य हो गया है। भगवान आत्मा स्वरूप चिदानन्द प्रभु की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान से शून्य हो गया है। शून्य, शून्य। इसे भर दिया है उसमें। यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... मूढ़ ने मन, वचन, काया से ... व्यापार, हों! उसमें परिणत हुआ। '**स्वशुद्धात्मद्रव्यभावना शून्यो**' ओहोहो!

अर्थात् अतीन्द्रियसुखरूप आत्मा में परवस्तु का क्या प्रयोजन है? देखो! अरे! अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा में इस वस्तु का प्रयोजन क्या है तेरे घर में? ठीक हो तो, आजीविका करानेवाले हों तो धर्मध्यान निश्चिन्तता से हो। ऐसा होगा या नहीं कुछ? निश्चय धर्मध्यान हो, लो! यह लड़के कमाते हों ... ऐसा होगा? खोटा है। कहते हैं, तेरा अतीन्द्रिय सुख यहाँ पड़ा है, (उसे) छोड़कर कहाँ पर का प्रयोजन लगाया तूने यह? पर सब समान हों तो फिर हमारे निश्चिन्तता। मूढ़ है? वे तो पर हैं, उनके साथ क्या सम्बन्ध है तुझे? धर्मचन्दजी! यह तो भेदज्ञान की बात है। आहाहा!

अरे! तेरा अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु यहाँ है न, उसकी भावना, तेरे समीप में पड़ा है उसकी भावना कर न! इसकी कहाँ भावना करता है, दूर है, उसके साथ तुझे क्या सम्बन्ध है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय सुखरूप भगवान आत्मा, देखो व्याख्या ऐसी की। उस अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा को, भाई! तेरे प्रभु में तो महा अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है न! जहाँ इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं, वहाँ और इस सामग्री का प्रयोजन क्या है?—यहाँ तो ऐसा कहते हैं। **आत्मा में परवस्तु का क्या प्रयोजन है?**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... फिर यह बात समझने के लिये तो की है। भगवान... यह सब ठीक हो तो ठीक, ऐसा हेतु है न तेरा तो। यह सब हों और यह सब हों, पैसा, लक्ष्मी, माणेक, रत्न, घोड़ा, घोड़ी, स्त्री... बहुत वर्ष के परिचित नौकर को छोड़कर नया लाना, उसकी अपेक्षा यह सब ... भाई! इसकी अपेक्षा अतीन्द्रिय सुख से अभिन्न भगवान है न अन्दर, उसकी भावना क्यों नहीं करता, जो तेरे समीप में तू ही चीज़ है। यह तूने क्या लगायी? परद्रव्य का तुझे प्रयोजन क्या है? आहाहा! समझ में आया?

अतीन्द्रिय सुखस्वरूप भगवान आत्मा को **परवस्तु का क्या प्रयोजन है? जो परवस्तु को...** देखो, वे अभी कहते हैं कि, नहीं। यह परवस्तु अच्छी हो तो ऐसा हो, यह देह अच्छी हो तो धर्म हो। आहाहा! गजब है न बात! पहला ही प्रश्न रखा था। क्या कहा? जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? आहाहा! गजब बात है न! कहते हैं कि यहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द भगवान आत्मा, तुझे परद्रव्य का प्रयोजन क्या है? **जो परवस्तु को अपना मानता है,...** तुझे पर का प्रयोजन क्या है? आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु है न! दूसरे कैसे रहे, कैसे गये, कैसे हुए, तुझे काम क्या है? आहाहा! **जो परवस्तु को अपना मानता है,...** इस प्रकार स्वयं पर के प्रयोजन से मुझे ठीक पड़ता है, मुझे ठीक है, वह पर से ही अपने को मानता है। कहते हैं कि, **वही मूर्ख है।** वह जगत में बड़ा मूर्ख है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय का सागर पड़ा है न, प्रभु! ऐसे नजर की आलस्य में पड़ा रहा है तेरा, नजर डाल ... प्रयोजन की आवश्यकता नहीं, राग की आवश्यकता नहीं, मन की आवश्यकता नहीं और यह सब हो तो मुझे ठीक पड़े, ऐसे किसी की आवश्यकता नहीं। ऐसा निष्प्रयोजन... उसका दृष्टि का साधन कर।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १, बुधवार, दिनांक - २४-११-१९६५
गाथा - ८४ से ८५ प्रवचन - ५८

गाथा - ८४

पहले भाग की ८४ गाथा। **अब और भी मूढ़ का लक्षण कहते हैं**—अज्ञानी का स्वरूप बताते हैं।

८४) दुक्खहँ कारणि जे विसय ते सुह-हेउ रमेइ।
मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ इत्थु ण काइँ करेइ॥ ८४॥

अन्वयार्थ :- दुःख के कारण जो पाँच इन्द्रियों के विषय हैं,... देखो, यह शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, ये सब दुःख के निमित्त हैं, दुःख का कारण है। **उनको सुख के कारण जानकर...** ये मुझे सुख का कारण है, ऐसा मानकर, **वह मिथ्यादृष्टि जीव इस संसार में क्या पाप नहीं करता?** उसमें रमण करता जीव क्या पाप न करे? क्या कहते हैं? आत्मा में आनन्द है, आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और सुख है। उसकी श्रद्धा का भान नहीं, वे जीव पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख है, ऐसा मानकर रमते हैं, वे मूढ़ जीव क्या-क्या पाप न करे? कहो, समझ में आया इसमें? **सभी पाप करता है, अर्थात् जीवों की हिंसा करता है,...** विषय में सुख माना है।

सम्यग्दृष्टि, धर्मी जीव, उसे स्त्री, राजपाट, परिवार हो, परन्तु उनमें उसने सुख माना नहीं। समझ में आया? वह विषयभोग में या राज में या रानियों में या इज्जत में या कीर्ति में, धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में होने पर भी उनमें सुख है ऐसी मान्यता होती नहीं। समझ में आया? वह भोगता हुआ दिखाई दे, परन्तु उस भोग में वह दुःख मानता है, उपसर्ग मानता है, जहर मानता है। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में हो तो भी आत्मा के आनन्द की दृष्टि का अनुभव है। आत्मा में आनन्द है, आनन्द अन्यत्र कहीं नहीं। ऐसी आत्मा के आनन्द की दृष्टि (वन्त) धर्मी सम्यग्दृष्टि राजपाट, गृहस्थाश्रम में दिखाई

दे, तथापि उसे कहीं शब्द में इज्जत, कीर्ति, रूप, रंग, गन्ध, सुगन्ध, दुर्गन्ध या रस, स्पर्श में कहीं धर्मी को सुखबुद्धि उत्पन्न नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों की दृष्टि में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि में अन्तर है। समझ में आया? और मिथ्यादृष्टि भले जैन सम्प्रदाय में जन्मा हो और श्रावक नाम धराता हो, कदाचित् बारह व्रत लेने के परिणाम हुए हों, तथापि वह पंचेन्द्रिय के विषय में सुख मानता है, मुझे उसमें मजा होता है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? आहाहा! वह मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि, मिथ्यात्व दृष्टि के कारण भोग के काल में उसे उसमें मिठास लगती है। विषय की वासना में मिथ्यादृष्टि को मिठास और प्रेम और मजा लगता है। ऐसा मिथ्यादृष्टि ऐसे पाप करते हुए क्या-क्या पाप न करे? समझ में आया?

ऐसे शब्द, इज्जत, कीर्ति सुनते हुए उसमें सुख मानता है। मिथ्यादृष्टि उसे सुख मानता है, उसकी इज्जत, कीर्ति (में)। ऐसे में सुख माननेवाला, आत्मा में आनन्द है, ऐसा नहीं माननेवाला, वह इज्जत के लिये पाप करके क्या-क्या पाप न करे? ऐसा कहते हैं। रूप में मिठास मानता है मिथ्यादृष्टि। अच्छी स्त्री, अच्छी पुत्र सुन्दर देखकर उसे मिठास आती है। मुझे इनमें प्रेम आता है, मुझे इनमें मजा आता है। ऐसा मिथ्यादृष्टि ऐसे रूप में गृद्धि हुआ अज्ञानी रूप के लिये क्या-क्या पाप नहीं करता? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पाप, परन्तु उसके लिये क्या-क्या न करे? ऐसा। भोग में पाप तो है, परन्तु भोग के लिये मिठास में क्या-क्या न करे? किसी की स्त्री हरे, किसी की हिंसा करे, किसी को मार डाले। अपने भोग की अनुकूलता साधने के लिये क्या-क्या न करे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ है। इसलिए उसे भोग काल में, कीर्ति काल में, रूप देखने के काल में उसे कहीं मिठास नहीं दिखती। वह सब राग आवे, उसे दुःखरूप लगता है। समझ में आया? आहाहा! और अज्ञानी को उसमें

मिठास लगती है। रूप में, गन्ध में, अच्छी सुगन्धी में मिठास (लगती है)। उस मिठास के कारण क्या पाप न करे? घुन जला डाले वनस्पति के, पंचेन्द्रिय के, किसी को ... राजा के, मनुष्य को ऐसा कहते हैं। ऐसे रस को भोगने के लिये अच्छे रस को भोगने में मिठास है, मिथ्यादृष्टि को पाप का मजा आता है। ऐसे रस की सामग्री प्राप्त करने के लिये क्या पाप न करे वह? ऐसा कहते हैं। और स्पर्श। स्त्री के भोग में मिथ्यादृष्टि को मजा लगता है। मूढ़ को उसमें मजा लगता है, ऐसा कहते हैं। मूढ़ कहा न यहाँ? स्त्री के सेवन में, पशु हो, मनुष्य हो या देव हो, उसे स्पर्श के सेवन में अन्तर में उत्साह, हर्ष और मिठास लगती है। ऐसे मिठास के मिथ्यात्व के पाप में पड़ता हुआ ऐसा विषयों को अनुकूल बनाने के लिये क्या-क्या पाप नहीं करता? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

हिंसा करता है,... अनुकूल स्पर्श प्राप्त करने के लिये, अनुकूल कीर्ति प्राप्त करने के लिये, अनुकूल रूप प्राप्त करने के लिये, अनुकूल रस प्राप्त करने के लिये, अनुकूल स्पर्श प्राप्त करने के लिये वह हिंसा करता है। **झूठ बोलता है,...** झूठ बोले। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों में मिठास का मारा मिथ्यादृष्टि झूठ बोले, अन्धाधुन्ध झूठ बोले। क्या पाप न करे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **दूसरे का धन हरता है,...** पाँच इन्द्रिय के विषयों के मिठास में—मिथ्यात्व में दुनिया की लक्ष्मी हरे, गरीब लोगों को लूटे। समझ में आया? (सधन को) निर्धन करे। धन हरे, धन। अपने पाँच इन्द्रिय के शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श प्राप्त करने के लिये उसमें मिठास है, इसलिए (सर्व पाप करे)। ज्ञानी को पूर्व के कर्म के उदय से सामग्री मिली हो, उसमें उसे मिठास नहीं। इसलिए सामग्री प्राप्त करने की उसे भावना नहीं। सामग्री में जरा राग होकर रहता है, उसमें भी जिसे मिठास नहीं, तो उसे उस कारण से पाप करने का रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

दूसरे की स्त्री सेवन करता है,... भोग की मिठासवाला जहाँ-जहाँ कोई स्त्री सुन्दर देखे, तिर्यंचनी ऐसी देखे, देवी ऐसी देखे, उसे भाव हो। देवी तो ... परन्तु परस्त्री का सेवन, पर में भोग में मिठास है, मिठास है कि आहाहा! माँस और हड्डियाँ, चमड़ी, उसके चुंथने के काल में उसे अन्दर मिठास लगती है। राग की मिठास का पॉलिश चढ़ गया है। ऐसी मिठास के कारण मिथ्यादृष्टि किस स्त्री का सेवन न करे? समझ में आया?

अति तृष्णा करता है,... बहुत लक्ष्मी प्राप्त करूँ, स्त्रियों को आधीन करूँ, राज को आधीन करूँ। **बहुत आरम्भ करता है,...** महा आरम्भ करे बड़ा। स्वयं भोग की लालसावाला, मिठास है न उसे। उसे प्राप्त करने के लिये आरम्भ करे, युद्ध करे, स्त्री के लिये देखो न कितने युद्ध शास्त्र में आते हैं। पैसे के लिये, जमीन के लिये, स्त्री के लिये, 'जर, जोरू और जमीन ये तीन झगड़े के कारण' कहते हैं या नहीं? उसमें मिठास है उसे कि आहा! हमारे इतना पैसा। मूढ़ उसमें मिठास वेदता है। मूढ़ हमको इतने राज, हमको इतने पुत्र, हमारे इतनी स्त्रियाँ, खाने के साधन, बँगला, माँगते हैं एक कहें वहाँ हजार तैयार हो, ऐसे सब नौकर-चाकर। उसे परपदार्थ के झुकाव के भाव में मिठास लगती है। मूढ़ है, उसे आत्मा में आनन्द है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

सम्यग्दृष्टि ऐसा दिखाई दे बाहर में, राजपाट में, भोग में वासना, परन्तु उसे मिठास नहीं, प्रेम नहीं। दु:ख लगता है, उपसर्ग लगता है, इसलिए उन्हें प्राप्त करने की उसे भावना नहीं। उसे तो आत्मा में एकाग्र होकर आनन्द की वृद्धि कैसे करूँ! आत्मा में, अतीन्द्रिय आनन्द में, एकाग्र होकर कैसे वृद्धि करूँ, ऐसे ज्ञानी को संसार में रहे होने पर भी (भावना वर्तती है)। **खेती करता है,...** बड़ी खेतियाँ करे। देखो न, भोग के लिये, कीर्ति में मिठास के लिये, दूसरे की अपेक्षा बड़ा बतलाने के लिये, दूसरे की अपेक्षा बड़ा बतलाने के प्रेम के लिये बड़ी खेती कैसे लोहे की मशीनें नहीं चलती? नीचे कितने सर्प मरें, पोली जमीन में कितने मेंढ़क, सर्प (मरे)। अपनी इज्जत और पैसा मिले, बड़ा होऊँ, गाँव में सेठिया होऊँ, गाँव में राजा होऊँ। अधिक होऊँ, दूसरे की अपेक्षा इज्जत प्राप्त करूँ। मूँछ पर (पानी) ताव दे। पानी क्या, नींबू रखूँ। ऐसी खेती करे। मिठास, यह पाँच इन्द्रिय के भोग की मिठास के लिये मिथ्यादृष्टि क्या न करे, ऐसा चलता है। समझ में आया?

खोटे-खोटे व्यसन करता है,... देखो! भोग के लिये शरीर अच्छा रहे तो भोग बहुत लिया जाये। माँस खाये, शराब पीवे, मछलियाँ खाये, क्या कहलाता है वह? कोडलिवर, मछली का तेल है न, उसे बहुत पीवे, ऐसे शरीर व्यवस्थित रहे तो अपने बहुत काल जियेंगे और बहुत काल भोग लेंगे। मूढ़ को आत्मा में आनन्द की खबर

नहीं। आहाहा! समझ में आया? बड़े राजा, महाराजा हो, परन्तु विषय के लोलुपी मिठास की दौड़ में क्या न कर डाले? कहते हैं। सात व्यसन सेवन करे। परस्त्री व्यसन, व्यभिचार, वेश्या, समझ में आया? शिकार, मदिरा, जुआ, क्या न करे? अपने व्यसन की मिठास के प्रेम के समक्ष ऐसे प्राप्त करने के लिये क्या-क्या व्यसन न सेवन करे? आहाहा!

जो न करने के काम हैं, उनको भी करता है। समझ में आया? आहाहा! इज्जत की मिठास के समक्ष क्या न करे! एक बनिया को किसी ने बता दिया कि मछली की आँखें हैं न, अमुक समय तले तो उसमें से मोती हो जाये। तो तुम्हारी सब कमी पूरी हो जायेगी। उस भाई के घर में जाये। दूसरा यह माने कि, यह बनिया नहीं, खोजा लगता है। यह मछली की आँखें तलावे और किसी प्रकार से मोती हो और उसमें से यह (कमी पूरी पड़े)। क्या न करे जीव? ऐई धर्मचन्दजी! बनिया ऐसा करे। किया है, वह मेरे पास है, सब दृष्टान्त। किये हुए की बात है, मुफ्त की नहीं करते यह। दृष्टान्त दिये जाते हैं, ... दृष्टान्त दिया जाता है उसका।

क्या न करे मिठास के समक्ष? अरे..! किसी प्रकार से भी इज्जत रहे। समझ में आया? पाँच-पाँच, दस लाख का नुकसान हो, एक दृष्टान्त यह तो, और पचास हजार भी हो नहीं घर में। उन रुपयों का... ब्याज से लेकर दो डोरियाँ खींच-खींचकर ऐसे पूरा करता हो। यह बनिया की बात चलती है यह। फिर कोई ठग ऐसा बता दे कि इसमें आँखे उसकी बड़ी होंगी। बढ़िया मछली हो और उसकी आँखें ऐसी हो तगतग हो न, बहुत अच्छी। उसे ऐसा कहे, तले न घी में और उसमें फलाना डाले न तो मोती हो जायेंगे और पाँच-पाँच हजार उपजे। ऐसे दो सौ, पाँच सौ हजार बनाओ तो यह तुम्हारे बर्वाद। इसलिए वह तो कहे कि इज्जत रहेगी। क्या न करे? आहाहा! कहो, जेचन्दभाई! आहाहा! इसलिए कहते हैं कि क्या न करे? ऐसा कहते हैं।

जिसे आत्मा आनन्द है, ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, आत्मा में आनन्द है, उसका भान नहीं। मेरा सुख तो मुझमें है। मेरा सुख तीन काल में पाँच इन्द्रिय में और राग में होता नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन का भान, आत्मा में आनन्द है, ऐसा भान नहीं, वह क्या न करे? कहते हैं। आहाहा! वह आनन्द का भूला, वह बाहर में मजा प्राप्त करने के लिये

क्या न करे ? कुकर्म कर डाले। समझ में आया ? अपनी इज्जत की मिठास के समक्ष सन्तों, मुनियों को भी अवर्णवाद में डाल दे। आता है न कथा में कुछ ? नहीं वह... मुनि ध्यान में थे और वहाँ रखा पोटला। नहीं आता ? वारिषेण, वारिषेण। ... मुनि के पास आये... ऐ! तुमने लूटा है। आहाहा! समझ में आया ? वारिषेण न ? वारिषेण मुनि ध्यान में बैठे थे न ... वे लुटेरे निकले, बचने के लिये उनके पास पोटली रख दी और भागे। आहाहा! देखो! क्या न करे ? वह मुनि को मारेगा। मार डाला... वह नहीं। अपनी बात की मिठास के समक्ष,... समझ में आया ? कहते हैं, वह क्या-क्या न करे ? ऐसा कहा न यहाँ। क्या क्या न करे क्या, वह मुनियों को मारे। ज्ञानियों को गालियाँ दे, अपने विषय का पोषण, इज्जत, कीर्ति और भोग की वासना की मिठास पूरी न पड़ती हो तो कहाँ-कहाँ जाये, इसका पता न रहे, ऐसा कहते हैं। भीखाभाई! आहाहा! आचार्य देखो न, परमात्मप्रकाश। भगवान आत्मा में मेरा आनन्द है, सुख है, शान्ति मुझमें है। ऐसी जिसे दृष्टि रुचि, श्रद्धा, ज्ञान हुए नहीं, ऐसे पर में मिठास माननेवाले क्या-क्या नहीं करे ? कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा, भक्ति करते हैं, बाहर से भले करे। परन्तु अन्दर में मिठास के समक्ष सब कुकर्म कर डाले। एक ओर भले पूजा करे, भक्ति करे और एक ओर कुकर्म दूसरे करे। मिठास है न अपनी अधिकाई करने के लिये। समझ में आया ?

भावार्थ :- मिथ्यादृष्टि जीव... देखो! अब सामने लेते हैं जरा। **वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि से उत्पन्न परमानन्द परमसमरसीभावरूप सुख से परान्मुख हुआ...** देखो! कोई ऐसा कहे कि यह मिथ्यादृष्टि अर्थात् आत्मावाला है, ऐसा नहीं। ... यह कहा जाता है, वह आत्मावाला है, ऐसा नहीं, मिथ्यादृष्टि की ... बात, यह जो कहा जाता है वह। यह क्या कहा जाता है ? मिथ्यादृष्टि से उल्टा, उल्टा कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि से उल्टा, वह कहीं आत्मा की बात नहीं।

चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन वीतराग निर्विकल्प परम शान्ति से उत्पन्न, आत्मा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प आनन्दकन्द है, ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन, भान होने पर वह

कैसा है ? कि, रागरहित अभेद परम शान्ति का भास, उससे उत्पन्न परम आनन्द ऐसा परम समरसीभाव, परम शान्तरस का वीतरागी भाव, उसरूप सुख, उसरूप आनन्द। आहाहा! छोटाभाई! यह किसकी बात है ? यह मिथ्यादृष्टि के सामने। भाई! मिथ्यादृष्टि के सामने ऊपर की बात नहीं। है न परन्तु अन्दर में। इसलिए ऐसे सम्यक् चिदानन्द निर्विकल्प प्रभु आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन में रागरहित अभेद परम शान्ति निर्विकल्प, उससे परम समरस, परम आनन्द उत्पन्न हुआ, आनन्द अतीन्द्रिय, सिद्ध जैसा ऐसा परम समरसी अरागी, वीतरागी भाव अर्थात् अनन्तानुबन्धी का अभाव, इतना वीतराग समरस भाव है। ऐसा जो सुख का आनन्द, उससे परान्मुख हुआ, उससे उल्टा हुआ मिथ्यादृष्टि। यह बात है, लो! समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन की क्या कीमत है, लोगों को कीमत खबर नहीं। समझ में आया ? आत्मा निर्विकल्प आनन्द का आनन्द का स्वरूप है पूरा। उसकी वीतराग अभेद शान्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द का रस और इतनी जरा शान्ति भी साथ में, ऐसी शान्ति और दो लिये न—शान्ति और आनन्द दो लिये हैं। उस शान्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द। सम्यक् का भान होने पर अनन्तानुबन्धी का अन्तर अभाव है। उतनी शान्ति के साथ आनन्द का अनुभव जो है, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। वह सम्यग्दृष्टि राज में पड़ा हो, तथापि उसे पर में सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया ? छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हो और चक्रवर्ती की रानी समकिती हो। समझ में आया ? उसकी सामग्री के भोग का क्या कहना ? बाहर इतनी सामग्री हो, अन्दर में कहीं राग होने पर भी उसे मिठास नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि, ऐसी जो आत्मा की शान्ति और आनन्द का अंश जो सम्यग्दर्शन में उत्पन्न हुआ, ऐसे सम्यग्दृष्टि के भान से विरुद्ध भाव, **निश्चयकर महा दुःखरूप...** ऐसे ... महादुःखरूप कौन ? विषय। ऐसा जो आत्मा का आनन्द, शान्ति, उससे विरुद्ध कौन ? कि यह पाँच इन्द्रियों के विषय महा दुःखरूप। उन्हें **विषयों को सुख के कारण समझकर...** मिथ्यादृष्टि ऐसा कहना है न यहाँ। समझ में आया ? आत्मा का आनन्द शान्ति के समसुख से विपरीत शब्द, रूप, रस, गन्ध, इज्जत, कीर्ति, भोग, उनके कारण से उत्पन्न हुआ राग और वे चीज़ें—वे सब महा दुःखरूप विषय हैं। आहाहा! वह विषय

सामग्री और उनकी ओर का होता राग महा दु:खरूप है। उसे सुख का कारण समझकर, यह बात है। मिथ्यादृष्टि उसे सुख का कारण मानता है। आहाहा! समझ में आया? जो महा दु:ख का कारण शब्द, रूप, इज्जत, कीर्ति आदि और ढ़ेर स्त्रियों के या लक्ष्मी के नव निधान। समझ में आया? चक्रवर्ती के बड़े पद, वे सब उनकी ओर का राग का भाव महादु:खरूप है, महादु:खरूप है। ऐसे महा दु:ख को अज्ञानी ऐसे सुख की विपरीत बुद्धिवाला उसे सुख का कारण मानकर **सेवन करता है,....**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दु:ख ही है न सब, महा दु:ख है। आत्मा की शान्ति को लूटे, वह महादु:ख। समझ में आया? आहाहा! '**दु:खरूपानपि**' इतना है। '**दु:खरूपानपि विषयान् सुखहेतुन् मत्वा**' इतना है। संस्कृत टीका तो इतनी है।

यहाँ तो कहना है कि अहो! जिसे आत्मा के आनन्द के रस की प्रीति, रुचि जगी नहीं, जिसे यह भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं, पूरा आनन्द और शान्तरस का भरपूर भगवान, उसकी जिसे रुचि और श्रद्धा, ज्ञान नहीं, उसे पाँच इन्द्रिय के विषयों में झुकाव; यहाँ (आत्मा में) झुकाव नहीं, इसलिए वहाँ झुकाव रखता हुआ वह दु:खरूप जो विषय है, पाठ में सुखहेतु, ऐसा कहा है न? उन दु:खरूप विषयों को सुख के कारण मानकर सेवन करता है। आहाहा! उत्साह कर-करके हर्षित-हर्षित होकर कुँए में गिरता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श के प्रेमवाला, यहाँ भगवान आत्मा के प्रेम की सम्यक् दृष्टि तो है नहीं, उसकी यहाँ बात है। यहाँ उसका अकेला प्रेम वर्तता है बाह्य में। ऐसा बहिरात्मबुद्धि मिथ्यादृष्टि, उन दु:ख के कारणों को सुखरूप मानकर, सुख के कारण मानकर उन्हें सेवन करता है। आहाहा! समझ में आया?

सो इनमें सुख नहीं हैं। इनमें सुख नहीं, सुख तो आत्मा में है। ऐसे सुख का भान नहीं करके ऐसे पर में अनुकूलता लेने के लिये झपट्टा मार रहा है। तड़पे और वह क्या पाप न करे? कहते हैं। क्या हिंसा न करे, क्या झूठ न बोले, क्या चोरी न करे, क्या (पर) स्त्रियों को न सेवन करे और क्या लक्ष्मी आदि को लूटने के लिये, इकट्ठा करने

के लिये, अनुकूलता करने के लिये क्या-क्या पाप न करे? ठेठ तक ले गये हैं, हों! **'इत्थु ण काई करेइ'** ऐसा जीव क्या न करे? धर्मात्मा को भी अपनी इज्जत रखने के लिये मिथ्यादृष्टि आक्षेप देकर भी अपनी इज्जत और महत्ता रखने के लिये मिथ्या प्रयास करता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो न! अनन्त काल से खबर नहीं आती? तुमको बड़ा करके बैठाया वहाँ।... जमुभाई यहाँ रहो, जमुभाई यहाँ रहो। अपने को बड़ा स्वीकारते है और अपने को जरा आदर देते हैं। माँ भी कहे कि जमुभाई तुम्हें यहाँ रहना पड़ेगा। कहे या नहीं? यह जगत की मिठास बापू ऐसी है, वह आत्मा की मिठास के प्रेम बिना यह मिठास अन्दर से हटे नहीं। साधु हो, त्यागी हो, परन्तु आत्मा का सम्यक् भान नहीं, उसे भी इस राग की क्रिया और महाव्रत आदि के परिणाम में मिठास वर्तती है। मिठास वर्ते, दुःखरूप परिणाम में मिठास वर्तती है, ऐसा कहते हैं, लो न यह। आहाहा! बाहर के विषय हैं सब। आहाहा! समझ में आया? क्या न करे? ऐसा। आचार्य ने तो ऐसा कहा है। **'मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ'** विषयसुख **'हेउ रमेइ'।** दुःख कारणवाले को क्या वह न करे? आहाहा! कुकर्म कर डाले। समझ में आया? यह ८४ गाथा पूरी हुई।

★ ★ ★

गाथा - ८५

इसके आगे सम्यग्दृष्टि की भावना के व्याख्या की मुख्यता से 'कालु लहेविणु' इत्यादि आठ दोहा-सूत्र कहते हैं— ८५।

८५) कालु लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोहु गलेइ।
तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमेँ अप्पु मुणेइ॥ ८५॥

अन्वयार्थ :- हे योगी... योगीन्द्रदेव अपने शिष्य को कहते हैं कि, हे धर्मी! काललब्धि प्राप्त कर, काल प्राप्त करके, लो! उसके उस प्रकार के पुरुषार्थ की योग्यता और काल प्राप्ति करके। काललब्धि लेंगे। उसमें नहीं आता? वहाँ आता है न 'अनुभव

प्रकाश' में ? काल, जैसे-जैसे काल, वैसे-वैसे द्रव्य के परिणाम सुधरते जाते हैं, ऐसा आता है न ? आता है। साधक-साध्य में, साधक-साध्य के बोल लिये हैं न ? वहाँ लिये हैं। काल साधक है, द्रव्य का शुद्ध होना वह साध्य है। है न ? है। साधक-साध्य के बोल में यह डाला है। समझ में आया ?

काल पाकर... यह काल पाकर का अर्थ यहाँ समझाते हैं कि उस समय पुरुषार्थ की अन्तर गति होती है, तब उसे काल प्राप्त हुआ, उसका ज्ञान होता है। परन्तु यहाँ काल प्राप्त से बात लेनी नहीं। **जैसा-जैसा मोह गलता है...** मिथ्यात्व तो टला है, परन्तु तदुपरान्त भी मोह गलता है, ऐसा लेंगे अर्थ में। समझ में आया ? वरना जैसे-जैसे मोह मिथ्यात्व मन्द पड़ता जाये, वैसे आत्मा का अनुभव बढ़ता जाये, ऐसा कुछ नहीं। मिथ्यात्व का नाश होता है एक धड़ाके में ही होता है। परन्तु लेंगे अन्दर। **मिथ्यात्वादि के दूर हो जाने से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होते हुए, जैसा-जैसा मोह क्षीण होता जाता है,...** ऐसा लिया, अर्थ में लिया है। ... अधिक शुद्ध में, आनन्द में ढलता है। ऐसा। क्या कहते हैं ? आहाहा!

पहला तो मिथ्यात्व का नाश करके आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, वह तो पहला सम्यग्दर्शन है। वह भी काल पाकर अपने पुरुषार्थ की गति से ही प्राप्त होता है। समझ में आया ? काल को निमित्त कहा है, तथापि वापस काल को हेय कहा है। वह कही काल आदरनेयोग्य नहीं। आता है न ? भाई! द्रव्यसंग्रह। यह तो द्रव्यसंग्रह की बात हमारे (संवत्) १९८४ से चलती है यह। १९८४ के वर्ष से चलती है। कहा, यह देखो, काल... काल किया करते हो परन्तु काल तो हेय है। द्रव्यसंग्रह नहीं ? कितनी गाथा है ? खबर है ? तब वाँचते थे। ८४ की बात है। ३८ वर्ष हुए। काल... काल क्या करते हो ? काल तो हेय है। ... देखो! काल में होता है, काल में होता है। मौके से मेरे यह गाथा चलती थी। काल बिना कुछ नहीं होता, पुरुषार्थ से कुछ नहीं होता। पुरुषार्थ हो, तब काल पक गया हो। वही यहाँ लिखा है। उपादान से ... काल निमित्त हेय है। काल एक वस्तु है, परन्तु उसका भान कब होता है ? कि ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप चिदानन्द की ओर का पुरुषार्थ ढले, तब काललब्धि अर्थात् जिस काल में कार्य हुआ,

उसे काललब्धि कही और जो कार्य हुआ है, उसे भवितव्य कहते हैं। कल आया था। समझ में आया? आहाहा!

जैसा-जैसा मोह गलता है—कम होता जाता है,... बाद में भी जैसे-जैसे स्वरूप की, स्थिरता की शान्ति अधिक होने से... रुचि तो हो गयी है, परन्तु उसे रुचि कहेंगे। पोषण बढ़ गया। आगे आनन्द जैसे होता गया और राग भी गलता गया। **तैसा-तैसा यह जीव सम्यग्दर्शन को पाता है, फिर निश्चय से अपने स्वरूप को जानता है।** अर्थात् आगे बढ़कर विशेष स्थिरता को पाता है। एकेन्द्रिय से निकलना ही महामुश्किल है, कहते हैं। भाई! तू कहाँ आया है? यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति भगवान ने एकेन्द्रिय जीव कहे हैं। उस एकेन्द्रिय जीव में अनन्त बार अनन्त भव किये नित्य निगोद में।

भावार्थ :- उसमें से—एकेन्द्रिय में से बाहर विकलेन्द्रिय **(दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय) होना दुर्लभ है,...** ओहोहो! ऐसा गहरा खड्डा नित्य निगोद का एकेन्द्रिय निगोद, जिसमें अन्तर्मुहूर्त में कितने भव करे। समझ में आया? एक श्वास में कितने? अठारह। ऐसे अन्तर्मुहूर्त में ३७७३ इतने भव। ऐसा अनन्त काल बिताया वहाँ। अन्तर्मुहूर्त में ३७७३ ऐसे भव, ऐसे-ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन के भव वहाँ निगोद में गये। आहाहा! कितने भव हुए! एक अन्तर्मुहूर्त में इतने ऐसे एक-एक वर्ष में कितने? उसके पल्योपम में कितने? उसके सागरोपम में कितने? उसके असंख्य ... ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन। उस निगोद में इतने भव किये तूने, भाई, कहते हैं। वहाँ से निकलकर विकलेन्द्रिय... समझ में आया? वह होना कठिन है, ऐसा कहते हैं। वह दोइन्द्रिय ईयळ होना कठिन है। वहाँ से निकलकर मनुष्यपने में आना कठिन है। समझ में आया? पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, विकलेन्द्रिय कहा न? उनसे—विकल से पंचेन्द्रिय होना मुश्किल है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय—मनरहित पंचेन्द्रिय भी होना महाकठिन है। उसमें से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त होना कठिन है। पंचेन्द्रिय, परन्तु वापस पर्याप्त होना महा कठिन है। उसमें से आगे मनुष्य होना कठिन है। उसमें से आगे मनुष्य होना महा कठिन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ करे तो न। भाग्यशाली क्या? ऐसे तो अनन्त बार पाये। वापस होली ऐसी की ऐसी सुलगे तो? ऐसा कहते हैं। जैसे वे निगोद के जीव सुलगते हैं, वैसे यह सुलगे पर के लिये। वह तो एक की एक जाति है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मनुष्य किसका? दुर्लभ है, इसलिए आत्मज्ञान कर। उसके लिये है न? किसके लिये है? उसमें ऐसा कहता हूँ (कि) पैसा मिलना मुश्किल है, स्त्री मिलना मुश्किल है? उसमें कहीं बोल आया। देखो! व्यापारी होना मुश्किल है, पेढ़ी होना मुश्किल है मनुष्यपने में, ऐसा है कहीं किसी बोल में? बोल लाओ। मात्र मनुष्यपना दूसरे भव की अपेक्षा अनन्त काल में पाना दुर्लभ, इतनी बात है। आहाहा!

उसमें भी बतलाना कि, उसमें से भी **आर्यक्षेत्र,...** वापस मिलना (दुर्लभ है)। अनार्यक्षेत्र में जन्मे मनुष्य तो? धर्म का सुनना भी मिलता नहीं वहाँ तो। उसमें भी आर्यक्षेत्र में जन्मे परन्तु मनुष्यदेह में हल्के में जन्मे और उत्तमकुल में न जन्मे तो? उसमें **उत्तमकुल,...** मिलना भी दुर्लभ है। वह यहाँ तक तो अनन्त बार मिला है। उसें भी **शुद्धात्मा का उपदेश आदि मिलना उत्तरोत्तर बहुत कठिन हैं,...** ऐसा कहा है। मनुष्य हुआ परन्तु, आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति है, ऐसा उपदेश, दूसरा उपदेश वह भी नहीं भाई! यह लिया। आहाहा! भगवान! तू आनन्दस्वरूप है, हों! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, प्रभु! तू तो शुद्ध है, हों! पर्याय की अशुद्धता और राग का वर्णन क्या? कहते हैं। उपदेश तो एक ऐसा शुद्धात्मा का उपदेश। ओहोहो! भाई! यह उपदेश पाना अभी दुर्लभ है, धर्म तो बाद में अभी। ऐसा नहीं कहा कि मनुष्यपना पाकर उसे स्त्री मिलना मुश्किल है और बांझ का बांझियापना टलना मुश्किल है और... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उसमें **उत्तमकुल, शुद्धात्मा का उपदेश आदि मिलना उत्तरोत्तर बहुत कठिन है,...** बहुत कठिन है। समझ में आया? शुद्धात्मा का उपदेश। ओहो! यह सामग्री मिलना... समझ में आया? आत्मा ज्ञानानन्द चिदानन्द प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द परिपूर्ण ठसाठस भरा है। वह शुद्ध भगवान है। पर्याय में अशुद्धता, वह कहीं आत्मद्रव्य नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व और बन्धतत्त्व है। भगवान शुद्धात्मा है, निर्मलानन्द है, ज्ञानानन्द है। ऐसा उपदेश सुनना दुर्लभ, उपदेश सुनने के पश्चात् उसका

ग्रहण होना दुर्लभ, श्रवण तो किया, परन्तु पकड़ में नहीं आता (कि) क्या कहते हैं। ग्रहण होता नहीं। जमुभाई! आहाहा! सुनने के पश्चात् उसका ग्रहण, यह क्या कहते हैं, वह पकड़ना दुर्लभ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। समझा तब। समझे बिना क्या सुनना... ऐसा तो अनन्त बार सुना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! श्रवण किया परन्तु ग्रहण नहीं होता। यह क्या कहते हैं, यह आत्मा शुद्ध है, यह रागादि का निषेध करते हैं, परमात्मा, वह आत्मा तो पवित्र है, ऐसे उसके श्रवण में से ग्रहण होना मुश्किल है। ग्रहण हो परन्तु टिकना मुश्किल है धारणा। धारणा अभी, हों धारणा, सम्यक्त्व बाद में। आहाहा! उसे टिकना मुश्किल है कि यह ऐसा कहते हैं। शुद्धात्मा भगवान परमात्मा चिदानन्द प्रभु की यह उपदेश शैली कहते हैं। उसे ग्रहण और धारण और धारण के बाद... देखो!

और किसी तरह 'काकतालीय न्याय से' काललब्धि को पाकर... काकतालीय न्याय में ऐसा है कि कौवे को बैठना और डाल को गिरना अथवा ऐसे ताड़ पड़ता ताड़ होता है न ताड़ी, उस ताड़ का फल पड़ना और कौवे का निकलना हो और (फल का) मुख में आना। आहाहा! ताड़ होता है न ऐसी ताड़ी मीठी, यह मदिरा की होती है, नहीं? ... हमारे तो सब वहाँ बहुत देखा है। टोकरे के टोकरे देखे हैं। हमारे पालेज बहुत आते हैं। फल होते हैं ऐसे। यह मौसम्बी होती है न मीठी, वैसे ऐसे गोल ... ताड़ी ऊपर से ऐसे गिरे और कौवे का निकलना ऐसा, उसका मुख में आ जाना बीच में। कब मिलान खाये?

उसी प्रकार कहते हैं कि अनन्त काल में कदाचित् यह **सब दुर्लभ सामग्री मिलने पर....** यह दुर्लभ सामग्री मिली, इतना यह कुदरत। बस इतनी बात। **जैन-शास्त्रोक्त मार्ग से मिथ्यात्वादि के दूर हो जाने से...** देखो! वीतराग के शास्त्र में कहा हुआ मार्ग। दूसरा मार्ग सच्चा है नहीं। तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग वीतराग परमेश्वर ने। जैन शास्त्र उक्त—जैन वीतराग ने कहे हुए शास्त्रों में से कहा हुआ भाव, उसके मार्ग से अन्दर मिथ्यात्वादि दूर हो जाने से। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी। समझ में आया?

यह भगवान ने कहा मार्ग वह शुद्ध चिदानन्दस्वरूप आत्मा के अन्तर्मुख जाकर श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर, उसमें स्थिर हो। ऐसा जैन शास्त्रोक्त मार्ग, उससे **मिथ्यात्वादि के दूर हो जाने से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होते हुए,...** उस आत्मा की प्राप्ति हुई। सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ, वह अनन्त काल में दुर्लभ है, बाकी सब अनन्त बार मिला। अनन्त बार मिला। मनुष्यपना मिला, शास्त्र ने बात की, शुद्धात्मा का उपदेश मिला, अनन्त बार मिला। अनन्त बार सुना, भला क्या हुआ? भगवान वीतराग केवलज्ञानी प्रभु तीर्थंकरदेव ने कहा जो शास्त्रोक्त मार्ग। उस मार्ग में क्या आया? मिथ्यात्व का नाश और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, वह मार्ग है भगवान का। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग के शास्त्रों को कहना है कि शुद्ध आत्मा का अनुभव कर। उसकी दृष्टि कर और अनुभव कर। मिथ्या भ्रान्ति को, अस्थिरता और अनन्तानुबन्धी को टाल। यह वीतराग शास्त्रोक्त मार्ग, यह उसका मार्ग है। समझ में आया? उसे आत्मस्वरूप, भगवान ने कहे हुए मार्ग के पुरुषार्थ से उसे आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, ऐसा भी सिद्ध किया। दूसरे अज्ञानियों ने कहे हुए मार्ग... समझ में आया? वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त अज्ञानियों ने जितने मार्ग कहे, उन मार्ग से किसी प्रकार आत्मा की प्राप्ति और सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? ऐसा करे तो उसे दुर्लभता की प्राप्ति सम्यग्दर्शन हुआ तो उसे दुर्लभ का लाभ मिला। समझ में आया? वरना ऐसा का ऐसा अनन्त काल व्यतीत किया। उसे आत्मा की प्राप्ति न करे (तो) जैन शास्त्रोक्त का लाभ उसे नहीं।

जैसा-जैसा मोक्ष क्षीण होता जाता है,... बाद में भी जितना-जितना राग मिटता जाये, स्वरूप में विशेष स्थिर हो। **वैसा शुद्ध आत्मा ही उपादेय है,...** सम्यग्दर्शन तो इतना है ही पहले से परन्तु विशेष विशेष **आत्मा ही उपादेय है, ऐसा रुचिरूप सम्यक्त्व होता है।** रुचि समकित तो पहले से है परन्तु विशेष पोषण (होता है)। राग घटता जाये और विशेष आनन्द की रुचि, स्थिरता बढ़ती जाये। कहो, समझ में आया? देखो, यह निश्चय सम्यग्दर्शन चौथे में है। पहले भी राग की रुचि को मिथ्यात्व में से घटाकर स्वभाव की ओर ढलता है क्रम-क्रम से और विशेष जहाँ अन्तर अनुभव दृष्टि हुई, तब

उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अनुभव की—आत्मा के आनन्द की (प्राप्ति) हुई। तब उसे सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। उसने अनन्त जन्म-मरण को टालने का प्रयत्न किया। बाद में भी स्वभावसन्मुख अन्दर ढलने में क्रम-क्रम से जहाँ देखा है, वहाँ बारम्बार जाता है, तो राग घटता जाये और स्थिरता बढ़ती जाये।

शुद्ध आत्मा और कर्म को जुदे-जुदे जानता है। ... जानता है न? शुद्धात्मा और कर्म को भिन्न-भिन्न जाने और भिन्न किये हुए को भिन्न विशेष अभ्यास करता है। **जिस शुद्धात्मा की रुचिरूप परिणाम से...** लो! देखो! जो शुद्धात्मा की रुचि, शुद्धात्मा पहले उपदेश में कहा था। वह शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञान का पुंज ऐसा ज्ञान पिण्ड प्रभु, उसकी रुचिरूप परिणाम। देखो, यह पर्याय है। **यह जीव निश्चयसम्यग्दृष्टि होता है,...** निश्चय-सम्यग्दृष्टि होता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, वह निश्चय सम्यक् परिणाम है। गुण नहीं, द्रव्य नहीं, प्रगट परिणाम है। नेमिदासभाई! परिणाम है? पर्याय है या गुण है? सम्यग्दर्शन गुण है या पर्याय? पर्याय है। परिणाम कहा न, परिणाम। केवलज्ञान, वह परिणाम है तो यह तो (परिणाम ही है)। केवलज्ञान, वह परिणाम—पर्याय है, गुण नहीं, गुण तो त्रिकाली है। समझ में आया?

जैन भगवान का मार्ग अलौकिक, परन्तु लोगों को जहाँ शुद्धात्मा का उपदेश सुनना ही कम हो गया और विपरीत मार्ग में चढ़ाये। अब उसे सुनने का ही यह न मिले, वह परिणमने का, रुचि करने का कब करे? करना तो यह है पहले से, ऐसा कहते हैं। व्रत कर लो, पूजा कर लो, भक्ति कर लो, यात्रा कर लो। अब यह तो सब शुभभाव है। पहले तो यह करने का है, ऐसा कहते हैं। दान कर लो, करोड़ों रुपये दे दो। अब उसमें भला क्या हुआ? धूल। कदाचित् राग मन्द किया हो तो (पुण्य बँधे)। मान के लिये करे तो मिथ्यात्व का पाप बाँधे आगे। मिथ्यात्व तो बाँधे, उसके साथ मान का अधिक पाप बाँधे। वह कहाँ धर्म था? पहला ही धर्म आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य का उपदेश भगवान ने किया, उस प्रकार से अन्तर की अनुभव दृष्टि प्रगट की, उसे यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। वही उपादेय है, देखो! इन सबमें वह आदरणीय है, ऐसा कहा। समझ में आया? यह आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप पूर्ण अखण्डित, उसके अन्तर्मुख में अनुभव करके—उसे अनुसरकर अनुभव कर श्रद्धा करना, सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह

जीव को भव में उपादेय है, दूसरा कुछ उपादेय नहीं। अंगीकार (करनेयोग्य है), बाकी कोई अंगीकार करनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

बहुत सरस दो गाथायें हुईं, ८४ और ८५। समझ में आया? ८४ में तो ऐसा कहा कि विषय के सुख... विषय सुख अर्थात् भले भोग न लेता हो, परन्तु जिसे अभी ऐसे शब्द इज्जत, कीर्ति, स्पर्श में अन्दर में मजा लगता है, वह विषय भोगता है। वह भोग के अर्थी अन्दर रुचिवाले क्या न करे? कहते हैं। आहाहा! और यह धर्म को पाना कहते हैं कि, महा दुर्लभ है। ऐसा ८५ में कहा। कहाँ से कहाँ निकली, कहाँ से कहाँ आयी... आहाहा! जेल में से निकले तो ऐसा हो जाये कि हाश छूटे। हसमुखभाई! सत्रह महीने के फँसे, निकले। यह तो अनन्त काल की जेल। वह तो सत्रह महीने की कहीं गिनती में नहीं। यह तो जेल निगोद की। आहाहा! जिसमें एक शरीर में अनन्त जीव। सबको एक श्वास एक समान, सबको श्वास एक—अनन्त का एक, अनन्त का आयुष्य एक... आहाहा! इतने अंगुल के असंख्य भाग में। ऐसे असंख्य शरीर औदारिक। ऐसे एक शरीर में अनन्त जीव। अनन्त जीव का आयुष्य, श्वास आदि समान। उसमें—निगोद में अनन्त काल रहा। अरे! इसने कहाँ विचार किया है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो पूरा एक शरीर में अनन्त। संकोच वह तो ठीक, परन्तु उसकी हीन दशा इतनी हो गयी, अक्षर का अनन्तवाँ भाग उघाड़ रह गया। मात्र उघाड़ इतना न हो तो जड़ हो जाये। इतना कम, कम। ओहोहो! यह केवलज्ञान का चतुर, यह केवलज्ञानी चतुर प्रभु की पर्याय में इतनी हीनता की दशा, ऐसे अनन्त एकसाथ जेल में पड़े हैं वहाँ। आहाहा! कितना काल? अनन्त पुद्गलपरावर्तन। कहते हैं, भाई! वहाँ से निकला ऐसे-ऐसे भव करके, दुर्लभ-दुर्लभ पाकर। अब यह आत्मा शुद्धस्वरूप भगवान की अन्तर में दृष्टि कर, बारम्बार उसका अभ्यास कर, अनुभव कर, वही उपादेय है। उसका सार यह है। समझ में आया? लो! ८६ वीं कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक - २५-११-१९६५
गाथा - ८६ से ८८ प्रवचन - ५९

गाथा - ८६

पहले भाग की ८६वीं गाथा, ८५ हुई। ८५ में सम्यग्दृष्टि का स्वरूप कहा। **इसके बाद पूर्व कथित रीति से सम्यग्दृष्टि होकर मिथ्यात्व की भावना से विपरीत...** पहली भावना मिथ्यात्व की थी न? मैं काला था और सफेद था और ब्राह्मण था—यह सब मिथ्यात्व की भावना थी, उससे यह विपरीत भावना है। शब्द गाथायें ऐसी, परन्तु उसमें वह हकार था, इसमें नकार है। मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ। सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि वह मैं नहीं। **मिथ्यात्व की भावना से विपरीत जैसी भेदविज्ञान की भावना को करता है,...** धर्मी जीव पर से भिन्नता की भावना करता है, **वैसी भेदविज्ञान-भावना का स्वरूप...** अर्थात् आत्मा को पर से भिन्नपने के भावना का स्वभाव **क्रम से सात दोहा-सूत्रों में कहते हैं :—** सात दोहों में यह आयेगा।

८६) अप्पा गोरउ किण्हु ण वि अप्पा रत्तु ण होइ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु ण वि णाणिउ जाणेँ जोइ॥ ८६॥

अन्वयार्थ :- यह **आत्मा सफेद नहीं है, काला नहीं है,...** यह भेदविज्ञान की भावना है न! उसमें यह था कि मैं काला हूँ, और सफेद हूँ, और ऐसा। वह मिथ्या दृष्टि थी। आत्मा के ज्ञानस्वरूप की भावना होने से मैं तो ज्ञान हूँ, त्रिकाल जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। ऐसे आत्मा के भान में धर्मी अपने को सफेद या काला मानता नहीं। **आत्मा लाल नहीं है, आत्मा सूक्ष्म भी नहीं है, और स्थूल भी नहीं है,...** ऐसा। सूक्ष्म भी नहीं, सूक्ष्म कहाँ? कृश-पतला शरीर वह सूक्ष्म। वह नहीं। यहाँ शरीर पतला, सूक्ष्म, निर्बल शरीर, वह नहीं। शरीर की निर्बलता मैं नहीं और स्थूलता भी मैं नहीं।

ज्ञानस्वरूप है,... मैं तो जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। ज्ञान हूँ, इस दृष्टि से देखा

जाता है। **ज्ञानदृष्टि से देखा जाता है, अथवा ज्ञानी पुरुष योगी ही ज्ञानकर आत्मा को जानता है।** दो बातें। धर्मी जीव वह स्थूल, कृश, काला, सफेद को ज्ञान में जानता है कि मेरे नहीं। अथवा स्वयं ज्ञानकर आत्मा को—अपने को जानता है। दो बातें ली। समझ में आया? धर्मी जीव ज्ञान में यह सफेद, काला, कृश, स्थूल मैं नहीं, ऐसा जानता है और या आत्मा को ज्ञानस्वरूप जानता है। ऐसे अस्ति-नास्ति। **योगी ही ज्ञानकर आत्मा को जानता है।**

भावार्थ :- ये श्वेत काले आदि धर्म व्यवहारनयकर शरीर के सम्बन्ध से जीव के कहे जाते हैं,... निमित्त सम्बन्ध से, व्यवहार से आत्मा के कहे जाते हैं। है नहीं। **तो भी शुद्धनिश्चयकर...** आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, चैतन्यसूर्य की दृष्टि से देखें तो शुद्धात्मा से सब भिन्न है। **कर्मजनित हैं,...** कर्म से उत्पन्न हुए कृश, स्थूल, रंग आदि है। **त्यागने योग्य हैं।** इसलिए दृष्टि में हेय करनेयोग्य है। **जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी है, वह निज शुद्धात्मतत्त्व में इन धर्मों को नहीं लगाता,...** तब नीचे सरागी समकित लगाता होगा? इसका अर्थ ही यह कि आत्मा वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी, रागरहित, विकल्प पुण्य-पाप के विकल्परहित आत्मा का ज्ञान, वह स्वसंवेदन, वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान (होता है)। रागरहित आत्मा के ज्ञान से ज्ञान को जानने से उस ज्ञान से यह सब भिन्न हैं, ऐसा जानता है। वह अपने में लगाता, लगाता नहीं अर्थात् जोड़ता नहीं। सम्बन्ध करता नहीं, ऐसा मूल तो कहते हैं। '**संबद्धान्न करोतीति योजयति**' अपने में उन्हें जोड़ता नहीं। अत्यन्त भिन्न वस्तु है रंग आदि। शरीर कृश, स्थूल (होवे तो) अरे! मैं कृश हो गया, स्थूल हो गया। कौन कहता है? वह जड़ की-शरीर की अवस्था है। उसे अपने ज्ञानस्वरूप में, उस अवस्था को योजता—सम्बन्ध करता नहीं, उसे भेदज्ञान की भावना सम्यग्दृष्टि की कही जाती है। **अर्थात् इनको अपने नहीं समझता है।**

★ ★ ★

गाथा - ८७

आगे ब्राह्मणादि वर्ण आत्मा के नहीं हैं, ऐसा वर्णन करते हैं—

८७) अप्पा बंभणु वइसु ण वि ण वि खत्तिउ ण वि सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि णाणिउ मुणइ असेसु॥ ८७॥

अन्वयार्थ :- आत्मा ब्राह्मण नहीं है, (आत्मा) वैश्य नहीं है, (आत्मा) क्षत्रिय भी नहीं है, बाकी शूद्र भी नहीं है,... चाण्डाल आदि आत्मा नहीं। वे तो सब कर्मजनित शरीर के स्वभाव हैं, भगवान आत्मा को वे हैं ही नहीं। आहाहा! आत्मा **पुरुष, नपुंसक, स्त्रीलिंगरूप भी नहीं है,...** वह सब देह के धर्म हैं जड़, मिट्टी की आकृति / आकार। पुरुषलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक जड़ के हैं। मिथ्यादृष्टि अपने मानता है, सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञान द्वारा पर है, ऐसा जानता है। जानता है कि यह एक है, (परन्तु) मुझमें नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

यह चौथे गुणस्थान से सम्यग्दृष्टि से लेकर बात है यह। राजपाट में पड़ा दिखाई दे। मेरा तो ज्ञानस्वरूप है। राग का विकल्प भी जहाँ मेरा नहीं तो यह चीज़ें तो मेरी कहाँ से आयी? समझ में आया? मेरे अस्तित्व में तो ज्ञान और आनन्द है, मेरे अस्तित्व में तो यह सब वर्ण आदि स्त्री, पुरुष, नपुंसक भी नहीं। **ज्ञानस्वरूप हुआ समस्त वस्तुओं को ज्ञान से जानता है।** लो! ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... मैं जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला स्वरूप से रहा, होता हुआ, जाननेवाले स्वरूप से रहा, होता हुआ, यह सब पर है, ऐसा जानता है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- जो ब्राह्मणादि वर्ण-भेद हैं, और पुरुष लिंगादि तीन लिंग हैं, वे यद्यपि व्यवहारनयकर देह के सम्बन्ध से जीव के कहे जाते हैं,... व्यवहार ऐसे निमित्त सम्बन्ध से। **तो भी शुद्धनिश्चयकर...** भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य ज्ञानस्वरूप से होता हुआ, ज्ञानस्वभाव से रहा हुआ, वह परवसतु अत्यन्त भिन्न जानता है। **और साक्षात् त्यागनेयोग्य हैं,...** आत्मा से भिन्न पृथक् हैं, वे साक्षात् त्यागनेयोग्य हैं। है न अन्दर? **'साक्षाद्धेयभूतान्'।** साक्षात् अर्थात् अत्यन्त जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंग अत्यन्त भिन्न,

साक्षात् भिन्न, प्रत्यक्ष पृथक्—ऐसा कहते हैं। साक्षात् अर्थात् प्रत्यक्ष भिन्न। मेरे स्वरूप में कोई स्त्री, पुरुष लिंग, वे मेरे हैं ही नहीं। समझ में आया?

जो ब्राह्मणादि साक्षात् त्यागनेयोग्य है, अर्थात् प्रत्यक्ष छोड़नेयोग्य है, ऐसा दृष्टि में से, हों! वे कहीं चले नहीं जाते, वे तो वहाँ पड़े रहते हैं। जहाँ बाहर है, वहाँ है, वे हैं, वहाँ हैं। **उनको वीतरागनिर्विकल्पसमाधि से रहित...** देखो! मिथ्यादृष्टि की व्याख्या, उसके सामने सम्यग्दृष्टि की व्याख्या। पुण्य-पाप के विकल्प से रहित जो चैतन्यस्वरूप, ऐसी निर्विकल्प समाधि की दृष्टि से समकिती अपने में उस भाव को लगाता नहीं, जोड़ता नहीं। **ये समाधि से रहित मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है,...** पुण्य-पाप के विकल्परहित चैतन्यस्वरूप सम्यग्दृष्टि उन स्त्री, पुरुष, नपुंसक के भेद अपने में जानता नहीं, अपने में उन्हें मानता नहीं। मिथ्यादृष्टि चैतन्य के ज्ञानस्वरूप का शुद्ध का भान नहीं, इसलिए उन सब स्त्री, पुरुष, नपुंसक के लिंग मुझे हैं, वे मैं हूँ—ऐसा जानता है। कहो, समझ में आया इसमें?

एक व्यक्ति पूछता था न कल, समकिती को बहुत छूट दी। ऐसे-ऐसे खून करे, युद्ध करे तो भी उसे बन्ध नहीं। उसे बहुत छूट दी भगवान ने, ऐसा और कहे। छूट दी, वह वस्तु स्वरूप में वह जो स्वयं चैतन्यस्वरूप आनन्द है, उसकी अन्तर दृष्टि होने के कारण ज्ञानस्वरूप वही मेरा है। ये चीज़ें मेरी नहीं। ऐसे भेदज्ञान द्वारा पर की भिन्न भावना सदा ही होती है, सदा ही होती है, इसलिए उसे छूट दी नहीं, परन्तु ऐसा स्वरूप है। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु, अज्ञानी भोग छोड़े तो मिथ्यात्व का हेतु। इसका अर्थ, अज्ञानी को क्षण में और पल में उस विकल्प-राग का और पर का अभिमान, अन्दर अपनेरूप मानकर ही मस्त पड़ा है। इस कारण से उसने अनन्त संसार का, संसाररहित भाव का अनादर करके जो वस्तु उसमें नहीं, उसमें अपनी मानकर संसार की वृद्धि करता है। आहाहा! समझ में आया?

वीतरागनिर्विकल्पसमाधि से रहित मिथ्यादृष्टि जीव... ऐसा है या नहीं? है न पाठ में '**समाधिच्युतो बहिरात्मा**' वीतराग समाधि आठवें (गुणस्थान) में होती हो तो नीचेवाला बहिरात्मा होगा? भाई! आत्मा ही वीतरागस्वरूप है और ज्ञान से ही वेदन में आये, ऐसी वह चीज़ है। ऐसा ही जिसका वीतरागस्वभाव, पुण्य-पाप के भाव, शुभ-

अशुभभाव से भिन्न वीतरागी स्वरूप की दृष्टि, वह वीतराग स्वसंवेदनज्ञान ही है। समझ में आया? उस वीतराग स्वसंवेदनज्ञानरहित मिथ्यादृष्टि, वे स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंग आदि मुझे है, ऐसा मूढ़ मानता है। समझ में आया? अन्तर कहाँ पड़ता है? उसकी दृष्टि में। अज्ञानी की दृष्टि अपनी चीज़ में नहीं, उसे स्वीकारती है और मानती है। बड़ा भ्रम और महा मिथ्यात्वभाव सेवन करता है। ज्ञानी अपने में नहीं, उन्हें नहीं जानकर; है, उसे है जानता है। इतना अधिक बड़ा अन्तर बीच में है, बीच में अन्तर है। समझ में आया?

और उन्हीं को मिथ्यात्व से रहित सम्यग्दृष्टि जीव... देखो! उसे और उसे स्त्री, पुरुष, नपुंसक के लिंग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिये का वेश—यह शरीर का वेश, उन्हें **अपने नहीं समझता।** धर्मी जीव उन्हें अपना मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **आपको तो वह ज्ञानस्वभावरूप जानता है।** मैं तो जाननेवाला-देखनेवाला हूँ, उसमें यह कहाँ मुझमें है? और उनमें मैं कहाँ हूँ? मैं हूँ तो यह ज्ञानस्वरूप ही हूँ। वे हैं वहाँ पररूप वे हैं। यह गृहस्थाश्रम में रहा हुआ सम्यग्दृष्टि भी ऐसा अनुभव करता है, जानता है। आहाहा!

अन्तरात्मा, उसमें बहिरात्मा लिया था। '**स्वशुद्धात्मस्वरूपेण योजयति।**' समझ में आया? स्वयं ज्ञानस्वरूप है, वह पर को अपने में जोड़ता नहीं। अपना ज्ञानस्वरूप है, ऐसा स्वयं जानता है। मैं तो अकेला जाननेवाला-देखनेवाला, ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव हूँ। मुझे और अन्दर पुण्य-पाप का विकल्प उठे, उसे कुछ सम्बन्ध नहीं, वह तो परज्ञेय है। विकार स्वभाव के ज्ञेय से भिन्न है और शरीर, इन्द्रिय आदि... जड़ के वेश अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? पूरी दुनिया को गले पड़ा है। यह शरीर मेरा ऐसा रहेगा और शरीर को मैं ऐसा रखूँगा और स्त्री को मैं ऐसा रखूँगा और मकान को मैं ऐसा रखूँगा, और पुत्रों, नौकरों को ऐसा रखूँगा। वह पूरी आ गयी। कितनों को रखेगा, इसका अर्थ कि पूरी दुनिया को मैं रखूँगा। समझ में आया? क्या है? जमुभाई! यह थोड़े-बहुत सम्बन्ध में दिखते को ऐसे रखूँगा, इसका अर्थ यह कि नहीं सम्बन्ध में, उन सबको ऐसे रखने का अभिलाषी है। दृष्टि में महान बड़ी विपरीतता है। ऐसे दुनिया को रखूँगा, ऐसे मैं रखूँगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ परन्तु, खबर क्या, यहाँ पहले से खबर नहीं रख सकता, धूल भी रख सकता नहीं। अज्ञानी रख सकता है? उसे ऐसे आहा! पुत्र को ऐसे रखूँ और स्त्री को ऐसे रखूँ और पैसे को ऐसे रखूँ और ब्याज उपजाकर ऐसे रखूँ और इतना खर्च करके, इतना बढाऊँ, ऐसा करके ऐसा करूँ, धूलधाणी। ... कल्पना। उसका ऐसा होने के बाद मुझे ऐसा होगा, उसका ऐसा होने के बाद मुझे ऐसा होगा, उसका ऐसा होने के बाद अपने को न सुहावे, वह ऐसे मर जायेगा, फिर मुझे ठीक पड़ेगा। कहो, समझ में आया? अपने को ठीक पड़े, वह यदि लम्बा काल होगा तो मुझे ठीक पड़ेगा। परन्तु तेरी कल्पना है न, वह मरे या जीवे, उसके कारण से है। आहाहा! समझ में आया? मेरा जीवन हो तब तक यह सब जीवे न स्त्री, तो बहुत अच्छा। वह तो परद्रव्य है। जीवे, न जीवे, उसके कारण से है, तेरे कारण से है? किसकी धूल की सुविधा है? किसकी सुविधा होगी? ऐई! कल्पना की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है यह, यह मानता है कि आहाहा! स्त्री है, पुत्र है, मकान है हाम, दाम और ठाम तीनों है, अब अपने मरते तक दिक्कत नहीं। गुड़ की गाड़ी भरे मरने के बाद। जेचन्दभाई! उस ओर के, वह मूर्ख कहता है ... ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि जीव वह अपने देखता है, इसका अर्थ यह कि एक इसको ऐसा कर दूँगा और इसको ऐसा कर दूँगा। यह शत्रु जगे हैं न, इनका अभाव कर दूँगा। यह सज्जन है न, इन्हें मैं रखूँगा, रखना अपने हाथ में है न भाई! मीठा बोले, भाषा बोले तो अपने रख सकते हैं न। परन्तु धूल भी नहीं रखेगा, सुन न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूढ़ किसे कहे? और भाई! अपने करना, वह कर सके ऐसा ... स्त्री ऐसी बातें करे। अपने करना हो तो कर सकें और उड़ाना हो तो... भाई! सब जानकारी चाहिए। ओहोहो! मानो बड़ी चतुर की पुत्री उतरी ऊपर से। मूढ़ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानता है, ऐसा कहे हम चतुर हैं ऐसा। स्त्री ऐसा माने,

हम चतुर हैं। मोहनभाई! यह तो बहुत चतुर थे। उसे कहे ऐसा करो, ऐसा करो। क्या होगा? यह सब संसार कैसा होगा यह? अरे! अपना करना हो वह अपने हाथ में है भाई! वह अपना करना या अपना न करना, वह अपने हाथ में है। धूल भी नहीं, सुन न, अब! मुफ्त में मर गया ममता कर-करके।

एक स्त्री तो ऐसा बोलती थी पहले एकबार बहुत वर्ष की बात है, हों! यह तो ६० वर्ष पहले की बात है। अरे! अपने आदमी को खिलाना तो हथेली में खिलायें। कहा, यह क्या बोलती है? मुसलमान की स्त्री थी, वोरा की। बहुत वर्ष की (बात है)। आदमियों को खिलाना तो ऐसे हथेली में खिलायें, नचायें... भारी अभिमान लगता है इसे।... साथ में वोरा का घर नहीं था? वह घर। उसकी दुकान ऐसे आयी बाहर... और यह एक दर्जी का घर पहले ऐसा। ऐसे दर्जी का, फिर उसका। यह तो तब ऐसा होता था। यह क्या बोलती है? भीखाभाई! ऐसे यह तो आदमी को खिलाना, वह तो ऐसे हथेली में खिलायें। अपने कैसे खेल खेलना... क्या है परन्तु?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा जगत है। मूढ़ भी यह मानता है। अरे! तेरा आत्मा भिन्न, दूसरे के आत्मा भिन्न, उसके रजकण भिन्न। तू क्या करना चाहता है? आहाहा!

और आदमी ऐसा बोले, ऐसा रखें कि ऐसे सीधी सीधे चले घर में। वह ऐसा बोले। घर में सीधे ऐसा क्या कहलाता है? भाषा अपने को बराबर नहीं आती। सीधे दौर चले, और फिरे क्या? चिल्लाहट मचावा दें। ओहो! परद्रव्य को तू कर सकता होगा? यह यहाँ कहते हैं कि मूढ़ को यह स्वद्रव्य भिन्न और परद्रव्य भिन्न की खबर नहीं। ऐसे कल्पना के घोड़े घड़कर मिथ्यादृष्टि पर को अपना मानता है। ऐसा इस प्रकार से मानता है। कहो, बराबर है या नहीं? गोकुलदासभाई! संसार इस प्रकार से घढ़ा हुआ है, संसार इस प्रकार से घडतर से घढ़ा हुआ है। मिथ्यात्व भावना से घढ़ कर पड़ा है ऐसे का ऐसा। कहाँ आत्मा तू, कहाँ वह आत्मा, कहाँ वे शरीर के रजकण। भिन्न-भिन्न चीज़, किसे तू रखकर व्यवस्थित चलेगा? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ऐसे के ऐसे मूढ़।... स्त्री के लिये, पुत्र के लिये रहेंगे। अब रहना, न रहना परद्रव्य उसके आधीन हैं या तेरे आधीन हैं? समझ में आया? यह योजना करके रखेंगे तो मैं न होऊँ तो उन्हें दिक्कत नहीं। एक घर उनके लिये बड़ा बँगला रखना, पैसे इतने, ढींकणा इतना... मर जाये फिर भले ले लड़के, जीते-जी कुछ हाथ नहीं आवे। ऐसी सम्हाल करने का अभिमान अज्ञानी को है। परद्रव्य का होना, न होना, इसके आधीन नहीं। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ८८

आगे वन्दक क्षपणकादि भेद भी जीव के नहीं हैं, ऐसा कहते हैं— अब सूक्ष्म बात आयेगी इसमें थोड़ी, हों!

८८) अप्पा वंदउ खवणु ण वि अप्पा गुरउ ण होइ।
अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि णाणिउ जाणइ जोइ॥ ८८॥

आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को योगी कहा है। भले गृहस्थाश्रम में हो, स्त्री को, पुरुष हो, नपुंसक हो, नारकी हो। जिसने भगवान आत्मा को ज्ञान के साथ सम्बन्ध जोड़ा है और राग और पर के साथ सम्बन्ध तोड़ा है... समझ में आया? ऐसा जो ज्ञानी। **आगे वन्दक क्षपणकादि भेद भी जीव के नहीं हैं, ऐसा कहते हैं :—**

अन्वयार्थ :- आत्मा बौद्ध का आचार्य नहीं है,... यह वन्दक लिया। बौद्ध का आचार्य आत्मा नहीं। आत्मा ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। वह क्षपण—**दिगम्बर भी नहीं है, आत्मा 'गुरवः'....** गुरु का अर्थ ही यहाँ श्वेताम्बर किया। **आत्मा श्वेताम्बर भी नहीं है,...** यह सब वेश बाहर के हैं, आत्मा के कहाँ? आत्मा का सुख तो ज्ञानानन्द स्वरूप है। **आत्मा कोई भी वेश का धारी नहीं है,...** कोई भी जगत के लिंग (आत्मा के नहीं)। **अर्थात् एकदण्डी,...** बाबा होते हैं न एकदण्डी एक लकड़ी रखकर। हम एकदण्डी बाबा हैं, हम एकदण्डी बाबा हैं। अरे! आत्मा में कहाँ एकदण्डी था?

हम त्रिदण्डी,... तीन डण्डे रखे न तीन रखे। ऐसे लकड़ी हो, उसमें तीन वे रखे।

त्रिशूल देखो न तीन रखे त्रिदण्डी। **हंस,...** लो! हंस होते हैं न लाल वस्त्र पहनकर, उसे हंस कहते हैं। अरे! हंस तो आत्मा है। राग से, शरीर से भिन्न भानवाला। यहाँ तो हम वेश के हंसवाले हैं। **परमहंस,...** ... वेश, हों! सब, यह वेश की बात है। **संन्यासी,...** लाल कपड़े, पीले कपड़े वे संन्यासी (पहने वे)। अब वह तो जड़ की दशायें सब आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप में है कहाँ? समझ में आया? एक भी वेशधारी नहीं, तब... **जटाधारी,...** जटा रखे न जटा, बड़ी जटा। **मुण्डित,...** मुण्डन मुण्डनवाले हम हैं। **रुद्राक्ष की माला...** बड़ी रुद्राक्ष की माला रखे न गले में और हाथ में पहनकर बड़ी, ऐसे हम हैं। **तिलक,...** वाले हैं, हम बड़ा तिलक लगायें ऐसे। **कुलक, घोष वगैरह...** ऐसे वेश होंगे वेश। **भेषों में कोई भी भेषधारी आत्मा नहीं है,...** वह तो सब जड़ की, शरीर की, मिट्टी की अवस्था है।

एक ज्ञानस्वरूप है,... इतने सब नहीं परन्तु एक ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वरूप, जाननस्वरूप, आनन्दस्वरूप, उसे आत्मा कहते हैं, उसे सम्यग्ज्ञानी कहते हैं। मुझमें दूसरी कोई चीज़ है ही नहीं। समझ में आया? **उस आत्मा को ध्यानी 'मुनि' ध्यानारुढ़ होकर...** लो! ऐसे आत्मा को पुण्य-पाप के राग से रहित चैतन्यमूर्ति भगवान में एकाग्र हुआ **जानता है,...** समझ में आया? यहाँ वापस अपने को जानता है, ऐसा कहना है। वे तो पर हैं, ऐसा जाना। एक ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, एक ज्ञानस्वरूप मैं हूँ—ऐसा जो आत्मा, उसे अन्तर एकाकार होकर अपने आत्मा को, आत्मा ऐसा हूँ—ऐसा जानता है। कहो, समझ में आया? पर को भिन्न जाने, फिर आत्मा को ऐसा जाने, ऐसी दो बातें इकट्ठी ली। **ध्यान करता है।** भगवान आत्मा अपनी ज्ञानपर्याय से अपने में एकाग्र हुआ ध्यानी इस प्रकार से आत्मा को, अपने को जानता है। पर से भिन्न और अपने ज्ञानस्वरूप से अभिन्न, ऐसे ज्ञानी अपनी दृष्टि से आत्मा को जानता है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- **यद्यपि व्यवहारनयकर यह आत्मा वन्दकादि अनेक भेषों को धरता है,...** बाहर से वेश को गिना जाये न व्यवहार से कि यह दिगम्बर है, नग्न है। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर कोई भी वेश जीव के नहीं हैं,...** भगवान आत्मा आनन्द ज्ञानस्वरूपी चैतन्यबिम्ब ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसमें यह एक भी वेश है नहीं, तीनों काल में नहीं, तीनों काल में नहीं। **देह के हैं।** वेश सब देह के हैं। उसका अभिमान करना, वह

मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया? **यहाँ देह के आश्रय से जो द्रव्यलिंग है,...** देह के आधार से यह द्रव्यलिंग-श्वेताम्बर के वस्त्र, दिगम्बर के नग्नपना वेश आदि। **वह उपचरितासद्भूतव्यवहारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** झूठे नय से, असद्भूत अर्थात् झूठे नय से उपचार से, व्यवहार से जीव का कहा जाता है। दिगम्बर, वह उपचार से असद्भूतव्यवहारनय से आत्मा में जानने योग्य कहा जाता है, ऐसा। श्वेताम्बर बाह्य के वेश उपचरित आरोपित असद्भूतव्यवहार से। समझ में आया? निमित्तरूप से है, इसलिए कहा जाता है। **तो भी निश्चयनयकर जीव का स्वरूप नहीं है।** भगवान ज्ञानस्वरूप में वह किसी प्रकार का वेश आत्मा में नहीं। **क्योंकि जब देह ही जीव की नहीं,...** देह ही जहाँ परमाणु का पिण्ड है, उसके एक-एक रजकण की अवस्था स्वतन्त्र होती है, उसे आत्मा माने कि ऐसा इसे करूँ। मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? बात यह चलती थी, वहाँ से आया ... देखो न, कहा, इस शरीर के एक रजकण को दिगम्बर मुनि करे क्या? मुनि आत्मा वह रजकण को बदले क्या? टुकड़े हों, क्या हो? वह तो सब हो उसके काल में। उस रजकण को भी आत्मा करे क्या? ... रजकण में फेरफार हो, उसमें इन्द्र रोक सकता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ गड़बड़-फड़बड़ (नहीं), वह तो रजकण की अवस्था होनेवाली थी। लोग बातें करे तो ऐसे ही करे न डॉक्टर। पेट में कुछ ऐसा होगा और ढींकणा में कुछ ऐसा होगा, मानसिक चिन्ता में होगा और ढींकणा... बाकी परमाणु की वह पर्याय, उस समय में उस प्रकार से ही होनेवाली है। चिन्ता के कारण से नहीं, मल पेट में भरा था, इसलिए परमाणु की वह अवस्था हुई, ऐसा भी नहीं। ऐसी बातें हैं भाई यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी काल में, उस समय में वह परमाणु की पर्याय होनेवाली। ... काटता-बाटता कोई नहीं, वह परमाणु की ऐसी पर्याय है। अरे अरे गजब बातें! स्वतन्त्र रजकण रजकण स्वतन्त्र पदार्थ है या नहीं? और उस पदार्थ में उत्पाद-व्यय-

ध्रुव सहित है या नहीं? तो समय-समय का उत्पाद का प्रवाह चले, उस उत्पाद के प्रवाह को दूसरा क्या करे? दूसरे से क्या हो? दूसरे को क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका धूल का सहाय ले?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... विचारा हुआ हो तब यह मानता है मूढ़, विचारा हो तब। इच्छा प्रमाण जहाँ पुण्य के कारण से उसकी पर्याय होनेवाली वह हुई। माने कि ऐसा हमने विचारा था, ऐसा हुआ बराबर। केस किया था, पार पड़ा। भीखाभाई !आहाहा! हमने इसको समझाया और ऐसा, ... इस प्रकार से रहकर वहाँ तक ... नहीं बापू! मुझे रहना नहीं, हों! तुम्हारे साथ एक मिनिट भी, चाहे जितना इतना... अभी तक रहा न। वह रहा था, वह मेरे कारण से। क्योंकि वह अभी बँटवारा नहीं था और सब इकट्ठा था, तब तक मुझे क्या करना? वह माने परन्तु मैंने ऐसा करके रखा इसलिए रहा। मुफ्त का मूढ़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : जानकारी की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानकारी की बात है नहीं, मूढ़ की बात है। जानकारी का कहाँ था? मानता है यह। आहाहा!

देह के भेद तेरे तीन काल में नहीं। यह वस्त्र ऐसे उतरना या जाना, वह तो जड़ की चीज़ है, ऐसा कहते हैं। उतारे कौन और छोड़े कौन? जड़ की चीज़ है। उसे मैं उतारूँ यह मानना, वह तो पर को अपना माना। आहाहा! ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह उतारे किसे और छोड़े किसे? जाने कि ऐसा होता है और हुआ। चरणानुयोग में कथन आवे न निमित्त के पहिचान कराने को। उस समय ज्ञान विकल्प ऐसा था ऐसा, बाकी वहाँ जो होनेवाला हो, वह होता है, उसके आत्मा से, विकल्प होता है वहाँ? विकल्प आया, इसलिए वस्त्र नीचे उतरता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतरे। और चरणानुयोग... और चरणानुयोग... ऐसा अनेकान्त होगा? ऐसे के ऐसे चरणानुयोग, चरणानुयोग। समझ में आया?

भगवान आत्मा को जहाँ देह ही नहीं, उस देह के यह आकार ही उसके नहीं, वहाँ वेश-वेश कहाँ से आत्मा के आये? आहाहा! उसका अभिमान... अभिमान... अभिमान... **इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है,...** देखो! यह यहाँ शब्द यह रखा है। समझ में आया? **द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है,...** क्योंकि असद्‌भूत कहा न, इसलिए।

अब जरा भावलिंग की सूक्ष्म बात आती है, ध्यान रखना। भगवान आत्मा यह वेश सब शरीर के, वे जड़ के हैं, वे आत्मा के नहीं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि वर्ण, गन्ध सब ले गये। **और वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप भावलिंग...** क्या कहते हैं? वस्तु जो त्रिकाल आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति भगवान वस्तु है, वस्तु। एकरूप ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान..., आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ऐसी एकरूप वस्तु। ऐसी वस्तु में उसका जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो भावलिंग है, वीतरागी निर्विकल्प पर्याय। समझ में आया? वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग। भगवान आत्मा एक समय का प्रभु ध्रुव चिदानन्द एकरूप आनन्द और एकरूप ज्ञान, वह वस्तु, त्रिकाल एकरूप वस्तु। ऐसा यह भगवान आत्मा ध्रुव सदृश शक्ति का सत्त्व अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु, उसे निश्चयवस्तु कहते हैं, शुद्ध आत्मा की, उसे आत्मा कहते हैं। यह उसकी जो पर्याय में यह शुद्ध आत्मा हूँ, ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌शान्ति ऐसा निर्विकल्प वीतराग भावलिंग एक समय की निर्विकल्प पर्याय। समझ में आया?

वस्तु सदृश अर्थात् एकधारावाही ध्रुव स्वरूप चैतन्यबिम्ब, उसके अन्दर में यह आत्मा शुद्ध आनन्द है, ऐसा सम्यग्दर्शन; आत्मा शुद्ध आनन्द है, ऐसा ज्ञान का वेदन स्वसंवेदनज्ञान और उसमें स्वरूप-आचरणरूप वीतरागी स्थिरता। ऐसी जो निर्विकल्प वीतरागी स्वसंवेदनदशा, वह भावलिंग, वह एक समय की पर्याय है। समझ में आया? यह तो शरीर के वेश आदि जो कहे, वे तो एक समयमात्र भी आत्मा में द्रव्य, गुण, पर्याय के अस्तित्व में नहीं। क्या कहा? समझ में आया?

स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंग आदि वेश या यह शरीर के नग्न, श्वेताम्बर आदि वेश एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भी आत्मा की पर्याय में अस्तित्वरूप नहीं। उसके द्रव्य, गुण में तो नहीं, परन्तु उसकी पर्याय के अस्तित्व में भी वे नहीं। अब उसकी पर्याय में अस्तित्व जो है... समझ में आया? यहाँ तो विकल्प जो राग है, उसकी यहाँ बात की नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय का वीतरागी रसरूप सदृश पिण्डरूप प्रभु, उसकी एक समय की पर्याय में यह निर्विकल्प, वीतराग निर्विकल्प शान्ति अर्थात् मोक्ष का मार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग। व्यवहारमोक्षमार्ग तो विकल्प, उसकी बात यहाँ ली नहीं। वह सब गया, वह असद्भूत में जाता है, भले वह उपचार हो तो यह अनुपचार, परन्तु असद्भूत में जाता है।

यह भगवान आत्मा एक समय में चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... ज्ञान, ज्ञान का अकेला रस आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... ऐसे अनन्त गुण का एक... एक... एक... एकरूप, अनादि-अनन्त एकरूप, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव का आनन्द, ऐसी वीतरागी रागरहित शान्ति और श्रद्धा का स्वरूप। **यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है,...** वह शुद्धस्वरूप है, उसका जो साधक है कि यह शुद्धस्वरूप ऐसा। **इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** देखो!

मुमुक्षु : व्यवहार तो कहीं गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं गया। आहाहा!

यह तो वस्तु है, उसे उस विकल्परहित निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति यह है, ऐसा साधता है। यह है, ऐसा सिद्ध किया है न उसे। इसलिए उसे उपचार से जीव का स्वरूप कहा जाता है। लो! समझ में आया? देखो न पाठ में ही है। '**शुद्धात्मस्वरूप-साधकत्वादुपचारेण शुद्धजीवस्वरूपं भण्यते**' ओहोहो! भगवान आत्मा वह वस्तु है, वस्तु है। ज्ञानानन्द अखण्ड आनन्दरूप एकरूप वस्तु है, वह तो त्रिकाल एक... एक... एक... त्रिकाल एकरूप है। वह मूल जीव का स्वरूप, वह मूल जीव का स्वरूप। यह वेश आदि है, वह तो असद्भूतव्यवहार अर्थात् उसकी एक समय की पर्याय में भी नहीं। और रहा देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प राग, वह भी विभाव है,

स्वभाव नहीं। त्रिकाल स्वभाव नहीं और वर्तमान स्वभाव का अंश नहीं। इसलिए यहाँ उसकी बात नहीं की। वह नहीं, वह नहीं। समझ में आया?

यहाँ ज्ञानानन्दस्वभाव है, जिसका स्वभाव है शाश्वत्, ऐसे स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ निर्विकल्प भावलिंग स्वभाव, स्वभाव जो कायम का स्वभाव, उसके अवलम्बन से प्रगट हुआ एक समय का स्वभाव। आहाहा! समझ में आया? वस्तु है अकेला स्वभाव पिण्ड एकरूप, उसके अन्तर के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, निर्विकल्प शान्ति आनन्द, वह वस्तु को सिद्ध करती है ऐसी पर्याय, वह वस्तु ऐसी है, ऐसी पर्याय, वह भी उपचार से जीव का स्वरूप कहा जाता है। आहाहा! ऐ भीखाभाई! एक समय की निर्मल स्वभाव है न, ऐसी ही यहाँ शुद्धपर्याय है, इसलिए उसे उपचार कहा, व्यवहार कहा। आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप का विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति का, उसका उपचार से उसका पर्याय का स्वरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। विभाव है न। उसकी मूल स्वभाव की जाति का वह प्रगट अंश कहाँ है? समझ में आया? आहाहा! यह भगवान आत्मा,...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें आवे, जानने का ज्ञान। एक जगह आवे। पंचास्तिकाय में कितना लिखा है हिम्मतभाई ने। अर्थ किये टीका प्रमाण वापस नीचे, उसका ऐसा है और उसका ऐसा है, ऐसा करके। यह तो ठीक हुआ इनसे। वे कहे, गड़बड़ की। अरे! भगवान भाई! प्रभु! तेरी, तेरी ऐसी अकेली चीज़ ऐसी अनादि-अनन्त ध्रुव वज्र, जिसमें से एक कण, एक कण उसमें से निकले नहीं। निकले नहीं अर्थात् कम न हो। ऐसी वज्र की दीवार हो न वज्र की दीवार, उसका एक कण खिरे? सारा गढ़ हो, उसका एक कण खिरता नहीं, देखा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सीमेन्ट का बाँधा है? मोहनभाई! ... वह तो है, परन्तु यह ... देखो, बरवाळा के है न? बरवाळा का गढ़ बाँधा है। कैसा? घेलाशाही। यह तुम्हारा बरवाळा है। देखा है या नहीं? गये होंगे किसी दिन। ... गढ़ ऐसा बाँधा है कि ऐसे... बनिया दशाश्रीमाली था। लींबड़ी दरबार का, कामदार। वह तो धूल के गढ़, यह तो चैतन्यवज्र गढ़। आहाहा! ध्रुव गढ़। ज्ञान, आनन्द आदि ध्रुव गढ़ अनादि-अनन्त जिसमें

से एक कण खिरे नहीं, एक अंश उसमें से कम हो नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान चैतन्य गढ़ अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव गढ़ है, वह जीव का स्वरूप है। समझ में आया? ऐसे स्वरूप को दृष्टि, ज्ञान और रमणता ने जो सिद्ध किया कि, यह आत्मा, ऐसी पर्याय भी आत्मा का उपचार से जीवस्वरूप है। आहाहा! क्योंकि वह अंश हुआ, अंश हुआ। त्रिकाली एकरूप भगवान आत्मा का वह अंश हुआ। उसमें से आया भले कहो, परन्तु यहाँ आया, तथापि वहाँ कुछ न्यून नहीं। ऐसा का ऐसा भगवान ध्रुव स्वरूप से प्रभु, उसे वास्तविक जीव का स्वरूप कहा जाता है। आहाहा! उसका जो वीतराग निर्विकल्प शान्ति। आहाहा! समझ में आया? शुद्धात्मस्वरूप का साधक। साधक शब्द पड़ा है न? हें? साधकत्वात्। ऐसा करके यह कहा कि पर्याय जो प्रगट हुई, वह वस्तु को सिद्ध करती है, ऐसा यहाँ कहना है। वह वस्तु वस्तु को सिद्ध कैसे करे? परन्तु प्रगट हुए निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान यह वस्तु है, ऐसा जो पर्याय सिद्ध करती है, ऐसी पर्याय को उपचार से जीव का स्वरूप कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धात्मस्वरूप साधक अर्थात् क्या? वस्तु है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध उसे साधता है। साधे अर्थात् सिद्ध किया। मोक्ष-बोक्ष की बात नहीं यहाँ। यहाँ वह बात ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं, इस पर्याय ने सिद्ध किया न इस चीज़ को। वस्तु ऐसी है। ऐसी पर्याय वह पर्याय स्वयं उपचार से साधक है। उपचार से जीव का स्वरूप है, यह वस्तु है, यह वस्तु है। समझ में आया? एक समय की पर्याय ने निर्विकल्प यह ऐसी है। यह तो द्रव्य है, ध्रुव है। उसका निर्णय करने का उससे है? रागरहित शुद्ध चैतन्य पर्याय ने यह वस्तु है, ऐसी पर्याय को उपचार से जीव का स्वरूप कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे ध्रुव घन पड़ा है न पूरा बड़ा ऐसा। एक समय का वज्र, ज्ञानानन्द की वज्र की कातली, मूर्ति अकेला। परिणमनरहित, हों! परिणमनरहित। उसका जरा यह शुद्ध चैतन्य यह है ज्ञान की पर्याय ने यह वस्तु है। दर्शन यह है, स्थिरता ने पूरा आनन्द यह है, ऐसा जिस पर्याय ने सिद्ध किया, उसे उपचार से जीवस्वरूप कहते हैं। वास्तविक जीवस्वरूप सिद्ध होता नहीं, वह तो इससे सिद्ध होता है। समझ में आया? ओहोहो!

परमात्मप्रकाश है न यह। तो परमात्मा जो है त्रिकाली, वह तो जैसा है वैसा है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। वह परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा अनन्त, अनन्त गुण... गुण...

गुण... गुण... गुण... गुण..., ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वह तो एक धारारूप वस्तु है। वह वस्तु, उस वास्तविक जीव को जीवस्वरूप कहते हैं, कि जो एकरूप है, जो एकरूप है। उसमें यह आत्मा, ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति से जो श्रद्धा की, जाना और स्थिर हुआ, ऐसी निर्विकल्प वीतराग मोक्षमार्ग की पर्याय, वह अंश है। त्रिकाल स्वरूप की अपेक्षा से अंश है, वह उपचार से जीव का स्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं परमात्मा नहीं। आहाहा! अरे! समझ में आया? वह प्रजा, वह बाप नहीं। भगवान पिता चिदानन्द प्रभु जिसमें ऐसे अनन्त-अनन्त परमात्मा और अनन्त-अनन्त मोक्षमार्ग की पर्याय का पिण्ड सब पूरा एकरूप है, एकरूप है। ऐसे आत्मा को परमात्मा कहते हैं और उसे वास्तविक जीव का स्वरूप कहते हैं। वास्तविक जीव का स्वरूप कहते हैं। परन्तु उसका निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति जो प्रगट हुई, उसे अवास्तविक अर्थात् कि उपचार से जीव का स्वरूप कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वास्तविक नहीं, वह त्रिकाली स्वरूप नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... एक ओर रहा। एक समय की पर्याय है न। यह कहाँ वह स्वयं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बेटा है, परन्तु बाप नहीं। जरा कठिन है। भीखाभाई! आहाहा!....

अकेला वीतरागी बिम्ब भगवान अनादि-अनन्त वह वास्तविक आत्मस्वरूप, वह आत्मा का स्वरूप, वास्तविक आत्मा का स्वरूप, निश्चय आत्मा का स्वरूप, सत्‌रूप से आत्मा का स्वरूप। उसकी दृष्टि ऐसे अनुभव की (हो कि) यह आत्मा ऐसा श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसकी स्थिरता निर्विकल्प वीतराग, वह भावलिंग है। निर्विकल्प वीतरागदशा, वह भावलिंग है; त्रिकाली वस्तु नहीं। इससे भावलिंग चिह्न है वह। चिह्न है, निशान है। यह उससे यह ज्ञात हो, ऐसा निशान है, ऐसा कहते हैं। चिह्न कहा है न? भावलिंग कहा है न! चिह्न अर्थात् चिह्न। अर्थात् कि वह भगवान आत्मा उसे जिस

लक्षण से—चिह्न से यह आत्मा, ऐसा अन्दर रागरहित सम्यग्दर्शन, रागरहित स्वसंवेदनज्ञान, रागरहित स्वरूप की स्थिरता तीनों होकर निर्विकल्प वीतरागी पर्याय (प्रगटे), वह भावलिंग है। वह लिंग है, चिह्न है। वह पूरी वस्तु का एक चिह्न-अंश है। इसलिए उसे उपचार से यहाँ आत्मा का स्वरूप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

तो भी परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है। जिस द्वारा सिद्ध किया कि यह है, वह जीव का स्वरूप नहीं, कहते हैं। एकाकार स्वरूप जो है त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... शाश्वत् स्वभाव, शाश्वत् वस्तु, ध्रुव वस्तु, महापदार्थ ध्रुव। एक समय का अंश नहीं, वह तो त्रिकाली चीज़। ऐसी त्रिकाली परम सूक्ष्म शुद्ध निश्चयनय देखो! **शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** इतनी निर्विकल्प समाधि की वीतराग पर्याय भी त्रिकाली स्वरूप की वह नहीं, एक समय की है। समझ में आया? अद्‌भुत बात है! जिसे जिसने पहिचाना, जिसने जिसे पहिचाना परन्तु वह पर्याय है। किसे अपना मानना? भाई! देहादि के वेश कहाँ रहे? रागादि का विकल्प भगवान उस जीव में कहाँ रहा? समझ में आया?

जहाँ भगवान आत्मा पूर्ण घन, आनन्दघन ध्रुव वस्तु, उसका अनुभव वीतरागी पर्याय भी जिसका वास्तविक त्रिकाली स्वरूप नहीं। उसे भी वास्तविक मानना, वह भ्रम है। आहाहा! उसे उपचार से मानना, वह बराबर है। आरोप से अंश में यह आत्मा, ऐसा मानना, वह व्यवहार है। वस्तु तो पूरी वस्तु है। आहाहा! यह आत्मा स्वयं उसे ऐसे-ऐसे शरीर और वाणी और धूलधमाकावाला मानना, वह तो महाभ्रम है, बड़ा भ्रम है और पुण्य-पाप के रागवाला मानना कि वह मैं, यह बड़ा भ्रम है, यह तो मिथ्यात्व है। परन्तु भगवान पूर्ण स्वरूप में उसे यह श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगटे, उसे तू पूर्ण न मान। अपूर्ण है। उसके ज्ञानानन्द शान्ति को उपचार से जानना, वह व्यवहार से आत्मा जानना। निश्चय से ... आहाहा! यह व्यवहारनय का यह आत्मा, निश्चयनय का यह आत्मा। बस! यह बात रही, लो! यह दोनों का प्रमाणज्ञान किया। समझ में आया? भावलिंग साधन अर्थात् सिद्ध करता है इतना। **वह भी परम अवस्था का साधक नहीं है।** अर्थात् कि परम वस्तु है, वह नहीं, ऐसा। परम वस्तु वह नहीं, लो! बहुत सरस....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ३, शुक्रवार, दिनांक - २६-११-१९६५
गाथा - ८९ से ९१ प्रवचन - ६०

गाथा - ८९

८९ (गाथा), परमात्मप्रकाश **आगे यह गुरु शिष्यादिक भी आत्मा नहीं है—** आत्मा में गुरु शिष्यादिक का भी नहीं है। ....

८९) अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि णवि सामिउ णवि भिच्चु।
सूरउ कायरु होइ णवि णवि उत्तमु णवि णिच्चु॥ ८९॥

अन्वयार्थ :- आत्मा गुरु नहीं है,... आत्मा तो अखण्डानन्द ज्ञान ध्रुवस्वरूप है, वह कहीं किसी का गुरु नहीं। **शिष्य भी नहीं है,...** यह पर्यायें तो जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य कहाँ है! आदरनेयोग्य तो एक शुद्ध... शुद्ध... शुद्धस्वरूप है। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... के ऊपर ध्येय—नजर करनेयोग्य है। बाकी सब शरीर, वाणी, आत्मा का नहीं, विकल्प आत्मा का स्वरूप नहीं, उसकी शुद्ध परिणति आत्मा का स्वरूप नहीं। स्वरूप तो ध्रुव एक समय का ध्रुव ढींग धणी ध्रुव धुरन्धर नाथ पूरा। कहो, समझ में आया? ऐसे द्रव्य में गुरु और शिष्यपना नहीं। **स्वामी भी नहीं है, नौकर नहीं है,... 'भृत्यः'** है न? **'भृत्यः'** लिखा है न। सेवक। वह **शूरवीर नहीं है, कायर नहीं है, उच्चकुली नहीं है, और नीचकुली भी नहीं है।** भगवान आत्मा ध्रुव स्तम्भ चिदानन्द घन में यह सब है नहीं।

भावार्थ :- ये सब गुरु, शिष्य, स्वामी, सेवकादि सम्बन्ध यद्यपि व्यवहारनय से... यद्यपि उसका विषय है, इसलिए है अवश्य, ऐसा कहते हैं। पर्याय में ऐसा सम्बन्ध व्यवहारनय से जाननेयोग्य है। उसका विषय नहीं, ऐसा नहीं। उस वेदान्त की भाँति नहीं। समझ में आया? परन्तु वह **व्यवहारनय से जीव के स्वरूप हैं,...** व्यवहार से, **तो भी शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध आत्मा से जुदे हैं,...** शुद्ध निश्चय ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा ध्रुव, ध्रुव ऐसा भगवान शुद्धात्मस्वरूप एकरूप ध्रुव, ऐसा जो शुद्धात्मा से भिन्न

है। **आत्मा के नहीं हैं,...** वे सब आत्मा के नहीं। पर्याय है एक समय की, एक समय की, एक समय की पर्याय अर्थात् क्या, ऐसा कहते हैं। एक समय का उत्पाद-व्यय अर्थात् क्या? वह कहीं त्रिकाली वस्तु है? इसलिए इस अपेक्षा से व्यवहार अभूतार्थ कहा है। उस ११वीं गाथा का यह स्पष्टीकरण है। (समयसार की) ११वीं गाथा सम्पूर्ण विश्व तत्त्व की अथवा जैनतत्त्व की पूरी .... महा उसका मूल्य है। भूत... भूत... भूत... एकरूप तत्त्व अखण्ड अनन्त अखण्ड ध्रुव, वह जीव स्वरूप है, बाकी उसकी पर्याय भी अभूतार्थ है, पूरा पदार्थ नहीं। आहाहा! समझ में आया? **शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध (भगवान) आत्मा से जुदे हैं, आत्मा के नहीं हैं, त्यागनेयोग्य हैं,... 'हेयभूतान्'** है न। यह सब छोड़नेयोग्य है। भीखाभाई!

इन भेदों को वीतरागपरमानन्द निज शुद्धात्मा की प्राप्ति से रहित... देखो विशिष्टता एक। बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि की व्याख्या की। बहिर् आत्मा अर्थात् बाह्य वस्तु को अपनी माननेवाला मिथ्यादृष्टि अर्थात् क्या? कि वीतराग परमानन्द शुद्धात्मा की प्राप्ति (से रहित)। भगवान शुद्ध चिदानन्द वीतराग निर्दोष आत्मा, वह त्रिकाली स्वरूप, उसकी प्राप्ति पर्याय में। क्या कहा? समझ में आया? आत्मा पूर्ण वीतराग परमानन्द निज शुद्धात्म वस्तु, वस्तु त्रिकाल ध्रुव। वीतराग परमानन्द वह शुद्ध आत्मा, उसकी प्राप्ति, उसकी पर्याय में प्राप्ति कि यह आत्मा, ऐसी पर्याय। समझ में आया? पर्याय में निर्विकल्प वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान वह पर्याय, उस द्वारा शुद्धात्मा की प्राप्ति वह आत्मा। ऐसी पर्यायरहित बहिरात्मा। कहो, समझ में आया? बहिरात्मा कहो या मिथ्यादृष्टि कहो, वह तो एक ही है।

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध वीतराग विज्ञानघन शुद्ध ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... एकरूप की प्राप्ति एक समय की पर्याय सिद्ध करती है कि यह आत्मा। उस पर्याय में प्राप्त हुआ आत्मा कहलाता है। कौनसी पर्याय? निर्विकल्प निर्दोष वीतरागी पर्याय की परिणति। उस परिणति में शुद्धात्मा की प्राप्ति, उस पर्याय बिना का जीव। समझ में आया? वजुभाई! बहुत बहुत है। बहिरात्मा। विकल्प गुरु-शिष्य के, स्वामी-सेवक के, शूरवीर-कायरपने के, उत्तम-नीचपने के मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। आहाहा! समझ में आया?

बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है,... ऐसा जीव ऐसी चीज़ को अपनी मानता है। **और इन्हीं भेदों को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में रहता हुआ...** वह प्राप्ति कही थी, उसका स्पष्टीकरण किया। उन भेदों को—स्वामी आदि, शिष्य आदि, गुरु आदि... रागरहित आत्मा की वीतराग परिणतिरूपी शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति में रहता हुआ अन्तरात्मा। यह अन्तरात्मा की व्याख्या। यह चौथे से बारह तक अन्तरात्मा की यह व्याख्या। वीतराग निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, ऐसी निर्दोष वीतरागीपर्याय, उसमें यह शुद्धात्मा, उसका—ध्रुव का भान ऐसी पर्याय में रहता हुआ, ऐसा। ऐसी पर्याय में रहता हुआ, ऐसा। पर्याय को उत्पन्न किया है, उसमें रहता हुआ। समझ में आया?

अन्तरात्मा, अन्तरात्मा शुद्ध ज्ञायक वीतराग आनन्दकन्द ध्रुव की वीतराग परिणति से प्राप्त, उसमें रहता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव। उसमें कहा था न बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि, तब अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ध्रुव अखण्डानन्द चैतन्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... उसकी जिसे पर्याय में प्राप्ति है, निर्विकल्प शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, सम्यक् अनुभव, शान्ति, उसमें जिसे आत्मा की प्राप्ति है, ऐसा सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा इस बोल को अपने में जोड़ता नहीं, आत्मा के हैं, ऐसा मानता नहीं। शूरवीरपना, कायरपना, गुरु-शिष्यपना, समझ में आया? और ईश्वर तथा सेवकपना, ईश्वर अर्थात् बड़ापना। समझ में आया? ....

दो बातें की संक्षिप्त, लो! बहुत एक-एक श्लोक बहुत संक्षिप्त बात सब। भगवान ध्रुव प्रभु एकरूप सत्, सत् त्रिकाल ध्रुव चिदानन्द प्रभु की पर्याय में, उसकी प्राप्ति नहीं और यह शिष्य, गुरु, सेवक, शूरवीर, राग, द्वेष इत्यादि यह पर्याय मेरी, ऐसा जो मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा बहिर्-बुद्धि में रहा हुआ मिथ्यादृष्टि, वह सब शूरवीर आदि, कायर आदि मैं हूँ, ऐसे आत्मा में उसे पर्याय में जोड़ता है। समझ में आया? क्या कहते हैं, यह (समझना) लोगों को कठिन पड़े। दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना, ऐसी सूझ-सूझ पड़े कुछ।

मुमुक्षु : कायोत्सर्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : कायोत्सर्ग करना। ताव काय ठाणेणं माणेणं। आत्मा ज्ञानानन्द

-स्वरूप चैतन्य-काय, वह चैतन्य-काय, ज्ञायक ध्रुव चैतन्य-काय की दृष्टि करके उसमें स्थिर होना, इसका नाम वास्तव में कायोत्सर्ग है। समझ में आया? आहाहा! इसने पुण्य-पाप के विकल्प आदि पर्यायबुद्धि छोड़कर द्रव्यबुद्धि में स्थिर हुआ। आहाहा! कहो, समझ में आया?

उलट-सुलट दो बातें की। शुद्धात्मा की प्राप्ति से रहित, शुद्धस्वरूप ज्ञायक चिदानन्द की पर्याय में निर्विकल्प आनन्द शान्ति की पर्याय में यह आत्मा, उसकी प्राप्ति रहित, उस पर्यायरहित बहिरात्मा पर्याय तो है। वर्तमान में यह मैं शूरवीर, ऐसा कायर ऐसा बहिरात्मा आत्मा में इस बात को मानता है। समझ में आया? अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् कि ऐसे भेदों से रहित वीतराग निर्विकल्प समाधि में रहा हुआ उसे परस्वरूप से जानता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह वस्तु सूक्ष्म है, प्रेमभाई! ऐसा बहुत शीघ्र पकड़ में आये, ऐसी नहीं। यह लोग मान बैठे कि यह पैसा देकर दान से धर्म हो जाये। ऐसा है यह धर्म वीतराग का, हों! भाई! यह पाँच, पचास हजार खर्च कर डाले (तो) धर्म हो जाये। धूल में भी हो नहीं, थोड़ा क्या। या यात्रा कर आवे एकाध, दो, पाँच या व्रत पाले दया, दान। वह तो सब शुभराग है, धर्म-बर्म नहीं। धीरे, धीरे नहीं। राग करते-करते धीरे-धीरे होगा? जहर पीते-पीते धीरे-धीरे डकार आती होगी कस्तूरी की? कहो, इस अलग प्रकार से यह कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह कहते हैं कि साधक कहा, साधक कहा। साधक तो व्यवहार का, निमित्त का ज्ञान कराया है।

भगवान आत्मा... यहाँ कहा न साधक। साधक तो जो वस्तु को सिद्ध करे पर्याय, उसे साधक कहता है व्यवहार, वह उपचार है, वह वस्तु ही उपचार है। राग-बाग साधन कैसा और? आहाहा! समझ में आया? शरीर, वाणी, मन के और साधकपना कैसा? वह तो कहीं गया, झूठा है, उसमें है? वह राग भी असद्भूत है। उस आत्मदृष्टि में वह राग असद्भूत है। वस्तु की पर्याय में, द्रव्य में वह वस्तु कहाँ है? समझ में आया? सद्भूत तो यह, मोक्ष का निर्विकल्प मार्ग अन्दर निर्विकल्प शान्ति समाधि, वह उपचारिक पर्याय। पूर्ण हो वह शुद्ध सद्भूतपर्याय केवलज्ञान। बाकी है सब पर्यायें, वे जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा!

तब वे कहते हैं न, कैसे? यह सब कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाला है। उसे खबर नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। ढाले क्या? कभी जैन के क्रियाकाण्ड और व्यवहार और यह निमित्त, संयोग, कर्म और सब सुना, इसलिए यह सुना नहीं, इसलिए यह मानो वेदान्त के ढाले में ढाला है कुन्दकुन्दाचार्य ने। यह तो सर्वज्ञ के पद में ढाला ढाला है कुन्दकुन्दाचार्य ने। भगवान आत्मा एक समय का पूर्णानन्द प्रभु ऐसा एक-एक द्रव्य अपना परिपूर्ण परमात्मा है। परमात्मा लेना है न? कहो, समझ में आया? एक समय का परमात्मा, उसका जीव का पूर्ण स्वरूप नहीं, जीव स्वरूप नहीं। आहा! यह वह कुछ...! एक समय का परमात्मा केवलज्ञानी जीव का स्वरूप नहीं। चिल्लाहट मचा जाये या नहीं? ऐई! चिल्लाहट मचाये, बापू! ... समझ में आया? ८९ (गाथा हुई)। ९० (गाथा)

★ ★ ★

गाथा - ९०

आगे आत्मा का स्वरूप कहते हैं—

९०) अप्पा माणुसु देउ ण वि अप्पा तिरिउ ण होइ।
अप्पा णारउ कहिँ वि णवि णाणिउ जाणइ जोइ॥ ९०॥

अन्वयार्थ :- आत्मा **जीव पदार्थ (भगवान) न तो मनुष्य है,...** मनुष्य नहीं। आत्मा मनुष्य नहीं। अब मनुष्य नहीं, उससे आत्मा को लाभ होता होगा, मनुष्य से? **(आत्मा) न तो देव है,...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल में मदद करता नहीं कोई। कौन करता था? स्वतन्त्र उत्पाद उसका होता है पर्याय में, उसमें करे कौन? दूसरी चीज़ है, इतना ज्ञान करने के लिये। प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद समय का प्रवाह बहा ही करता है। उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... उत्पाद... पर्याय का व्यवहारनय बहा ही करता है, उसे दूसरा कौन मदद करता था? समझ में आया? आहाहा! वस्तु ही ऐसी है उसमें तुझे, पुकार वस्तु ऐसा

करे, उसमें तू दूसरा पुकार करे, कैसे काम आवे? हमें पर की मदद चाहिए और हम पर को मदद करते हैं। मूढ़ है, समझ में आया?

आत्मा तिर्यंच पशु भी नहीं है,... एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि ढोर आत्मा नहीं। वह **आत्मा नारकी भी कभी नहीं,...** नरक, नारकी कभी हुआ नहीं और होगा नहीं। वह आत्मा नारकी नहीं। **अर्थात् किसी प्रकार भी पररूप नहीं है,...** लो! ... तब है क्या? **परन्तु ज्ञानस्वरूप है,...** वह तो चैतन्यबिम्ब ज्ञानमूर्ति प्रभु अकेला ज्ञान ध्रुव तारा, ज्ञान का सत् ध्रुव तारा। समझ में आया? ज्ञान का सत्पना ऐसा अस्तित्व ध्रुव। ऐसा भगवान आत्मा '**योगी**' लोग। अर्थात् **मुनिराज...** विशेष मुनि से बात की। **तीन गुप्ति के धारक...** समझ में आया? यह व्याख्या। इसलिए ऐसे उसका ध्यान करते हैं।

मन, वचन, काया से हटकर, **निर्विकल्पसमाधि में लीन हुए...** अपने आनन्दस्वरूप में, उपयोग में लीन हुआ। विकल्परहित, वर्तमान पर्याय के आश्रयरहित ध्रुव के अवलम्बन में निर्विकल्प समाधि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति, ऐसा अभेद शान्ति की पर्याय, उमसें लीन हुए, पर्याय में लीन हुए, ऐसा कहना है। **जानते हैं।** यह आत्मा है, ऐसा जानते हैं, ऐसा। क्या कहा? कि ज्ञानस्वरूप में **निर्विकल्पसमाधि में लीन हुए जानते हैं।** यहाँ ऐसी धारणा धारते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु अखण्ड आनन्दमूर्ति ध्रुव, को अन्तर में रागरहित शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और निर्मल वीतराग शान्तिरूप पर्याय में रहकर यह आत्मा है, ऐसा जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा ऐसा ज्ञात हो, ऐसा कहते हैं। आत्मा, आत्मा जाना—ऐसा नहीं। निर्विकल्प वीतरागी आनन्द की परिणतिसहित तीन हुआ वह आत्मा ऐसा जाने। समझ में आया? शुभाशुभ... यह नरकादि भावों से सहित कभी वह आत्मा हुआ नहीं। भगवान तो एकरूप ही रहा है। ज्ञानस्वरूप से रहा है अथवा ध्रुव स्वरूप से एकरूप अखण्डानन्द रहा है। ऐसे भगवान आत्मा को अन्तर में रागरहित अर्थात् यहाँ सम्यग्दर्शन निर्विकल्प निश्चय सम्यग्दर्शन कहा। समझ में आया? निश्चय सम्यक्ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन और आत्मा की स्थिरता, इन तीन में लीन रहा, वह आत्मा है, ऐसा जानता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। यह तो पूरे प्रमाण का सत्। द्रव्य, गुण, पर्यायवाला सत्, वह प्रमाण का सत्; यह निश्चय का सत् अकेला ध्रुव। ... 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम् सत्' यह तो प्रमाण का सत् उत्पादव्ययवाला। अकेला ध्रुव वह निश्चय का सत्। पर्याय का सत् वह व्यवहार का सत्। दो का प्रमाण का सत् दो को कहना वह (है)। आहाहा! समझ में आया? यथार्थ ध्रुव वह सत् है, त्रिकाल वह सत् है, पर्याय का उपचारी सत् है। दो होकर प्रमाण का ज्ञान हुआ, पूरा द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान हुआ। प्रमाण भी विशेष पूज्य नहीं, निश्चय पूज्य है, ऐसा कहा है। आता है या नहीं? ... प्रमाण नहीं, प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं होता। विवाद ऐसा का ऐसा उठाया ही करेगा। समझ में आया?

भगवान! प्रमाण से भी निश्चयनय पूज्य है कि, जिसमें व्यवहार का निषेध हो जाता है। ऐसी परिणति भी वास्तव में तो व्यवहार है। परन्तु उस राग के अभाव की अपेक्षा से परिणति को निश्चय कहा। समझ में आया? उस मार्ग की अपेक्षा से विकल्प का मार्ग, इसकी अपेक्षा निर्विकल्प मार्ग निश्चय। वस्तु की अपेक्षा से, त्रिकाल ध्रुव की अपेक्षा से उसकी पर्याय भी व्यवहार है। ऐसी अपेक्षा समझना चाहिए या नहीं? आहाहा! गजब भाई! समझ में आया? धर्मात्मा आत्मा को कैसे जानता है? धर्मात्मा आत्मा को कैसे जानता है? कि अपने शुद्धोपयोग में एकाकार होकर यह आत्मा है, ऐसा जानता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह जानना कहलाता है।

भावार्थ :- निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व... यह द्रव्य लिया। वस्तु, वस्तु। भावार्थ है न? निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव वस्तु। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन, ध्रुव स्वभाव, ध्रुव स्वभाव आत्मा को यहाँ परमात्मतत्त्व (कहते हैं)। **उसकी भावना से...** भावना शब्द से एकाग्रता। निर्मल ज्ञान-दर्शन ध्रुव स्वभाव की भावना अर्थात् वीतरागी परिणति। शुभाशुभ विकल्परहित निर्विकल्प परिणति, निर्विकल्प पर्याय, वह शुद्धात्मा की भावना कही जाती है। समझ में आया? आहाहा! आठ वर्ष के बालक केवल (ज्ञान) पावे, केवल (ज्ञान) पावे! पूरा कन्द पड़ा है न बड़ा। नजर डालने से फटा प्याला—(प्रस्फुटित हुई) पर्याय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नया-नया कुछ नहीं, अनादि का है यह। कहो, समझ में आया यह तो? उसे जरा लगे कि ओहोहो! ऐसी! आठ वर्ष के बालक करते होंगे! आठ वर्ष के बालक! बालक तो शरीर है, यहाँ कहा न। बालक तो शरीर है, मनुष्य वह शरीर है। आत्मा कहाँ था वह? आत्मा जो है वह ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानस्वरूप वह निर्विकल्प शान्ति से ज्ञात होता है। उसमें वहाँ मनुष्यपना और बालकपना और उसे कहाँ आया है उसमें? समझ में आया?

आत्मा पदार्थ निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व, परम आत्मतत्त्व, परमस्वरूप तत्त्व, परमस्वरूप तत्त्व ऐसा। परमात्मतत्त्व अर्थात् परम शुद्ध ध्रुवस्वरूप तत्त्व। **उसकी भावना से...** उसकी अन्दर में वीतरागी परिणति अर्थात् आत्मा की भावना, भावरूप त्रिकाली वस्तु की एकाग्रता, वह उसकी भावना। उससे उल्टा—ऐसी **भावना से उलटे राग-द्वेषादि विभाव-परिणामों से...** उसमें मिथ्यात्व भी आ गया। समझ में आया? राग-द्वेष आदि विकारी परिणाम से उपार्जन किये, उनसे उपार्जन किये कर्म, ऐसा कहते हैं। कितनी बात डालते हैं, देखा! वस्तु कही। निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव मुख्य वस्तु है न उपयोग। उपयोग आत्मा कहा न! उपयोग आत्मा अर्थात् दर्शन-ज्ञानस्वरूप उपयोग ध्रुव, हों! उपयोग आत्मा कहा न? '**सवाण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओग लक्खणो विच्चं**' (समयसार, गाथा-२४) ज्ञान-दर्शनस्वरूप ध्रुव परमात्मस्वरूप अपना, उसकी अन्तर की एकाग्रता, वीतरागी एकाग्रता, वह भावना। उनसे उल्टी पर्याय। यह भावना, यह पर्याय हुई, वह (आत्मा) द्रव्य हुआ। यह पर्याय यह संवर-निर्जरा हुई। इस संवर-निर्जरा से उल्टी पर्याय आस्रव और बन्ध। समझ में आया?

यह तो नौ तत्त्व में भगवान आत्मतत्त्व, वह ज्ञान-दर्शन का ध्रुवतत्त्व वह आत्मतत्त्व। उसकी भावना वीतराग परिणति शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति वह संवर, निर्जरातत्त्व, उसे निर्विकल्प शान्ति द्वारा कहा। उससे उल्टी मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम द्वारा वह आस्रव और भावबन्ध तत्त्व। ऐसे **विभाव-परिणामों से उपार्जन किये जो शुभाशुभ कर्म हैं,...** ऐसा। उससे शुभाशुभकर्म बँधे। समझ में आया? वह अजीवतत्त्व। जीवतत्त्व,

संवर, निर्जरा, शान्ति, दृष्टि, ज्ञान आदि संवर, निर्जरा तत्त्व, (उससे) उल्टे आस्रव, बन्धतत्त्व, बँधा अजीवतत्त्व। आहाहा!

उनके उदय से उत्पन्न हुई मनुष्यादि... विभाव पर्याय। वह कहीं आत्मा के स्वभाव से उत्पन्न हुई नहीं। आहाहा! उसके उदय से उत्पन्न हुई मनुष्यादि अर्थात्? ऊपर कहा न वह। मनुष्य, देव, नारकी, ढोर। समझ में आया? इन विभाव पर्यायों को—इन विकारी दशा को, **भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रय की भावना से रहित हुआ...** देखो, क्या कहते हैं? मनुष्य, देव आदि ऐसी दशा को भेदाभेदरत्नत्रय की भावना। आत्मा शुद्ध अखण्ड ध्रुव पहले कहा निर्मल, उसकी श्रद्धा, ज्ञान निश्चय, एकाग्रता, निश्चय, उसके साथ विकल्प व्यवहार, इन दो से रहित। **भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रय की भावना से रहित हुआ मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है,...** समझ में आया? भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञानमूर्ति प्रभु अकेला ध्रुवस्वभाव की परिणति से रहित विभाव परिणति से उपार्जित मनुष्य, देव, आदि उन्हें अपने शुद्ध स्वभाव की एकाग्रता की पर्यायरहित उसमें विकल्प ... व्यवहार। मिथ्यादृष्टि जीव अपने ... भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रयरहित मिथ्यादृष्टि हुआ। समझ में आया? ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव वह देव, मनुष्य आदि मेरे, यह देव हूँ और मनुष्य हूँ और यह हूँ और यह हूँ... ऐसा अज्ञानी भेदाभेदरत्नत्रयरहित, वस्तु स्वभाव की एकाग्रता से रहित अभेदरत्नत्रय की एकाग्रता... राग भी जरा अशुभ टला न, उतना व्यवहार। वह अज्ञानी जीव इस वस्तु को अपनी मानता है। कहो, समझ में आया इसमें? मनुष्य मैं हूँ, देव मैं हूँ। आहाहा!

और इस अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि ज्ञानी... इसका अर्थ कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भेदाभेदरत्नत्रयसहित। समझ में आया? भेदाभेदरत्नत्रय की भावनारहित, वह बहिरात्मा। भेदाभेदरत्नत्रयसहित अर्थात् सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा। भेदाभेद दोनों आ गये सम्यग्दृष्टि में? चौथे, पाँचवें, छठवें भेदरत्नत्रय और फिर सातवें में आगे अभेदरत्नत्रय आठवें में... आहाहा! अरे! भगवान स्वयं वस्तु है, उसकी दृष्टि और स्थिरता का अंश अन्दर अभेद न हो तो वह भेद कौन? उस विकल्प को जाननेवाला भी कौन? इसलिए यहाँ तो यह कहा कि भेदाभेद कहा न? भेदाभेद भावना च्युतः ऐसा लिया न? इसका अर्थ हुआ

विशिष्टता यह कि, भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से स्वयं च्युत होता है, उसे कर्म च्युत कराते हैं—ऐसा नहीं। यह भी इकट्ठा डाला।

बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कैसे होता है? कि वस्तु जो है, उसकी अभेदरत्नत्रय श्रद्धा-ज्ञान और भेद विकल्प आदि उनसे भ्रष्ट होता है, स्वयं भ्रष्ट होता है, कर्म उसे भ्रष्ट कराकर बहिरात्मपना उपार्जित करते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? और वह मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है। यह अज्ञानी स्वयं पर को अपना जानता है, वह कहीं कर्म इसे पर को अपना मनवाते नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? वस्तु ध्रुव भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनतारूप एकाग्रता। समझ में आया? यहाँ लाओ लड़की को। समझ में आया इसमें? यह राजुल। एक घर में दो पके। यह लौकिक है, (चम्पा)बेन लोकोत्तर है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञानस्वरूप प्रभु आत्मा त्रिकाल ध्रुव, उसकी भावना से भ्रष्ट, एकाग्रता से भ्रष्ट वह स्वयं होता है। और भ्रष्ट ऐसा बहिरात्मा, वह मनुष्यपना, देवपना मैं हूँ—ऐसा स्वयं मानता है। समझ में आया? यह तो भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शनस्वरूप है, दर्शन ज्ञानस्वरूप है, उसे ऐसे भाव के साथ जोड़ना, वह स्वभाव की दृष्टि का अभाव पर को अपना मनाता है। कर्म-बर्म बनाते हैं और कर्म इसे भ्रष्ट करते हैं, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

और इस अज्ञान से रहित... यह अज्ञान अर्थात् भेदाभेदरत्नत्रय से रहित। समझ में आया? भेदाभेदरत्नत्रय से रहित ऐसा जो अज्ञान, उस अज्ञान से रहित। समझ में आया? भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु की दृष्टि, ज्ञान और रमणता से रहित, ऐसा जो अज्ञानी; ऐसे अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि जीव। समझ में आया? परस्पर वह तो इसमें अस्ति-नास्ति से गुलाँट खिलायी है बात को। अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि, **इस अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव उन मनुष्यादि पर्यायों को अपने से जुदा जानता है।** यह मनुष्य भव, देव भव, यह भव, यह भव—सब भिन्न जानता है। मैं तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा जानते हुए उस चीज़ को अपने में लगाता नहीं। अर्थात् मनुष्य देहादि को अपने में जोड़ता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

★ ★ ★

गाथा - ९१

आगे फिर आत्मा का स्वरूप कहते हैं—

९१) अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि णवि ईसरु णवि णीसु।
तरुणउ बूढउ बालु णवि अण्णु वि कम्म-विसेसु॥ ९१॥

अन्वयार्थ :- भगवान आत्मा यह आत्मा, **चिद्रूप आत्मा...** ज्ञानरूप आत्मा त्रिकाल ज्ञान-आनन्दरूप आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। एकरूप ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव, उसे आत्मा (कहते हैं)। वह आत्मा **विद्यावान...** नहीं। यह जगत का अभ्यास और शास्त्र का अभ्यास और ऐसा विद्यावान वह आत्मा नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! वह मूर्ख नहीं। विद्या के सामने (लिया)। अपढ़ और अनपढ़ वह आत्मा नहीं। पढ़ा-पढ़ा वह आत्मा नहीं और अपढ़, अनपढ़ वह आत्मा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा ऐसे ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु, वह विद्यावान भी नहीं। समझ में आया? यह गजब बात, भाई! और विद्यावान वह लौकिक क्षयोपशमज्ञान, वह आत्मा नहीं। समझ में आया?

मूर्ख नहीं है, धनवान सब बातों में समर्थ भी नहीं है... ईश्वर, ईश्वर। बड़ा राजा, बड़ा ऐसा कुटुम्ब में और हजारों लोगों में उसका चले, आज्ञा चले, चलन चले। ऐसा कहते हमारे अन्दर। घर में हमारे घर में सब चला, बहुत चलता था। छोटी उम्र में सब सुना हुआ, सब देखा हुआ। हमारा चलन चले, कुँवरजीभाई कहे हमारा चलन चलेगा। शिवलालभाई की बहू थी, उसका दूसरा कहे, उसका चलन चले। सब चलन कैसे थे, सब उस समय मुझे खबर थी। ऐसे ढोंग-ढोंग। हमारा चलन था। किसका चलन तुम्हारा? कहाँ था धूल में? ऐई! गुलाबचन्दभाई! हमने तो सब देखा है न, हमने तो सब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी चलन नहीं। उसके भाव में रहा ... समझ में आया? कोई-कोई तो दृष्टान्त छोटी उम्र के ऐसे मस्तिष्क में घुस गये। बोलने का कम हो, परन्तु ख्याल में बहुत आ गया। हमारा चलन है, ... किसका धूल का चलन?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... बहुओं में चलन चलता हो। सात लड़के। कितने? सात। सात बहुएँ और उनकी लड़कियाँ, लड़के माँ.... माँ करे वहाँ... धूल में भी चलन नहीं। किसका चलन है? अज्ञानी मानता है कि हम हमारे परिवार के, जाति में, संग में, देश में, हिन्दुस्तान में इत्यादि। हम बड़े हैं। अज्ञानी उस आत्मा के साथ मिलान करता है। आत्मा आनन्दकन्द ज्ञानानन्द उसे पर के साथ क्या सम्बन्ध है? समझ में आया?

दरिद्री भी नहीं है... आत्मा दरिद्री भी नहीं। कहो, यह तो दरिद्री है, अरेरे! हम गरीब, यह वे पैसेवाले, हम दरिद्री। मूर्ख है, कहते हैं। दरिद्री और पैसेवाला आत्मा को मानना, वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। मूर्ख के, मूर्ख के गाँव भरे होंगे? गोपालदासभाई! यह तरुण नहीं—जवान नहीं। यह पहले आया था वह मैं हूँ, मैं हूँ आया था। पहले आया था न? मैं जवान। यह गाथायें क्यों आयीं? पहले में ऐसा आया था कि यह मैं हूँ, मैं हूँ। यहाँ यह मैं नहीं, ऐसा आया। मैं **जवान,...** नहीं। जवान तो जड़, मिट्टी, धूल की दशा है। बालक की अवस्था शरीर की, आत्मा की है नहीं। **बूढ़ा...** नहीं, आत्मा वृद्ध नहीं। आत्मा वृद्ध है? धूल की अवस्था मिट्टी के पिण्ड की, यह तो अवस्था वृद्ध की।

और बालक भी नहीं है,... लो! बालक आया, हों! यह आत्मा बालक नहीं। बालक तो देह की अवस्था है। आत्मा बालक कैसा? वह तो भगवान चिदानन्दमूर्ति आनन्दकन्द घन। समझ में आया? आनन्दघन का धन जिसमें भरा है। आहाहा! **'अन्यः अपि कर्म विशेषः' ये सब पर्यायें आत्मा से जुदे कर्म के विशेष हैं,...** यह सब अवस्थायें **आत्मा से जुदे कर्म के विशेष हैं,...** ऐसा लिखा है न? यह सब दशा—पर्याय कर्म आत्मा से भिन्न कर्म की विशेषतायें हैं। भगवान आत्मा की विशेष दशा यह नहीं, ऐसा कहते हैं। बालपना, जवानपना, जवानपना, वृद्धपना। आहाहा! शरीर ऐसा बड़ा लट्ठ जैसा हो, तीन-तीन लड्डू चढ़ाता हो चूरमा के अधसेर, अधसेर के घी डाले हुए। हम जवान हैं। धूल में भी नहीं गधेड़ा! आत्मा वह जवान होगा कहीं? गधेड़ा अर्थात् मूर्ख दूसरा क्या? पशु कहा है न शास्त्र में, पशु कहा है, पशु। चौदह (भंग के) बोल में पशु कहा है। समझ में आया? चौदह बोल हैं न पीछे (परिशिष्ट में) समयसार में। पशु है। वसतु के

वस्तुस्वरूप से अनेकान्तपना उसका तत्त्व है, उसे न मानकर विरुद्ध मानता है, पशु है। अर्थात् कि अन्त में पशु होनेवाला मरकर निगोद में जानेवाला है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गधेड़ा तो यह लोक में कहलाता है न जरा हल्का। भूं... भूं... बोला करे न बहुत। गधा, ऐसा नहीं कहते? यहाँ तो कहे पशु। वह तो और निगोद की दशा की ....

भगवान आत्मा वस्तुस्वरूप में यह बालपना, जवानपना, वृद्धपना, ईश्वरपना, महत्तापना, विद्यावान, मूर्खपना नहीं, उन्हें तू जोड़ता है। समझ में आया?

अर्थात् कर्म में उत्पन्न हुए विभाव-पर्याय हैं। यह विद्यावानपना भी उस कर्म से उत्पन्न हुई विभाव पर्याय है। आत्मा के ज्ञान, दर्शन में अभेद होता नहीं। यह बात। यह तो अकेला बाहर की विद्या पढ़ता है न बड़ा एम.ए. और एल.एल.बी. और बड़ी डिग्रियाँ पढ़ने की। ... समझ में आया? यह वकालत और बैरिस्टर और यह सब क्या पूंछड़ा है लम्बा। तुम्हारे क्या कहलाये? ... उसे आत्मा में जोड़ता है। वे आत्मा के नहीं, वह तो कर्म की विशेष दशा है। वह तो कोई कर्म के उघाड़ की विशेष दशा और उदय सब आत्मा में नहीं। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अखण्ड ज्ञायकमूर्ति आत्मा से उत्पन्न नहीं हुए। वह तो विकार से उत्पन्न हुए कर्म और कर्म से उत्पन्न हुए की विशेष दशायें हैं।

भावार्थ :- यद्यपि शरीर के सम्बन्ध से पण्डित वगैरह... देखो! समझ में आया? शरीर के सम्बन्ध से जीव को पण्डित इत्यादि विद्यावान, ईश्वर, सेठ कहते हैं न? ऊपरी। क्या कहलाते हैं वह सब? मजदूरों के ऊपरी को? देवशीभाई! मुकदमा? मुकादम। कहते हैं कि सब कर्म की विशेष दशायें हैं। भगवान आत्मा की दशा ही नहीं, वस्तु तो नहीं, परन्तु उसकी दशा भी नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कर्म की विशेष अवस्था लेनी है न सब। **जीव के कहे जाते हैं,...** व्यवहारनय से ज्ञान कराने के लिये यह बात—सम्बन्ध को बताते हैं।

तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मद्रव्य से भिन्न हैं,... भगवान शुद्धात्म वस्तु... वस्तु... वस्तु... (उससे) भिन्न / पृथक् हैं। शुद्ध सत्य दृष्टि, शुद्ध सत्य दृष्टि निश्चय ... वह शुद्ध सत्, ऐसा जो शुद्धात्म भगवान, उससे सब भिन्न हैं। **और सर्वथा त्यागने योग्य हैं।** सर्व प्रकार से '**हेयभूतान**' सर्व प्रकार से '**हेयभूतान्**' ऐसा कहा है न? सर्व प्रकार से छोड़नेयोग्य है। आहाहा! **इन भेदों को वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की भावना से रहित...** देखो! ऐसे सब विद्यावानपना, ईश्वरपना, दरिद्रपना है न? '**निःस्वो... निःस्वो... 'स्वो...**' अर्थात् धनरहित। '**स्वो**' अर्थात् धनरहित। दरिद्री वह ईश्वर, वह तरुण, वृद्ध और बाल, वे सब सर्वथा त्यागयोग्य। ऐसे प्रकार को **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की भावना से रहित...** देखो! पर्याय से रहित कहना है, हों! भगवान आत्मा वीतराग विज्ञानघन, आनन्दकन्द एकरूप वस्तु की भावना अर्थात् एकाग्रता। ऐसे शुद्धात्मा की वीतराग—रागरहित शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति ऐसी जो एकाग्रता, उसे वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, उसे वीतराग स्वसंवेदनज्ञान ऐसी एकाग्रता से रहित, ऐसी एकाग्रता से रहित ... इसका अर्थ हुआ कि सम्यग्दृष्टि उससे सहित। समझ में आया? रागरहित... स्वसंवेदनज्ञान की एकाग्रता से रहित, **मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है,...** अपने को जानता है। और यह सब भाव अपने मानता है। तरुण और विद्यावान, फलाना और फलाना और मन्द बुद्धि... **और इन्हीं को पण्डितादि विभावपर्यायों को अज्ञान से रहित...** देखो! अब गुलाँट खाता है। उसे पण्डित आदि विभावपर्याय, उस पर्याय को। इतनी बात। **अज्ञान से रहित...** समझ में आया? अर्थात् कि वीतराग स्वसंवेदन भावनासहित। अज्ञानरहित और रागरहित श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति के भावसहित। **सम्यग्दृष्टि जीव अपने से जुदे कर्मजनित जानता है।** कहो, समझ में आया? वह अपने से भिन्न पृथक् जानता है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, इसमें तो विद्यावान को उड़ाया। पढ़े-गुने हुए बड़े ऐसे प्रोफेसर पाँच-पाँच हजार का वेतन, दस-दस हजार का वेतन। (उड़ाया अर्थात्) आत्मा नहीं। वह आत्मा नहीं, वह अनात्मा है। कर्म की विभावपर्याय है, ऐसा कहा यहाँ तो। बड़े-बड़े ऐसे कोर्ट में कम्पावे उसको। दो-दो हजार रुपया ले, एक-एक दिन के पाँच-पाँच हजार, कोई अधिक भी लेते होंगे। कहते हैं कि ऐसी मूर्खाई को आत्मा के साथ मिलावे, वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा!

भगवान आत्मा... आहाहा! वह तो रागरहित श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से प्राप्त हो ऐसा आत्मा है। ऐसी शान्ति पर्यायरहित मिथ्यादृष्टि अज्ञानी ऐसे वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से रहित ऐसी दशा को 'मेरी' मानकर मैंपना सेवन करता है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ऐसी सब दशाओं को अपने में न मानकर, **अपने से जुदे कर्मजनित जानता है।** यह तीन गाथायें पूरी हुईं। पाँच मिनिट तुम्हारे इस राजुल की पहिचान में जायेंगे।

पूर्व भव का ज्ञान है। वहाँ जूनागढ़ में गोकुलदास ठक्कर की पुत्री थी। उसका नाम गीता था। वह यहाँ अपने वजुभाई के पुत्र प्रवीण के घर में पुत्री है। ढ़ाई वर्ष में इसे यह ज्ञान हुआ था, अभी पाँच वर्ष की है। ढ़ाई वर्ष में हुआ था कि, मैं गीता हूँ, जूनागढ़ से आयी हूँ इत्यादि-इत्यादि सब। यह दो भाई जाकर निर्णय कर आये थे। यह आत्मा में इस जाति की योग्यता होती है। ऐसा नहीं कि बालक ... सब उसके मुद्दे बहुत सच्चे पड़े। दोनों व्यक्ति निर्णय कर आये थे। समझ में आया? यह तो लौकिक में भी एक जीव की, भव का स्मरण... उस भव से मरकर सीधा यहाँ भाव हुआ है। गीता का जीव वहाँ था ढाई वर्ष में वहाँ से काल करके (मरकर)... यह तीसरे में आया है। राजुल कहती है कि ऐसे तो सबको याद हो। बालक है न, उसे ऐसा कि ऐसा तो सबको होता होगा। यह तो सबको याद होगा। परन्तु उसे याद आया है कुछ सबको याद नहीं आता। आत्मा तो एक ही रहा, यह खोल (शरीर) बदल गया, ऐसा कहते हैं। कल पूछा था कि गीता कहाँ गयी? गीता यहाँ आयी। गीता यहाँ आयी है। कहाँ खाती थी गीता?

मुमुक्षु : दुकान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी दुकान?

मुमुक्षु : गीता की, काका की दुकान।

पूज्य गुरुदेवश्री : गीता के काका की दुकान में खाती थी। ... गीता वहाँ थी न, उसके काका की दुकान में वहाँ पेड़ा खाती थी। यह सब याद... ऐसा सबको याद आता होगा बहिन? सबको आता होगा, लो। बालक है न। यह बात साक्षात् हो गयी है, हों! इसके बड़े-बड़े दो लेख आये हैं, आज बड़ा तीरा लेख आया है। अभी बड़ा लेख, तीन भाई वजुभाई और उनका बड़ा लेख आयेगा। यह बात साक्षात् हो गयी

है, हों प्रत्यक्ष। यह तो एक भव की बात है, इसमें कहीं। उस भव में थी जूनागढ़ में लुहार की पुत्री।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : और वह भी वापस वीतराग कहते हैं, यह सिद्ध होता है। वहाँ मरकर तुरन्त ही गयी है, बीच में कहीं रही नहीं। कोई कहे कि बीच में रहे और ऐसे भटके और फिर गर्भ में तीसरे महीने में जीव आवे यह सब बातें खोटी हैं। वह तुरन्त ही वहाँ से मरकर यहाँ उपजी है। समझ में आया? इसकी माँ भी अपने मुमुक्षु की पुत्री है, बींछिया की। मणीभाई की पुत्री और अपने वजुभाई का पुत्र। दो मुमुक्षु में... इतनी भाग्यशाली कि वहाँ से आकर यहाँ जन्मी वापस। ...

... इसकी निन्दा करनेवाले निकले थे। यह महाकर्म जिसने बाँधा बड़ा। महा भगवती है। उन्हें तो कितने भव का जातिमरण है और आत्मज्ञान है। बात बहुत समय से प्रसिद्ध है। यह तो लड़की के कारण से बाहर प्रसिद्ध किया। समझ में आया? आहाहा! बोलना, वह कम लाये हैं, बोलने का कम, बाहर में कोई वैसा नहीं, लोग पहिचान सकते नहीं। कुछ न कुछ विवाद निकालकर, आड़े-टेढ़े दोष निकालकर कुछ अन्दर आरोप भी डालने की तैयारी की थी, सब ख्याल में है सब। आहाहा! ऐसे भी निकले जगत में उल्टे। यह महा भगवतीस्वरूप है! जातिस्मरण और आत्मज्ञान दोनों हैं। और चार भव का ज्ञान है। इसे (राजुल को) तो अभी एक भव का है, इन्हें (बहिनश्री चम्पाबेन को) चार भव का ज्ञान है। तीसरे देवलोक के देव में थे, तब का ज्ञान है। दो सागर की स्थिति का। समझ में आया?

... जातिस्मरण होने के बाद बात की बहिन ने। यह तीज का दिन, यह दिन बराबर २२ वर्ष हुए, ... ये (संवत्) १९९४ के मागसर शुक्ल तीन। कुदरत क्या मेल खाती है, देखो तो सही! ९४ के मागसर शुक्ल तीन। यह शान्तिभाई कहाँ गये हमारे? यह शान्तिभाई... यह आज का दिन, आज का दिन। ... महीना ऊपर चैत्र कृष्ण अष्टमी (हिन्दी वैशाख कृष्ण अष्टमी को) जातिस्मरण हुआ। गम्भीर, गम्भीर कुछ बोलने की बात नहीं। सात महीने और बारह दिन में बात की। ... चौथ को बुलाया था। तब यह

मनसुखभाई की पुत्री का विवाह होता था। ये लोग आये थे। मोहनलाल दामोदर। यह निहालचन्द वह नहीं ? घांघलीवाला। बहिन को बुलाया। चौथ के दिन सवेरे व्याख्यान के बाद। यह बात ... वह महीना और यह दिन और यह शुक्ल और सब इकट्ठा आया है। समझ में आया ? यह तो थोड़ी बात। अब बहुत वर्ष हो गये, २९ वर्ष हो गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी बात यह झेले तो बहुत है। बात तो बहुत लम्बी है। झेलो तो सही इतनी। यह तो अपच हो ऐसा है लोगों को। बाह्य में लोगों को... यह तो दूसरे क्षेत्र की बात। इस क्षेत्र की हो तो राजुल की निर्णय हो गयी। ... उसके साथ रहे हुए हों, उसके साथ कुछ मेल हो, उसे खबर पड़े, दूसरे को क्या खबर, दूसरे ... कल्पना लगती है, कल्पना लगती है। वजुभाई ! इस लड़की के कारण... ९४ में वैशाख कृष्ण आठम को यह वजुभाई को वहाँ कहा था। ... तब मैंने बाहर बरामदे में कहा था। भाई ! बहिन की स्थिति ऐसी है। यह रह सके नहीं। ऐसा कहे, जाकर पैर छूता हूँ। मैंने कहा, रहने दो, हों ! रहने दो। बात बाहर प्रसिद्ध हो जायेगी। तुम थे ? यह बरामदे में, हों ! ९४ के वैशाख कृष्ण अष्टमी। इसका मुहूर्त हुआ न जिस दिन, तब शाम को मैं आहार करके घूमता था। मैंने कहा, जरा इसके कान में डालूँ। इसका मस्तिष्क ऐसा। जाकर पैर छुऊँ उठ-बैठ करके। भाई ! बात बाहर प्रसिद्ध नहीं की जाती। यह तो पचाने जैसी, अभी लोगों को झेलने की सामर्थ्य नहीं। मुश्किल से रोका था। अरे ! हमारे घर में ऐसी बहिन ! ऐसा हुआ न इन्हें। इतना उफान आ गया, इतना उफान (हर्ष) आ गया कि जाकर पैर छुऊँ। लोगों को शंका पड़ेगी कि यह पैर छूते हैं तो कुछ लगता है।

यहाँ के विरोधियों को तो सब कठोर लगे ऐसा है। कल्पना लगे ऐसी बातें हैं भाई ! यह तो। यह तो और इस लड़की का जरा हुआ फिर और एक घर में दो आये। देखो न ! लौकिक का आकर यह लायी और लोकोत्तर का बहिन लाये। बहिन की बातें अलग हैं। बहिन तो भगवती मूर्ति है। जिसकी बात अन्दर की थी, उसकी दस वर्ष में बात की। क्या वह बात तुमको करूँ। यह बात ऐसी है जरा। दस वर्ष में बात की, बहिन ! मुझे ऐसा आया है, कहा। इसका क्या है ? बोले नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरी बात की कि, ऐसा मुझे आया था, ऐसा मुझे आया था। बहिन! मुझे ऐसा आया था, हों! मुझे रात्रि में स्वप्न आया था, हों! उसमें ऐसा आया था। उसमें कौन है यह दो? आहाहा! तब तुम कौन? तब मुश्किल-मुश्किल .... बुलाये ऐसे बुलवाया। ... तो बहुत भाग्य! दूसरे की अपेक्षा यह चौरासी के जीवों को यह बात कान में पड़े और ऐसे बहुत जीव... यह मिलना मुश्किल है। ऐसी बात सुनना, उसमें ऐसे जीवों की योग्यता, उसमें स्त्री में ऐसे जीव पके। ऐसे स्त्री में बहिन जैसे पके हैं, वह तो कौन जाने कब पकते होंगे, ऐसा लगता है। समझ में आया? यह स्त्रियों का भी भाग्य इतना बड़ा!

... कहाँ गया हमारा? सूर्यकान्त। देखा या नहीं यह? यह सब परभव है, हों! यह वहाँ से सब आये हैं कितने मरकर। कितने अर्थात् कहीं-कहीं है ऐसा। कितने ही मनुष्य में से आये हैं, कितने ही देव में से, कोई ढोर में से। सीधे सीधा अवतरते हैं। प्रत्यक्ष दृष्टान्त है न यह राजुल का। बाहर की अपेक्षा से तो तुमको प्रत्यक्ष दिखता है न। प्रत्यक्ष है, उसमें कहाँ बात है। यहाँ तो सब बहुत प्रत्यक्ष हो गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, महिलाओं के तो, भाई! जिसे बहुमान होगा उसका भाग्य! बाकी तो सब... एक कुल में ऐसे आत्मा पके, वह तो किसी समय और वह ऐसे काल में। ऐसी भीड़ में प्रतिकूल महा मिथ्यात्व के जोर में। त्यागी, बड़े पण्डित गोते खायें, भाई! क्या हो? समझ में आया? उसमें ऐसी चीज़ की प्राप्ति महान है!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सच्ची बात, यह मौका मिला यह तो। ... क्या करना होगा कुदरत को? यह सब मिलान इस प्रकार के हैं न। इतनी बात, लम्बी बात नहीं। लम्बी बात नहीं। ... जरा बहुत लोगों में यह और लड़की का हुआ न... कितने ही तो बहिन को नहीं पहिचानते और ऐसे बोलने का कम, ऐसा कुछ नहीं होता, इसलिए मानो कि, यह कुछ नहीं जानते होंगे, जानकारी नहीं होगी। प्रश्न-उत्तर में कुछ... पहले कहा था

उनके जन्मदिवस पर कि, पूरे मण्डल की माला का यह बड़ा मणका मेर है। ऐसा कहा था। ... तुम थे या नहीं तब ?

... छोटी लड़की को इसलिए बेचारे को... यहाँ से यहाँ सीधे जूनागढ़ से... जन्मी कहाँ ? बीछिया यह पूछा था। कहाँ जन्मी ? कहाँ से आयी ? ... आयी। वहाँ से बीछिया आयी। सवा नौ महीने पहले आयी... कहाँ से आयी ? जन्म से बीछिया। जिस तारीख में मर गयी, उस तारीख में रात्रि में आयी यहाँ। यह तो सब बराबर है, मेल है। और यह दो व्यक्ति कुछ कच्चा हो तो बाहर बात रखे ऐसे हैं ? उसमें यह हमारे पण्डितजी। कैसी परीक्षा की गीता की ? तू तेरी माँ को पहिचानेगी ? जूनागढ़ जायेगी तो तेरी माँ को पहिचानेगी ? तेरे बाप को पहिचानेगी ? तेरे काका को पहिचानेगी ? तू गीता को पहिचानेगी ? गीता को पहिचानेगी क्या ? गीता तो मैं हूँ। उनमें हाँ में हाँ पाड़ दे। वहाँ तेरी माँ को पहिचानेगी ? पूर्वभव की तेरी माँ को, तेरे बाप को पहिचानेगी ? तेरे फलाने को पहिचानेगी ? गीता को पहिचानेगी ? गीता तो मैं हूँ। पण्डितजी का यह शब्द मुझे भारी लग गया। ... बालक है न, वेग में और वेग में कह दे कि मैं गीता को पहिचानूँगी। परन्तु गीता तो मैं हूँ। कौन पहिचाने ? मैं ही गीता आयी हूँ.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

: प्रकाशक :
श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबई
www.vitragvani.com